कृष्णदास संस्कृत सीरीज ६१

॥ श्रीः ॥

वेणीसंहार-नाटकम्

सटिप्पण 'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः-

डॉ० बालगोविन्द झा



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी



कृष्णदास संस्कृत सीरीज
६१

महाकवि-भट्टनारायणप्रणीतं

वेणीसंहार-नाटकम्

सटिप्पण 'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार:-
डॉ० बालगोविन्द झा
एम. ए., पी-एच. डी.
प्रो०, स० व० पटेल महाविद्यालय, भभुआ, रोहतास (बिहार)



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
१९८४

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४१

मूल्य रू० : २०–००

पो० बा० नं० १११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी–२२१००१

(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
61



VEṆĪSAMHĀRA NĀṬAKAM

OF

MAHĀKAVI BHAṬṬANĀRĀYAN

Edited with
'Kamaleshwaree' Sanskrit-Hindi Commentaries
By

Dr. BALGOVIND JHA
M. A., Ph. D.
Prof., S. V. Patel College, Bhabhua, Rohtas (Bihar)



KRISHNADAS Academy
VARANASI-221001
1984

© KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
POST BOX No. 1118
Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi–221001
(INDIA)

First Edition
1984
Price Rs. 20–00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 1008, Varanasi–221001 (India)
Phone : 63145

समर्पराम्

पूज्य पितृचरण

पं० श्री कालीकान्त झा, व्याकरणाचार्य

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

प्राक्कथन

"वेणीसंहार-नाटक" भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में संस्कृत-पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत निर्धारित है तथा स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में पाठ्यपुस्तक के रूप में यह पढ़ा-पढ़ाया जाता है। इसके साथ ही प्रख्यात नाटककार की सुविख्यात एवं लोकप्रिय कृति होने के कारण "वेणीसंहार" को बड़े चाव से पढ़ने वाले अन्य पाठकों की संख्या भी न्यून नहीं है। अतः विश्व-विद्यालयीय छात्रों की आवश्यकता एवं इतर संस्कृत सेवियों की सुविधा को ध्यान में रखकर ही वेणीसंहार के प्रस्तुत संस्करण को "कमलेश्वरी" संस्कृत-हिन्दी टीका से संवलित किया गया है! इस टीका के माध्यम से पाठकों को "वेणीसंहार" के अध्ययन का पूरा-पूरा लाभ एवं आनन्द प्राप्त हो सके, इसी लक्ष्य की ओर विशेष सचेष्टता बरती गई है। नाटक के अन्तर्गत संवादों एवं श्लोकों के व्याख्याक्रम में अन्वय, प्रतिशब्द, छन्द एवं अलङ्कार का निर्देश तथा टिप्पणी द्वारा गम्भीर भावों को सरल एवं सर्वजनसंवेद्य बनाने की पर्याप्त चेष्टा की गई है। भूमिका-भाग में कवि एवं उनकी कृति से सम्बद्ध ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक विवेचन भी सविस्तर प्रस्तुत किया गया है।

"कमलेश्वरी" संस्कृत-हिन्दी टीका की प्रणयनावधि में मुझे अपने वन्दनीय अग्रज श्रीशङ्कर झा, प्रधानाध्यापक, राजकीय उच्च विद्यालय उरलाहा (पूर्णियाँ) तथा पूजनीया भाभी श्रीमती हीरा देवी से निरन्तर वात्सल्यमयी उत्प्रेरणायें तथा शुभाशीर्वादयुक्त प्रोत्साहन मिलते रहे। उन दोनों के चरणारविन्दों में तो मैं सदैव नतमस्तक हूँ ही, साथ ही श्रीयुत डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी, आचार्य एवं अध्यक्ष दर्शन-विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, श्रीयुत डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, आचार्य एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन, मगधविश्वविद्यालय बोध गया (विहार) तथा डॉ० श्रीयुत नारायण मिश्र, प्रवाचक, संस्कृतपालि विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय—आदि पूज्य गुरुजनों

से मुझे जो स्नेहाभिषिक्त आशीर्वचन प्राप्त हुए हैं उनके लिए मैं उन सबों के चरणों में भी श्रद्धावनत हूँ।

हिन्दी एवं अंग्रेजी में वेणीसंहार के अब तक उपलब्ध प्रायः सभी संस्करणों से आवश्यकतानुसार सहायता लेकर प्रस्तुत कार्य को पूरा किया गया है अतः तत्तत् संस्करणों के तत्तत् विद्वान् सम्पादकों के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

"कृष्णदास अकादमी" वाराणसी के व्यवस्थापक श्रीयुत विट्ठलदासजी गुप्त ने प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन की व्यवस्था कर जो सहयोगात्मक भाव प्रकट किया है उसके लिए वे प्रशंसनीय तथा धन्यवादार्ह हैं।

मेरा यह क्षुद्र प्रयास यदि छात्रों एवं अन्यसंस्कृत सेवियों का स्वल्प हित-साधन भी कर सका तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा। अन्त में, इस विश्वास के साथ कि प्रस्तुत टीका में क्वाचित्करूप से पायी जाने वाली त्रुटियों के लिए विद्वान् एवं सहृदय पाठक मुझे क्षमा करेंगे ही, मैं इस विषय में उनके मूल्यवान् सुझावों एवं निर्देशों के सादर स्वागत की घोषणा करता हूँ।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
वि० सं० २०४१

बालगोविन्द झा

भूमिका

१. भट्टनारायण का जीवनवृत्त

संस्कृत के अधिकांश प्राचीन कवियों ने अपने सम्बन्ध में प्रायः मौनावलम्बन ही किया है। लोकैषणा के प्रति औदासीन्य या आत्मविज्ञापन से पराङ्मुख होना ही प्रायः इसका मूल कारण है। संस्कृत के ऐसे अनेक कवियों की लम्बी सूची है जिन्होंने कर्तृत्व की तुलना में कृति को ही अधिक महत्त्व दिया है। "वेणीसंहार नाटक" के प्रणेता भट्टनारायण भी इसके अपवाद नहीं है। 'वेणीसंहार' की प्रस्तावना में "मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारं नाम नाटकम्" एतावन्मात्र कथन के अतिरिक्त अपने विषय में कुछ भी जानकारी देने में कवि ने जैसा कार्पण्य प्रदर्शित किया है उससे सिद्ध होता है कि अन्तःसाक्ष्य के आधार पर कोई भी तत्त्वान्वेषणशील पाठक कवि भट्टनारायण के जीवनवृत्त को इदमित्त्थंरूपेण नहीं जान सकता। वेणीसंहार की प्रस्तावना से केवल इतनी-सी जानकारी प्राप्त होती है कि यह नाटक किसी "मृगराज लक्ष्मा" कवि भट्टनारायण की रचना है। ये कवि भट्टनारायण कौन थे अपने जन्म से इन्होंने किस भू-भाग एवं वंश को विभूषित किया था—आदि-आदि जिज्ञासाएँ ज्यों की त्यों बनी ही रह जाती हैं, किन्तु किसी कवि के जीवनवृत्त, समय आदि के विषय में किसी ठोस निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए अन्तःसाक्ष्य के साथ-साथ बहिःसाक्ष्य का भी अवलम्बन लेना पड़ता है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर यह देखा जाता है कि कवि ने अपनी कृति में अपने विषय में कितना-कुछ कहा है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों के आधार पर भी कृतिकार के जीवनवृत्तादि का सङ्केत ढूंढा जाता है तथा समय-निर्धारण किया जाता है जो बहिःसाक्ष्य पर अवलम्बित होता है।

बहिःसाक्ष्य के आधार पर भट्टनारायण के विषय में उपलब्ध-जानकारी—प्रस्तुत सन्दर्भ में यदि नाटककार भट्टनारायण की कृति 'वेणीसंहार' से हटकर अनुसन्धान किया जाय तो उपर्युक्त जिज्ञासाओं का कुछ हद

तक काम चलाऊ समाधान उपलब्ध हो सकता है। इसे वस्तुतः संस्कृतसेवियों का सौभाग्य ही कहना चाहिए कि बंगाल के राजाओं के सम्बन्ध में संस्कृत भाषा में निबद्ध कुछ वंशानुवर्णनपरक ऐतिहासिक लेख (Chronicles) उपलब्ध हैं जिनके अध्ययन से भट्टनारायण के विषय में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है किन्तु विश्वसनीयता के अभाव में यह कहना कठिन है कि उन राज-वंशानुवर्णनात्मक ऐतिहासिक लेखों (Chronicles) में जिन भट्टनारायण का उल्लेख किया गया है वे "वेणीसंहार" के रचयिता भट्टनारायण से अभिन्न ही हों। इसका कारण यह है कि उन लेखों में कहीं भी भट्टनारायण को कवि या नाटककार नहीं कहा गया है इसलिए सन्देह का अवसर सर्वथा टल नहीं पाता।

बंगाल के राजाओं का वंशानुवर्णन प्रस्तुत करनेवाले संस्कृत-ग्रन्थों में "क्षितीशवंशावलीचरितम्", "वंगराजघटक", "राजावली" तथा "दक्षिण-राधीयघटककारिका" आदि प्रमुख हैं। "क्षितीशवंशावलीचरितम्" के अनुसार भट्टनारायण कान्यकुब्ज (कन्नौज) के मूलनिवासी थे। वे शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न सारस्वत ब्राह्मण थे तथा बंगाल के तत्कालीन राजा "आदिसूर" के आमन्त्रण पर अन्य चार ब्राह्मणों के साथ कन्नौज से जाकर बंगाल में बस गये थे। बंगाल का राजा 'आदिसूर' सेनवंश का प्रवर्त्तक माना जाता है। वह जाति से शूद्र था। आदिसूर कोई वैदिक अनुष्ठान कराना चाहता था किन्तु उसके शूद्र होने के कारण बंगाल के विद्वानों ने उसे इस कार्य में सहयोग देने में न केवल अपने हाथ ही खींचे अपितु तीव्र विरोध भी प्रकट किया। फलतः अपने राज्य के विद्वानों का सहयोग न मिलने पर आदिसूर ने कन्नौज के राजा से अभीष्ट यज्ञ के सम्पादनार्थ वैदिक कर्मकाण्ड में निष्णात पाँच ब्राह्मणों को भिजवाने की याचना की। उसकी याचना पर कन्नौज के राजा ने पाँच ब्राह्मणों को बंगाल भेजा जिनमें भट्टनारायण प्रधान थे। बंगाल जाकर भट्ट-नारायण ने आदिसूर का अभीष्ट यज्ञ सम्पन्न कराया एवं दक्षिणा में आदि-सूर ने भट्टनारायण को पाँच गाँव दिये। भट्टनारायण इसके बाद वहीं बस गये। धीरे-धीरे यह सम्पत्ति इतनी अधिक बढ़ गई कि कालान्तर में भट्टनारायण स्वयं एक राजवंश के प्रवर्त्तक माने जाने लगे।

क्षितीशवंशावलीचरितम्, वंगराजघटक, राजावली तथा दक्षिणराधीय-घटककारिका आदि वंशानुवर्णनपरक सभी ग्रन्थों में इस बात का समान रूप से उल्लेख मिलता है कि भट्टनारायण कन्नौज से चार ब्राह्मणों के साथ जाकर बंगाल में बस गये थे किन्तु अपनी जन्मभूमि को छोड़कर बंगाल में जा बसने के पीछे कौन सा कारण था इस प्रश्न का उत्तर भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न रूपों में मिलता है।

एक कथा के अनुसार एक बार बगाल में अनावृष्टि के कारण घोर दुर्भिक्ष पड़ा। जनता हाहाकार कर उठी। वहाँ के राजा 'आदिसूर' ने वृष्टि कराने के लिए यज्ञ करने का निश्चय किया तथा इसके लिए कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मणों को निमन्त्रण देकर बुलवाया। भट्टनारायण उन्हीं पाँच ब्राह्मणों में से एक थे। 'वंगराजघटक' के अनुसार 'आदिसूर' ऐसा यज्ञ करना चाहता था जिससे भगवान् प्रसन्न हो जायें। उसके राज्य में रहनेवाले ब्राह्मण जब कोई उपाय न बतला सके तो उसने कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मणों को बुलवाया। एक अन्य कथा के अनुसार वंगदेश पर आनेवाली विपत्तियों के लक्षण देखकर 'आदिसूर' ने उनके निवारण के लिए कन्नौज से पाँच ब्राह्मणों को बुलवाया। एक अन्य कथा के अनुसार इन ब्राह्मणों ने धार्मिक उत्पीडन के कारण अपनी जन्मभूमि, कान्यकुब्ज का त्याग किया था। भट्टनारायण द्वारा अपनी जन्मभूमि (कन्नौज) का त्यागकर वंगाल में जाकर बस जाने के मूल में उपर्युक्त जिन कारणों का उल्लेख किया गया है उनमें से अन्तिम कारण का समर्थन ए० बी० गजेन्द्र गडकर द्वारा सम्पादित 'वेणीसंहार' की भूमिका से भी होता है। ए० बी० गजेन्द्र गडकर ने वेणीसंहार की भूमिका में इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि धार्मिक उत्पीडन के कारण ही भट्टनारायण सहित अन्य चार ब्राह्मण कान्यकुब्ज को छोड़कर बंगाल में जा बसे होंगे। जिस समय यह घटना घटी थी उस समय कान्यकुब्ज में बौद्धधर्म का प्राधान्य था। बौद्धधर्मप्रधान वातावरण में वैदिकधर्मावलम्बियों का निरादर या उत्पीडन अस्वाभाविक नहीं है। निरादर एवं उत्पीडन से ऊबकर ही भट्टनारायण ने अन्य चार ब्राह्मणों के साथ कान्यकुब्ज का त्याग किया होगा चूंकि भट्टनारायण कट्टर वैदिक धर्मानुयायी थे।

उपर्युक्त विवेचन से तथा अन्य प्रमाणों से इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि कान्यकुब्ज के मूलनिवासी तथा तत्कालीन बंगनरेश 'आदिसूर' के आमन्त्रण पर बंगाल में जाकर बस जाने वाले भट्टनारायण ही 'वेणीसंहार' के रचयिता हैं चूँकि ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर जो समयं 'आदिसूर' का निर्धारित किया गया है वही समय वेणीसंहार के रचयिता का भी निर्धारित किया जाता है। इतिहासकारों ने 'आदिसूर' का समय सप्तम शतक का उत्तरार्द्ध माना है।

कान्यकुब्ज से बंगाल जाकर बस जाने वाले भट्टनारायण को "वेणीसंहार" का रचयिता मानने में कुछ बाधाएँ हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है।

भारतीय राजाओं के आश्रय में रहने वाले कवियों की नाटक कृतियाँ राजदरबारों में ही अभिनीत हुआ करती थीं। ऐसे नाटककारों ने अपने-अपने नाटकों की प्रस्तावना में अपने-अपने आश्रयदाता राजाओं की तथा उनकी परिषद् की विशेषरूप से चर्चा की है किन्तु "वेणीसंहार" की प्रस्तावना में एतद्विषयक कुछ भी संकेत नहीं पाया जाता है। वहाँ न किसी राजा का ही उल्लेख किया गया है और न उसकी परिषद् का ही। वेणीसंहार की प्रस्तावना में सूत्रधार के द्वारा "तत्रभवतः परिषदग्रेसरान् विज्ञाप्यं नः किञ्चिदस्ति"—इस कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि यह नाटक सामान्य जनता के बीच खेला जा रहा है। यदि बंगनरेश 'आदिसूर' वेणीसंहार के रचयिता भट्टनारायण को कन्नौज से बुलाकर उनका सत्कार करते या भट्टनारायण स्वयं कन्नौज का परित्याग कर बंगनरेश आदिसूर का आश्रय प्राप्त करते तो अपने नाटक वेणीसंहार में अपने आश्रयदाता के नाम, स्वभाव, गुण आदि की चर्चा वे अवश्य करते किन्तु ऐसा कुछ भी इस नाटक में कहीं भी नहीं है। आश्रयदाता राजा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने की यह परिपाटी कतिपय भारतीय कवियों ने अपनाई है जो स्वाभाविक एवं उचित भी है किन्तु भट्टनारायण द्वारा ऐसा न करना निर्विवादरूप से यह सूचित करता है कि जिन भट्टनारायण का सम्बन्ध बंगाल के राजा आदिसूर से रहा होगा वे निश्चय ही वेणीसंहार के रचयिता से कोई भिन्न व्यक्ति होंगे।

यदि यह तर्क दिया जाय कि बंगाल जाने से पूर्व ही भट्टनारायण ने वेणीसंहार की रचना कर डाली थी इसलिए नाटक में वहाँ के आश्रयदाता राजा के उल्लेख का कोई प्रश्न ही नहीं उठता तो भी यह बात युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती क्योंकि सर्वप्रथम विचारणीय प्रश्न तो यह है कि क्या भट्टनारायण ने धार्मिक उत्पीडन के कारण स्वयं कन्नौज का त्याग किया था या बंगनरेश की याचना पर कन्नौजनरेश ने स्वयं उन्हें बंगाल भेजा था ? यदि पहली बात सत्य हो तो बौद्धों द्वारा अपने प्रति किये गये दुर्व्यवहार की निन्दा या बौद्धधर्म की कुत्सा या खण्डन करने में कवि चूकता नहीं। कोई भी कवि यदि अपने जीवन में घटी किसी घटना से विशेषरूप से मर्माहत होता है तो अपनी कृति में किसी न किसी व्याज से उसका संकेत वह अवश्य देता है। कट्टर वैदिक धर्मानुयायी होने के कारण बौद्धों द्वारा यदि वेणीसंहार के रचयिता का उत्पीडन होता तो अपने उत्पीडकों के प्रति अपनी रचना में कवि का आक्रोश अवश्य प्रकट होता किन्तु वेणीसंहार में कहीं भी इस तरह की कोई बात नहीं पाई जाती है। यदि यह कहा जाय कि बंगराज की प्रार्थना पर स्वयं कान्यकुब्जनरेश ने इन्हें बंगाल भेजा था और बंगाल जाने से पूर्व ही इन्होंने वेणीसंहार की रचना कर डाली थी तो फिर वही प्रश्न उठ खड़ा होता है कि अपनी रचना में बंगनरेश का न सही, कान्यकुब्जनरेश का भी तो उल्लेख कवि को अवश्य करना चाहिए था किन्तु अपने किसी भी आश्रयदाता राजा का उल्लेख न करने के कारण यही तथ्य सामने आता है कि वेणीसंहार के रचयिता का सम्बन्ध न तो बंगनरेश से ही रहा होगा और न कान्यकुब्जनरेश से ही। इसलिए उन दोनों राजाओं से सम्बद्ध भट्टनारायण निश्चय ही वेणीसंहार के रचयिता से भिन्न व्यक्ति रहे होंगे।

"क्षितीशवंशावलीचरितम्" में भट्टनारायण को एक वैभवशाली व्यक्ति के रूप में अवश्य उल्लिखित किया गया है किन्तु उनके कवि होने का निर्देश उसमें कहीं भी नहीं किया गया है। यदि "क्षतीशवंशावलीचरितम्" में चर्चित भट्टनारायण ही वेणीसंहार के रचयिता होते तो उनके कवि होने की चर्चा भी उसमें अवश्य की गई होती, अतः इस आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि दोनों भट्टनारायण परस्पर भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं।

इसके अतिरिक्त वेणीसंहार के भरतवाक्य से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि भट्टनारायण को किसी राजा का आश्रय नहीं प्राप्त था। भरतवाक्य में आये हुए—"विद्वद्बन्धुर्गुणे विशेषवित्"—के द्वारा कवि ने राजाओं को गुणवानों के गुणों का पारखी होने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है। यदि भट्टनारायण को किसी गुणग्राही राजा का आश्रय प्राप्त होता तो भरतवाक्य में कवि इस प्रकार की अभिलाषा कदापि प्रकट नहीं करता। इसलिए आदि-सूर का आश्रय प्राप्त करनेवाले भट्टनारायण वेणीसंहारकार भट्टनारायण से भिन्न व्यक्ति रहे होंगे; यह निश्चित प्राय है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वेणीसंहार नाटक के रचयिता वंगाल के पूर्वोक्त लेखों में उल्लिखित भट्ट-नारायण से भिन्न व्यक्ति हैं।

२—भट्टनारायण की जाति—भट्टनारायण की जाति के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इन्हे ब्राह्मण बतलाते हैं एवं कुछ लोगों के अनुसार भट्टनारायण क्षत्रिय सिद्ध किये जाते हैं। दोनों ही मतों के समर्थन में भिन्न-भिन्न साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हैं। भट्टनारायण को ब्राह्मण बतलानेवालों के अनुसार वेणीसंहार के रचयिता के नाम के साथ जुड़ा हुआ 'भट्ट' शब्द ही इसका प्रमाण है कि भट्टनारायण वस्तुतः ब्राह्मण थे। किसी भी ब्राह्मणेतर जाति के लोगों के नामों के साथ यह उपाधि प्राचीनकाल में जुड़ी हुई नहीं देखी गई है। केवल ब्राह्मण जाति के लोगों के नामों के साथ ही इस उपाधि को जुड़ा हुआ पाया जाता है। इसलिए "भट्टनारायण" नाम के केवल 'भट्ट' वंश से ही यह सिद्ध हो जाता है कि भट्टनारायण वस्तुतः जाति से ब्राह्मण थे। इसके अतिरिक्त वेणीसंहार के कतिपय अन्तःसाक्ष्य भी भट्टनारायण के ब्राह्मणत्व का समर्थन करते हैं। ब्राह्मण के प्रति कवि का पक्षपात नाटक में यत्र-तत्र दृष्टि-गोचर होता है। तृतीय अङ्क के राक्षस-राक्षसी संवाद में "ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद् गलं दहद् दहत्प्रविशति" जैसे कथन से "ब्राह्मण जाति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। इसी अङ्क में कर्ण एवं अश्वत्थामा के पारस्परिक वाक्कलह के अन्तर्गत अश्वत्थामा के पलड़े को भारी रखने का कविने भरपूर प्रयास किया है। संस्कृत नाटकों में किसी ब्राह्मण को ही विदूषक का

रूप देकर उसकी दुर्दशा तथा मूर्खता को प्रदर्शित करनेवाली प्रचलित परिपाटी का 'वेणीसंहार' में सर्वथा अभाव है। प्राय: स्वयं ब्राह्मण होने के कारण ही नाटककार को नाटक मे किसी ब्राह्मणपात्र को उपहासात्मक रूप में प्रस्तुत करना प्रिय नहीं लगा हो, इसीलिए ऐसी पात्र-योजना के प्रति वे उदासीन रहे हों ऐसा अनुमान किया जा सकता हे। इन प्रमाणों के आधार पर भट्टनारायण का ब्राह्मण होना निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है।

कुछ लोगों ने भट्टनारायण को 'वेणीसंहार' की प्रस्तावना में आये हुए "कवेर्मृगराजलक्ष्मण:" के आधार पर क्षत्रिय सिद्ध करने का प्रयास किया है। वे 'मृगराज' शब्द का अर्थ 'सिंह' तथा 'लक्ष्मण:' शब्द का अर्थ 'उपाधि धारण करने वाला' करते हैं। उनके मतानुसार "मृगराजलक्ष्मण:' का अर्थ हुआ—सिंह उपाधिधारी अर्थात् क्षत्रिय। किन्तु वास्तविकता यह है कि "कवेर्मृगराजलक्ष्मण:' शब्द का अर्थ "सिंह उपाधिधारी कवि" नहीं अपि तु "कविसिंह की उपाधि को धारण करने वाला" है। प्राचीन काल में क्षत्रियों के नामों के साथ 'सिंह' शब्द का प्रयोग नहीं होता था इसलिए केवल 'सिंह' शब्द के आधार पर भट्टनारायण को क्षत्रिय सिद्ध करना युक्तिसंगत नहीं है। विचार करने पर यही युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि कवि ने अपनी वीररस प्रधान कृति—वेणीसंहार की रचना के आधार पर ही अपने नाम के साथ 'कविसिंह' उपाधि का प्रयोग किया होगा। 'वेणीसंहार' में वीररस का जैसा परिपाक हुआ है वह वस्तुत: श्लाघनीय है। नाटक के अन्तर्गत "मथ्नामि कौरवशतम्०", "चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात०" आदि भीमसेनोक्त पद्यों में तथा अश्वत्थामा की उक्तियों में जो ओजस्विता है वह किसी भी निष्प्राण व्यक्ति में प्राणवत्ता का सञ्चार करने में पूर्ण समर्थ है। अपनी कृति में वीररस की ऐसी तीव्र धारा बहानेवाला कवि यदि अपने को कविसिंह कहता हो तो इसमें अस्वाभाविकता कहाँ है?

अत: विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यही मानना उचित है कि भट्टनारायण जाति से ब्राह्मण ही रहे होंगे'।

३—भट्टनारायण की धार्मिक मान्यता—भट्टनारायण की धार्मिक मान्यता का क्या स्वरूप था, वे किस सम्प्रदाय के अनुयायी थे, वे शैव थे या वैष्णव आदि प्रश्नों के उत्तर आज भी अनुसन्धान की परिधि में ही भ्राम्य-

माण हैं। जिज्ञासु विद्वानों ने इस दिशा में भी प्रयास कर अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं। वेणीसंहार की प्रस्तावना के अन्तर्गत नान्दी-श्लोकों में कवि ने क्रमशः हरि (विष्णु), "कंसद्विष्" (श्रीकृष्ण) तथा धूर्जटि (शिव)—इन तीन देवों की स्तुति की है। वेणीसंहारस्थ प्रथम अङ्क के "आत्मारामा विहितरतयो०" (श्लोक सं० २३) और षष्ठ अङ्क के श्लोक—४३,४५, और ४६ के आधार पर भट्टनारायण को वैष्णव कहा जाता है। कुछ विद्वान् उन्हें वैष्णवों में भी पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का अनुयायी मानते हैं। किन्तु वेणी-संहार में भीम और युधिष्ठिर द्वारा श्रीकृष्ण की दिव्यता के प्रति प्रकट किये गये विश्वास को कवि का अपना विश्वास नहीं माना जा सकता है क्योंकि वेणीसंहार के उपजीव्य-महाभारत में भी पाण्डवों के द्वारा श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व स्वीकार किया गया है। दूसरी बात यह है कि प्रथम अङ्क के श्लोक २३ में तथा षष्ठ अङ्क के श्लोक ४.,४५ एवं ४६ में ऐसे किसी सिद्धान्त का स्पष्ट निर्देश नहीं किया गया है जिसके आधार पर वेणीसंहार के रचयिता को पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का अनुयायी माना जा सके। षष्ठ अङ्क के श्लोक ४३ से यही सिद्ध होता हैं कि वे विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों में से किसी सम्प्रदाय-विशेष के पक्षपाती नहीं थे क्योंकि इस श्लोक में कवि द्वारा सांख्य एवं वेदान्त के सिद्धान्तों को समन्वित रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। फिर भी वेणीसंहार के नान्दी श्लोकों के क्रम को देखते हुए एवं धार्मिक विश्वास से ओतप्रोत अन्य श्लोकों को देखते हुए यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भट्टनारायण वस्तुतः ऐसे वैष्णव थे जो शिव पर भी विश्वास रखते थे। उनके लिए विष्णु; श्रीकृष्ण एवं शिव—ये तीनों ही समान रूप से पूज्य एवं आराध्य थे। इसके अतिरिक्त द्वितीय अङ्क में भानुमती द्वारा वर्णित स्वप्न वृत्तान्त तथा सुवदना आदि सखियों द्वारा अनिष्ट निवारणार्थ पूजा-अर्चा करने का परामर्श, तृतीय अङ्क में पितृवियोग के कारण विलाप करते हुए अश्वत्थामा का अपने लिए परलोक—गमन की अभिलाषा को प्रकट करना तथा इसी अङ्क में "दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्"—इस कर्णोक्ति में भाग्यवाद एवं पुरुषार्थवाद के समवेत समर्थन से यह प्रतीत होता है कि

भट्टनारायण परम्परानुयायी थे। वे स्वप्न पर विश्वास रखनेवाले, देवी देवताओं के प्रति आस्थावान्, तथा भाग्यवाद की तुलना में कर्मवाद के कट्टर समर्थक थे।

४—भट्टनारायण की कृतियाँ—भट्टनारायण की एकमात्र कृति वेणीसंहार नाटक ही अब तक उपलब्ध है। यद्यपि सुभाषित संग्रहों में भट्टनारायण के नाम से कतिपय श्लोक उद्धृत है किन्तु वेणीसंहार में वे श्लोक उपलब्ध नहीं होते अतः उन श्लोकों के रचयिता वेणीसंहार के रचयिता भट्टनारायण ही थे या कोई अन्य भट्टनारायण—इस विषय में सन्देह का अवसर ज्यों का त्यों बना हुआ है। प्रो० ए० बी० गजेन्द्र गडकर ने अपनी पुस्तक "दि वेणीसंहारः ए क्रिटिकल स्टडी" के पृष्ठ २१,२२ एवं २३ में भट्टनारायण की रचनाओं के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला है। उन्होंने किसी हरिशर्मा नामक विद्वान् द्वारा प्रतिलिपि की गई दशकुमारचरित की एक पाण्डुलिपि के आधार पर भट्टनारायण को दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका का रचयिता माना है। इसके अतिरिक्त पाण्डुलिपियों की एक सूची में 'जानकीहरण' नामक एक नाटक को भट्टनारायण की रचना बतलाया है।

किन्तु यह कहना कठिन है कि प्रो० गजेन्द्रगडकर ने हरिशर्मा द्वारा तैयार की गई दशकुमारचरित की पाण्डुलिपि के आधार पर दशकुमारचरित की पूर्णपीठिका के रचयिता के रूप में जिस भट्टनारायण का उल्लेख किया है तथा पाण्डुलिपि की सूची में जिस भट्टनारायण को "जानकीहरण" का प्रणेता बतलाया है वह वेणीसंहार का रचयिता ही हो। इसलिए बिना किसी ठोस प्रमाण के यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वेणीसंहार के अतिरिक्त वेणीसंहार के रचयिता भट्टनारायण की अन्य कौन-कौन सी रचनायें हैं। पर्याप्त प्रमाण के अभाव में हमें भट्टनारायण की एकमात्र कृति 'वेणीसंहार' से ही सन्तुष्ट रहना होगा।

५. भट्टनारायण का समय—भट्टनारायण का उद्भव किस समय हुआ था इसके विषय में भट्टनारायण की कृति वेणीसंहार में कुछ भी सङ्केत नहीं दिया गया है। संस्कृत के नाटककार या कवि अपनी-अपनी रचनाओं में अपने पूर्ववर्ती कवियों को प्रायः स्मरण करते हैं। इससे पाठकों को यह लाभ

होता है कि वे कृतिकार के समय की पूर्व सीमा का निर्धारण करने में औचित्य का अनुभव करते हैं किन्तु वेणीसंहार में भट्टनारायण ने अपने पूर्ववर्त्ती किसी भी कवि का नामोल्लेख नहीं किया है। अतः वेणीसंहार में भट्टनारायण के समय-निर्धारण के लिए अन्तःसाक्ष्य का पर्याप्त अभाव है। भट्टनारायण का समय-निर्धारण करने के लिए बाह्यसाक्ष्य की ही सहायता ली जा सकती है। उसीके आधार पर भट्टनारायण के समय-निर्धारण सम्बन्धी तथ्यों का आकलन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

अलङ्कारशास्त्र के महनीय आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में वेणीसंहार से कतिपय पद्यों को उपाहृत किया है। इतिहासकारों ने आचार्य मम्मट का समय ११०० ई० के आस-पास माना है। अमरकोश के सुविख्यात टीकाकार क्षीरस्वामी ने भी अपनी टीका में वेणीसंहार के प्रयोगों को उद्धृत किया है। क्षीरस्वामी का समय ११०० ई० का पूर्वार्द्ध माना जाता है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण" में भोजराज ने वेणीसंहार के अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है। भोजराज का समय १०७० ई० माना जाता है। दशरूपक के रचयिता धनञ्जय का समय ईसा के दशम शतक का उत्तरार्द्ध माना जाता है। उन्होंने भी वेणीसंहार से उद्धरणों को लेकर अपने दशरूपक में यथास्थान प्रस्तुत किया है। ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन ने भी अपने ग्रन्थ में वेणीसंहार से उदाहरण उद्धृत किये हैं। आनन्दवर्धन का समय ईसा के नवम शतक का उत्तरार्ध माना जाता है। इसके अतिरिक्त वेणीसंहार से उदाहरण लेकर अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत करनेवाले आचार्यों में सर्वाधिक प्राचीन वामन हैं। वामन का समय ८०० ई० का उत्तरार्ध निश्चित किया गया है। वामन ने अपने "काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति" में वेणीसंहार से कितने ही उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

उपर्युक्त ऐतिहासिक आकलन के आधार पर वेणीसंहार की प्रसिद्धि के लिए यदि ५० वर्ष की भी अवधि रक्खें तो भट्टनारायण का समय ईसा के सप्तम शतक का अन्त तथा अष्टम शतक का प्रारम्भ निश्चित होता है। इस तथ्य का समर्थन इससे भी होता है कि ईसा के सप्तम शतक के पूर्वार्द्ध में होनेवाले बाणभट्ट ने अपने "हर्षचरित" में अनेक कवियों का नामोल्लेख किया

हैं किन्तु भट्टनारायण का नाम उन्होंने कहीं भी नहीं लिया है। बाणभट्ट हर्ष के सभापण्डित थे तथा हर्ष का समय ईसा के सप्तम शतक का पूर्वार्द्ध माना जाता है इसलिए बाणभट्ट का भी वही समय माना जाता है। बाणभट्ट द्वारा भट्टनारायण का नामोल्लेख न किये जाने के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भट्टनारायण बाणभट्ट से परवर्ती थे। अतः ईसा के सप्तम शतक के उत्तरार्द्ध एवं अष्टमशतक के पूर्वार्द्ध के मध्य ही भट्टनारायण की स्थिति स्वीकार की जा सकती है।

६. भट्टनारायण का वैदुष्य—भट्टनारायण की एकमात्र उपलब्ध कृति वेणीसंहार के आधार पर ही उनके वैदुष्य के सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। वेणीसंहार के अध्ययन से पता चलता है कि भट्टनारायण ने विविध शास्त्रों का गहन अध्ययन किया होगा। नाटककार ने अपने नाटक में महाभारत की कथावस्तु को सूत्ररूप में प्रस्तुत किया है जिससे सिद्ध होता है कि नाटककार ने महाभारत का गम्भीर अध्ययन किया होगा। वेणीसंहार के कतिपय पद्यों में अभिव्यक्त किये गये विचार इस तथ्य का पोषण करते हैं कि भट्टनारायण सांख्य, योग, वेदान्त आदि विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों से सम्यक्तया परिचित रहे होंगे। विष्णु, कृष्ण, राधा, शिव आदि देवों की स्तुतियाँ ही बतलाती हैं कि भट्टनारायण ने पुराण, इतिहास, भागवत आदि ग्रन्थों का पर्याप्त मनन किया होगा। नाटक में प्रयुक्त विविध छन्दों एवं अलङ्कारों के आधार पर भट्टनारायण का काव्यशास्त्रीय ज्ञान अपनी गम्भीरता के साथ स्वतः प्रकाश में आ जाता है। परवर्ती नाट्यशास्त्रकारों द्वारा नाट्याङ्गों के उदाहरणों के रूप में वेणीसंहार से ही उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि भट्टनारायण का नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त प्रौढ़ रहा होगा। भट्टनारायण वैदिक कर्मकाण्ड से भलीभाँति परिचित थे। प्रचलित परम्परा के अनुसार वे अन्य चार ब्राह्मणों के साथ यज्ञ कराने के लिए ही कान्यकुब्ज से बंगाल गये थे। वेणीसंहार के "चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान् कर्मोपदेष्टा गुरुः" (१/२५) पद्य में युद्ध को यज्ञ का रूप देना उनके यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान को सूचित करता है। षष्ठ अङ्क में युधिष्ठिर द्वारा गुप्तचरों को

दिये गये निर्देशों से नाटककार का अर्थशास्त्र तथा राजनीति सम्बन्धी ज्ञान भी परिलक्षित होता है। भट्टनारायण का कदाचित् भाषा पर पूर्ण अधिकार नहीं स्वीकार किया जाता है। नाटक में विभिन्न स्थलों पर कवि द्वारा किये गये अपाणिनीय प्रयोग इसके उदाहरण हैं। "काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति" के रचयिता वामन ने वेणीसंहार के तीन स्थलों पर भट्टनारायण द्वारा किये गये प्रयोगों की व्याकरणानुकूलता सिद्ध करने का प्रयास किया है। यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि वेणीसंहार के विद्वान् रचयिता द्वारा किये गये ऐसे अपाणिनीय प्रयोगों के मूल में नाटककार की असमर्थता कारण है या प्रचलित प्रयोग प्रवाह या महाभारत का प्रवाह।

जो भी हो, भट्टनारायण की उच्चकोटि की विद्वत्ता के प्रति किसी को सन्देह नहीं करना चाहिए।



वेणीसंहार की संक्षिप्त कथावस्तु

पूर्वकथा

पूर्वकथा कौरव एवं पाण्डव हस्तिनापुर के राजकुल से सम्बद्ध राजकुमार थे। कौरवों के पिता धृतराष्ट्र एवं पाण्डवों के पिता पाण्डु थे। पाण्डु की असामयिक मृत्यु के पश्चात् उनके नेत्रहीन भ्राता धृतराष्ट्र हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर आसीन हुए थे। इसलिए उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर बाल्यावस्था से ही कौरव एवं पाण्डव राजकुमारों के मध्य स्पर्धा एवं ईर्ष्या आरम्भ हो गई थी। दुर्योधन कौरवों में सबसे बड़ा था जो छल-बल से किसी प्रकार पाण्डवों को राज्यच्युत करना चाहता था। पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया था किन्तु दुर्योधन ने अपने धूर्त मामा शकुनी की सहायता से द्यूत-क्रीडा में पाण्डवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर को हराकर सभी पाण्डवों को तथा द्रौपदी को अपना दास बना लिया था। इतना ही नहीं, भरी सभा में द्रौपदी के केश एवं वस्त्र खिचवाकर उसे नग्न करने एवं अपनी जङ्घाओं पर बैठाने का कुत्सित प्रयास भी उसने किया था। द्रौपदी के केश एवं वस्त्र खीचने का कार्य दुर्योधन के अनुज दु:शासन ने किया था। इस प्रकार सपरिवार पाण्डवों को अपमानित कर उन्हें १२ वर्षों के लिए अज्ञातवास में रहने के लिए भी दुर्योधन ने विवश किया था।

वनवास को जाते समय पाण्डवों ने कौरवों से अपने अपमान का प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा की। युधिष्ठिर के छोटे भाई तथा अत्यन्त बलशाली भीमसेन ने प्रतिज्ञा की कि वह दु:शासन के वक्षःस्थल को फाड़कर उसके रक्त का पान करेगा तथा अपनी भीषण गदा से दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़कर उसके रक्त से द्रौपदी के केशों को सँवारेगा। यह नाटक, जैसा कि इसके शीर्षक "वेणीसंहार" से स्पष्ट है, द्रौपदी की खुली वेणी के संहार (संयमन) की घटना से सम्बद्ध है।

वनवास की शर्तें पूरी कर लेने के बाद युधिष्ठिर श्रीकृष्ण को दूत बनाकर सन्धि-प्रयास के लिए दुर्योधन के पास भेजते हैं जिसे सुनकर द्रौपदी तथा भीम दोनों को ही कष्ट होता है। प्रतिशोध की ज्वाला में जल रहे इन दोनों व्यक्तियों को युधिष्ठिर का यह कार्य अरुचिकर प्रतीत होता है। वे तो कौरवों से अपने अपमान का बदला लेना चाहते हैं। यहीं से नाटक आरम्भ होता है।

प्रथम अङ्क

नान्दीपाठ के पश्चात् नाटक के अभिनय की प्रस्तावना करते समय नेपथ्य में कौरवों एवं पाण्डवों के बीच सन्धि कराने के लिए व्यासादि महर्षियों के साथ दूत बनकर भगवान् कृष्ण का दुर्योधन के पास जाने की बात कही जाती है जिसे सुनकर सूत्रधार कहता है—"भगवान् का यह सन्धि-प्रयास सफल हो और पाण्डव लोग भगवान् कृष्ण के साथ प्रसन्न रहें तथा कौरव भी अपने परिजनों के साथ स्वस्थ रहें। इसी समय नेपथ्य से भीम की गर्जना सुनाई पड़ती है— "अरे नीच! यह तू क्या बक रहा है? जिन कौरवों ने लाक्षानिर्मित महल, विषाक्तभोजन तथा कपट-द्यूत रचकर हम लोगों के प्राण एवं सम्पत्ति के अपहरण का प्रयास किया तथा जिन्होंने महारानी द्रौपदी के केश एवं वस्त्रों को खींचा है उन्हीं की स्वस्थता की कामना कर रहे हो? रे दुष्ट···" ऐसा कहते हुए गदाधारी क्रोधान्ध भीमसेन अपने सबसे छोटे भाई सहदेव के साथ रंगमञ्च पर अवतीर्ण होता है। रंगमञ्च पर आने के बाद वह पुनः कहता है—"क्या मैं संग्राम में कौरवों को मथ नहीं डालूँगा, क्या मैं दुःशासन के वक्षःस्थल से रुधिर का पान नहीं करूँगा, क्या मैं दुर्योधन की जङ्घाओं का भञ्जन नहीं करूँगा? (अर्थात् ये सारे काम मैं अवश्य करूँगा भले ही) आपके राजा (युधिष्ठिर) मूल्य चुका कर सन्धि क्यों न करें। जाओ सहदेव! महाराज को सूचित कर दो कि मैं इस सन्धि को कदापि न मानूँगा। यदि महाराज को अपने गोत्रवध (दुर्योधनादिवध) से लोक में निन्दित और लज्जित होने का भय है तो होवे। मेरी लज्जा और सम्मान तो भरी सभा में द्रौपदी के केशवस्त्रापकर्षण के समय हीं समाप्त हो चुके हैं।" इसी समय दुर्योधनपत्नी भानुमती की व्यंग्यपूर्ण बातों से उद्विग्न हुई द्रौपदी भीम के समक्ष उपस्थित होती है। द्रौपदी के उदास

चेहरे का कारण पूछने पर भीम को मालूम होता है कि अभी-अभी भानुमती ने द्रौपदी से कहा था कि—"अरी द्रौपदी ! सन्धि-प्रयास तो आरम्भ हो चुका है फिर तू अपनी खुली वेणी को क्यों न सँवार लेती ?" यह सुनकर भीम का क्रोध और अधिक बढ़ जाता किन्तु चेटी ने जब कहा कि भानुमती को उसने उसकी व्यङ्ग्योक्ति का सटीक उत्तर दे दिया है तो भीम आश्वस्त हो जाता है। चेटी द्वारा भानुमती को दिया गया उत्तर इस प्रकार था—"अरी भानुमती ! आपके केश जबतक खुल नहीं जायेंगे (अर्थात् आप जब तक विधवा नहीं हो जातीं) तब तक हमारी महारानी अपने खुले केशों को कैसे सँवार सकती हैं।" इतने में युद्धस्थल से नगाड़े की आवाज आने लगी तथा कञ्चुकी द्वारा सूचना मिली कि संधि-प्रस्ताव भग्न हो गया तथा दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को पकड़कर बन्दी बनाने का प्रयास किया है जिससे पाण्डवों के शिविर में खलबली मच गई है। यह सुनकर भीमसेन द्रौपदी को सान्त्वना देकर शीघ्रता से युद्ध भूमि की ओर चल पड़ता है।

द्वितीय अङ्क

अभिमन्युवध के पश्चात् राजा दुर्योधन अपनी रानी भानुमती को प्रसन्न होकर यह समाचार सुनाने के लिए प्रस्तुत होता है किन्तु उस समय अपनी सखियों के साथ धीरे-धीरे बात करती हुई महारानी भानुमती को देखकर दुर्योधन सशङ्कित हो परदे की आड़ लेकर महारानी की बातें सुनने लगता है। महारानी भानुमती उस समय अपनी सखी से कहती है—"हे सखि ! तत्पश्चात् देवताओं से भी अधिक सुन्दर उस 'नकुल' के दर्शन से मैं उत्कण्ठित हो उठी, मेरा हृदय उस पर आसक्त हो गया, फिर मैं उस स्थान को छोड़कर लताकुञ्ज में चली गई और वह नकुल भी मेरा अनुसरण करता हुआ उस कुञ्ज में प्रवेश कर गया तथा उसने धृष्टता से मेरे स्तनावरणों को हटा दिया…" इतनी अधूरी बातें सुनते ही राजा दुर्योधन क्रोध के कारण लाल हो उठा और मन ही मन कहने लगा—'अरी माद्रीसुत नकुल में आसक्त दुराचारिणी ! ठीक है, तेरी सारी काली करतूत मुझे मालूम हो गई। अरी पापिनी ! इसीलिए आज सुबह-सुबह ही तू यहाँ चली आई थी। (कुछ सोचकर) बस ! बस !! हमारे (कौरवों के)

शत्रु माद्रीसुत नकुल ने हाथ फैलाकर स्तनावरण हटा दिया ! आह ! पापहृदये ! मेरी इज्जत भी पाण्डवों से बर्बाद हो गई ? बस ! अब अधिक सोचने और सुनने की आवश्यकता नहीं।' मन में ऐसा सोचकर राजा दुर्योधन तलवार खींचकर ज्यों ही आगे बढ़ता है कि पुनः भानुमती की आवाज सुनाई पड़ती है। वह कहती है—"सखि ! इसके बाद सवेरा हो गया और आर्यपुत्र के उद्बोधन के लिए प्रभातकालीन मृदङ्गध्वनि के साथ वेश्याओं के सङ्गीत से मैं जाग पड़ी।" इतना सुनते ही दुर्योधन होश में आ जाता है, उसे मालूम हो जाता है कि भानुमती अपना स्वप्न-वृत्तान्त बतला रही थी। यह वास्तविकता नहीं थी। राजा दुर्योधन को ग्लानि होती है वह सोचता है कि—"अच्छा हुआ, मैंने आवेश में आकर महारानी से कोई कटुवचन नहीं कहा। आजकल मेरी बुद्धि स्थिर नहीं रहती है। पूरी कहानी सुनने से पूर्व ही मैं नकुल (नेवले) को भीम का अनुज (माद्रीसुत) समझकर व्यर्थ में ही अपनी महारानी की गर्दन काटने को तैयार हो गया था। अच्छा, अब महारानी अशुभ स्वप्नजन्य अनिष्ट के निवारण के लिए भगवान् भास्कर को अर्घ्यदान देने के कारण ध्यानस्थ हो रही हैं। महारानी के समीप जाने का यही अच्छा अवसर है।" यह सोचकर राजा दुर्योधन सङ्केत से सखियों को दूर हटा देता है तथा स्वयं महारानी की अञ्जलि में पुष्प प्रदान करने लगता है। महारानी का अङ्गस्पर्श पाकर राजा दुर्योधन कामविह्वल हो उठता है जिससे उसके हाथों के पुष्प पृथ्वी पर गिरने लगते हैं। महारानी राजा के इस अशिष्टाचरण से तमक उठती है तथा राजा अत्युग्र कामवासना का अभिनय करते हुए महारानी को वश में लाने का प्रयास करता है। इसी समय महाझंझावात (प्रचण्ड आँधी) के कारण हस्तिनापुर में त्राहि-त्राहि मचने लगती है, दुर्योधन के विजयरथ की पताका टूटकर धराशायी हो जाती है, कौरवों के शिविर में हाहाकार मचने लगता है तथा महारानी भानुमती भी भयभीत होकर दुर्योधन के गले से चिपक जाती है। इतने में आर्तनाद करती हुई जयद्रथ की माता तथा उसकी पत्नी दुःशला (दुर्योधन की बहन) दुर्योधन के सामने आकर कहने लगती है—"महाराज ! गाण्डीवधारी अर्जुन ने पुत्रवियोग से उद्विग्न होकर आज सूर्यास्त से पूर्व महारथी जयद्रथ को

मारने की अटल प्रतिज्ञा की है। उसके प्रकोप से पृथ्वी काँप रही है। झंझावात से वायुमण्डल दूषित हो गया है। रक्षा कीजिए महाराज, रक्षा कीजिए !!" यह समाचार सुनकर राजा दुर्योधन उन दोनों को सान्त्वना देकर वहाँ से युद्ध-स्थल की ओर प्रस्थान कर देता है।

तृतीय अङ्क

इस अङ्क के प्रवेशक में रुधिरप्रिय नामक राक्षस तथा उसकी पत्नी वसा-गन्धा नाम की राक्षसी के बीच हुए वार्तालाप के द्वारा युद्धभूमि की भीषणता तथा द्रोणाचार्य के वध की सूचना दी जाती है। इसी अंक में पितृ-वध के शोक से संतप्त क्रुद्ध अश्वत्थामा का प्रवेश होता है। कृपाचार्य अश्वत्थामा को ढाढस दिलाते हैं। इधर कर्ण दुर्योधन को यह समझा देता है कि द्रोण ने स्वयं लड़ना छोड़ दिया था, इसीलिए वे मारे गये। द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामा को समस्त पृथ्वी का राजा बनाना चाहते थे और अब अश्वत्थामा के मारे जाने से वृद्ध ब्राह्मण द्रोण का शस्त्रग्रहण करना व्यर्थ है। यह सोचकर ही द्रोण ने दुखी होकर शस्त्र-त्याग किया था। इसी समय कृपाचार्य एवं अश्वत्थामा दुर्योधन के पास आते हैं और अश्वत्थामा दुर्योधन से उसे सेनापति बना देने को कहता है जिससे वह पिता की मृत्यु का बदला ले सके। पर दुर्योधन ने कर्ण को सेना पति बनाने का वचन दिया है। अश्वत्थामा और अधिक क्रुद्ध होता है। कर्ण एवं अश्वत्थामा में वाग्-युद्ध होता है। अश्वत्थामा तब तक के लिए शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा करता है जब तक कर्ण जीवित रहेगा। इसी बीच नेपथ्य से भीम की गर्वोक्ति सुनाई पड़ती है कि दुःशासन उसके भुजपञ्जर में आबद्ध हो गया है और वह उसका रुधिर पीने जा रहा है, यदि कोई कौरव रक्षा कर सके तो करे। दुःशासन की विपत्तिगत अवस्था को सुनकर अश्वत्थामा शस्त्र-ग्रहण द्वारा अपनी प्रतिज्ञा को भग करने के लिए तत्पर हो उठता है किन्तु आकाशवाणी के द्वारा अश्वत्थामा को यह चेतावनी दी जाती है कि उसे अपनी प्रतिज्ञा को खण्डित नहीं करना चाहिए। अश्वत्थामा को इस बात के लिए खेद होता है कि वह विपत्तिग्रस्त दुःशासन की रक्षा नहीं कर पाता तथा देवता भी पाण्डवों के ही पक्षपाती हैं।

चतुर्थ अङ्क

दुर्योधन का सारथि युद्ध में आहत और मूर्च्छित दुर्योधन को युद्धभूमि से दूर ले जाकर उसके रथ को एक वट वृक्ष की छाया में खड़ा कर देता है। मूर्च्छा समाप्त होने पर दुर्योधन को दुःशासन के वध का पता चलता है जिससे वह अत्यन्त शोकसंविग्न होकर विलाप करने लगता है। कर्ण का सेवक सुन्दरक दुर्योधन को ढूंढता हुआ वहां पहुंचता है और वह कर्ण-पुत्र वृषसेन के वध की सूचना दुर्योधन को देता है तथा युद्ध स्थल की गतिविधि से भी उसे अवगत कराता है। दुर्योधन इस दूसरे अशुभ समाचार को सुनकर अत्यन्त दुखी होता है। सुन्दरक उसे पुत्र-वध से निराश और क्रुद्ध होकर प्राणों का मोह त्याग कर युद्ध-भूमि को जाते हुए अङ्गराज कर्ण का सन्देश सुनाता है। दुर्योधन भी अपने प्रियसखा अङ्गराज कर्ण की सहायता के लिए पुनः युद्ध-स्थल की ओर प्रस्थान करना चाहता है किन्तु इसी समय दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र तथा माता गान्धारी दोनों वहां आ पहुंचते हैं।

पञ्चम अङ्क

पुत्रों के विनाश से व्याकुल हुए धृतराष्ट्र एवं गान्धारी दुर्योधन को पाण्डवों से सन्धि कर लेने के लिए समझाते हैं पर दुर्योधन इसके लिए तैयार नहीं होता। वह पाण्डवों से अपने छोटे भाई दुःशासन के वध का प्रतिशोध लेना चाहता है। इस पर धृतराष्ट्र गुप्त उपाय द्वारा पाण्डवों का वध करने का सुझाव देता है परन्तु गर्वोन्मत्त दुर्योधन इसे भी स्वीकार नहीं करता है। इसी बीच कर्ण की मृत्यु का समाचार मिलता है तथा दुर्योधन लड़ने को जाने की तैतारी करता है। तभी भीम एवं अर्जुन युद्धस्थल में दुर्योधन को न पाकर उसे ढूंढते हुए वहां पहुंच जाते हैं। भीम धृतराष्ट्र एवं गान्धारी को प्रणाम करते समय कटूक्तियों का प्रयोग करता है। दुर्योधन इसके लिए भीम को फटकारता है तथा दोनों के बीच वाक्कलह होता है। दुर्योधन भीम को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारता है किन्तु अर्जुन भीम को रोकता है। इसी बीच नेपथ्य से भीम एवं अर्जुन के लिए युधिष्ठिर की आज्ञा सुनाई पड़ती है कि अब युद्ध-समाप्ति का समय हो गया है

इसलिए सेनायें वापस लौटा ली जाएं। युधिष्ठिर की इस आज्ञा का पालन करने के लिए वे दोनों वापस लौट पड़ते हैं।

भीम और अर्जुन के वापस लौटते-लौटते उस स्थान पर अश्वत्थामा भी पहुंच जाता है। धृतराष्ट्र दुर्योधन को सुझाव देता है कि वह उठकर अश्वत्थामा जैसे वीर का सत्कार करे। अश्वत्थामा वहाँ आते ही दुर्योधन के मित्र अङ्गराज कर्ण की निन्दा करने लगता है जिससे दुर्योधन उससे रुष्ट हो जाता है तथा अश्वत्थामा को वह इस बात के लिए उलाहना भी देता है कि उसने (अश्वत्थामा ने) कर्ण के वध की ही प्रतीज्ञा क्यों की, वह उसके (दुर्योधन के) वध की भी प्रतीज्ञा कर ले क्योंकि दुर्योधन एव कर्ण के बीच कोई अन्तर नहीं है। दुर्योधन को अब भी अपने प्रतिकुल पाकर अपमानित हुआ अश्वत्थामा वहां से चल देता है किन्तु धृतराष्ट्र उसके प्रति अपने तथा गान्धारी के वात्सल्य का तथा उसके पिता के अपमान का स्मरण दिलाकर भ्रातृशोक से विक्षिप्त हृदयवाले दुर्योधन की बात का बुरा न मानने का संदेश सञ्जय द्वारा अश्वत्थामा को भिजवाता है।

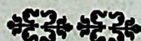
षष्ठ अङ्क

अङ्क के प्रारम्भ में युधिष्ठिर को चिन्तित अवस्था में दिखलाया गया है। भीम के द्वारा की गई प्रतिज्ञा ही उसकी चिन्ता का कारण है। भीम ने प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि वह आज दुर्योधन का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेगा अन्यथा स्वयं आत्महत्या कर लेगा। यह समाचार जानकर दुर्योधन चुपचाप एक जलाशय में जाकर छिप गया। बहुत खोज करने पर भी उसका पता न लगने से युधिष्ठिर अत्यधिक चिन्तित हैं। इसी समय एक पुरुष आकर सूचना देता है कि दुष्ट दुर्योधन का पता लग गया है तथा भीम एवं दुर्योधन के बीच भीषण गदा युद्ध चल रहा है। इस युद्ध में भीम की विजय सुनिश्चित है। इसलिए कृष्ण भगवान् ने संदेश भेजा है कि युधिष्ठिर राज्याभिषेक की तैयारी करें और द्रौपदी भी अपने वेणी-संहार का उत्सव मनाये।

राज्याभिषेक की तैयारी के लिए पुरोहितों एवं अन्यकर्मचारियों को आज्ञा दे दी जाती है किन्तु इसी समय घटनाएं एक नया मोड़ ले लेती हैं। दुर्योधन का एक मित्र चार्वाक नाम का राक्षस मुनि का छद्म वेष धारण करके युधिष्ठिर

के पास आता हैं। वह इस बात का ढोंग रचाता है कि वह भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध को देखकर समन्त पञ्चक से आ रहा है। वह इस बात के लिऐ खेद प्रकट करता है कि शरद् ऋतु की प्रचण्ड धूप के कारण वह अर्जुन और दुर्योधन के गदायुद्ध को पूरा नहीं देख सका। अर्जुन और दुर्योधन के गदायुद्ध की बात सुनकर युधिष्ठिर चौंकता है। अधिक जिज्ञासा करने पर चार्वाक द्वारा युधिष्ठिर को पता चलता है कि श्रीकृष्ण के भ्राता बलराम द्वारा दुर्योधन को गुप्त संकेत कर देने के कारण गदायुद्ध में भीम मारा गया है। यह सुनकर द्रौपदी एव युधिष्ठिर शोकाकुल हो जाते हैं और आत्मघात करने को तत्पर हो जाते हैं। चार्वाक चुपके से चिता तैयार कर उसे प्रज्वलित करने के लिए वहां से चला जाता है।

इसी बीच नेपथ्य में कोलाहल सुनाई पड़ता है। युधिष्ठिर एवं द्रौपदी को लगता है कि दुर्योधन आ रहा है। द्रौपदी छिपने का प्रयास करती है। खून से लथपथ शरीर वाला भीमसेन मञ्च पर आता है और अपने रक्तरञ्जित हाथों से द्रौपदी के केशों को सँवारने के लिए द्रौपदी को पकड़ लेता है। युधिष्ठिर नहीं पहचानने के कारण भीम को दुर्योधन समझकर उससे लड़ना चाहता है। अन्त में वास्तविकता का पता चलता है। द्रौपदी हर्षपूर्वक अपनी वेणी बाँधती है। श्रीकृष्ण एवं अर्जुन मञ्च पर आते हैं। चार्वाक नकुल द्वारा पकड़ लिया जाता है। युधिष्ठिर भीम एवं अर्जुन का आलिङ्गन करके प्रसन्न होते हैं तथा भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।



वेणीसंहार का उपजीव्य महाभारत

संस्कृत के अनेक कवियों एवं नाटककारों ने रामायण एवं महाभारत को अपना उपजीव्य बनाया हैं। कालिदास का कुमारसम्भव, भारवि का किरातार्जुनीय, माघ का शिशुपालवध तथा श्रीहर्ष का नैषधीयचरित ऐसे महाकाव्य हैं जिनकी कथावस्तु महाभारत पर आश्रित है। इसी प्रकार संस्कृत के कतिपय नाटकों की कथावस्तु महाभारत से ही ली गई है। कविवर भास के मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभङ्ग तथा बालचरित में, महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल में तथा राजशेखर के बालभारत नाटक में महाभारतीय कथा का ही आश्रय लिया गया है। भट्टनारायण ने भी इसी सरणि का अनुसरण करते हुए महाभारतीय कथा का आश्रय लेकर 'वेणीसंहार' का प्रणयन किया है। भट्टनारायण एवं अन्य कवियों में इतना अन्तर अवश्य है कि जहाँ एक ओर अन्य कवियों ने महाभारत के किसी आख्यानविशेष को अपनी रचना का आधार बनाया हैं वहीं वेणीसंहार के रचयिता ने महाभारत के वृहदंश को अपने नाटक में समाहित करने का प्रयास किया है। कौरवों एवं पाण्डवों के बीच भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा किये गये सन्धि-प्रयास से वेणीसंहार नाटक का प्रारम्भ होता है। यह कथा महाभारत के उद्योग पर्व में आयी हैं। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक पर नाटक की समाप्ति होती है, जो महाभारत के शान्तिपर्व में आया है। इस प्रकार महाभारत के उद्योग पर्व से लेकर शान्तिपर्व तक की कथा को नाटककार ने रचनात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अपेक्षित परिवर्त्तन-परिवर्धन एवं संशोधन का आश्रय लेकर अपने नाटक में प्रस्तुत किया है। दुर्योधन की पत्नी भानुमती को छोड़कर नाटक के प्रायः सभी प्रधान पात्र महाभारतीय ही हैं। नाटक के अन्तर्गत कुछ छिटपुट घटनाओं को छोड़कर प्रायः सभी घटनाएँ महाभारतीय कथा पर ही आश्रित है। अपने नाटक के लिए भट्टनारायण ने महाभारत की मुख्य कथा को चुनकर उसे अपनी कवित्वमयी प्रतिभा से

रोचकता प्रदान करने का भरपूर प्रयास किया है किन्तु महाभारत की लोक-विश्रुत कथा को नाटक का आश्रय वनाने के कारण नाटककार के समक्ष विविध असुविधाएँ भी वर्त्तमान थीं। नाटकीय आवश्यकता के अनुसार नाटककार पात्रों के चरित्र-चित्रण में किसी क्रान्तिकारी परिवर्त्तन या मूलकथा में आमूल परिवर्त्तन करने में अपने को स्वतन्त्र नहीं समझ सकता था इसीलिए प्रस्तुत नाटक में वस्तुयोजनात्मक शिथिलता का दोष दृष्टिगोचर होता है। फिर भी, नाटककार ने वेणीसंहार में महाभारतीय मूल कथानक में आवश्यकतानुसार यत्किञ्चित् परिवर्त्तन कर उसे प्रस्तुत करने से अपने को नहीं रोक सका है जो एक नाटककार के लिए सहज स्वाभाविक एवं आवश्यक है।

मूलकथा में किये गये परिवर्तन एवं उनका नाटकीय प्रभाव

नाटकीय आवश्यकताओं से उत्प्रेरित होकर भट्टनारायण ने मूलकथा में जो परिवर्तन किये हैं उनका विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) नाटक के प्रथम अङ्क में भगवान् श्रीकृष्ण पाँच गाँवों की शर्त पर सन्धि-प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास जाते हैं। दुर्योधन न केवल उनके प्रस्ताव को ठुकराता ही है अपितु उन्हें बन्दी वनाने का भी प्रयास करता है किन्तु श्रीकृष्ण अपने विश्वरूप का प्रदर्शन कर दुर्योधन को अभिभूत कर देते हैं। महाभारत में सर्वप्रथम सञ्जय के माध्यम से सन्धि का प्रस्ताव किया गया है। सञ्जय जब अपने प्रयास में असफल हो जाता है तभी भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों-पाण्डवों के बीच सन्धि कराने का प्रयास करते हैं। दुर्योधन श्रीकृष्ण को पकड़ने का कुचक्र रचता है किन्तु उसके पिता धृतराष्ट्र को जब यह बात मालूम होती है तो वे दुर्योधन को इसके लिए डाँटते हैं। महाभारत में भी भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा विश्वरूप के प्रदर्शन का उल्लेख किया गया है किन्तु वहाँ वे दुर्योधन पर अपना प्रभाव जमाने के लिए विश्वरूप का प्रदर्शन करते हैं न कि उसके पकड़ने के प्रयास को विफल करने के लिए। प्रायः कथावस्तु को संक्षिप्त करने के लिए तथा दुर्योधन की दुष्टता को उग्रता प्रदान करने के लिए ही नाटककार ने यह परिवर्तन किया है।

(२) वेणीसंहार के तृतीय अङ्क में द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद कर्ण के द्वारा उनकी निन्दा करने पर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा एवं कर्ण के बीच वाक्कलह होता है किन्तु महाभारत में यह वाग्युद्ध कृपाचार्य एवं कर्ण के बीच प्रारम्भ होता है जिसे बाद में अश्वत्थामा अपने ऊपर ले लेता है। एक बात और है कि यह कलह द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् नहीं अपितु उनकी मृत्यु के पूर्व ही होता है। किसी व्यक्ति के जीवित रहते यदि उसकी निन्दा की जाती है तो वह कुछ सीमा तक क्षम्य भी हो सकती है किन्तु मृत्यु के पश्चात् यदि उस व्यक्ति की निन्दा की जाय तो यह नैतिक दृष्टि से घोर अपराध माना जाता है। अश्वत्थामा की उत्तेजना को तीव्र रूप में प्रदर्शित करने के लिए कवि ने यदि ऐसा परिवर्त्तन किया हो तो यह स्वाभाविक ही प्रतीत होता है।

(३) महाभारत में चार्वाक नामक राक्षस युधिष्ठिर की सभा में उस समय प्रवेश करता है जब कि युधिष्ठिर हस्तिनापुर में प्रवेश कर चुके हैं। वहाँ पर युधिष्ठिर की निन्दा करना ही चार्वाक का मुख्य उद्देश्य है किन्तु नाटक में हस्तिनापुर प्रवेश से पूर्व ही युधिष्ठिर के पास चार्वाक का आगमन दिखलाया गया है। श्रीकृष्ण का संदेश पाकर पुरोहितों एवं अन्य कर्मचारियों को युधिष्ठिर राज्याभिषेक की तैयारी करने का आदेश दे देते हैं। तभी चार्वाक वहाँ उपस्थित होकर भीम-दुर्योधन के गदायुद्ध में भीम के मारे जाने की मिथ्या-सूचना देता है जिससे युधिष्ठिर व्याकुल होकर द्रौपदी के साथ आत्मघात करने को उद्यत हो जाते हैं। घटना-क्रम को नया मोड़ देने के लिए सम्भवतः भट्टनारायन्द ने महाभारत की अपेक्षा वेणीसंहार में पहले ही चार्वाक की अवतारणा दिखलाई है।

(४) महाभारत में जल के अन्दर छिपे हुए दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारने तथा पाँच पाण्डवों में किसी एक से युद्ध करने की बात युधिष्ठिर के द्वारा कराई गई है किन्तु नाटक में भीम के द्वारा ही ये दोनों कार्य सम्पन्न कराये गये हैं, जब कि युधिष्ठिर अन्य स्थान पर हैं। प्रस्तुत नाटक में भीम की प्रधानता प्रदर्शित करने के लिए या चार्वाक राक्षस को अपनी अभीष्ट सिद्धि का अवसर प्रदान करने के लिए ही सम्भवतः भट्टनारायण ने यह परिवर्तन

किया होगा। यह तो निश्चित है कि नाटक की यह घटना पाठकों एवं दर्शकों की उत्सुकता तथा हृदय की धड़कन को बढ़ाने में पूर्ण सफल हुई है तथा इससे नाटक में गतिशीलता भी आई हैं।

कथावस्तु में नाटककार की नवीन उद्भावनाएँ

वेणीसंहार के रचयिता ने नाटकीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए महाभारतीय कथा को यत्किञ्चित् परिवर्त्तन के साथ अपने नाटक में प्रस्तुत तो किया ही है साथ ही अपनी ओर से कुछ नूतन उद्भावनाओं की भी कथा-वस्तु के साथ उन्होंने जोड़ा है। सर्वप्रथम द्रौपदी के वेणीसंहार की घटना, जिस पर नाटक का नाम पड़ा है, कवि की मौलिक कल्पना है। महाभारत में भीम द्वारा दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़ने की प्रतिज्ञा का उल्लेख अवश्य है किन्तु उसके रक्त से द्रौपदी के केशपाश को सँवारने का उल्लेख वहाँ अप्राप्त है। प्रथम अङ्क में भानुमती द्वारा द्रौपदी से केश-संयमन सम्बन्धी प्रश्न की घटना भी कविकल्पनाप्रसूत ही है। दुर्योधन की पत्नी भानुमती, पाञ्चालक, सुन्दरक, रुधिरप्रिय राक्षस तथा उसकी पत्नी वसागन्धा, कञ्चुकी, चेटी एवं सखी आदि अन्य छोटे पात्र कवि की स्वयं की उद्भावनाएँ है।

नाटक का सम्पूर्ण द्वितीय अङ्क, तृतीय अङ्क का प्रवेशक, सम्पूर्ण पञ्चम अङ्क, षष्ठ अङ्क में भीम की प्रतिज्ञा, चार्वाक राक्षस द्वारा युधिष्ठिर की वञ्चना और युधिष्ठिर एवं द्रौपदी द्वारा चितारोहण की तैयारी तथा विलाप आदि कवि की मौलिक उद्भावना की परिधि के अन्तर्गत हैं। महाभारत में इन घटनाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

नाटकीय दृष्टि से कथानक में किये गये परिवर्त्तनों का प्रभाव

महाकवि भट्टनारायण का वेणीसंहार नाटक महाभारत की कथा पर अवलम्बित है। महाभारत की विशाल कथावस्तु को नाटक के मात्र ६ अङ्कों के कलेवर में निपुणता के साथ सीमित कर उसे रोचकता प्रदान करने में नाटककार ने निश्चय ही अपनी असामान्य प्रतिभा का परिचय दिया है। नाटककार ने महाभारत की कथावस्तु के अन्तर्गत घटनाओं के क्रम तथा संयोग

में जो भी परिवर्त्तन किये हैं तथा नाटक को प्रभावशाली बनाने के लिए अपनी ओर से जो भी नूतन उद्भावनाएँ प्रस्तुत की हैं उनसे नाटकीय व्यापार में गतिशीलता आने के साथ-साथ पात्रों के चरित्र को भी अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ है।

महाभारत में सञ्जय एवं श्रीकृष्ण के द्वारा सन्धि का प्रयास अलग-अलग किया गया दिखाया गया है किन्तु नाटककार ने उन दोनों के सन्धि-प्रयासों को एकमें मिलाकर जहाँ एक ओर कथानक का संक्षेपण किया है वहीं उन्होंने नाटक के नामकरण एवं उसकी व्युत्पत्ति की भूमिका भी निर्मित कर ली है। इससे भीम, युधिष्ठिर, दुर्योधन तथा द्रौपदी के चरित्रों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त अवसर भी प्राप्त हो गया है। दुर्योधन-पत्नी भानुमती द्वारा द्रौपदी से उपालम्भपूर्वक वेणी न सँवारने के विषय में किये गये प्रश्न की घटना, जो कवि की मौलिक उद्भावना है, भीम के क्रोध को अत्यधिक भड़काने की भूमिका निभाती है। यही प्रश्नविषयक घटना शत्रुसंहार द्वारा "वेणीसंहार" रूप फल का बीज सिद्ध होती है।

द्वितीय अङ्क में भानुमती के स्वप्नदर्शन तथा वात्या द्वारा दुर्योधन के विजयरथ की पताका के टूट कर गिरने एवं धराशायी होने से भावी घटनाओं की सूचना मिलती है। इसी अङ्क में बालोद्यान का दृश्य पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती अङ्कों में निवद्ध उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियों से भिन्न प्रकार की कोमल परिस्थिति का सर्जन करके दर्शकों के समक्ष मनोरम परिवर्तन उपस्थित करता है। इस अङ्क से दुर्योधन के चरित्र का दूसरा पहलू भी पाठकों—दर्शकों के समक्ष स्पष्ट हो जाता है। दुर्योधन की विलासिता एवं व्यावहारिक दृष्टि से उसके चरित्र की हीनता भी प्रकाश में आ जाती है। इस अङ्क में कञ्चुकी की "भग्नम् भग्नम्" आदि उक्ति द्वारा "पताकास्थानक" की योजना ने नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर दी है।

तृतीय अङ्क के प्रवेशक में रुधिरप्रिय राक्षस तथा उसकी पत्नी वसागन्धा राक्षसी के बीच जो वार्तालाप कराया गया है उससे द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, घटोत्कच तथा जयद्रथ आदि योद्धाओं के वध की सूचना मिल जाती है और

इसके साथ-साथ दुःशासन के रक्तपान के जघन्यकृत्य को भीम के शरीर में अन्तःप्रविष्ट राक्षस द्वारा पूर्ण कराया गया सूचित करके भीम के चरित्र की भी रक्षा कर ली गई है।

युद्ध में द्रोणाचार्य के अनुचित वध का समाचार पाकर भी उनके पुत्र अश्वत्थामा द्वारा शत्रु से इसका प्रतिशोध लेने के लिए तत्पर न होना तथा भीम से दुःशासन की रक्षा न करना पाठकों को अचम्भे में डाल सकती है। अश्वत्थामा जैसे पराक्रमी एवं तेजस्वी योद्धा का ऐसे अवसरों पर चुप्पी साध लेना वस्तुतः आश्चर्यजनक है किन्तु नाटककार ने बहुत ही कौशल के साथ इसका समाधान प्रस्तुत किया है। अश्वत्थामा एवं कर्ण के कलह तथा दुर्योधन द्वारा कर्ण के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण कर्ण के जीवित रहते अश्वत्थामा द्वारा शस्त्र-ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा द्वारा तथा आकाश संचारिणी वाक् की योजना करके अश्वत्थामा के ब्रह्मतेज तथा स्वामिभक्ति की रक्षा कर ली गई है।

नाटक के चतुर्थ अङ्क में समासबहुल लम्बे-लम्बे वर्णनात्मक संवादों के कारण यद्यपि नीरसता आ गई है किन्तु चतुर नाटककार ने सुन्दरक की अवतारणा करके महाभारत की विस्तृत कथा को इस छोटे से अङ्क में समेटने का सफल प्रयास किया है। युद्धभूमि से भेजा गया कर्ण का सन्देश तथा उस पर दुर्योधन की प्रतिक्रिया, दुर्योधन के चरित्र को प्रकाश में लाती है। अङ्क के अन्त में धृतराष्ट्र एवं गान्धारी का रंगमञ्च पर प्रवेश दुर्योधन को कर्ण की सहायता करने से रोक देता है जिससे पाण्डवों के लिए कर्ण के वध का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

पञ्चम अङ्क कवि की स्वयं नूतन उद्भावना है। इस अङ्क से न तो कथा आगे बढ़ती है और न ही नाटकीय व्यापार को ही गति मिलती है, बल्कि इससे नाटकीयव्यापार में गतिरोध ही उत्पन्न हो गया है किन्तु इस अङ्क में धृतराष्ट्र एवं गान्धारी की दुर्योधन के प्रति वात्सल्य-भावना, दुर्योधन का स्वाभिमान एवं अपने दिवंगत मित्र के प्रति प्रेम-भावना तथा अश्वत्थामा के स्वाभिमान आदि की सफल अभिव्यक्ति होने से इस अङ्क को भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता है।

षष्ठ अङ्क में भीम के द्वारा दुर्योधन का तर्जन तथा द्वन्द्व युद्ध का प्रस्ताव कराकर नाटककार ने सर्वथा उचित किया है क्योंकि नाटक में व्यापार के केन्द्र-बिन्दु मुख्यरूप से भीम एवं युधिष्ठिर ही हैं। भीम की अनन्यदिनगामिनी दुर्योधन-वध की प्रतिज्ञा एवं चार्वाक की अवतारणा से युधिष्ठिर के भ्रातृप्रेम को अभिव्यक्ति का पर्याप्त अवसर मिला है। चार्वाक की अवतारणा से घटनाक्रम को मोड़ दिया गया है तथा वीररसप्रधान प्रस्तुत नाटक में करुण रस के समायोजन के लिए उचित दृश्य-योजना कर नाटककार ने नाटक को प्रभाव-शाली बनाने का सफल प्रयास किया है।

प्रमुख पात्रों का चरित्रचित्रण

नाटक में पात्रों के समुचित चरित्रचित्रण का विशेष महत्त्व होता है। समुचित चरित्रचित्रण के अभाव में नाटक में वह उपादेयता नहीं रह जाती जो उसके लिए अपेक्षित है। भट्ट नारायण ने अपने इस नाटक के पात्रों के चरित्रों को जिस प्रकार चित्रित किया है उससे नाटककार की अप्रतिम नाट्य-प्रतिभा स्वतः प्रकाश में आ जाती है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भट्ट नारायण ने महाभारत से कथावस्तु लेकर ही नाटक की रचना की है अतः इस नाटक के सभी पात्र महाभारत के लोकप्रसिद्ध पात्र हैं जिनके चरित्र को चित्रित करने में कवि को यद्यपि स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त थी फिर भी प्रमुख पात्रों के चारित्रिक विकास को नवीनरूप में प्रस्तुत करने में नाटककार को अभूतपूर्व सफलता मिली है। पात्रों का चारित्रिक विकास प्रतिद्वन्द्वी के विरोध एवं संघर्ष में हुआ है। भीम और दुर्योधन, कर्ण और अश्वत्थामा, द्रौपदी और भानुमती एक-दूसरे के द्वन्द्वरूप में ही चित्रित है। धृतराष्ट्र एवं दुर्योधन भी चारित्रिक दृष्टि से नदी के दो किनारों की भांति एक दूसरे से भिन्न हैं। कुछ प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) भीमसेन—भीमसेन धीरोद्धत प्रकृति का नायक है। वह शरीर से अत्यन्त शक्तिशाली तथा अपने सङ्कल्प के प्रति दृढनिश्चयी है। बल, पराक्रम पौरुष एवं स्वाभिमान का समवेत समन्वय उसके चरित्र में विद्यमान है। प्रथम

अङ्क के प्रारम्भ में ही वह क्रोध से उफनता हुआ रंगमञ्च पर आता है। पाण्डवों के विनाश के लिए दुर्योधन द्वारा लाक्षागृह में आग लगाना, विषमिश्रित भोजन कराना, कपट-द्यूत द्वारा राज्य हड़प लेना तथा भरी सभा में द्रौपदी के केश एवं वस्त्र खींचकर उसे अपमानित करना आदि कई ऐसी बातें हैं जिनके स्मरण मात्र से उसका वीर-हृदय सर्वदा उत्तेजित रहता है। कौरवों द्वारा किये गये अपकारों का प्रतिशोध लेने के लिए वह तड़पता सा प्रतीत होता है। स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह मर्यादा एवं शिष्टाचार की अवहेलना करने के लिए भी तत्पर हो जाता है। जब उसे पता चलता है कि श्रीकृष्ण के माध्यम से युधिष्ठिर कौरवों से सन्धि करने के इच्छुक हैं तो अपने पूज्य अग्रज युधिष्ठिर के प्रति भी आक्रोश व्यक्त करने से वह अपने को रोक नहीं पाता है। उसकी— "क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत" एवं "अद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव" आदि उक्तियाँ मर्यादा एवं शिष्टाचार की तुलना में स्वाभिमान को अधिक महत्त्व देने की उसकी भावना को प्रकट करती हैं। उसकी मान्यता है कि दुष्ट शत्रुओं के साथ शान्ति की बात करना नपुंसकता का परिचायक है।

प्रतिशोध की आग में जलते हुए भीम ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि वह "दुःशासन के वक्षःस्थल से रक्त का पान करेगा तथा दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़कर उसके रुधिर से द्रौपदी की मुक्त वेणी का संहरण करेगा"। अपनी इन दोनों प्रतिज्ञाओं को वह अन्त तक पूरी कर ही लेता है। भीम द्वारा पूरी की गई प्रतिज्ञा से ही प्रस्तुत नाटक के "वेणीसंहार" नामकरण की सार्थकता सिद्ध होती है जिससे यह भी स्वतः सिद्ध हो जाता है कि नाटक में उसकी अत्यन्त प्रमुख भूमिका है। अरण्यवास के क्रम में विभिन्न विपत्तियों को झेलना, परम पराक्रमी होते हुए भी युधिष्ठिर के सच्चे अनुगामी होने के कारण वीरता प्रदर्शन के लिए उपयुक्त अवसरों पर युधिष्ठिर द्वारा नियन्त्रित किये जाने पर मन मसोस कर रह जाना आदि कई बाते भीम की सहिष्णुता को प्रकट करती हैं।

भीम पराक्रमी है, वृककर्मा है, शत्रुनिहन्ता है पर फिर भी वह शालीन है। प्रथम अङ्क में क्रोधावेश में होने के कारण वह बगल में खड़ी द्रौपदी को पहले नहीं देखता है किन्तु जब उसे द्रौपदी की उपस्थिति का पता चलता है तो

द्रौपदी के प्रति अनजाने में की गई उपेक्षा पर वह पश्चात्ताप करता है। अपने पूज्य अग्रज युधिष्ठिर के प्रति उसके हृदय में अत्यन्त समादर-भाव है। श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व में उसकी पूरी आस्था है। भीम का चरित्र इस नाटक में वस्तुतः सर्वाधिक प्रभावशाली है जो पाठकों एवं दर्शकों के हृदय पर अपनी गहरी छाप छोड़ता है।

(ख) दुर्योधन—दुर्योधन प्रस्तुत नाटक में प्रतिनायक की भूमिका में दृष्टिगोचर होता है। नाकटकार ने दुर्योधन को वस्तुतः भीम के ही द्वन्द्व रूप में प्रस्तुत किया है। भीम में जैसा औधत्य, पराक्रम, क्रोध एवं पौरुष है वैसा ही सब कुछ दुर्योधन के चरित्र में भी विद्यमान है। कुछ बातों में दुर्योधन भीम से सर्वथा भिन्न है। दुर्योधन विलासी प्रकृति का एक दम्भी व्यक्ति है। एक ओर जहाँ भारत का भीषण युद्ध छिड़ा हुआ है वहीं वह अपनी प्रेयसी भानुमती के साथ प्रणय-व्यापार में लिप्त रहने का इच्छुक है। मिथ्याभिमान तो उसमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। उसके जीवित रहते ही उसके छोटे भाई दुःशासन की जीवित अवस्था में ही छाती फाड़कर भीम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेता है किन्तु वह दुःशासन की रक्षा नहीं कर पाता किन्तु आरम्भ से ही अपने खोखले पराक्रम का ढिंढोरा पीटते हुए चिल्ला-चिल्लाकर यह जरूर कहता है कि मेरे जीते जी मेरे छोटे भाई का बाल बाँका कर सके इतना सामर्थ्य पाण्डवों में कहाँ है। दुर्योधन पहले दर्जे का स्वार्थी भी है। आचार्य द्रोण, भीष्मपितामह, जयद्रथ आदि योद्धाओं के मारे जाने पर भी वह अत्यधिक शोकसन्तप्त नहीं दिखाई देता है। उसकी संगति स्वार्थी एवं धूर्त किस्म के लोगों से ही होती है। छल-प्रपञ्चशील व्यक्तियों की मन्त्रणा पर ही वह पहल करता है। अपने धूर्त मामा शकुनी की सहायता से पाण्डवों को कपट-द्यूत में हराकर उनके राज्य को हड़प लेना, उन्हें दीर्घकाल के लिए वनवास के लिए विवश करना, वनवास की अवधि में लाक्षागृह में आग लगाकर तथा विषमिश्रित भोजन देकर पाण्डवों को मार डालने की चेष्टा करना आदि बातें उसकी दुष्टता की परमसीमा का परिचय देती हैं। इससे भी अधिक खटकने वाली बात यह है कि वह गुरुजनों की उपस्थिति में ही भरी सभा में अपनी कुलवधू की इज्जत को धूल में मिलाने में तनिक नहीं हिचकना। भरी सभा में

द्रौपदी का केश-वस्त्र खींचकर नंगा करने तथा उसे सबके समक्ष अपनी जङ्घाओं पर बैठाने का उसका प्रयास उसके हृदय के कलुष को उजागर कर देता है। वह महाक्रूर, दुरात्मा, षड्यन्त्रकारी, दम्भी तथा अत्यन्त कलुषित मनोवृत्ति का व्यक्ति है। गुरुजनों के सत्परामर्श की अवहेलना करने के कारण उसे भीषण विपत्तियाँ झेलनी पड़ती है। श्रीकृष्ण के सन्धि-प्रस्ताव को ठुकरा कर वह स्वयं ही विपत्ति को मोल ले बैठता है। धृतराष्ट्र तथा गान्धारी द्वारा बहुत समझाये जाने पर भी वह शान्ति का मार्ग न अपना कर अपने कुल का तथा स्वयं का सर्वनाश करा बैठता है। इस प्रकार दुर्योधन के चरित्र में वे सारे दुर्गुण एक साथ मिलते हैं जो किसी भी सत्पात्र के लिए निन्दनीय तथा हेय हैं किन्तु इसके साथ ही कहीं-कहीं कुछ अच्छाइयाँ भी उसके चरित्र में परिलक्षित हो जाती हैं।

अपनी प्रेयसी भानुमती के प्रति उसकी अनुरक्ति एक सच्चे प्रणयी की दृष्टि से प्रशंसनीय है। अपने मित्र अङ्गराज कर्ण के प्रति उसका प्रगाढ स्नेह स्तुत्य है। कर्ण की मैत्री के कारण वह अश्वत्थामा जैसे अप्रतिम योद्धा की भी अवहेलना कर बैठता है। यह दूसरी बात है कि कर्ण जैसे पिशुन प्रकृति के लोगों से ही दुर्योधन मैत्री गाँठता रहता है। वीरता के क्षेत्र में वह न्यून नहीं दिखाई देता। भीम द्वारा यह प्रस्ताव रखने पर पाण्डवों में किसी एक से वह युद्ध कर ले, वह प्रियसाहस भीम को ही युद्ध के लिए चुनता है। इस अवसर पर उसके द्वारा कही गई—"कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवाँ मम। अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः।" (६।११)—यह उक्ति उसकी वीरता को प्रकट करती है।

कुल मिलाकर दुर्योधन का चरित्र एक विलासी, दम्भी, विवेकहीन, षड्यन्त्रकारी, दुष्ट एवं नीचाशय व्यक्ति के रूप में ही चित्रित किया गया है।

(ग) युधिष्ठिर—वेणीसंहार में युधिष्ठिर के चरित्र को देखने पर ऐसा लगता है मानो नाटककार ने महाभारत के युधिष्ठिर की सम्पूर्ण छाया में ही वेणीसंहार के युधिष्ठिर को चित्रित करने का प्रयास किया हो। यद्यपि यह बात सभी पात्रों पर लागू होती है किन्तु युधिष्ठिर को कुछ अधिक

शान्तरूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत नाटक के प्रथम अङ्क एवं षष्ठ अङ्क में युधिष्ठिर की अवतारणा मञ्च पर की गई है। युधिष्ठिर स्वभाव से परम शान्त, युद्ध की अपेक्षा सन्धि के अधिक पक्षपाती तथा स्नेह-सम्पन्न हृदय-वाले व्यक्ति के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। युधिष्ठिर की समता ऐसे व्यक्ति से की जाती है जो झगड़ा-झंझट एवं खून-खराबा से बहुत अधिक परहेज रखता हो। शान्ति के लिए दुष्ट शत्रुओं द्वारा किये गये अपने अपमानों को भी विस्मृत कर देने में वे तनिक भी सङ्कोच नहीं करते। आततायी को दण्ड देने में भी उनका उत्साह जाग्रत नहीं होता। पाण्डवों के सर्वनाश के लिए सन्नद्ध दुर्योधन से एवं द्रौपदी का घोर अपमान करनेवाले दुःशासन से प्रतिशोध लेने की भावना उनमें विलुप्त है। युधिष्ठिर के चरित्र की ये विशेषतायें किसी संन्यासी या वैरागी के लिए निश्चय ही उपादेय गुण हो सकती हैं किन्तु एक बीर क्षत्रिय-राजा के लिए ये सारी विशेषताएँ वस्तुतः दुर्गुणों की श्रेणी में ही आ सकती हैं। युधिष्ठिर के हृदय में अपने भाइयों के प्रति प्रगाढ स्नेह है। वे प्रतिज्ञा करते हैं कि एक भी भाई की मृत्यु हो जाने पर वे आत्मघात कर लेंगे किन्तु यह प्रतिज्ञा वे भूलकर भी नहीं करते कि एक भी भाई का वध होने पर वे वधकर्त्ता को यमलोक पहुँचा देंगे। षष्ठ अङ्क में जब चार्वाक द्वारा उन्हें भीम-वध की मिथ्या-सूचना मिलती है तो वे दुर्योधन से प्रतिशोध लेने के स्थान में द्रौपदी सहित स्वयं चितारोहण करने की तैयारी में शीघ्रता से जुट जाते हैं। इन सारी घटनाओं से युधिष्ठिर की भीरु प्रकृति तथा कायरता ही प्रकाश में आती है जो उन्हें हास्यास्पद बना देने के लिए पर्याप्त है। यद्यपि प्राचीन आलङ्कारिकों ने युधिष्ठिर के मस्तक पर ही वेणीसंहार नाटक के नायक का सेहरा बाँधा है किन्तु वेणीसंहार जैसे वीररसप्रधान नाटक का नायक यदि इतना डरपोक, कायर एवं पलायनवादी हो तो वस्तुतः उसे नाटक के नायकपद को अलङ्कृत करने का कोई अधिकार नहीं है। सम्पूर्ण नाटक में वीरता एवं पराक्रम की ओजस्विनी सरिता प्रवाहित हो रही है जिसमें भीम, अर्जुन, दुर्योधन, कर्ण एवं अश्वत्थामा सरीखे योद्धा सोत्साह एवं सानन्द किल्लोलें करते दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु एकमात्र युधिष्ठिर ही ऐसे पात्र हैं जो उस सरिता में डुबकी लगाने की बात तो दूर, उसमें अपना पैर भी नहीं डालना

चाहते। इस प्रकार युधिष्ठिर के चरित्र को प्रस्तुत नाटक के वातावरण में बहुत अधिक प्रशस्त नहीं माना जा सकता।

(घ) अश्वत्थामा—अश्वत्थामा आचार्य द्रोण का पुत्र है। वह योग्य पिता की योग्य सन्तान है। अपने पिता से शस्त्रविद्या पाकर वह एक तेजस्वी वीर के रूप में उभरता है। प्रस्तुत नाटक के तृतीय एवं पञ्चम अङ्क में उसका प्रवेश होता है। अश्वत्थामा प्रस्तुत नाटक का वह पात्र है जो आन्धी की तरह आता है और तूफान की तरह गुज़र जाता है। नाटक के वातावरण को गति देने में उसकी भूमिका का अच्छा उपयोग किया गया है। अश्वत्थामा को यदि इस नाटक से बहिष्कृत कर दिया जाय तो निश्चय ही यह नाटक छूछेपन के दोष से ग्रस्त हो जायगा।

अश्वत्थामा तेजस्वी, पराक्रमी, सहिष्णु एवं पितृभक्तवीर है। पिता द्रोणाचार्य में उसकी अतिशय श्रद्धा एवं प्रीति है। पिता की मृत्यु का समाचार पाकर वह स्वयं प्राण त्याग करने को तत्पर हो जाता है। कर्ण की कुमन्त्रणा के कारण दुर्योधन अश्वत्थामा की वीरता का लाभ नहीं उठा पाता जब कि अश्वत्थामा एक वफादार एवं स्वामिभक्त योद्धा है। कर्ण के द्वारा अपने पिता की निन्दा किये जाने पर तथा कर्ण के प्रति दुर्योधन का पक्षपात होने पर वह यद्यपि शस्त्र-त्याग कर देता है किन्तु जब भीम के भुजपञ्जर में आबद्ध दुःशासन की दुर्दशा का उसे पता चलता है तो वह अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ने के लिए भी तत्पर हो जाता है तथा पुनः शस्त्रग्रहण करना चाहता है। उसके अन्दर की स्वामिभक्ति ऐसे अवसर पर जाग्रत हो जाती है। धर्म के प्रति निष्ठावान् होने के कारण ही आकाश सञ्चारिणी वाक् द्वारा वह दुबारा शस्त्र ग्रहण नहीं कर पाता।

अश्वत्थामा के रग-रग में वीरता व्याप्त है। वह वैसा कार्य भी कर सकने में अपने को समर्थ मानता है जैसा कि कभी परशुराम ने कर दिखाया था— "यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः (३।३३)। अपने असीम शौर्य के बूते पर ही वह द्रोणाचार्य एवं भीष्मपितामह की श्रेणी का योद्धा गिना जाता है। अश्वत्थामा को निरन्तर इस बात की कसक होती रहती है कि

दुर्योधन अपने चापलूस मित्र कर्ण के बहकावे में आकर उसके जैसे शूर व्यक्ति के पराक्रम का लाभ नहीं उठा पाता है। वीरता-पदर्शन का अवसर न मिलने से वह खिन्न सा हो जाता है। अश्वत्थामा के चारित्रिक विकास के सन्दर्भ में दुर्योधन की मूढता एवं हठधर्मिता पग-पग पर प्रकट होती है। धृतराष्ट्र जैसे अनुभवी एवं वयोवृद्ध पिता के परामर्श को ठुकरा कर दुर्योधन अश्वत्थामा का उचित मूल्याङ्कन नहीं करता जिससे क्षुब्ध होकर अश्वत्थामा कहीं अज्ञात स्थान को चला जाता है। वस्तुतः प्रस्तुत नाटक में अश्वत्थामा का जो चरित्र चित्रित किया गया है उसमें नाटक की प्राणवत्ता समाहित है।

(ङ) **कर्ण**—कर्ण अङ्गदेश का राजा तथा दुर्योधन का अनन्य मित्र है। नाटक में अङ्गराज, राधेय, राधापुत्र, सूतपुत्र आदि विभिन्न विशेषणों के साथ उसके नाम का उल्लेख किया गया है। कर्ण में वीरता है, उत्साह भी है किन्तु अभिमान एवं दुष्टता के दुर्गुण भी उसमें हैं। वह बहुत बड़ा योद्धा अवश्य है किन्तु दम्भी भी कम नहीं है। अपने दम्भ प्रदर्शन के समय अपनी वाणी पर भी उसका नियन्त्रण नहीं रहता। द्रोणाचार्य जैसे पूज्य एवं महापराक्रमी व्यक्ति की भी निन्दा करने में उसे अनौचित्य का ज्ञान नहीं होता। यद्यपि दुर्योधन के लिए वह अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता है किन्तु जीवितावस्था में दुर्योधन को कुमन्त्रणाएँ दे देकर उसका सर्वनाश करने में भी उसका कम हाथ नहीं है। वह भाग्यवादी होने के साथ साथ पुरुषार्थ का प्रबल पक्षपाती पौरुष को अर्जित करने एवं बढ़ाने का विलक्षण साहस उसमें विद्यमान है। इतना सब कुछ होते हुए भी कर्ण के चरित्र को सर्वथा प्रशंसनीय नहीं माना जा सकता। वह नाटक में एक चापलूस मित्र, कटुभाषी योद्धा तथा नीचाशय व्यक्ति के रूप में ही स्थान पा सकता है।

(च) **द्रौपदी**—द्रौपदी "वेणीसंहार" नाटक की नायिका है। उसका चरित्र एक वीर क्षत्राणी के रूप में चित्रित किया गया है। उसी के अपमान की कथा इस नाटक का आलम्बन है। एक वीर क्षत्राणी के लिए जिस तेज एवं दृढ संकल्प की अपेक्षा की जाती है वह उसमें विद्यमान है। कौरवों द्वारा किये गये अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए वह भीम के साथ कदम से कदम

मिलाकर चलती हुई सी प्रतीत होती है। भीम की ही भाँति युधिष्ठिर द्वारा किया जाने वाला सन्धिप्रयास उसके लिए असह्य है। वह तो गिन-गिन कर अपने तिरस्कार का बदला लेना चाहती है। भीम की क्रोधाग्नि को सदैव भड़काने के साथ-साथ वह इस बात का भी ध्यान रखती है कि उनके पाँचों पति युद्ध में अपने-अपने शरीर की उपेक्षा न कर बैठें। इस प्रकार पति की सुरक्षा के सम्बन्ध में उसकी स्त्री-सुलभ आशङ्का एवं पतिप्रेम की भी अभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर हुई है।

द्रौपदी पितृपक्ष एवं श्वशुर पक्ष-दोनों से ही उत्तम क्षत्राणी है। क्षत्राणी का तेज उसके मुखमण्डल पर सदैव देदीप्यमान होता रहता है। दुर्योधन-पत्नी भानुमती की व्यङ्ग्योक्ति से वह तिलमिला उठती है। अपने अपमान का उचित प्रतिशोध लेने के लिए एकमात्र भीम को ही अपना आश्रय चुनती है। यही कारण है कि पूरे नाटक में पाँचो पाण्डवों के बीच भीम को वह जितना चाहती हुई सी परिलक्षित होती है उतना अन्य किसी को नहीं। षष्ठ अङ्क में चार्वाक द्वारा भीम-वध का मिथ्या समाचार पाते ही वह युधिष्ठिर के साथ चितारोहण के लिए प्रस्तुत हो जाती है। युधिष्ठिर एवं अन्य भाइयों को पत्नी की सुरक्षा के लिए असमर्थ जानकर ही प्रायः वह वैसा करने के लिए तत्पर होती है। वीररस प्रधान नाटक की नायिका के लिए सभी अपेक्षित विशेषताएँ द्रौपदी में विद्यमान हैं।

(छ) भानुमती—भानुमती नाटक के प्रतिनायक दुर्योधन की पत्नी है। एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में वह चित्रित की गई है। वह अत्यधिक सौन्दर्यशालिनी है। यही कारण है कि दुर्योधन युद्ध की उपेक्षा करके भी उसके साथ सर्वदा प्रणय-लीला में लीन रहने को समुत्सुक रहता है। अशुभ स्वप्न दर्शन के कारण अनिष्ट निवारण के लिए उसके द्वारा भगवान् भास्कर को पुष्पाञ्जलि प्रदान करना उसकी धार्मिक निष्ठा का अभिव्यञ्जक है। इतना होते हुए भी दुर्जन सगति से उत्पन्न दोषों से वह अपने को बचा नहीं पाती। दुर्योधन की भार्या होने के कारण दुर्योधन का एकाध दुर्गुण उसमें भी आ गया दिखाई देता है। द्रौपदी की मुक्त वेणी को देखकर उस पर व्यङ्ग्य के छींटे कसना इसका प्रमाण है किन्तु शत्रु-पत्नी के साथ इस प्रकार का व्यवहार करना

कदाचित् अस्वाभाविक भी नहीं है। अपनी छोटी सी भूमिका में वह दर्शकों एवं पाठकों के हृदय पर एक पतिव्रता तथा सच्चरित्र स्त्री के रूप में ही अपनी छाप छोड़ती है।

वेणीसंहार का नायक

"वेणीसंहार" नाटक का नायक कौन है, यह प्रश्न आज तक जटिल एवं विवाद के घेरे में ही पड़ा हुआ है। इस प्रश्न को लेकर आज तक विद्वानों में मतभेद ही है। नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं प्राचीन आलङ्कारिक आचार्यों के अनुसार युधिष्ठिर को नायक माना गया है किन्तु कुछ आधुनिक विचार धारा वाले विद्वानों ने भीम को इस पद का दावेदार माना है। इसके अतिरिक्त वेणीसंहार को दुःखान्त नाटक मानने वाले कुछ विद्वानों की सम्मति में दुर्योधन ही प्रस्तुत नाटक के नायक पद का अधिकारी सिद्ध होता है।[१] ऐसी स्थिति में परम्परा एवं विवेक में से किसी एक का आश्रय लेकर ही वेणीसंहार के नायक के विषय में कोई ठोस निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

सर्वप्रथम दुर्योधन के सम्बन्ध में ही विचार कर लिया जाय। नाटकीय वस्तु-योजना के अनुसार दुर्योधन प्रतिनायक ही सिद्ध होता है नायक नहीं। दूसरी बात यह है कि दुर्योधन को नाटक का नायक सिद्ध करना नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के विरुद्ध है। दशरूपक के अनुसार अधिकारी का वध दिखलाना निषिद्ध है[२]। षष्ठ अङ्क में दुर्योधन का वध दिखलाया गया है जिससे दुर्योधन का नायकत्व स्वतः समाप्त हो जाता है। इसलिए दुर्योधन को नायक मानना नाट्यशास्त्र सम्मत नहीं है।

अब नायक-पद के लिए क्रमशः दो पात्र बच जाते हैं—युधिष्ठिर तथा भीम। पहले ही कहा जा चुका है कि वेणीसंहार के नायक का निर्णय करने के

---

१. रामचन्द्र राव; ट्रेजेडीज इन संस्कृत प्रोसीडिंग्ज ऑफ एट्थ ओरिएण्टल कान्फ्रेन्स, १९३५ पृ० २९९ और आगे, पाण्डेय तथा व्यास; संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, द्वितीय संस्करण १९४८, पृ० २१३-१४।

२. नाधिकारिवधं क्वापि—दशरूपक, ३।३६; अधिकृतनायकवधं प्रवेशकादिनाऽपि न सूचयेत्। वही, धनिककृत टीका।

लिए परम्परा या विवेक में से किसी एक मार्ग का ही अवलम्बन किया जा सकता है। यदि परम्परा का अनुवर्त्तन करें तो युधिष्ठिर ही वेणीसंहार के नायक सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि प्राचीन आलङ्कारिकों की दृष्टि में एवं नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के आलोक में युधिष्ठिर को ही नायक के पद पर प्रतिष्ठित होने का श्रेय प्राप्त है। नायक के शास्त्र-सम्मत लक्षण निम्न हैं—

"महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥"[१]

ये सारे लक्षण युधिष्ठिर में विद्यमान हैं। वे धीर, प्रशान्त तथा अविकत्थन हैं। इसके अतिरिक्त नाटक का नायक नाटक के मुख्य फल का भोक्ता होता है। इस दृष्टि से भी विचार करें तो प्रस्तुत नाटक में युद्ध की समाप्ति पर नाटक के 'राज्यप्राप्ति' रूप मुख्य फल के भोक्ता युधिष्ठिर ही दृष्टिगोचर होते हैं। नाटककार को भी प्रायः युधिष्ठिर को ही नायक बनाना अभीप्सित है इसीलिए नाटक के अन्त में युधिष्ठिर के मुख से ही "भरतवाक्य" कहलवाया गया है। संस्कृत नाटकों में प्रायः नायक के द्वारा ही भरत-वाक्य के प्रयोग की परम्परा प्रचलित है। इसके साथ ही नाटक के आरम्भ में युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि को वीजरूप में उपन्यस्त कर नाटककार ने युधिष्ठिर के नायकत्व को और अधिक पुष्ट कर दिया है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र की प्रचलित भारतीय परम्परा के आधार पर युधिष्ठिर ही वेणीसंहार के नायक सिद्ध होते हैं।

कुछ आधुनिक विचारधारा के विद्वान् युधिष्ठिर को प्रस्तुत नाटक का नायक न मानकर भीम को ही इसका नायक मानते हैं। वे शास्त्रीय परम्परा को अनदेखा कर सामान्य विवेक के आधार पर अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हैं। भीम को नायक मानने में वे दो प्रमुख कारणों का उल्लेख करते हैं। "वेणीसंहार" की घटना मूलतः द्रौपदी एवं भीम से ही सम्बन्ध रखती है युधिष्ठिर से नहीं। दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़कर उसके रुधिर से द्रौपदी की वेणी को संवारने की प्रतिज्ञा भीम के द्वारा की गई है जिसे इन विद्वानों ने नाटक के वीज-रूप में स्वीकार किया है। अपनी प्रतिज्ञा की पूर्त्ति के लिए

१. दशरूपक—२।४।५

नाटक के आदि से लेकर अन्त तक भीम तत्पर दिखाई देता है। जिस अङ्क में वह मञ्च पर न भी आता है उस अङ्क में भी उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव बनाबनाया सा ही दीखता है। प्रत्येक अङ्क में उसकी रोषपूर्ण गर्जना एवं प्रतिज्ञा को दुहराती हुई आवाज सुनाई पड़ती है। दूसरे अङ्क में कञ्चुकी द्वारा दुर्योधन को दी गई—"भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम्।" (२।२४) यह सूचना नाटक में भीम के प्रभावातिशय को सहज सूचित करती है। तृतीय अङ्क में भीम की ही आवाज नेपथ्य से सुनाई देती है कि वह दुःशासन का रक्तपान करने को जा रहा है। चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक की उक्तियों के द्वारा भीम के पराक्रम का विशद परिचय मिलता है। इस प्रकार विभिन्न तर्कों एवं प्रमाणों को उपस्थापित करते हुए नवीन विचारधारा के विद्वानों ने भीम को ही नायक मानने के पक्ष में अपना अभिमत व्यक्त किया है। नाटक के प्रारम्भ में क्रोधाविष्ट भीम द्वारा की गई प्रतिज्ञा को नाटक का बीज एवं नाटक के अन्त में द्रौपदी की वेणी के संहरण को नाटक का फल मानकर इन दोनों ही व्यापारों के साथ भीम को ही मुख्यतया सम्बद्ध मानकर ऐसा निर्णय दिया गया है।

हमारे मत में इस प्रकार के विवाद का निपटारा शास्त्रीय आलोक में ही करना चाहिए। भीम को वेणीसंहार का नायक मानने में नाट्यशास्त्रीय कसौटी को नहीं अपनाया जा सकता। भीम धीरोद्धत प्रकृति का नायक है। नाटक के नायक के लिए धीरोदात होना आवश्यक है। धीरोदात्त के सारे लक्षण युधिष्ठिर में ही विद्यमान है भीम में नहीं। धीरोदात्त नायक धीर, प्रशान्त, क्षमावान्, अविकत्थन आदि विभिन्न विशेषणों के योग्य होता है। युधिष्ठिर में ही ये सारे गुण पाये जाते हैं। पूरे नाटक में भीम की गर्वोक्तियाँ गूंजती रहती है। धृतराष्ट्र एवं गान्धारी जैसे पूज्य जनों के समक्ष भी वह अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखने में अक्षम सिद्ध होता है। इस प्रकार वह विकत्थन ही सिद्ध होता है। अविकत्थन नहीं। अविकत्थन तो युधिष्ठिर हैं। धीरोद्धत नायक के रूप में ही भीम का मूल्याङ्कन किया जा सकता है धीरोदात्त नायक के रूप में नहीं और नाटक के नायक को चूंकि धीरोदात्त होना चाहिए इसलिए वेणीसंहार के नायक वस्तुतः युधिष्ठिर ही हैं भीम नहीं।

वेणीसंहार की संक्षिप्त समीक्षा

सम्भवतः प्राचीन आलङ्कारिकों ने वेणीसंहार को नाटचशास्त्रीय-सिद्धान्तों की कसौटी पर अत्यधिक खरा उतरनेवाला नाटक माना है। यही कारण है कि संस्कृत के कतिपय अलङ्कारशास्त्रीय तथा नाटचशास्त्रीय ग्रन्थों में वेणीसंहार के अधिकांश पद्य उद्धृत किये गये हैं जो वेणीसंहार की सैद्धान्तिक महत्ता को प्रमाणित करते हैं किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आलङ्कारिक विद्वानों ने वेणीसंहार को आवश्यकता से अधिक समादर दे रक्खा है। वस्तुतः वेणीसंहार नाटक उतने आदर के योग्य नहीं है जितना कि इसे प्राचीन विद्वानों से प्राप्त हुआ है। यह सत्य है कि नाटककार ने नाटचशास्त्रीय सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए ही प्रस्तुत नाटक का प्रणयन किया है किन्तु यह भी सत्य है कि नाटचशास्त्रीय सिद्धान्तों को विशेष ध्यान में रखने के कारण ही भट्ट नारायण का यह नाटक नाटकीय गतिशीलता से सर्वथा विरहित होकर वस्तुतः एक शिथिल नाटक ही बनकर रह गया है।

नाटकीय संविधान की दृष्टि से "वेणीसंहार" विभिन्न त्रुटियों से ग्रस्त प्रतीत होता है। वेणीसंहार की कथा महाभारत की एक प्रमुख घटना—भीम-प्रतिज्ञा—से सम्बद्ध है किन्तु नाटककार ने सम्पूर्ण महाभारत युद्ध के विस्तृत वृत्तान्त को मात्र ६ अङ्कों के नाटक में समेटने का साहसपूर्ण प्रयास किया है जिसके लिए नाटककार को अपने नाटक में यत्र-तत्र संवादात्मक शैली का परित्याग कर वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेना पड़ा है और कवि द्वारा अपनाई गई यही शैली नाटकीय नियमों एवं स्वाभाविकता के विपरीत होने के कारण नाटक की गत्यात्मकता की बाधिका के रूप में दोषोद्घाटन करती-सी जान पड़ती है। यद्यपि नाटककार के समक्ष इसके अतिरिक्त कोई उपायान्तर न रहा होगा तथापि सम्पूर्ण महाभारत युद्ध के वृत्तान्त को न लेकर यदि कथा-वस्तु के केवल अपेक्षित अंश को लेकर ही यह नाटक लिखा जाता तो प्रायः इस दोष से यह नाटक मुक्त होता।

वेणीसंहार वीररसप्रधान नाटक है। इसके द्वितीय अङ्क में दुर्योधन एवं भानुमती के प्रणय-व्यापार की शृङ्गारिक योजना भी नाटकीय कथावस्तु के

अनुपयुक्त है। विद्वानों ने नाटक की इस घटना को दोषरूप में ही उद्‌घाटित किया है। यद्यपि नाटककार ने नाट्यसिद्धान्तों का अनुपालन करने के लिए ही वीररसपूर्ण नाटक में भी इस प्रकार के प्रणय-व्यापार की योजना की है किन्तु उन्होंने इस बात का ध्यान प्रायः नहीं रक्खा कि युद्ध के लिए सन्नद्ध दुर्योधन को इस प्रकार के शृङ्गारिक चित्र में उपन्यस्त करना नाटकीय प्रभावोत्पादकता में अवरोधक भी हो सकता है।

तृतीय अङ्क में कर्ण एवं अश्वत्थामा के बीच जो वाक्कलह दिखलाया गया है उसमें यद्यपि मार्मिकता तो है किन्तु उन दोनों के कलह के सम्बन्ध में किसी नाटकीय संभावना का संकेत सर्वथा अप्राप्त है। षष्ठ अङ्क में चार्वाक-राक्षस के द्वारा दुर्योधन को प्रतारित करने की जिस वस्तु-योजना का प्रयोग किया गया है वह अनुपयुक्त है तथा पुनः उसी अङ्क में युधिष्ठिर द्वारा भीम को दुर्योधन समझे जाने की वस्तुयोजना द्वारा नाटककार ने उसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति कर डाली है।

वेणीसंहार में व्यापार की बहुलता होने पर भी उसमें अन्विति का अभाव पाया जाता है तथा उन व्यापारों को नाटकीय ढङ्ग से सजाने में भी नाटककार सर्वथा अक्षम सिद्ध हुआ है। समस्त महाभारत युद्ध का नाटक में वर्णित किया जाना ही इस दोष का मूल कारण हो गया है। यद्यपि ये व्यापार नाटक के मूल कार्य में सहायक तो हैं किन्तु एक शृङ्खला में अनुस्यूत नहीं हैं। कहीं-कहीं तो नाटकीय व्यापार को गहरी ठेस पहुँचाई गई है। चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक के लम्बे लम्बे वर्णनात्मक कथनों द्वारा घटनाओं का केवल सङ्केत ही प्राप्त होता है; नाटकीय व्यापार का तो पर्याप्त अभाव ही उस अङ्क में दिखाई देता है। वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कथाओं के लिए ही उपयुक्त होता है किन्तु नाटककार ने यहाँ उस शैली को अपनाकर नाटक की प्रभावोत्पादकता में भारी कमी ला दी है। नाटक की गतिशीलता को अवरुद्ध करने वाली पूर्वोक्त वर्णनात्मक शैली का प्रयोग द्वितीय एवं षष्ठ अङ्कों में भी किया गया है। वेणीसंहार के कुछ दृश्य रमणीय तथा प्रभावोत्पादक तो हैं किन्तु उनकी यह प्रभावोत्पादकता व्यस्तरूप में ही है; सम्पूर्ण नाटक की प्रभावोत्पादकता में वे योग नहीं दे पाते।

नाटकीय दृष्टि से शिथिल होने पर भी वेणीसंहार का काव्यपक्ष निश्चय ही नितान्त मनोरम बन पड़ा है। विशेषतः पात्रों के चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में नाटककार को अभूतपूर्व सफलता मिली है। वेणीसंहार का प्रत्येक पात्र सजीव है तथा पाठकों या दर्शकों के हृदय पर अपने-अपने प्रभावातिशय की गहरी छाप छोड़ने में पूर्ण समर्थ है।

वेणीसंहार का मुख्य रस वीर है तथा शृङ्गार एवं रौद्र इसके अङ्ग हैं। तृतीय अङ्क के राक्षस-राक्षसी वाले प्रवेशक में बीभत्स-रस की भी योजना की गई है। समासान्त पदों तथा गम्भीर ध्वनिवाले शब्दों का प्रयोग कर "ओज" गुण की प्रचुर व्यञ्जना कराते हुए गौड़ी रीति के कवियों की भाँति कृत्रिम शैली की ओर ही नाटककार का विशेष पक्षपात दृष्टिगोचर होता है। नाटक के वीररस पूर्ण वातावरण की सृष्टि में कवि ने प्रायः इसे आवश्यक समझा होगा। वीररस की व्यञ्जना में नाटककार को पूर्ण सफलता मिली है। इसके एक-दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

युधिष्ठिर कौरवों से सन्धि करना चाहते हैं, यह सुनते ही द्रौपदी इस बात के लिए परेशान हो उठती है कि अब उसकी वेणी खुली ही रह जायगी। भीम उसे सान्त्वना देते हुए कहता है—

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावविद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः॥ (१।२१)

अर्थात्—"हे देवि! तुम निश्चिन्त रहो। यह भीम इस बात की प्रतिज्ञा करता है कि शीघ्र ही अपनी फड़कती हुई भुजाओं के द्वारा घुमाई गई भीषण गदा के प्रहार से दुर्योधन की दोनों जाँघों को तोड़कर उसके गाढ़े-चिकने रक्त से रंगे हुए हाथों से तुम्हारे केशों को सँवारेगा।"

भीम की इस दर्पोन्मत्त वाणी को सुनकर द्रौपदी उससे युद्ध में अपने शरीर की उपेक्षा न करने की सलाह देती है जिससे भीम के पौरुष को ठेस

पहुँचती है। वह द्रौपदी को इस बात का विश्वास दिलाते हुए कि पाण्डव युद्धभूमि के भीषण समुद्र में पैठना खूब जानते हैं, कहता है—

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के,
मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ।
स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे,
सङ्ग्रामैकार्णवान्तः पयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः॥
(१।२७)

अर्थात्—"द्रौपदी ! तुम चिन्ता मत करो। पाण्डव उस युद्धरूपी सागर के गहरे पानी के मध्य विचरण करने में परम निपुण हैं, जिसमें एक दूसरे से टकराकर आहत हाथियों के रक्त, वसा, म.. और मस्तिक का कीचड़ हो रहा हो, और उस कीचड़ में फँसे हुए रथों प. पाँव रखकर पदाति सेना लड़ रही हो, जहाँ यथेष्ट रुधिरपान से प्रसन्न होकर शब्द करती हुई अशुभ शृङ्गालियों के चिल्लाने के तूर्यनाद की लय पर कवन्ध नाच रहे हों।"

भीम की कटु गर्वोक्तियों को सुनकर दुर्योधन भी चुप बैठा नहीं रहता है। दुर्योधन को जीते बिना ही भीम का ऐसा दर्प ! पाण्डवों का अनिष्टकारी तो दुर्योधन है।

यदि भीम को प्रतिशोध लेने की कामना है तो वह दुर्योधन जैसे पराक्रमी को पहले पराजित करे। निरपराध राजों को मारने में उसकी क्या वीरता है—

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा,
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।
अस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा,
बाह्वोर्वीर्यातिसारद्रविड़गुरुमदं मामजित्वैव दर्पः॥
(५।३०)

अर्थात्—"मुझ जगदधिपति की आज्ञा से राजाओं के समक्ष (मेरी) जुए में (जिती गई) दासी, तेरी, तुझ पशु की, उस राजा की और उन

दोनों की पत्नी केश पकड़ कर खींची गई थी; बता, इस शत्रुता के प्रसङ्ग में जो राजा मारे गये हैं, उन्होंने क्या अपराध किया था ? भुजाओं के बलातिशय-रूप धन के महान् गर्ववाले मुझ (दुर्योधन) को बिना जीते ही ऐसा गर्व (कर रहे हो) ?"

क्षत्रिय के द्वारा तिरस्कृत पिता के वध से परशुराम-सदृश क्रोधाविष्ट अश्वत्थामा की निम्नलिखित उक्ति में अपमानजन्य क्रोध तथा वीरता की ऊष्मा का अच्छा परिपाक पाया जाता है—

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन् ह्रदाः पूरिताः
क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः ।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे
यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः ।।

(३।३३)

अर्थात्—"यह वही देश है जहाँ परशुराम ने तालावों को शत्रुओं के रुधिर से भर दिया था । परशुराम के पिता की भाँति मेरे पिता का अपमान भी क्षत्रिय जाति ने ही किया है । परशुराम के जैसे ही शत्रुओं का भक्षण करने में समर्थ देदीप्यमान अस्त्र मेरे पास भी हैं । जो पहले परशुराम ने किया था वही आज क्रुद्ध अश्वत्थामा (द्रोण-पुत्र) भी करने जा रहा है ।"

वीररस के साथ-साथ कहीं-कहीं शृङ्गार रस की भी सरस अभिव्यक्ति नाटककार ने कुशलता पूर्वक की है ।

द्वितीय अङ्क के निम्न पद्य में दुर्योधन की उक्ति शृङ्गाररस का भव्य उदाहरण है—

"प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं,
लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा ।
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा,
पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं न दुर्योधनस्य ।।

(२।१८)

अर्थात्—"हे प्रिये ! प्रेम से परिपूर्ण निश्छल नयनों के द्वारा जिसने कमल की शोभा को पी लिया है (जिसने कमलों को नयनों से जीत लिया है), लज्जा के कारण जिस मुख से स्पष्ट वचन नहीं निकल रहे हैं और मन्द-मन्द मुस्कराहट प्रकट हो रही है, ऐसे तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा को जिसके अधर का लाक्षारस व्रत के कारण लुप्त हो गया है—पीने की (चुम्बन करने की) इच्छा क्या दुर्योधन को न होगी ?"

भट्टनारायण का प्रकृति के प्रति विशेष मोह परिलक्षित नहीं होता फिर भी द्वितीय अङ्क के श्लोक संख्या ८ में (जृम्भारम्भप्रविततत०) प्रातःकालीन भ्रमरदम्पतियों का वर्णन तथा इसी अङ्क के "दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृण-जटिल० —" (श्लोक सख्या-१९) में झंझावात की प्रचण्डता एवं गम्भीरता का वर्णन प्राकृतिक चित्रचित्रण की दृष्टि से श्लाघनीय है।

विद्वानों ने भट्टनारायण के दार्शनिक पाण्डित्य को बताने के लिए प्रायः निम्न पद्य की ओर सङ्केत किया है—

"आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोद्रेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम् ॥
(१।२३)

अर्थात्—कल्पनातीत समाधि लगाकर आत्मारूपी उपवन में पूर्णतया अनुरक्त, ज्ञान के आधिक्य से तमोगुण की ग्रन्थियों के विच्छेदक सत्त्वगुणा-लम्बनकर्त्ता योगी लोग अन्धकार से परे अथवा प्रकाश से परे जिस किसी को देख पाते हैं, उस पुराण पुरुष को मोह के अज्ञान से अन्धा दुर्योधन किस प्रकार जान सकता है ?"

भट्टनारायण गौडी शैली के पक्षधर प्रतीत होते हैं।

प्रथम अङ्क का निम्नलिखित श्लोक भट्टनारायण की गौडी शैली का विशिष्ट उदाहरण है—

"मन्थायस्तार्णवाम्भः प्लुत-कुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः,
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः ।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः,
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम् ।।"

(१।२२)

इस प्रकार हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेणीसंहार नाटक नाटक की दृष्टि से भले ही सफल न हो सका हो किन्तु यह तो मानना ही होगा कि इस नाटक का कवितापक्ष बहुत ही भव्य, मनोरम, प्रभावोत्पादक एवं सहृदयावर्जक बन पड़ा है और प्रायः यही कारण है कि संस्कृत नाट्य-जगत् में "वेणीसंहार" को इतनी अधिक ख्याति तथा प्रतिष्ठा मिली है ।



विषय-प्रवेश

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

सूत्रधार—नटों में मुख्य (नाटक-स्थापक)
पारिपार्श्विक—सूत्रधार का सहचर
जयन्धर—पाण्डवों का कंचुकी
श्रीकृष्ण—भगवान् वासुदेव
युधिष्ठिर—कुन्तीपुत्र, पाण्डव—१
भीम— ,, ,, —२
अर्जुन— ,, ,, —३
नकुल—माद्रीपुत्र ,, —४
सहदेव— ,, ,, —५
विनयंधर—कौरवों का कंचुकी
दुर्योधन—कौरव-राजा
रुधिरप्रिय—पाण्डव पक्षपाती राक्षस
अश्वत्थामा—द्रोणाचार्य का पुत्र
अश्वसेन—द्रोणाचार्य का रथवाहक
कृपाचार्य—अश्वत्थामा का मामा
कर्ण—राधा (सूत की स्त्री) से परिपालित (गुप्त कुन्तीपुत्र) दुर्योधन का मित्र
जयद्रथ—दुर्योधन का बहनोई
सुन्दरक—कर्ण का सन्देशवाहक
धृतराष्ट्र—दुर्योधन का पिता
सञ्जय—व्यास का शिष्य
वृषसेन—महारथी कर्ण का पुत्र
पांचालक—पाण्डवों का सन्देशवाहक
राक्षस—दुर्योधन का मित्र चार्वाक
सूत—दुर्योधन का मित्र, रथवाहक

स्त्री पात्र

द्रौपदी—पाण्डवों की स्त्री (पांचाली)
बुद्धिमतिका—द्रौपदी की दासी
चेटी—द्रौपदी की दासी
भानुमती—दुर्योधन की रानी
सुवदना—भानुमती की सखी
तरलिका—भानुमती की दासी
दुःशला—जयद्रथ की स्त्री
माता—जयद्रथ की माता
वसागन्धा—पाण्डव पक्षपातिनी राक्षसी
गान्धारी—दुर्योधन की माता
प्रतिहारी—दुर्योधन की परिचारिका

॥ श्रीः ॥

वेणीसंहार-नाटकम्

'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः

सर्वविघ्नहरं देवं शङ्कराऽऽह्लादवर्द्धकम् ।
स्तौमि द्वैमातुरं भक्त्या गिरिजोत्सङ्गलालसम् ॥
व्याकृत्या विशदीकृता विमलता चित्तस्य येनेदृशी,
स्वान्तं यस्य विबोधितं प्रथितया तर्काश्रितप्रज्ञया ।
मिश्रोपाख्यविभूषितं सहृदयं केदारनाथं गुरुम्,
वैदूष्यार्पितजीवितं सुधिषणं मूर्ध्ना नमस्कुर्महे ॥
कालीकान्तं विततयशसं कोविदग्राममौलिम्,
तातं नत्वा मनसि सुचिरं मातरम्प्रीतवत्साम् ।
ध्यात्वा चेमां कृतिजनमुदे विश्वनाथप्रसादात्,
कुर्वे टीकां सरलविरलां छात्रवृन्दोपकृत्यै ॥
मातस्त्वदीयकदपङ्कजलालितोऽहं,
तत्, प्रीतये त्वदभिधानसुशोभितैषा ।
टीका मया विरचिता 'कमलेश्वरी'ति,
मोदं वहन्तु सुधियः प्रतिभा-विलुब्धाः ॥

अन्वयः—(मुहुर्मुहुः) निषिद्धैः अपि एभिः मधुकरैः लुलितमकरन्दः

(बार बार) हटाये जाने पर भी इन भौरों द्वारा बिखेरे गये पुष्परसवाली,

करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव संभिन्नमुकुलः ।
विधत्तां सिद्धिं नो नयनसुभगामस्य सदसः
प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणयोरञ्जलिरयम् ।। १ ।।

इन्दोः करैः अन्तः छुरितः इव (अतः) सम्भिन्नमुकुलः हरिचरणयोः प्रकीर्णः अयम् पुष्पाणाम् अञ्जलिः अस्य सदसः नयनसुभगाम् सिद्धिम् नः विधत्ताम् ।। १ ।।

व्याख्या—इह तावत् प्रारिप्सितवेणीसंहारनामकनाटकस्य निर्विघ्नसमाप्तिकामो महाकविर्भट्टनारायणः स्वेष्टदेवतास्तुतिरूपां नान्दीमुपस्थापयन् नाटकीयं वस्तु ध्वनयति—निषिद्धैरिति । (मुहुर्मुहुः = वारम्बारम्), निषिद्धैः=निवारितैः, हस्तादिसञ्चालनेनापसारितैरित्यर्थः, अपि, एभिः = पुरोवर्त्तमानैः, मधुकरैः = भ्रमरैः, लुलितमकरन्दः—लुलितः = इतस्तो विकीर्णः, मकरन्दः = पुष्परसः यस्य सः तादृशः, इन्दोः = चन्द्रस्य, करैः = रश्मिभिः, अन्तः = मध्ये, छुरितः = व्याप्तः, इव = यथा, (अतः = अस्माद्धेतोः), सम्भिन्नमुकुलः—सम्भिन्नाः = विकसिताः, प्रस्फुटिता इति यावत्, मुकुलाः = कुड्मलाः यस्मिन् यस्य वासः; हरिचरणयोः—हरेः = श्रीकृष्णस्य, चरणयोः = पादयोः, प्रकीर्णः = विस्तीर्णः; समर्पित इत्यर्थः, अयम् = एषः, पुष्पाणाम्=कुसुमानाम्, अञ्जलिः = करसम्पुटः; करसम्पुटस्थपुष्पाणीति भावः, अस्य = एतस्य, सदसः = सभायाः, सदः पदस्य मञ्चाः क्रोशन्तीति वत्तत्स्थजने लक्षणया सभास्थजनस्येत्यर्थः, नयनसुभगाम्—नेत्राह्लादिनीम्, सिद्धिम्=सफलताम्, नः = अस्माकम्, विधत्ताम्=कुरुताम् ।।१।।

टिप्पणी—निषिद्धैरिति । लुलितमकरन्दः—फूल के रस अर्थात् मधु को मकरन्द कहते हैं—"मकरन्दः पुष्परसः" इत्यमरः । इन्दोः—इन्दु चन्द्रमा का पर्यायवाची है—"हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः" इत्यमरः । करैः—किरण के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है—"किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणि-

चन्द्रमा की किरणों द्वारा मध्य-भाग में व्याप्त-सी (अतः) खिली हुई कलियों वाली, श्रीकृष्ण के चरणों पर बिखेरी गई, यह पुष्पों की अञ्जलि हमें इस सभा (सभा में उपस्थित लोगों) के नेत्रों को आह्लादित करने वाली सफलता प्रदान करे ।। १ ।।

अपि च—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते–
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ॥ २ ॥

रसमयः" इत्यमरः। सम्भिन्नमुकुलः—फूल की कली को मुकुल या कुड्मल कहते हैं—"कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। प्रस्तुत पद्य के द्वारा महाकवि भट्टनारायण ने नाटकीयवस्तु की सूचना दी है। जिस प्रकार हटाये गये भौंरे पुष्परस का आस्वादन नहीं कर पाते हैं उसी प्रकार भीष्म आदि श्रेष्ठ गुरुजनों द्वारा रोके जाने पर भी दुर्योधन आदि कौरव पाण्डवों से शत्रुता मोल लेकर राज्य-श्री को तहस-नहस कर देते हैं। इस प्रकार मधुकर पद से दुर्योधन आदि अभिप्रेत हैं। "सम्भिन्नमुकुलः" शब्द से युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का वनवासादि दुःख के बाद राज्य प्राप्तिरूप सुख से श्रीयुत होना अभिप्रेत है तथा "हरिचरणयोरञ्जलिः" शब्द से पाण्डवों का श्रीकृष्ण पर आश्रित होना अभिप्रेत है। इस प्रकार प्रस्तुतपद्य द्वारा नाटकीय कथावस्तु को सूचित किया गया है। पद्य में उत्प्रेक्षालङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है। छन्द का लक्षण है—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी" ॥ १ ॥

अन्वयः—कालिन्द्याः पुलिनेषु रासे रसम् उत्सृज्य गच्छन्तीम् केलिकुपिताम् अश्रुकलुषाम् राधिकाम् अनुगच्छतः तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य, उद्भूतरोमोद्गतेः, प्रसन्नदयितादृष्टस्य, कंसद्विषः, अक्षुण्णः, अनुनयः, वः पुष्णातु ॥ २ ॥

व्याख्या—कालिन्द्या इति। कालिन्द्याः = यमुनायाः, पुलिनेषु=तोयोत्थितेषु, जलमध्यस्थानेष्विति भावः, रासे = गोपक्रीडाविशेषे, रसम् = रागम्,

और भी,

यमुना के तटों पर रास-क्रीडा में (अचानक) क्रुद्ध हुई, रासलीला के आनन्दको छोड़कर (अन्यत्र) जाती हुई तथा आँसुओं के कारण मलिन

आनन्दमिति भावः, उत्सृज्य = परित्यज्य, गच्छन्तीम् = स्थानान्तरं व्रजन्तीम्, केलिकुपिताम्— केल्याम् = क्रीडायाम्, कुपिताम् = रुष्टाम्, अश्रुकलुषाम्— अश्रुभिः = नयनसलिलैः, कलुषा=मलिना, ताम्, रुदतीमिति यावत्, राधिकाम्= एतन्नाम्नीं वृषभानुतनयाम्, अनुगच्छतः = अनुसरतः, तत्पादप्रतिमानिवेशित-पदस्य–तस्याः = राधिकायाः, पादयोः=चरणयोः, प्रतिमासु=चिह्नेषु, निवेशिते= स्थापिते, पदे = चरणौ येन तस्य, उद्भूतरोमोद्गतेः = सञ्जातरोमाञ्चस्य, प्रसन्नदयितादृष्टस्य–प्रसन्ना = प्रसादयुक्ता या दयिता = प्रियातमा, दृष्टस्य = वीक्षितस्य, कंसद्विषः = कंसारेः, कृष्णस्येति भावः, अक्षुण्णः = अखण्डितः, अनुनयः = अभ्यर्थना, वः = युष्मान्, अस्मान् अन्यांश्च, सर्वानित्यर्थः, पुष्णातु = पुष्टान् करोतु, संवर्धयत्वित्यर्थः ॥ २ ॥

टिप्पणी—कालिन्द्या इति । कालिन्द्याः—"कालिन्दी सूर्यतनये"त्यमरः । पुलिनेषु = "तोयोत्थितं तत्पुलिनमि"त्यमरः । रासे–रास एक प्रकार का नाच है । श्रीकृष्ण एवं वृन्दावन की गोपियाँ इसका अभ्यास किया करतीं थीं–"रासो विदग्धगोष्ठ्यां च क्रीडायामपि गोदुहाम्" इति विश्वः । रसम्—"रस : स्वादे जले वीर्ये भृङ्गारादौ द्रवे विषे । वले रागे" इति हैमः । उद्भूतरोमोद्गतेः— उद्भूता रोम्णां गतिर्यस्य सः तस्या "तनूरुहं रोमलोम" इत्यमरः । कंसद्विषः— कंसस्य द्विट् तस्य । प्रस्तुत पद्य के प्रथमार्द्ध में "केलिकुपिताम्" तथा "अश्रुकलुषाम्" के द्वारा द्रौपदी के क्रोध एव विलाप की सूचना दी गई है तथा उत्तरार्द्ध में कौरवविनाश के बाद द्रौपदी की प्रसन्नता तथा भीम द्वारा की गई उसकी अभ्यर्थना का निर्देश किया गया है । इस पद्य में रोमाञ्चरूपी सञ्चारी भाव चूँकि कृष्णविषयक रति का अङ्ग है, अतः प्रेयोऽलङ्कार है । छन्द शार्दूलविक्रीडित है, जिसका लक्षण है—"सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ २ ॥

राधिका के पीछे-पीछे जाते हुए, उसके पद-चिह्नों पर पैर रखते हुए, रोमाञ्चित हुए और प्रसन्न प्रिया द्वारा देखे गये कंस-शत्रु (श्रीकृष्ण) का सफल अनुनय आप लोगों (एवं हम सबों) का पोषण करे ॥ २ ॥

अपि च—

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्सम्भ्रमाच्चासुरीभिः
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन।
आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसम्भ्रमैर्दैत्यवीरैः
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ॥ ३ ॥

अन्वयः—मयपुरदहने देव्या सप्रेम दृष्टः असुरीभिः इदम् किम् इति (उक्त्वा) भयात् च सम्भ्रमात् (दृष्टः) शान्तान्तस्तत्त्वसारैः ऋषिभिः सकरुणम्, (दृष्टः) विष्णुना सस्मितेन (दृष्टः) उपशमितवधूसम्भ्रमैः सगर्वैः दैत्यवीरैः अस्त्रम् आकृष्य (दृष्टः) देवताभिः सानन्दम् (दृष्टः) धूर्जटिः युष्मान्, पातु ॥ ३ ॥

व्याख्या—दृष्ट इति। मयपुरदहने=मयनिर्मितनगरदाहकाले, त्रिपुरासुर-पुरदहनसमय इत्यर्थः, देव्या = पार्वत्या, सप्रेम-प्रेम्णा = अनुरागेण सहितं यथा स्यात्तथा, दृष्टः = अवलोकितः, असुरीभिः=दानवस्त्रीभिः, इदम् = एतत्, किम्= किमभूत्, इत्युक्त्वेति शेषः, भयात् = त्रासात्, च = तथा, सम्भ्रमात् = उद्वेगात् (दृष्टः), शान्तान्तस्तत्त्वसारैः-शान्तम् = उपशमितम्, अन्तस्तत्त्वम् = अन्तः-करणम्, मनोबुद्ध्यहङ्काराणां समवाय इत्यर्थः, सारः = बलं येषां तैः, विषय-वासनाशून्यचित्तैरित्यर्थः, ऋषिभिः = मुनिभिः, सकरुणम्-करुणया = दयया सहितं यथा स्यात्तथा, (दृष्टः), विष्णुना = भगवता नारायणेन, सस्मितेन = ईषद्धाससहितेन, (दृष्टः), उपशमितवधूसम्भ्रमैः-उपशमितः = उत्सारितः, दूरीकृत इत्यर्थः, वधूनाम्=स्वपत्नीनां, संभ्रमः=संवेगः यैस्तैः, सगर्वैः=साहङ्कारैः,

और भी—

मय दानव द्वारा विनिर्मित नगरों के दहनकाल में, देवी (पार्वती) द्वारा प्रेमपूर्वक देखे गये, दानव-स्त्रियों द्वारा "यह क्या ?" इस प्रकार (कहकर) भय से तथा घबराहट से (देखे गये), शान्त अन्तःकरणरूपी बल वाले मुनियों द्वारा करुणापूर्वक (देखे गये), भगवान् विष्णु द्वारा मुस्कुराहट के साथ (देखे गये) तथा देवताओं द्वारा हर्षपूर्वक देखे गये भगवान् शङ्कर आप सबों की रक्षा करें ॥ ३ ॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः— अलमतिप्रसङ्गेन ।

दैत्यवीरैः=दनुजशूरैः, अस्त्रम्=आयुधम्, आकृष्य=प्रगृह्य (दृष्टः), देवताभिः= देवैः, दनुजशत्रुभिरिति भावः, सानन्दम् = सहर्षं यथा तथा (दृष्टः), धूर्जटिः= भगवान् शङ्करः, युष्मान् = भवतः, सभास्थजनानित्यर्थः, पातु = रक्षतु ॥ ३ ॥

टिप्पणी —दृष्ट इति । मयपुरदहने—मयेन निर्मितानि पुराणि = मय-पुराणि—शाकपार्थिवादित्वात् "निर्मितानि" का लोप हो गया है । तेषां दहनम् तस्मिन् (ष० त०) । सप्रेम—प्रेम्णा सहितम्, "तेन सहेति तुल्ययोगे" इस सूत्र से तुल्ययोग बहुव्रीहिसमास हुआ है तथा "वोपसर्जनस्य" सूत्र से सह के स्थान में वैकल्पिक "स" आदेश हुआ है । "सप्रेमदृष्टः" से ध्वनित होता है कि त्रिपुर नामक असुर की नगरी को जब भगवान् शङ्कर ने जला डाला तो अपने प्रियतम की शक्ति को प्रत्यक्ष देखकर पार्वती के हृदय का पतिविषयक प्रेम-भाव अत्यधिक पुष्ट हो उठा । असुरीभिः—असुरस्य स्त्री असुरी, "पुंयोगादाख्यायाम्" से ङीष्, ताभिः = असुरीभिः । शान्तान्तस्तत्त्वसारैः—शान्तं च तत् अन्तस्तत्त्वम्, तदेव सारो येषां तैः । धूर्जटिः = "धूर्जटिर्नीललोहितः हरः स्मरहरः" इत्यमरः । प्रस्तुत पद भी द्वादशपदा नान्दी ही है । इसमें महाभारत युद्ध की ओर सङ्केत किया गया है । द्रौपदी का अपने पतियों के प्रति प्रेम, दुर्योधन की स्त्रियों का भय तथा व्याकुलता, व्यासादि ऋषियों की करुणा, घटोत्कचादि की अभिमानिता, तथा पाण्डव-सहित कृष्ण भगवान् का हर्ष ध्वनित होता है । धूर्जटि विषयक रति में श्रृङ्गार, भयानक, शान्त तथा वीर रसों के अङ्ग होने के कारण यहाँ रसवत् अलङ्कार है । "सानन्दम्" में हर्षरूपी भाव का अङ्ग होने के कारण प्रेयोऽलङ्कार भी है । छन्द स्रग्धरा है— म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ ३ ॥

नान्द्यन्ते = नाटकमङ्गलाचरणाऽवसाने सति ।

सूत्रधारः = प्रधाननटः, अतिप्रसङ्गेन = अतिविस्तारेण ।

(नान्दी पाठ के पश्चात्)

सूत्रधार—बस, अधिक करने से (क्या प्रयोजन) ।

श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः ।
तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे ॥ ४ ॥

अन्वयः—यः, श्रवणाञ्जलिपुटपेयम्, भारताख्यम्, अमृतम्, विरचितवान्, तम्, अरागम्, अकृष्णम्, कृष्णद्वैपायनम्, अहम्, वन्दे ॥ ४ ॥

व्याख्या—श्रवणेति । यः = व्यासः, महाभारतप्रणेतेत्यर्थः, श्रवणाञ्जलिपुटपेयम् = कर्णकरसम्पुटाऽऽस्वादनीयम्, भारताख्यम् = महाभारतनामकम्, अमृतम् = पीयूषम्, अमृतसदृशमित्यर्थः, विरचितवान् = प्रणीतवान्, तम् = पूर्वोक्तम्, व्यासमिति भावः, अरागम् = रागरहितम्, अकृष्णम् = अतमसम्, कृष्णद्वैपायनम् = व्यासम्, अहम् = सूत्रधारः वन्दे=प्रणमामि ॥ ४ ॥

टिप्पणी—सूत्रधार इति । सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः । सूत्र उपपदपूर्वक णिजन्त 'धृञ्' धातु से "कर्मण्यण्" इस सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है (उपपद-समास) । नाट्योपकरणों को सूत्र कहा जाता है और उन्हें जो धारण करता है अर्थात् जो उनका सञ्चालन करता है उसे सूत्रधार कहते हैं—

"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥" सा० द० ।

"सूत्रधारः पठेन्नान्दीम्" के अनुसार यहाँ का सूत्रधार वस्तुतः स्थापक है जो सूत्रधार के समान ही होता है—

"नान्दीं प्रयुज्य निष्क्रामेत् सूत्रधारः सहानुगः ।
स्थापकः प्रविशेत्पश्चात्सूत्रधारगुणाकृतिः ॥"

श्रवणेति—श्रवणाञ्जलिपुटपेयम्—श्रवणमेव अञ्जलिपुटम् (क० धा०) तेन पेयम् (तृ० त०) । "अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे" इत्यमरः । भारताख्यम्—भारतम् इति आख्या यस्य, तत् (बहु०) । अरागम्= न विद्यते रागो यस्य तम् (नञ् बहु०) । यहाँ पर "अरागम्" से रजोगुण का तथा "अकृष्णम्" से तमोगुण का अप्राधान्य लक्षित होता है । इन दोनों विशेषणों से व्यास में

जिन्होंने कर्णरूपी अञ्जलिपुट द्वारा पीने योग्य महाभारत नामक अमृत का निर्माण किया है मैं उन रागरहित, तथा निष्कलङ्क कृष्णद्वैपायन (भगवान् व्यास) को प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥

(समन्तादवलोक्य) तत्रभवतः परिषदग्रेसरान्विज्ञाप्य नः किंचिदस्ति ।
कुसुमाञ्जलिरपर इव प्रकीर्यते काव्यबन्ध एषोऽत्र ।
मधुलिह इव मधुबिन्दून्विरलानपि भजत गुणलेशान् ।। ५ ।।

सत्त्वगुण का प्राधान्य सूचित किया गया है । कृष्णद्वैपायनम्—द्वीपमयनं यस्य सः द्वीपायनः (बहु०) द्वीपायन एव द्वैपायनः, कृष्णश्चासौ द्वैपायनः तम् (क० धा०) । यहाँ पर श्रवण में अञ्जलिपुटत्व का आरोप महाभारत में अमृतत्त्व के आरोप का निमित्त होने से परम्परितरूपक अलङ्कार है । छन्द आर्या है जिसका लक्षण है—

"यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीयेचतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।" ।। ४ ।।

समन्तात् = परितः, चतुर्दिक्षित्यर्थः । तत्रभवतः = माननीयान्, परिषदग्रेसरान्-परिषदः = सभायाः, अग्रेसरान् = पुरःसरान्, सभ्यश्रेष्ठानित्यर्थः, नः = अस्माकम्, विज्ञाप्यम् = सूचनीयम् ।

अन्वयः—एषः, काव्यबन्धः, अपरः, कुसुमाञ्जलिः, इव, अत्र, प्रकीर्यते, मधुलिहः, मधुबिन्दून्, इव, विरलान्, अपि, गुणलेशान्, भजत ।। ५ ।।

व्याख्या—कुसुमाञ्जलिरिति । एषः = अयम्, प्रस्तुत इति यावत्, काव्यबन्धः = कविविरचितबन्धः, वेणीसंहारनामकं नाटकमित्यर्थः, अपरः = द्वितीयः, कुसुमाञ्जलिः = पुष्पाञ्जलिः, इव = यथा, अत्र = अस्यां सभायाम्, युष्माकं सभ्यानामग्रे इति भावः, प्रकीर्यते = विस्तार्यते, प्रयुज्यत इति भावः, मधुलिहः = भ्रमराः, मधुबिन्दून् = मधुपृषतान्, इव = यथा, विरलान् = अल्पान्, अपि, गुणलेशान् = गुणलवान्, काव्यचारुत्वबिन्दूनिति भावः, भजत = सेवध्वम्; गृह्णीतेत्यर्थः ।। ५ ।।

(चारों ओर देखकर) आप माननीय सभा-मुख्यों से हमें कुछ निवेदन करना है—

यह काव्य-रचना दूसरी पुष्पाञ्जलि के समान यहाँ बिखेरी जा रही है। इसके लेशमात्र गुणों का, जो मधु-बिन्दु के समान हैं, आप भ्रमर की भाँति सेवन करें ।। ५ ।।

यदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारनामकनाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम् । तदत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उदात्तवस्तुकथागौरवाद्वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानमभ्यर्थये ।

टिप्पणी—परिषदग्रेसरान्—अग्रेसरतीति अग्रेसरः, परिषदः अग्रेसरः तान् (ष० त०) विज्ञाप्यम्—वि+ज्ञा+णिच्+यत् । "अर्तिह्रीब्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ" से पुक् का आगम हुआ है । कुसुमाञ्जलिरिति । काव्यबन्धः—बध्यते इति बन्धः, काव्यमेव बन्धः (क० धा०) । मधुलिहः—मधु लिहन्तीति मधुलिहः मधु+लिह+क्विप्+जस् । मधुबिन्दून्—"पृषन्ति बिन्दुपृषतः" इत्यमरः । विरलान्—"विरलेऽल्पे कृशे" इति हैमः । प्रस्तुत पद्य में कवि ने अपने काव्यकौशल का शिष्टाचारयुक्त संकेत दिया है । इसमें उत्प्रेक्षा तथा पूर्णोपमा की संसृष्टि है । आर्या छन्द है ॥ ५ ॥

यदिदमिति । इदम् = अग्रे अभिनेयम्, मृगराजलक्ष्मणः—मृगाणां राजा मृगराजः = सिंहः, तस्य लक्ष्म = चिह्नम् यस्य तस्य, वीररसाश्रयिकाव्यप्रणयनात् कविसिंहपदवीविभूषितस्येति भावः, कवेः = नाटकप्रणेतुः, कृतिम् = रचनाम्, प्रयोक्तुम् = प्रस्तोतुम्, उद्यताः = तत्पराः । तत् = तस्माद्धेतोः, अत्र=सभायाम्, रङ्गशालायामित्यर्थः, कविपरिश्रमानुरोधात् = कविकृतप्रयत्नसमादरभावात्, वा = अथवा, उदात्तवस्तुकथागौरवात् = प्रशस्ताख्यानकथनसमादरहेतोः, वा= अथवा, नवनाटकदर्शनकुतूहलात्=नूतननाटकावलोकनोत्कण्ठायाः हेतोः, भवद्भिः= सभास्थितैः, अवधानम् = चित्तेऽचञ्चलत्वम्, एकचित्ततामिति यावत्, दीयमानम्= विधीयमानम्, अभ्यर्थये = प्रार्थये । अभिनयप्रदर्शनकाले सभायां शान्तिं दर्शकानां च सावधानताञ्च कामये इति भावः ।

टिप्पणी—यदिदमिति । मृगाणां राजा मृगराजः, "राजाहःसखिभ्यष्टच्"

तो हम लोग कविसिंह पदवी से विभूषित भट्टनारायण द्वारा विरचित इस वेणीसंहार नामक नाटक को अभिनीत करने के लिए तत्पर हैं । आप लोगों से प्रार्थना है कि कवि के परिश्रम को ध्यान में रखने के कारण श्रेष्ठ आख्यान की महत्ता के कारण या नवीन नाटक देखने की उत्कण्ठा के कारण आप लोग शान्तचित्त हो जायें ।

(नेपथ्ये)

भाव, त्वर्यताम् , त्वर्यताम् । एते खल्वार्यविदुराज्ञया पुरुषाः सकलमेव शैलूषजनं व्याहरन्ति—'प्रवर्त्यन्तामपरिहीयमानमातोद्यविन्यासादिका विधयः । प्रवेशकालः किल तत्रभगवतः पाराशर्यनारदतुम्बरुजामदग्न्य-प्रभृतिभिर्मुनिवृन्दारकैरनुगम्यमानस्य भरतकुलहितकाम्यया स्वयं प्रति-पन्नदौत्यस्य देवकीसूनोश्चक्रपाणेर्महाराजदुर्योधनशिविरसन्निवेशं प्रति प्रस्थातुकामस्य' इति ।

से टच् प्रत्यय हुआ है । मृगराजस्य लक्ष्म = लक्षणं यस्य सः, तस्य (बहु०) । वेणीसंहारनामकम्—वेण्याः संहारः (ष० त०) वेणीसंहारो यस्मिन् तद् वेणी-संहारम् (बहु०) वेणीसंहारम् तन्नाम यस्य तद्वेणीसंहारनामकम् । "शेषाद्विभाषा" सूत्र से कप्रत्यय हुआ है । कविपरिश्रमानुरोधात्—कवेः परिश्रमः (ष० त०) तस्य अनुरोधः, तस्मात (ष० त०) । उदात्तवस्तुकथागौरवात्—उदात्तं च यद्वस्तु (क० धा०) तस्य कथा (ष० त०) तस्याः गौरवम्, तस्मात् (ष० त०) । नवनाटकदर्शनकुतूहलात्—नवञ्च तन्नाटकम् (क० धा०) तस्य दर्शनम् (ष० त०) तस्य कुतूहलम्, तस्मात् (ष० त०) । इन तीनों स्थानों में "हेतौ" इस सूत्र से पञ्चमी विभक्ति आई है ।

नेपथ्ये = जवनिकान्तर्भूमौ ।

भाव इति । भाव = मान्य, त्वर्यताम् = शीघ्रता क्रियताम्, एते पुरुषाः = इमे अधिकारिणः, राजपुरुषाः इति यावत्, आर्यविदुराज्ञया = मान्यविदुरादेशेन, सकलम् = सर्वम्, एव, शैलूषजनम् = नटसमूहम्, व्याहरन्ति = कथयन्ति । अपरिहीयमानम् = अविमुच्यमानम्, त्रुटियुक्तं यथा न भवेत्तथेत्याशयः आतोद्य-विन्यासादिकाः = वाद्यवादनारम्भयुक्ताः, विधयः = विधानानि, प्रवर्त्यन्ताम् =

(नेपथ्य में)

महानुभाव ! शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए । ये राजपुरुष मान्य विदुर के आदेश से सभी नटों से कह रहे हैं—"वाद्यविन्यास का विधान विना किसी त्रुटि के प्रारम्भ कर दिया जाय । अब पराशर-पुत्र (व्यास), नारद, तुम्बरु, परशुराम आदि श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा अनुगमन किये जाते हुए, भरतवंश के

सम्पाद्यन्ताम् । भरतकुलहितकाम्यया = युधिष्ठिरादिवंशकल्याणेच्छया, पाराशर्य-नारदतुम्बरुजामदग्न्यप्रभृतिभिः = व्यास-नारद-तुम्बरु-परशुरामादिभिः, मुनि-वृन्दारकैः = ऋषिवर्यैः, अनुगम्यमानस्य = अनुयातस्य, स्वयं प्रतिपन्नदौत्यस्य—स्वयम् = स्वेनैव, प्रतिपन्नम् = अङ्गीकृतम्, दौत्यम् = दूतकर्म येन तस्य, देवकीसूनोः = देवकीपुत्रस्य, महाराजदुर्योधनशिविरसन्निवेशं प्रति = महाराजदुर्योधनस्य यत् शिविरम् = सैन्यावासस्थानम् तस्य, सन्निवेशः = स्थितिः तं प्रति, प्रस्थातु-कामस्य—प्रस्थातुम् = गन्तुम्, कामः = इच्छा यस्य तस्य, चक्रपाणेः = चक्रम् पाणौ = करे यस्य तस्य, सुदर्शनचक्रधारिणः श्रीकृष्णस्येति भावः । प्रवेशकालः = प्रवेशसमयः, किल = निश्चयेन ।

टिप्पणी—नेपथ्ये इति । नेपथ्ये = नी + विच्, नेः नेता तस्य पथ्यम् = हितमिति नेपथ्यम् तस्मिन् । अभिनय की प्रस्तुति में नाटक के नेता (सूत्रधार या अभिनेता) के सहायक होने के कारण विशिष्ट-कक्ष, पर्दा और वेश-भूषा—ये सभी नेपथ्य कहलाते हैं इसलिए कहा गया है—"नेपथ्यं स्याज्जवनिका रंगभूमिः प्रसाधनम्" इत्यमरः ।

भावेति । भाव = "मान्यो भावेति वक्तव्यः" इत्यमरः । अर्थात् मान्य व्यक्तियों के लिए "भाव" का प्रयोग किया जाता है । आर्यविदुराज्ञया = आर्य शब्द का अत्रि-स्मृति के अनुसार निम्न लक्षण है—

"कर्त्तव्यमाचरन्काममकर्त्तव्यमनाचरन् ।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वै आर्य इति स्मृतः ॥"

अर्थात् जो कर्त्तव्य करता है अकर्त्तव्य को नहीं करता तथा प्रकृत (प्रस्तुत) आचार में रहता है उसे आर्य कहते हैं । "महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः" इत्यमरः । आर्यश्चासौ विदुरः (क० धा०) तस्य आज्ञा, तया (ष० त०) । अपरिहीयमानम् = परिहीयते इति परिहीयमानम्—परि + ओहाक् त्यागे + शानच् + मुक्, न परिहीयमानम्, अपरिहीयमानम् । आतोद्यविन्यासादिकाः—

कल्याण की इच्छा से स्वयं दूत-कर्म स्वीकार करनेवाले, महाराज दुर्योधन के शिविर की ओर प्रस्थान करने वाले, हाथ में चक्र धारण करनेवाले देवकी-पुत्र (श्रीकृष्ण) के प्रवेश का समय हो चुका है ।

सूत्रधारः—(आकर्ण्य सानन्दम्) अहो नु खलु भोः, भगवता सकलजगत्प्रभवस्थितिनिरोधप्रभविष्णुना विष्णुनाद्यानुगृहीतमिदं भरतकुलं सकलं राजचक्रमनयोः कुरुपाण्डवराजपुत्रयोराहवकल्पान्तानलप्रशमहेतुना स्वयं सन्धिकारिणा कंसारिणा दूतेन । तत्किमिति पारपार्श्विक, नारम्भयसि कुशीलवैः सह संगीतमेलकम् ।

वाद्य चार प्रकार के होते हैं—तत, आनद्ध, सुषिर और घन । सितार, सारंगी, वेला, इसराज आदि तार वाले वाद्य यन्त्र तत हैं । मृदङ्ग, ढोल, पखावज आदि पीटकर बजाये जाने वाले आनद्ध हैं । शहनाई, बाँसुरी आदि फूँक कर बजाये जानेवाले सुषिर तथा कांसे के ताल–जैसे घण्टा, झांझ, मञ्जीरा आदि घन कहलाते हैं । ये चारों प्रकार के बाजे आतोद्य या वादित्र कहलाते हैं—चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम् ।" इत्यमरः । आतोद्यस्य विन्यासः (ष० त०), सः आदौ येषां ते (बहु०) । यह "विधयः" का विशेषण है । देवकीसूनोः—देवक्याः सूनुः, तस्य (ष० त०) । "आत्मजस्तनयः सूनु"रित्यमरः । प्रस्थातुकामस्य = प्रस्थातुं कामो यस्य सः, तस्य (बहु०) । "तुं काममनसोरपि" से मकार का लोप हो गया है । चक्रपाणेः—चक्रं पाणौ यस्य सः, तस्य (बहु०) यहाँ पर "प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ" से सप्तम्यन्त पाणि शब्द का पर प्रयोग हुआ है ।

सूत्रधार इति । अहो नु खलु भोः = आश्चर्यद्योतकोऽयमव्ययपदसमूहः । भगवता = ईश्वरेण, सकलजगत्प्रभवस्थितिनिरोधप्रभविष्णुना—सकलम् = सम्पूर्णम्; यत् जगत् = संसारः तस्य, प्रभवः = सृष्टिः, स्थितिः = पालनम्, निरोधश्च = संहारश्च तेषु, प्रभविष्णुः = समर्थः, तेन, विष्णुना = भगवता नारायणेन, अनयोः =

सूत्रधार—(सुनकर हर्षपूर्वक) अहा ! सम्पूर्ण संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करने में समर्थ भगवान् नारायण ने आज इस भरत-कुल तथा सम्पूर्ण राज-समूह को अनुगृहीत किया है; क्योंकि कौरव एवं पाण्डव राजकुमारों की युद्धरूपी प्रलयाग्नि को बुझाने में निमित्त बने हुए कंस-शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दूत बनकर सन्धि कराने का प्रयास कर रहे हैं । अच्छा तो पारिपार्श्विक ! नटों के साथ संगीत क्यों नहीं प्रारम्भ करते ?

पारिपार्श्विकः–भवतु । आरम्भयामि । कतमं समयमाश्रित्य गीयताम् ।

सूत्रधारः—नन्वमुमेव तावच्चन्द्रातपनक्षत्रग्रहक्रौञ्चहंससप्तच्छदकुमुद-कोकनदकाशकुसुमपरागधवलितदिङ्मण्डलं स्वादुजलजलाशयं शरत्-समयमाश्रित्य प्रवर्त्यतां संगीतकम् । तथा ह्यस्यां शरदि,

एतयोः, कुरुपाण्डवराजपुत्रयोः=कौरवपाण्डवराजकुमारयोः, आहवकल्पान्तानल-प्रशमहेतुना—आहवः = सङ्ग्रामः एव, कल्पान्तानलः=प्रलयवह्निः तस्य, प्रशमः= शान्तिः तस्य, हेतुना = कारणेन, सन्धिकारिणा–सन्धिम् = सन्धानम्, सम्मेलनं वा करोतीति तेन, पारस्परिक शत्रुभावमपसार्य मैत्रीं स्थापयितुं प्रवृत्तेनेति भावः । कंसारिणा = कंसस्य अरिः = शत्रुः तेन, अद्य=इदानीम्, भरतकुलम्=भरतवंशः, अनुगृहीतम् = सनाथीकृतम्, च = तथा, सकलम् = समग्रम्, राजचक्रम् = नृप-समूहः । कुशीलवैः = गायनकलानिपुणैः, सह = सार्द्धम् ।

टिप्पणी—राजचक्रम्—चक्र शब्द यहाँ समूह अर्थ में प्रयुक्त हुआ है— "चक्रः कोके पुमान् क्लीवं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः" इति मेदिनी । व्रज का अर्थ समुदाय होता है । पारिपार्श्विक—पारिपार्श्विक उस नट को कहते हैं जो सूत्रधार के पास रहकर उसकी सहायता करता है—

"सूत्रधारस्य पार्श्वे यः प्रकरोत्यमुना सह ।
काव्यार्थसूचनालापं स भवेत्पारिपार्श्विकः ॥" नाट्यशास्त्र ।

सूत्रधार इति । ननु = अनुज्ञासूचकमिदम्; चन्द्रातपनक्षत्रेत्यादिः–चन्द्रस्य= इन्द्रोः, आतपेन = प्रकाशेन, नक्षत्रग्रहैः=अश्विनीसूर्यादिभिः, क्रौञ्चहंसैः, सप्तच्छद-कुमुद–कोकनदकाशकुसुमानाम्=सप्तपर्ण–कैरव–कमल–काशपुष्पाणाम्, परागैश्च= रजोभिश्च, धवलितम् = श्वेतीकृतम्, दिशानाम् = आशानाम्, मण्डलम् = चक्रम्

पारिपार्श्विक–अच्छा, आरम्भ करता हूँ। किस ऋतु के आधार पर गाऊँ ?

सूत्रधार—इसी शरद् ऋतु का आश्रय लेकर सङ्गीत प्रारम्भ किया जाय जिसमें चन्द्रमा के प्रकाश तथा (सूर्य, अश्विनी आदि) नक्षत्रों एवं ग्रहों से, क्रौञ्च एवं हंस पक्षियों से, छितवन, कुमुद, कमल तथा काश के फूलों के पराग से दिशायें श्वेत कर दी गई हैं तथा जिसमें नदी-तडागादि जलाशयों का जल मीठा कर दिया गया है । क्योंकि इस शरद-ऋतु में—

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः ।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ॥ ६ ॥

यस्मिन् तम्, स्वादुजलजलाशयम्—स्वादु = मधुरम्, जलम् = वारि येषां ते तथा भूताः, जलाशयाः = तडागाः, सरोवराः वा यस्मिन् तम्, शरत्समयम्= शरत्कालम्, आश्रित्य = आधारीकृत्य, सङ्गीतम् = गानवाद्यनृत्यादिकम्, प्रवर्त्यताम् = विधीयताम्, प्रारभ्यतामित्यर्थः । शरदि = शरत्काले ।

टिप्पणी—ननु–प्रश्न, अनुनय, अनुज्ञा एवं अवधारण के लिए 'ननु' का प्रयोग किया जाता है । प्रस्तुत सन्दर्भ में अनुज्ञा अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है क्योंकि पारिपार्श्विक द्वारा यह पूछे जाने पर कि किस ऋतु का आश्रय लेकर गाया जाय; उसे शरद् ऋतु का आश्रय लेकर सङ्गीत प्रारम्भ करने की अनुज्ञा दी गई है—"ननु प्रश्नेऽप्यनुनयेऽनुज्ञानेऽवधारणे" इति विश्वः । चन्द्रातप-ग्रहनक्षत्रेत्यादिः—आतपः—आतपशब्द यहाँ पर धूप के लिए नहीं, अपितु प्रकाश के लिए प्रयुक्त हुआ है—"प्रकाशो द्योत आतपः" इत्यमरः । क्रौञ्चः—"कुङ्क्रौञ्चः" इत्यमरः । कुमुद—"सिते कुमुदकैरवे" इत्यमरः । परागः—"परागः सुमनोरजः" इत्यमरः । दिशामण्डलम् = दिक्प्रदेशम्, "दिशस्तु ककुभः काष्ठाः आशाश्च हरितश्च ताः" इत्यमरः । प्रवर्त्यताम्—प्र + वृत् + णिच् + लोट् (कर्म में) ।

अन्वयः—सत्पक्षाः, मधुरगिरः प्रसाधिताशाः, मदोद्धतारम्भाः; धार्तराष्ट्राः, कालवशात्, मेदिनीपृष्ठे, निपतन्ति ॥ ६ ॥

व्याख्या—सत्पक्षा इति । श्लेषेण पक्षद्वयात्मकोऽर्थोऽस्य पद्यस्य वर्तते तद्यथा—हंसपक्षे—सत्पक्षाः = रुचिरच्छदाः, मधुरगिरः = मधुरवाचः, मधुरभाषिण इत्यर्थः, प्रसाधिताशाः=सज्जीकृतदिक्प्रदेशाः, मदोद्धतारम्भाः—मदेन = हर्षेण, उद्धताः = उत्कटाः, आरम्भाः=व्यापाराः येषां ते, धार्तराष्ट्राः=हंसाः;

हंस पक्ष में—शोभायमान पक्षों (पंखों) से युक्त, मधुर शब्द करनेवाले, दिशाओं को सुशोभित करनेवाले तथा आनन्द के कारण उत्कट व्यापार करनेवाले हंस समय पाकर (अर्थात् शरद ऋतु के आने से) पृथ्वीतल पर उतर रहे हैं ।

कालवशात् = शरत्कालप्रभावात्, मेदिनीपृष्ठे=भूतले, निपतन्ति=अवतरन्ति ॥

दुर्योधनादिपक्षे—सत्पक्षाः=श्रेष्ठसैन्ययुक्ताः, मधुरगिरः=उत्तमवाचः, प्रसाधिताशाः=स्वाधीनीकृतदिङ्मण्डलाः, मदोद्धतारम्भाः—मदेन=गर्वेण, उद्धताः=उद्दण्डाः, आरम्भाः=व्यापाराः येषां ते, धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्रसुताः, कालवशात्=मृत्युवशात्, मेदिनीपृष्ठे=भूतले, निपतन्ति=विनिपातं=विनाशं प्राप्नुवन्ति ॥ ६ ॥

टिप्पणी—सत्पक्षा इति। प्रस्तुत पद्य में श्लेषाऽलङ्कार का प्रयोग किया गया है। मम्मट के अनुसार श्लेष का लक्षण है—

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद् भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा ॥" (का० प्र० ९।८४)

अर्थात् जहाँ परस्पर भिन्न शब्द भी अर्थ-भेद के कारण तथा उच्चारण-सारूप्य के कारण एकरूप ही प्रतीत होते हैं वहाँ श्लेष होता है। प्रस्तुत पद्य में प्रयुक्त शब्दावली हंसपक्ष एवं दुर्योधन पक्ष—दोनों ही पक्षों में अर्थ की अभिव्यक्ति करती है। सत्पक्षाः—सन्तः पक्षाः येषां ते (बहु०)। मधुरगिरः—मधुरा गीः=वाणीः येषां, ते (बहु०)। प्रसाधिताशाः—प्रसाधिताः आशाः यैस्ते (बहु०)। मदोद्धतारम्भीः—यहाँ पर मद शब्द हंस पक्षमें "हर्ष" के अर्थ में तथा दुर्योधनादि के पक्ष में गर्व के अर्थ में प्रयुक्त है—"मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षे मदानयोः" इति विश्वः। मेदिनीपृष्ठे—मेदिन्याः पृष्ठम् तस्मिन् (ष० त०)। धार्तराष्ट्राः—धृतं राष्ट्रं येन स धृतराष्ट्रः, धृतराष्ट्रस्यापत्यं पुमान् ते धार्तराष्ट्राः, धृतराष्ट्र+अण्+जस्। कालवशात्—कालशब्द समय एवं मृत्यु—दोनों को ही सूचित करता है। यह प्रसिद्ध है कि वर्षाऋतु में जल के गन्दा हो जाने से सभी हंस मानसरोवर को चले जाते हैं और शरद ऋतु के आने पर वे पुनः लौट आते हैं अतः हंसपक्ष में काल शब्द समय-सूचक है किन्तु दुर्योधनादि चूंकि अपने

दुर्योधनादि के पक्ष में—श्रेष्ठ सेनाओं से युक्त अथवा उत्तम राजाओं की सहायता से सम्पन्न, वाणीमात्र से मधुरभाषी, सम्पूर्ण दिशाओं को अपने अधीन करनेवाले तथा अभिमान के कारण उद्दण्डतापूर्ण कार्य करनेवाले धृतराष्ट्र-पुत्र (दुर्योधन आदि) मृत्यु के वशीभूत होकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं अर्थात् विनष्ट हो रहे हैं ॥ ६ ॥

पारिपार्श्विकः—(ससम्भ्रमम् ।) भाव, शान्त पापम् । प्रतिहतममङ्गलम् ।

सूत्रधारः—(सवैलक्ष्यस्मितम्) मारिष, शरत्समयवर्णनाशंसया हंसा धार्तराष्ट्रा इति व्यपदिश्यन्ते ।

पारिपार्श्विकः—न खलु न जाने । किन्त्वमङ्गलाशंसयाऽस्य वा वचनस्य यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् ।

उद्दण्डतापूर्ण कार्य—कलाप में निरत हैं अतः उनके लिए काल शब्द मृत्यु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—"कालो मृत्यौ महाकाल" इति मेदिनी । इस पद्य के द्वारा महाभारतसंग्राम में दुर्योधनादिके विनाश की ओर सङ्केत किया गया है ॥ ६ ॥

पारिपार्श्विक इति । ससम्भ्रमम् = सोद्वेगम् । भाव = मान्य, शान्तं पापम्= नैवं वाच्यमित्यभिप्रायः । अमङ्गलम् = अकल्याणम्, प्रतिहतम्, अकल्याणं विनश्यतु इति भावः ।

सूत्रधार इति । मारिष = आर्य ! शरत्समयवर्णनाशंसया = शरत्काल-वर्णनाभिप्रायेण, हंसा धार्तराष्ट्राव्यपदिश्यन्ते = धार्तराष्ट्रशब्देन हंसाः अभिप्रेताः भवन्तीत्यर्थः । तर्हि शान्तं पापं कथमुच्यते इति विवेकः ।

पारिपार्श्विक इति । न खलु न जाने = जानाम्येवेति तात्पर्यम् । नञ्-द्वयप्रयोगे न ज्ञानं सूच्यते । वः = युष्माकम्, अस्य वचनस्य = एतत्कथनस्य, अमङ्गलाशंसया = अकल्याणभाषणेन, अकल्याणार्थसूचकेनेत्यर्थः, कम्पितमिव = कम्पायमानमिव ।

पारिपार्श्विक—(घबराहट के साथ) आर्य । पाप शान्त हो, अमङ्गल का नाश हो ।

सूत्रधार—(लज्जा एवं मुस्कुराहट के साथ) आर्य ! शरद् ऋतु के वर्णन-प्रसङ्ग में मैंने धार्तराष्ट्र (शब्द) का प्रयोग हंसों के लिए किया है तो फिर आप यह क्यों कह रहे हैं—"पाप शान्त हो, अमङ्गल का नाश हो ?"

पारिपार्श्विक—ऐसा नहीं है कि मैं नहीं जानता हूँ, किन्तु आपकी बातों की अमङ्गल सूचकता के कारण ही मेरा हृदय कम्पित-सा हो गया है ।

सूत्रधारः—मारिष ननु सर्वमेवेदानीं प्रतिहतममङ्गलं स्वयम्प्रतिपन्न-दौत्येन सन्धिकारिणा कंसारिणा। यथा हि—

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः॥ ७॥

सूत्रधार इति। प्रतिपन्नदौत्येन–प्रतिपन्नम्=अङ्गीकृतम् दौत्यम्=दूतकर्म येन तेन।

अन्वयः—अरीणाम्, प्रशमात्, निर्वाणवैरदहनाः, पाण्डुतनयाः, माधवेन, सह, नन्दन्तु, च, रक्तप्रसाधितभुवः, क्षतविग्रहाः, कुरुराजसुताः, सभृत्याः, स्वस्थाः भवन्तु॥ ७॥

व्याख्या—निर्वाणेति। अरीणाम् = शत्रूणाम्, प्रशमात्=उपशमात्; निर्वाणवैरदहनाः = निर्वाणः = उपशमितः वैरदहनः = वैरम् एवदहनः = वह्निः येषां तादृशाः पाण्डुतनयाः = पाण्डुसुताः, युधिष्ठिरादय इति भावः; माधवेन = श्रीकृष्णेन, सह = साकम्, नन्दन्तु = प्रसीदन्तु, आनन्दं प्राप्नुवन्त्वित्यर्थः, च = तथा, रक्तप्रसाधितभुवः=रक्ता=रागयुक्ताकृता, प्रसाधाति= स्वाधीनीकृता च भूः=पृथिवी यैस्ते, क्षतविग्रहाः–क्षताः=विनष्टाः विग्रहाः=कलहाः येषां ते। इतरपक्षे—रक्तप्रसाधितभुवः– रक्तेन = शोणितेन, प्रसाधिता= भूषिता भूः = पृथिवी यैस्ते, क्षतविग्रहाः = क्षताः = छिन्नाः, विग्रहाः = देहाः येषां ते, कुरुराजसुताः = कुरुराजपुत्राः, सभृत्याः = भृत्यैः = दासैः सहिताः; स्वस्थाः = स्वः = स्वर्गे, तिष्ठन्तीति स्वर्गस्थाः = स्वर्गङ्गताः मृताः इति भावः, भवन्तु = सन्तु॥ ७॥

सूत्रधार—आर्य! अब तो सन्धि कराने के लिए स्वयं दूत-कर्म को स्वीकार करनेवाले कंसशत्रु (भगवान् श्रीकृष्ण) के द्वारा सम्पूर्ण अमङ्गल विनष्ट कर दिया गया है। क्योंकि—

शत्रुओं के शान्त हो जाने के कारण शत्रुतारूपी आग को बुझा देने वाले पाण्डव भगवान् श्रीकृष्ण के साथ प्रसन्न रहें तथा अनुरागपूर्वक पृथ्वी को अपने अधीन करने वाले एवं द्वेषविहीन (अथवा–रक्त से पृथ्वी को अलङ्कृत करने वाले तथा क्षत-विक्षत शरीर वाले) कौरव भी अपने सेवकों के साथ स्वस्थ (स्वर्गवासी) हों॥ ७॥

(नेपथ्ये साधिक्षेपम्)

आः दुरात्मन् ! वृथामङ्गलपाठक ! शैलूषापसद !—

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः
प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।
आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान्
स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—निर्वाणेति । प्रस्तुत पद्य में "रक्तप्रसाधितभुवः" "क्षतविग्रहाः" आदि श्लिष्ट पदों द्वारा अर्थ–सूचना दी गई है अतः यहाँ द्वितीय पताकास्थानक है जिसका लक्षण है—

"वचः सातिशयं श्लिष्टं नानाबन्धसमाश्रयम् ।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्त्तितम् ॥"

पद्य में श्लेषालङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है । छन्द का लक्षण है—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ ७ ॥

साधिक्षेपम् = सतिरस्कारम् ।

दुरात्मन् = दुष्ट ! वृथामङ्गलपाठक = व्यर्थमङ्गलवाचक ! शैलूषापसद= शैलूषेषु = नटेषु, अपसदः = अधमः तत्सम्बोधने ।

अन्वयः—लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः, नः, प्राणेषु, च, वित्तनिचयेषु, प्रहृत्य, पाण्डववधूपरिधानकेशान्, आकृष्य, धार्तराष्ट्राः, मयि, जीवति, स्वस्थाः, भवन्ति ? ॥ ८ ॥

व्याख्या—लाक्षागृहेति । लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः—लाक्षया = जतुना निर्मितं गृहम् = सदनम् लाक्षागृहम् तस्मिन् यः अनलः = वह्निः इति लाक्षागृहानलः, विषेण = हालाहलेन सम्पृक्तम् यदन्नमिति विषान्नम्, सभायाम्= सदसि प्रवेश इति सभाप्रवेशः, लाक्षानलश्च विषान्नञ्च सभाप्रवेशश्चेति तैः,

(नेपथ्य मे तिरस्कारपूर्ण स्वर में)

अरे दुष्ट ! व्यर्थ मङ्गल पाठ करने वाले ! नीच नट !

लाक्षागृह (लाह के घर) में आग, विषाक्त अन्न, तथा (द्यूतक्रीडार्थं) सभा में प्रवेश द्वारा हमारे प्राणों तथा धनसंग्रह पर प्रहार करके (एवं) पाण्डवों की स्त्री (द्रौपदी) के वस्त्र तथा केशों को खींचकर धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे जीतेजी क्या स्वस्थ (सकुशल) रह पायेंगे ? ॥ ८ ॥

(सूत्रधारपार्श्विकावाकर्णयतः)

पारिपार्श्विकः—भाव, कुत, एतत् ।

सूत्रधारः–(पृष्ठतो विलोक्य ।) अये, कथमयं वासुदेवगमनात्कुरुसन्धानममृष्यमाणः पृथुललाटतटघटितविकटभ्रूकुटिना दृष्टिपातेनापिबन्निव नः सर्वान्सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेन इत एवाभिवर्तते । तन्न युक्तमस्य पुरतः स्थातुम् । तदित आवामन्यत्र गच्छावः ।

नः = अस्मान्, प्राणेषु = असुषु, च = तथा, वित्तनिचयेषु = धनसंग्रहेषु, प्रहृत्य = प्रहारं विधाय, पाण्डववधूपरिधानकेशान् = पाण्डवानाम् = पाण्डुपुत्राणामस्मदादीनाम् वधूः = पत्नीः तस्याः परिधानानि = वस्त्राणि केशाश्च= कचाश्च तान्, आकृष्य = कृष्ट्वा, धार्तराष्ट्राः = धृतराष्ट्रसुताः, मयि = भीमे, जीवति = प्राणान् धारयति सति, स्वस्थाः = कुशलिनः, भवन्ति=भविष्यन्तीति भावः । मयि जीवति दुर्योधनादीनां कथं कुशलमिति भावः ।। ८ ।।

टिप्पणी—लाक्षागृहेति । "लाक्षागृहम्" में मध्यमपदलोपी समास है । "विषान्न" में भी मध्यमपदलोपी समास है । "प्राणेषु" तथा "वित्तनिचयेषु" में क्रमशः प्राणावच्छेदेन तथा वित्तनिचयावच्छेदेन—इस अर्थों में सप्तमी हुई है । पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ।। ८ ।।

आकर्णयतः = शृणुतः ।

पारिपार्श्विक इति । कुत एतत् = कस्मात्स्थानादध्वनिरयमायातीति भावः ।

सूत्रधार इति । कुरुसन्धानम् = कुरुभिः = कौरवैः दुर्योधनादिभिरिति भावः,

---

(सूत्रधार और पारिपार्श्विक–दोनों सुनते हैं ।)

पारिपार्श्विक—आर्य ! यह (आवाज) कहाँ से (आ रही है) ?

सूत्रधार—(पीछे की ओर देखकर) अरे ! (सन्धि के लिए) भगवान् वासुदेव (श्रीकृष्ण) के चले जाने पर कौरवों के साथ होनेवाली सन्धि को सहन न करते हुए, विशाल ललाट तक भयङ्कर भौहें चढ़ाकर दृष्टिपात से हमलोगों को मानो पी जाते हुए तथा सहदेव द्वारा अनुगमन किये जाते हुए ये क्रुद्ध भीमसेन इधर ही आ रहे हैं । इसलिए इनके सामने खड़ा रहना ठीक नहीं होगा । अतः हम दोनों यहाँ से कहीं और चलें ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

इति प्रस्तावना ।

(ततः प्रविशति सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेनः ।)

भीमसेनः—'आः दुरात्मन् वृथामङ्गलपाठक शैलूषापसद' ('लाक्षागृहानल')—(१।८ इत्यादि पुनः पठति ।)

सहदेवः—(सानुनयम् ।) आर्य ! मर्षय मर्षय ! अनुमतमेव नो भरतपुत्रस्यास्य वचनम् । पश्य । ('निर्वाणवैरदहनाः' (१।७) इति पठित्वाऽन्यथाभिनयति ।)

सन्धिः = सन्धानम्, सम्मेलनमित्यर्थः, तम्, अमृष्यमाणः = असहमानः पृथुललाटतटघटितविकटभृकुटिना— पृथु = विशालम् यत् ललाटतटम् = मस्तकम्, तत्र घटिता = रचिता या विकटा = भयङ्करी भ्रुकुटिः = भ्रूभागो येन तेन, दृष्टिपातेन = दृष्टिनिक्षेपेण, नः = अस्मान्, सर्वान् = अखिलान्, आपिबन्निव = समन्तात् पानं कुर्वन्निव, सहदेवेन = एतन्नामकेन माद्रीसुतेन, अनुगम्यमानः = अनुगतः, क्रुद्धः = कुपितः, भीमसेनः = वृकोदरः, इत-एव = अस्यामेव दिशि, अभिवर्तते = आगच्छति । पुरतः = समक्षः, अन्यत्र = स्थानान्तरम् ।

टिप्पणी—पृथुलसाल-विशाल अर्थ में पृथु शब्द प्रयुक्त है—"पृथु वृहद्विशालंमहदित्यमरः । प्रस्तावनेति । प्रस्तावना का निम्न लक्षण है—

"नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेय नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥" प्रस्तावना समाप्त ।

(दोनों निकल जाते हैं ।)

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

(तत्पश्चात् क्रुद्ध भीमसेन एवं उनके पीछे-पीछे आते हुए सहदेव प्रवेश करते हैं)

भीमसेन—आह दुष्ट ! मिथ्या स्तुति करने वाले ! नटाधम । (लाक्षागृहानल० श्लोक संख्या १।८ को पुनः पढ़ता है ।)

सहदेव—(प्रार्थनापूर्वक) आर्य ! क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए ! नट की

भीमसेनः—(सोपालम्भम्) न खलु न खल्वमङ्गलानि चिन्तयितुमर्हन्ति भवन्तः कौरवाणाम्। सन्धेयास्ते भ्रातरो युष्माकम्॥

सहदेवः—(सरोषम्।) आर्य,

धृतराष्ट्रस्य तनयान्कृतवैरान् पदे पदे।
राजा न चेन्निषेद्धा स्यात्कः क्षमेत तवानुजः॥ ९॥

सहदेव इति। सानुनयम् = सविनयम्। मर्षय = क्षमस्व, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। भरतपुत्रस्य = नटस्य, वचनम् = कथनम्, नः = अस्माकम्, अनुमतम् = अनुकूलम्, एव।

भीमसेन इति। सोपालम्भम् = उपालम्भेन = परिभाषणेन सहितं यथा तथा अमङ्गलानि = अकल्याणानि, सन्धेयाः = संश्लेष्याः, ते भ्रातरः = दुर्योधनादय इति भावः।

अन्वयः—चेत्, राजा, निषेद्धा, न, स्यात् (तदा), पदे पदे, कृतवैरान्, धृतराष्ट्रस्य, तनयान्, कः, तव, अनुजः, क्षमेत ?॥ ९॥

व्याख्या—धृतराष्ट्रस्येति। चेत् = यदि, राजा = युधिष्ठिर इति भावः, निषेद्धा = निवारकः, न = नहि, स्यात्=भवेत् तदेति शेषः, पदे पदे=प्रतिपदम्, प्रतिस्थानमित्यर्थः, कृतवैरान् = कृतम् = विहितम् वैरम् = विरोधः यैस्तान्,

---

बातें हमलोगों के अनुकूल ही हैं। देखिये-(निर्वाणवैरदहनाः श्लो० सं० १।१७ को पढ़कर दूसरे प्रकार से अभिनय करता है अर्थात् कौरवों का विनाश हो—इस भाव का अभिनय करता है।)

भीमसेन—(उलाहना देते हुए) नहीं नहीं, आपलोग कौरवों के अकल्याण की कामना नहीं कर सकते। आपलोगों के वे (दुर्योधनादि) भाई तो सन्धि करने के योग्य हैं।

सहदेव—(क्रोधपूर्वक) आर्य !

यदि महाराज (युधिष्ठिर) निषेध न करें तो आपके छोटे भाइयों में से कौन (वैसा) है जो पग-पग पर शत्रुता करनेवाले धृतराष्ट्र-पुत्रों को सहन कर सके ? (अर्थात् कोई भी सहन नहीं कर सकता है।)॥ ९॥

भीमसेनः—एवमिदम् । अतः एवाहमद्यप्रभृति भिन्नो भवद्भ्यः । पश्य ।

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।
जरासन्धस्योरःस्थलमिव विरूढं पुनरपि
क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत ॥ १० ॥

घृतराष्ट्रस्य = पुरुराजस्य, तनयान् = पुत्रान्, कः = कतमः, तव = भवतः, अनुजः = लघुभ्राता, क्षमेत = सहेत, न कोऽपि क्षमेतेति भावः ॥ ९ ॥

टिप्पणी—भरतपुत्रस्य—नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि हैं । इस शास्त्र के प्रवर्त्तन का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है अतः उनके प्रति आदर-भाव व्यक्त करने के अभिप्राय से ही अभिनेताओं के लिए भरत-पुत्र का प्रयोग प्रसिद्ध है ।

सोपालम्भम्—निन्दापूर्वक उलाहना देने को उपालम्भ या परिभाषण कहते हैं—"यः सनिन्द उपालम्भस्तत्र स्यात्परिभाषणम्" इत्यमरः ।

घृतराष्ट्रस्येति । कृतवैरान्-कृतं वैरं यैस्तान् (बहु०) । "वैरं विरोधो विद्वेषः" इत्यमरः । निषेद्धा—नि + षिध् + तृच् । प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है । छन्द का लक्षण है—"यजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्" ॥ ९ ॥

भीमसेन इति । अद्यप्रभृति = अद्यारभ्य, भवद्भ्यः = युधिष्ठिरादिभ्यः, भिन्नः = पृथक् ।

अन्वयः—मम, शिशोः, एव, कुरुभिः, यत्, वैरम्, प्रवृद्धम्, तत्र, खलु, आर्यः, हेतुः, न, भवति, किरीटी, (न भवति), च, युवाम्, न, (भवतः), जरासन्धस्य, उरःस्थलम्, इव, पुनः, अपि, विरूढम्, सन्धिम्, भीमः, क्रुधा, विघटयति, यूयम्, घटयत ॥ १० ॥

व्याख्या—प्रवृद्धमिति । मम = भीमस्य, शिशोरेव = बालकस्यैव, शैशवावस्थाया एवारभ्येति भावः, कुरुभिः = कौरवैः, सहेति शेषः, यत् = यादृशम्,

प्रवृद्धमिति । जरासन्धस्योरःस्थलमिव—पौराणिक आख्यान के अनुसार मगधराज जरासन्ध का शरीर जन्म के समय दो भागों में विभक्त था । "जरा" नामक एक राक्षसीने उन दोनों भागों को जोड़ दिया इसीसे उसका नाम जरासन्ध पड़ गया । कालान्तर में जरासन्ध के साथ मल्लयुद्ध करते समय

सहदेवः—(सानुनयम् ।) आर्य, एवमतिसम्भृतक्रोधेषु युष्मासु कदाचित्खिद्यते गुरुः ।

भीमसेनः—किं नाम कदाचित्खिद्यते गुरुः ? गुरुः खेदमपि जानाति । पश्य—

वैरम् = विद्वेषः, प्रवृद्धम् = वृद्धिङ्गतम्, तत्र = तस्मिन्, वैरविषये इति भावः, खलु = निश्चयेन, आर्यः = आदरणीयः, युधिष्ठिर इति भावः, हेतुः = कारणम्, निमित्तभूत इत्यर्थः, न = नहि, भवति = जायते, किरीटी = अर्जुनः न भवति हेतुरिति शेषः, च = तथा, युवाम्=नकुलसहदेवाविति भावः, न = नहि, हेतू भवतः इति शेषः, जरासन्धस्य = एतन्नामकस्य मगधनृपतेः, उरःस्थलम् = वक्षःस्थलम्, इव = यथा, पुनः = भूयः, अपि, विरूढम्=सम्पन्नम्, सन्धिम्=संश्लेषम्, भीमः = अहं भीमसेनः, क्रुधा = क्रोधेन, विघटयति = वियोजयति, यूयम्=युधिष्ठिरादयः, घटयत = योजयत । मया भीमसेनेन सन्धिभङ्गो विधास्यत इति भावः ॥ १० ॥

टिप्पणी—प्रस्तुत प्रसङ्ग में भीमसेन के कथन का यही आशय है कि जिस प्रकार जरासन्ध की जुड़ी हुई छाती मेरे द्वारा चीर कर अलग कर दी गई थी उसी प्रकार कौरवों के साथ की गई सन्धि को मैं तोड़ दूँगा; भले ही आप चारो भाई सन्धि करने का प्रयास करें । प्रस्तुत पद्य में उपमालङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है ॥ १० ॥

सहदेव इति । सानुनयम्=सविनयम् । अतिसंभृतक्रोधेषु—अति = अत्यन्तम्, संभृतः = कृतः क्रोधः येन तेषु, गुरुः = श्रेष्ठः, युधिष्ठिर इति भावः, कदाचित्खिद्यते = प्रायेण खिन्नो भवेदित्याशयः ।

श्रीकृष्ण का सकेत पाकर भीमने उसके शरीर को चीर दिया था जिससे उसकी मृत्यु हो गई थी ॥ १० ॥

सहदेव—(विनयपूर्वक) आर्य ! आपके इस प्रकार अत्यधिकक्रोध करने से हो सकता है कि बड़े भैया दुःखी हो जायें ।

भीमसेन—(हँसते हुए) क्या बड़े भैया दुःखी भी होते हैं ? बड़े भैया खेद भी करना जानते हैं ? देखो—

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चलतनयां
वने व्याधैः सार्द्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः ।
विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं
गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ।। ११ ।।

अन्वयः—नृपसदसि, तथाभूताम्, पाञ्चालतनयाम्, वल्कलधरैः (अस्माभिः), व्याधैः, सार्द्धम्, वने, सुचिरम्, उषितम्, विराटस्य, आवासे, अनुचितारम्भनिभृतम्, स्थितम्, दृष्ट्वा, मयि, खिन्ने, (सति), अद्य, अपि, गुरुः, कुरुषु, खेदम्, न, भजति, (अथवा–अद्य, अपि, गुरुः, खिन्ने, मयि, खेदम्, भजति, न, 'तु' कुरुषु) ।। ११ ।।

व्याख्या–तथाभूतामिति । नृपसदसि=राजसभायाम्, तथाभूताम्=तादृशीम्, ऋतुकालेऽपि आकृष्टकेशवसनाञ्चेति भावः, पाञ्चालतनयाम्=पाञ्चालनृपतिसुताम्, द्रौपदीमिति भावः, वल्कलधरैः=तरुत्वग्धरैः, अस्माभिरिति शेषः, व्याधैः=मृगवध्याजीवैः, सार्द्धम्=सह, वने=विपिने, सुचिरम्=बहुकालं यावत्, द्वादशवर्षाणि यावदिति भावः, उषितम्=निवासः कृतः, विराटस्य=एतन्नामकस्य नृपतेः, आवासे=भवने, अनुचितारम्भनिभृतम्–अनुचितैः=अयोग्यैः, द्यूतसाहाय्यपाचनाद्यनुष्ठानैरित्यर्थः; आरम्भैः=व्यापारैः निभृतम्=गुप्तम् यथा तथा, स्थितम्=निवसनम्, दृष्ट्वा=विलोक्य, मयि=भीमे खिन्ने=खेदमापन्ने, सत्यपीति शेषः, अद्य=इदानीम्, अपि, गुरुः=ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिर इति भावः; कुरुषु=कौरवेषु, खेदम्=कोपमिति भावः; न=नहि, भजति=कुरुते अथवा—अद्यापि गुरुः खिन्ने मयि खेदम् भजति न तु कुरुष्विति काकुः । अत्र मयि न योग्यो खेदः कुरुषु तु योग्य इति काक्वा व्यज्यते ।। ११ ।।

टिप्पणी—तथाभूतामिति । तथाभूताम् राजाओं से भरी सभा में जब द्रौपदी के वस्त्र एवं केश दुःशासन द्वारा खींचे जा रहे थे उस समय वह

जब ज्येष्ठ भ्राता राजसभा में द्रौपदी की [केशाकर्षणरूप] दुर्दशा को, वल्कल [भूर्जपत्र] वस्त्र धारण करते हुए वन में कोलभिल्लों के साथ अधिक समय के निवास को, तथा विराट के यहाँ हास्यास्पद कार्य में नियुक्त होकर

तत्सहदेव, निवर्तस्व। एवं चापि चिरप्रवृद्धामर्षोद्दीपितस्य भीमस्य वचनाद्विज्ञापय राजानम्।

सहदेवः—आर्य, किमिति।

रजस्वला थी। "रजस्वला" आदि पदों के अवक्तव्य होने के कारण 'तथाभूताम्' कहकर कवि ने काम चला लिया है। पाञ्चालतनयाम्—पञ्चालानां राजा पाञ्चालः पञ्चाल अण् पाञ्चास्य तनयाम् (ष० त०) उषितम्—वस् धातु से "नपुंसके भावे क्तः" से भाव में क्त प्रत्यय आया है। वने—"अरण्यं विपिनं काननं वनमि"त्यमरः। व्याधैः—"व्याधो मृगवधाजीवोमृगयुर्लुब्धकोऽपि सः" इत्यमरः। अनुचितारम्भ०—अज्ञातवास के क्रम में राजा विराट के यहाँ पाचों पाण्डवों ने द्रौपदी सहित छद्मवेष में वास किया था। युधिष्ठिर ने अपना नाम कङ्क रख लिया था तथा वे जुआ खेलने में राजा के सहायक का काम करते थे। भीम सूद के नाम से रसोइया का काम करते थे। अर्जुन वृहन्नला के नाम से राजा विराट की पुत्री उत्तरा को गीतवाद्यादि की शिक्षा देते थे। नकुल एवं सहदेव क्रमशः ग्रन्थिका तथा अरिष्टनेमि के नामों से क्रमशः सईस और गोरक्षकका काम करते थे। द्रौपद्री का नाम सैरन्ध्री रख दिया गया था और वह राजा विराट की पत्नी सुदेष्णा की सेवा किया करती थी। उत्तम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न इन वीरों के लिए ये कार्य निश्चय ही गर्हित एवं अनुचित थे इसीलिए ऐसा कहा गया है। प्रस्तुत पद्य में समुच्चयालङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है॥ ११॥

तदिति। तत् = तस्मात्कारणात्, निवर्तस्व = निवृत्तो भव। चिरप्रवृद्धामर्षोद्दीपितस्य—चिरात् = सुदीर्घकालात् प्रवृद्धः = वृद्धिङ्गतः यः अमर्षः = कोपः तेन उद्दीपितः = प्रज्वलितः तस्य, राजानम् = महाराजम् युधिष्ठिरमिति भावः, विज्ञापय = निवेदय।

लुक-छिपकर जीवन व्यतीत करने को देखकर मेरे खिन्न होने पर भी कौरवों के विषय में क्षुभित नहीं हुए तो आज मुझसे क्षुमित होंगे॥ ११॥

इसलिए सहदेव, लौट जाओ और चिरकाल से बढ़े हुए क्रोध से उद्दीपित भीम की ओर से राजा (युधिष्ठिर) से (जाकर) निवेदन करो।

सहदेव—आर्य! क्या (निवेदन करूँ)?

भीमसेनः—

युष्मच्छासनलङ्घनांहसि मया मग्नेन नाम स्थितं
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि ।
क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा-
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ॥ १२ ॥

अन्वयः—मया, युष्मच्छासनलंघनांहसि, मग्नेन, स्थितम्, नाम; स्थितिमताम्, अनुजानाम्, अपि, मध्ये, विगर्हणा, प्राप्ता, नाम; क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य, कौरवान्, उच्छिन्दतः, मम, त्वम्, अद्य, एकम्, दिवसम्, गुरुः, न, असि, न, (वा) अहम्, तव, विधेयः, (अस्मि) ॥ १२ ॥

व्याख्या—युष्मदिति । मया=भीमेन, युष्मच्छासनलङ्घनांहसि—युष्माकम्=भवताम् शासनम्=आदेशः तस्य लङ्घनम्=अतिक्रमणम् एव अंहः=पापं तस्मिन्; मग्नेन=निमग्नेन, स्थितम्=अवस्थितम्, नामेति प्रकाशने, इदं प्रकाशयामीत्यर्थः; स्थितिमताम्=मर्यादावताम्, अनुजानाम्=लघुभ्रातृणाम्, अपि=च, मध्ये=अन्तरे, विगर्हणा=निन्दा, प्राप्ता=आसादिता, नाम, निन्दा प्राप्तेति सम्भावयामीत्याशयः, क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य—क्रोधेन=कोपेन उल्लासिता=उत्थापिता, शोणितेन=रुधिरेण अरुणा=रक्ता गदा येन तस्य, कौरवान्=कुरुसुतान् उच्छिन्दतः=निःशेषयतः, मम=भीमस्य, त्वमिति शेषः, अद्य=सम्प्रति, एकं दिवसम्=एकदिनपर्यन्तमिति भावः, गुरुः=शासकः, मान्यो भ्राता वेति भावः, न असि=न भवसि, न=नहि, (वा=अथवा) अहम्=भवदीयादेशातिक्रमणकर्त्ता भीमः, तव=युधिष्ठिरस्य, विधेयः=अनुशासनीयः, अस्मीति शेषः । भवदाज्ञामुल्लङ्घ्य कौरवान् विनाशयिष्यामीति युधिष्ठिरम्प्रति भीमस्य सन्देशोक्तिः ॥ १२ ॥

भीमसेन—आपकी आज्ञा के उल्लङ्घनरूपी पाप में डूबा हुआ मैं मर्यादा का पालन करनेवाले छोटे भाइयों के बीच भले ही निन्दनीय समझा जाऊँ किन्तु क्रोध से उठाई गई तथा शोणित से लाल वर्ण वाली गदा से युक्त तथा कौरवों का संहार करते हुए मेरे, आज एक दिन के लिए न तो आप मेरे बड़े भाई हैं और न मैं (ही) आपका आज्ञाकारी छोटा भाई (हूँ) ॥ १२ ॥

(इत्युद्धतः परिक्रामति ।)

सहदेवः—(तमेवानुगच्छन्नात्मगतम् ।) अये, कथमार्यः पाञ्चाल्याश्चतुःशालकं प्रति प्रस्थितः । भवतु तावदहमत्रैव तिष्ठामि । (इति स्थितः ।)

भीमसेनः—(प्रतिनिवृत्यावलोक्य च ।) सहदेव, गच्छ त्वं गुरुमनुवर्तस्व । अहमप्यायुधागारं प्रविश्यायुधसहायो भवामि ।

सहदेवः—आर्य नेदमायुधागारम्, पाञ्चाल्याश्चतुःशालकमिदम् ।

टिप्पणी—अहसि—अंहस् शब्द पाप का पर्यायवाची—"अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा पापं किल्विष-कल्मषम् । कलुषं वृजिनैनोऽघमंहोदुरितदुष्कृतम्" इत्यमरः । एकं दिवसम्–यहाँ पर "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" से द्वितीया विभक्ति हुई है । पद्य में कौरवविनाशरूप कार्य के लिए गदोल्लासरूपी हेतु का तथा निन्दा प्राप्ति रूप अकार्य के लिए ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा के उल्लङ्घनरूप हेतु का कथन होने से परिकर नामक सन्धि है । परिकरसन्धि का निम्न लक्षण है "कार्याकार्यहेतूनामुक्तिः परिकरो मतः ।' शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १२ ॥

सहदेव इति । पाञ्चाल्याः=द्रौपद्याः, चतुःशालकं प्रति=अन्योऽन्याभिमुखशाला-चतुष्टयगृहं प्रति । प्रस्थितः = प्रस्थानं कृतः ।

भीमसेन इति । गुरुम् = ज्येष्ठभ्रातरम्, युधिष्ठिरमिति भावः, अनुवर्तस्व= अनुसर । आयुधागारम् = शस्त्रगृहम्, आयुधसहायः = गृहीतप्रहरणः ।

(ऐसा कहकर अकड़कर घूमता है ।)

सहदेव—(उसी के पीछे-पीछे जाते हुए मन ही मन) अरे, क्या आर्य द्रौपदी के चौसाल (चार कमरे वाले भीतरी घर) की ओर चल दिये ? अच्छा, तब तक मैं यहीं ठहरता हूँ । (रुक जाता है ।)

भीमसेन—(लौटकर तथा देखकर) सहदेव ! जाओ, तुम बड़े भैया का अनुवर्तन (अनुसरण या आज्ञा-पालन) करो, मैं भी शस्त्रागार में जाकर शस्त्र-ग्रहण करता हूँ ।

सहदेव—आर्य ! यह शस्त्रागार नहीं, यह तो द्रौपदी का चौसाल है ।

भीमसेनः—(सवितर्कम् ।) किं नाम नेदमायुधागारम्, पाञ्चाल्याश्चतुःशालकमिदम् । (विचिन्त्य, सहर्षम् ।) आमन्त्रयितव्यैव मया पाञ्चाली । (सप्रणयं सहदेवं हस्ते गृहीत्वा ।) वत्स आगम्यताम् । यदार्यः कुरुभिः संधानमिच्छन्नस्मान्पीडयति तद्भवानपि पश्यतु ।

(उभौ प्रवेशं नाटयतः । भीमसेनः सक्रोधं भूमावुपविशति ।)

सहदेवः—(ससंभ्रमम् ।) आर्य, इदमासनमास्तीर्णम् । अत्रोपविश्यार्यो मुहूर्त्तं पालयतु कृष्णागमनम् ।

भीमसेन इति । सवितर्कम् = सानुमानम् । आमन्त्रयितव्या = विचारयितव्या, युद्धात् पूर्वं तया सह विचारो विधेय इति भावः । सप्रणयम् = सस्नेहम् । सन्धानम् = सन्धिम्, इच्छन् = कामयमानः पीडयन् = क्लेशयन् ।

उभाविति । नाटयतः = अभिनयतः ।

सहदेव इति । ससंभ्रमम् = सोद्वेगम् । आस्तीर्णम् = विस्तृतम्, मुहूर्त्तम् = किञ्चित्कालं यावत्, प्रतिपालयतु=प्रतीक्षताम्, कृष्णागमनम्=द्रौपद्याः आगमनम्, कृष्णस्य दुर्योधनशिविरान्निवर्त्तनं वेत्यपि ध्वन्यतेऽत्र ।

भीमसेन—(सोच-विचार पूर्वक) क्या यह शस्त्रागार नहीं ? क्या यह द्रौपदी का चौसाल है ? (सोचकर हर्षपूर्वक) मुझे द्रौपदी से भी मन्त्रणा करनी है । (स्नेह पूर्वक सहदेव का हाथ पकड़कर) प्यारे भाई ! आओ । भैया युधिष्ठिर कौरवों के साथ सन्धि की इच्छा रखते हुए हमें जो पीड़ा दे रहे हैं उसे तुम भी देख लो ।

(दोनों प्रवेश करने का अभिनय करते हैं । भीमसेन क्रोध पूर्वक भूमि पर बैठ जाता है ।)

सहदेव—(घबराहट के साथ) आर्य ! यह आसन बिछा हुआ है । यहाँ कुछ देर बैठकर आप द्रौपदी के आने की प्रतीक्षा करें (अथवा दुर्योधन के यहाँ से कृष्ण के लौट कर आने की प्रतीक्षा करें ।

भीमसेनः—(उपविश्य स्मृत्वा ।) वत्स, कृष्णागमनमित्यनेनोपोद्घातेन स्मृतम् अथ भगवान्कृष्णः केन पणेन सन्धिं कर्तुं सुयोधनं प्रति प्रहितः ।

सहदेवः—आर्य, पञ्चभिर्ग्रामैः ।

भीमसेनः—(कर्णौ पिधाय) अहह, देवस्याजातशत्रोरप्ययमीदृस्तेजोऽपकर्ष इति यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् । (परिवृत्य स्थित्वा ।) तद्वत्स, न त्वया कथितं न च मया भीमेन श्रुतम्—

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः ।
दीव्यताऽक्षैस्तदाऽनेन नूनं तदपि हारितम् ॥ १३ ॥

भीमसेन इति । उपोद्घातेन = उदाहारेण, कथनेनेति भावः, स्मृतम् = स्मृतिविषयीकृतम् । भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, कृष्णः = माधवः, केन पणेन = केन मूल्येन, सन्धिम् = संश्लेषम्, कर्त्तुम् = सम्पादयितुम्, सुयोधनं प्रति = दुर्योधनाभिमुखम् प्रहितः = गतः ।

भीमसेन इति । अहह = खेदसूचकोऽयं शब्दः । देवस्य = महाराजस्य युधिष्ठिरस्येति भावः, अजातशत्रोः = अनुत्पन्नारेः, तेजोऽपकर्षः = प्रतापहानिः ।

टिप्पणी—चतुःशालम्—"सञ्जवनं त्विदं चतुःशालम्" इत्यमरः । उपोद्घातेन—"उपोद्घात उदाहारः" इत्यमरः । कृष्णागमनम्—यहाँ दो प्रकार के अर्थ हैं—१–कृष्णायाः = द्रौपद्याः आगमनम् तथा २–कृष्णस्य आगमनम् ।

अजातशत्रोः—न जातः अजातः (नञ०) अजातः शत्रुः यस्य सः तस्य (बहु०) तेजोऽपकर्षः—तेजसः अपकर्षः (ष० त०)

अन्वयः—अस्य, भूपतेः, यत्, तत्, ऊर्जितम्, अत्युग्रम्, क्षात्रम्, तेजः, (आसीत्), तत्, अपि, अक्षैः, दीव्यता, अनेन, नूनम्, तदा, हारितम् ॥१३॥

भीमसेन—(बैठकर एवं स्मरण करके) वत्स ! कृष्णागमन की बात सुनकर मुझे याद आया । भगवान् श्रीकृष्ण किस मूल्य (शर्त्त) पर सन्धि करने के लिए दुर्योधन के पास गये हैं ?

सहदेव—आर्य, पाँच गाँवों (की शर्त) के साथ ।

भीमसेन—(कानों को ढँककर) ओह ! देव अजातशत्रु का भी यह ऐसा तेज का क्षय (हो गया), इससे सचमुच मेरा हृदय काँप-सा रहा है । (घूम-

(नेपथ्ये)

समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी। (समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी।)

सहदेवः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्यात्मगतम्।) अये, कथं याज्ञसेनी मुहुरुपचीयमानबाष्पपटलस्थगितनयना आर्यसमीपमुपसर्पति। तत्कष्टतरमापतितम्।

व्याख्या—यत्तदिति। अस्य = एतस्य, भूपतेः = राज्ञः, युधिष्ठिरस्येति भावः, यत् तत् = यादृशं तत्, प्रख्यातमिति भावः, ऊर्जितम् = शक्तिमत्, अत्युग्रम् = अतिप्रचण्डम्, क्षात्रम् = क्षत्रियसम्बन्धि, क्षत्रियोचितमिति यावत्, तेजः=प्रतापः, आसीदिति शेषः, तदपि=पूर्वोक्तं तेजोऽपि इति भावः, अक्षैः=द्यूतैः, दीव्यता=क्रीडता, अनेन=एतेन, राज्ञा युधिष्ठिरेणेत्यर्थः, नूनम्=निश्चयम्, तदा=तस्मिन् समये, द्यूतक्रीडाकाले इत्यर्थः, हारितम्=विनाशितम्, पराजितं वेत्यर्थः। अन्यथा कथमेवं तेजोविनाशः इत्याशयः॥ १३॥

टिप्पणी—अक्षैः—जुए के खेल में जो पाँसे प्रयुक्त होते हैं उन्हें अक्ष कहा जाता है—"अक्षी ज्ञानात्मशकटव्यवहारेषु पाशके" इत्यमरटीका दीव्यता-दिवु क्रीडायाम् + शतृ + टा। प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है॥ १३॥

नेपथ्य इति। समाश्विसतु = सान्त्वनां प्राप्नोतु, भट्टिनी = देवी।

सहदेव इति। याज्ञसेनी = द्रौपदी, उपचीयमानवाष्पपटलस्थगितनयना—उपचीयमानेन = वर्द्धमानेन वाष्पपटलेन = अश्रुसमूहेन स्थगिते = आच्छादिते

कर खड़े होकर) तो वत्स ! (ऐसा समझ लो कि) न तुमने कहा और न मैंने सुना। इस राजा (युधिष्ठिर) का जो वह (सुविख्यात) शक्तिशाली, अति प्रचण्ड क्षत्रियोचित तेज (था), उसे भी इसने पाशों से खेलते हुए निश्चय ही उसी समय गवाँ दिया॥ १३॥

(नेपथ्य में)

धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें महारानी।

सहदेव—(नेपथ्य की ओर देखकर मन ही मन) अरे ! बार-बार बढ़ते हुए अश्रु-समूह से ढँके नेत्रोंवाली द्रौपदी आर्य (भीमसेन) के पास ही आ रही है ! यह तो महान कष्ट आ पड़ा।

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य संभृतम्।
तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धयिष्यति ॥ १४ ॥

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टा द्रौपदी चेटी च।)

(द्रौपदी सास्रं निःश्वसिति।)

नयने = चक्षुषी यस्याः सा, आर्यसमीपम् = भीमसविधे, उपसर्पति = गच्छति। तत् = तस्मात्कारणात्, कष्टतरम् = महत्कष्टमिति भावः, आपतितम् = उपस्थितं जातमिति भावः।

अन्वयः—अद्य; क्रुद्धे, आर्ये, वैद्युतम्, इव, यत्, ज्योतिः, सम्भृतम्, तत्, प्रावृट्, इव, इयम्, कृष्णा, नूनम्, संवर्धिष्यति ॥ १४ ॥

व्याख्या—यद्वैद्युतमिवेति। अद्य = इदानीम्, क्रुद्धे = कुपिते, आर्ये = माननीये, भीमे इति भावः, वैद्युतम् = तडित्सम्बन्धीति भावः, इव = यथा; यत् = यादृशम्, ज्योतिः = तेजः, सम्भृतम् = सञ्चितम्, तत् = तज्ज्योतिरिति भावः, प्रावृट् = वर्षाकाल, इव = यथा, इयम् = एषा, कृष्णा = द्रौपदी, नूनम् = निश्चयम्, संवर्धिष्यति = वृद्धिं प्रापयिष्यति। यथा वर्षाकालः मेघे सञ्चितं विद्युत्तेजं संवर्धयति तथैव द्रौपदी साश्रुनयना सती पूर्वत एव क्रुद्धस्य भीमस्य क्रोधं संवर्धयिष्यतीति भावः ॥ १४ ॥

टिप्पणी—भट्टिनी—"देवी कृताभिषेकायाम्, इतरासु तु भट्टिनी" इस अमरकोषोक्ति के अनुसार जिसका अभिषेक किया हो वह रानी देवी कहलाती है तथा अन्य रानियों के लिए भट्टिनी का प्रयोग किया जाता है पर यहाँ लक्षणा से देवी के लिए भी भट्टिनी प्रयोग किया गया है। यद्वैद्युतमिति। वैद्युतम् = विद्युतः इदम्, विद्युत् + अण्। प्रस्तुत पद्य में पूर्णोपमा अलङ्कार है ॥ १४ ॥

आज आर्य (भीमसेन) के क्रुद्ध होने पर बिजली का साजो (यह) तेज सञ्चित हो गया है उसे वर्षाकाल के समान यह द्रौपदी निश्चय ही बढ़ा देगी ॥१४॥

(तत्पश्चात् यथावर्णित द्रौपदी और चेटी प्रवेश करती है।)

(द्रौपदी आँसू बहाते हुए गहरी साँस लेती हैं।)

चेटी—समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी। अवणइस्सदि दे मण्णुं णिच्चाणुबद्धकुरुवेरो कुमालो भीमसेणो। (समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी। अपनेष्यति ते मन्युं नित्यानुबद्धकुरुवैरः कुमारो भीमसेनः।)

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमदिए, होदि एदं जइ महाराओ पडिऊलो ण भवे। ता णाहं पेक्खिदुं तुवरदि मे हिअअं। आदेसेहि मे णाहस्स वासभवणं। (हञ्जे बुद्धिमतिके भवत्येतद्यदि महाराजः प्रतिकूलो न भवेत्। तन्नाथं प्रेक्षितं त्वरते मे हृदयम्। तदादेशय मे नाथस्य वासभवनम्)

(इति परिक्रामतः)

चेटी—एदु एदु भट्टिणी एदं वासभवणं। एत्थ पविसदु भट्टिणी। (एत्वेतु भट्टिनी। एतद्वासभवनम्। अत्र प्रविशतु भट्टिनी।)

द्रौपदी—हञ्जे, कहेहि णाहस्स मह आगमणं। (हञ्जे, कथय नाथस्य ममागमनम्)।

चेटीति। अपनेष्यति = दूरीकरिष्यति, ते = तव, मन्युम् = कोपं शोकं वा, नित्यानुबद्धकुरुवैरः—नित्यम् = सततम्, अनुबद्धम् = सम्पादितम्, कुरुभिः = कौरवैः (सह), वैरम् = विद्वेषः येन तादृशः।

द्रौपदीति। हञ्जे = चेटि ! महाराजः = युधिष्ठिर इत्यर्थः, प्रतिकूलः = विपरीतः, शत्रुप्रतिशोधाद्विरत इति भावः। तत् = तस्माद्धेतोः, नाथम् = स्वामिनम्, भीममित्याशयः, प्रेक्षितुम् = द्रष्टुम्, मे = मम, हृदयम् = चित्तम्, त्वरते = शीघ्रतां कुरुते। आदेशय = निर्देशय।

चेटी—धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें महारानी ! कौरवों से हमेशा वैर रखनेवाले कुमार भीमसेन आपके शोक (या क्रोध) को दूर कर देंगे।

द्रौपदी—अरी बुद्धिमतिके ! यदि महाराज प्रतिकूल न होते तो ऐसा होता। इसलिए स्वामी के देखने के लिए मेरा हृदय शीघ्रता कर रहा है। इसलिये मुझे स्वामी के निवासगृह का पता बतलाओ।

(दोनों घूमती हैं।)

चेटी—आइए, आइए महारानी ! यह रहा (उनका) वास-गृह महारानी इसमें प्रवेश करें।

द्रौपदी—अरी ! स्वामी को मेरे आने की बात कहो।

चेटी—जं देवी आणवेदि । (इति परिक्रम्योपसृत्य च) जअदु जअदु कुमालो । (यद्देव्याज्ञापयति । जयतु जयतु कुमारः ।)

(भीमसेनोऽश्रृण्वन् 'यत्तदूर्जितम्' (१।१३) इति पुनः पठति ।)

चेटी—(परिवृत्य ।) भट्टिणि, पिअं दे णिवेदेमि । परिकुविदो विअ-कुमालो लक्खीअदि (भट्टिनि प्रियं ते निवेदयामि । परिकुपित इव कुमारो लक्ष्यते ।)

द्रौपदी—हञ्जे, जइ एवं ता अवहीरणावि एषा म आभासअदि । ता एअन्ते उवविट्ठा भविअ सुणुमो दाव णाहस्स ववसिदं । (हञ्जे, यद्येवं तदवधीरणाप्येषा मामाश्वासयति । तदेकान्त उपविष्टा भूत्वा श्रृणुमस्तावन्नाथस्य व्यवसितम् ।

(उभे तथा कुरुतः)

भीमसेनः—(सहदेवमधिकृत्य) किं नाम पञ्चभिर्ग्रामैः सन्धिः ।

टिप्पणी—हञ्जे—नीच पात्री के लिए "हण्डे", चेटी के लिए "हञ्जे" तथा सखी के लिए "हला" का प्रयोग किया जाता है । "हण्डे हञ्जे हलाह्वानं नीचां चेटीं सखीम्प्रती"त्यमरः । त्वरते–जित्वरा सम्भ्रमे + लट् ।

द्रौपदीति । यद्येवम् = क्रुद्धो भीमसेन इति भावः, अवधीरणा = अनादरः, आश्वासयति = सान्त्वयति, सुखयतीत्यर्थः, एकान्ते = रहसि, व्यवसितम् = व्यवसायम्, सङ्कल्पमित्यर्थः ।

चेटी—महारानी जैसी आज्ञा दें । (घूमकर एवं पास जाकर) जय हो, कुमार की जय हो ।

(भीमसेन न सुनते हुए "यत्तदूर्जितम्०" श्लो० सं० १।१३ को पुनः पढ़ता है ।)

चेटी—(लौटकर) महारानी ! शुभ-समाचार सुनाती हूँ । कुमार (भीमसेन) क्रुद्ध से जान पड़ते हैं ।

द्रौपदी—अरी यदि ऐसा है-तो यह तिरस्कार भी मुझे सान्त्वना ही दे रहा है । तो एकान्त में बैठकर तब तक स्वामी के निश्चय को सुनें ।

(दोनों वैसा ही करती है ।)

भीमसेन—(सहदेव से) क्या पाँच ही ग्रामों से सन्धि ?

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्-
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः ।
सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥ १५ ॥

अन्वयः—(अहम्), समरे, कोपात्, कौरवशतम्, न, मथ्नामि ? दुःशासनस्य, उरस्तः, रुधिरम्, न, पिबामि ? गदया, सुयोधनोरू, न, सञ्चूर्णयामि ? भवताम्, नृपतिः, पणेन, सन्धिम्, करोतु ॥ १५ ॥

व्याख्या—मथ्नामीति । (अहम्=भीमसेनः), समरे=युद्धे, कोपात्=क्रोधात्, कौरवशतम् = कौरवाणाम् = दुर्योधनादीनाम्, शतम् = शतावयवसमुदायम्, न मथ्नामि = न विलोडयामि, मथिष्यामेवेति तात्पर्यम्, दुःशासनस्य = एतन्नामकस्य दुर्योधनानुजस्य, द्रौपदीकेशवस्त्रकर्षणकर्त्तुरित्यर्थः, उरस्तः = वक्षःस्थलात्, रुधिरम् = शोणितम्, न पिबामि = न पास्यामि ? गदया = गदेतिनामकेनायुधविशेषेण, सुयोधनोरू = सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य, उरू = सक्थिनी, न सञ्चूर्णयामि = न त्रोणयिष्यामि ? चोटयिष्याम्येवेति भावः, भवताम्=युष्माकम्, नृपतिः = राजा, युधिष्ठिर इति भावः, पणेन = मूल्येन, ग्रामपञ्चकरूपेणेति भावः, सन्धिम् = सन्धानम्, करोतु = सम्पादयतु ॥ १५ ॥

टिप्पणी—मथ्नामीति । प्रस्तुत पद्य में भीमसेन के क्रोध की अभिव्यञ्जना हुई है । 'मथ्नामि', 'पिबामि'' तथा "सञ्चूर्णयामि'' क्रियापदों का अर्थ वस्तुतः क्रमशः—'मथिष्यामि', 'पास्यामि', तथा 'सञ्चूर्णयिष्यामि' है । निकट भविष्य में ही वह कौरवदल को मथने, दुःशासन की छाती के रक्त को पीने तथा दुर्योधन की जाँघों को तोड़ने की बातें कहता हैं अतः "वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा'' से इन स्थानों में भविष्यदर्थ में लट् लकार का प्रयोग किया गया है । काकु के द्वारा—"न मथ्नामि'' से मथिष्याम्येव, "न पिबामि'' से

(क्या मैं) युद्ध में क्रोध से सौ कौरवों को मथ नहीं डालूँगा ? दुःशासन के वक्षःस्थल से शोणित (निकालकर) न पीजाऊँगा ? दुर्योधन की जङ्घाओं को गदा से तोड़ नहीं डालूँगा ? भले ही आपलोगों के राजा (किसी) मूल्य पर सन्धि करें ॥ १५ ॥

द्रौपदी—(सहर्षम् । जनान्तिकम् ।) णाह, अस्सुदपुव्वं खु दे एदिसं वअणं। ता पुणो पुणो दाव भणाहि। (नाथ, अश्रुतपूर्वं खलु त ईदृशं वचनम् । तत्पुनः पुनस्तावद्भण ।)

(भीमसेनोऽश्रृण्वन्नेव 'मथ्नामि कौरवशतम्' (१।१५) इति पुनः पठति ।)

सहदेवः—आर्य, किं महाराजस्य सन्देशोऽयमार्येणाव्युत्पन्न इव गृहीतः।

भीमसेनः—कः पुनरत्र व्युत्पत्तिः।

सहदेवः—आर्य! एवं गुरुणा सन्दिष्टम्।

भीमसेनः—कस्य।

पास्याम्येव तथा न "सञ्चूर्णयामि" से सञ्चूर्णयिष्याम्येव (अर्थात् मथूँगाही, पीउँगाही तथा तथा तोड़ूँगाही)—ये अर्थ ही व्यक्त होते हैं। उरस्तः—उरस् शब्द से पञ्चम्यर्थ में तसिल् प्रत्यय आया है। प्रस्तुत पद्य में वसन्ततिलका छन्द है। जिसका लक्षण है—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ॥१५॥

द्रौपदीति । सहर्षम् = सानन्दम्, जनान्तिकम् = रङ्गदर्शकसमीपे । अश्रुतपूर्वम् = पूर्वं नैव कदापि श्रुतमिति भावः । भण = कथय ।

सहदेव इति । सन्देशः = वाचिकम्, अव्युत्पन्नः = अविस्पष्ट इत्यर्थः; गृहीतः = अवगत इति भावः ।

भीमसेन इति । अत्र = अस्मिन, युधिष्ठिरवाक्ये इत्यर्थः, का = कीदृशी, व्युत्पत्तिः = गूढाशय इति भावः ।

द्रौपदी—(हर्षपूर्वक एक ओर होकर चुपके से) स्वामी ! आपकी ऐसी बात पहले कभी भी नहीं सुनी गई थीं इसलिए (इसे) बार-बार कहिए ।

(भीमसेन न सुनते हुए हीं 'मथ्नामि कौरवशतम्० श्लो० सं० १।१५ को फिर से पढ़ता है)

सहदेव—आर्य ! महाराज के (सन्धि के लिए भेजे गये) सन्देश को आपने स्पष्टरूप से नहीं समझा है क्या ?

भीमसेन—तो उसमें क्या गूढ रहस्य है ?

सहदेव—आर्य ! बड़े भैया ने ऐसा सन्देश भेजा है।

भीमसेन—किसे ?

सहदेवः—सुयोधनस्य ।
भीमसेनः—किमिति ।
सहदेवः—इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम् ।
प्रयच्छ चतुरो ग्रामान्कञ्चिदेकं च पञ्चमम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—इन्द्रप्रस्थम्, वृकप्रस्थम्, जयन्तम्, वारणावतम्, (इति) चतुरः, ग्रामान्, च, पञ्चमम्, कञ्चित्, एकम्, (ग्रामम्), प्रयच्छ ॥ १६ ॥

व्याख्या—इन्द्रप्रस्थमिति । इन्द्रप्रस्थम् = इन्द्रप्रस्थनामकम्, वृकप्रस्थम् = एतन्नामकम्, जयन्तम् = एतदाख्याम्, वारणावतम् = वारणावतनामक (इति) चतुरः = चतुःसङ्ख्याकान्, ग्रामान्=संवसथान्, च = तथा, पञ्चमं कञ्चित् = नाम्नाऽनिर्दिष्टम्, एकम् = अपरम् ग्राममिति शेषः, प्रयच्छ = देहि ॥ १६ ॥

टिप्पणी—जनान्तिकम्-हाथ की ओर करके दो पात्रों द्वारा जो वार्त्तालाप किया जाता है उसे 'जनान्तिक' कहते हैं । साहित्यदर्पण के अनुसार इसका लक्षण है—

'त्रिपातककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्' ।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम् ॥" ६।१३९ ।

अश्रुतपूर्वम्—पूर्वं श्रुतम् इति श्रुतपूर्वम्, 'सुप्सुपा' से अव्ययीभाव समास, न श्रुतपूर्वम् अश्रुतपूर्वम् (नञ्०) ।

इन्द्रप्रस्थमिति । प्रस्तुत पद्य में उल्लिखित इन्द्रप्रस्थादि गाँवो के नाम साभिप्राय हैं । इनसे कौरवों द्वारा पाण्डवों के प्रति किये गये षड्यन्त्रों की ओर सङ्केत किया गया है । पाण्डव जब हस्तिनापुर से निर्वासित कर दिये गये तो उन्होंने इन्द्रप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाई थी इसलिए पद्य में प्रयुक्त 'इन्द्र-प्रस्थ' शब्द से कौरवों द्वारा पाण्डवों का निर्वासनरूपी अपकार सूचित होता है । कौरवों ने एक बार धोखे से भीम को जहर पिलाकर मारने का प्रयास किया

सहदेव—दुर्योधन को ।
भीमसेन—क्या ?
सहदेव—इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त तथा वारणावत–इन चार गावों को तथा पांचवां कोई एक (ग्राम, हमें) दो ॥ १६ ॥

भीमसेनः—ततः किम् ।

सहदेवः—तदेवमनया प्रतिनामग्रामप्रार्थनया पञ्चमस्य चाकीर्तनाद्विष-भोजनजतुगृहदाहद्यूतसभाद्यपकारस्थानोद्घाटनमेवेदं मन्ये ।

भीमसेनः—(साटोपम् ।) वत्स, एवं कृते किं भवति ?

सहदेवः—आर्य, एवं कृते लोके तावत्स्वगोत्रक्षयाशङ्कि हृदयमाविष्कृतं भवति, कुरुराजस्य तावदसन्धेयता तदेव प्रतिपादिता भवति ।

था । "वृकप्रस्थम्" से इसी ओर सङ्केत किया गया है द्यूतक्रीड़ा में पाण्डवों को पराजित कर वनवास देने के षड्यन्त्र का सङ्केत 'जयन्तम्' से तथा पुरोचन द्वारा लाक्षागृह में आग लगवाकर पाण्डवों को भस्मसात् करने का जो जघन्य कृत्य कौरवों ने किया था उसका सङ्केत "वारणावतम्" से मिलता है । आगे सहदेव के संवादों से ये बातें स्पष्ट हो जाती हैं । प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ।। १६ ।।

सहदेव इति । प्रतिनाम ग्रामप्रार्थनया—नाम्ना नाम्ना प्रतिनाम = नाम गृहीत्वेत्यर्थः । ग्रामाणां प्रार्थनया = याचनया, अकीर्त्तनात् = नाम अगृहीत्वैव कथनात् ।

सहदेव इति । स्वगोत्रक्षयाशङ्कि—स्वस्य=आत्मनः गोत्रस्य=वंशस्य क्षयम् = विनाशम् आशङ्कते इति तादृशम्, हृदयं = चित्तम्, आविष्कृतम् = अभिव्यक्त-मित्यर्थः, असन्धेयता = असन्धिविषयता, प्रतिपादिता = स्पष्टीभूतेति भावः ।

भीमसेन—उससे क्या ?

सहदेव—जो इस तरह प्रत्येक गाँव का नाम लेकर याचना करने से तथा पाँचवें (गाँव) का नाम न लेने से विषसम्पृक्त भोजन, लाक्षागृहदहन, और द्यूतसभा आदि अपकारों का उद्घाटन ही मैं इसे मानता हूँ ।

भीमसेन—(आवेश में आकर) वत्स ! ऐसा करने से क्या हुआ ?

सहदेव—आर्य ! ऐसा करने से सबसे पहले तो संसार में यह प्रकट हो जायेगा कि आर्य का हृदय अपने वंश के विनाश की आशङ्का से युक्त है और साथ ही यह भी कि दुर्योधन सन्धि का पात्र नहीं है ।

भीमसेनः—मूढ, सर्वमप्येतदनर्थकम् । कुरुराजस्य तावदसन्धेयता तदैव प्रतिपादिता यदैवास्माभिरितो वनं गच्छद्भिः सर्वैरेव कुरुकुलस्य निधनं प्रतिज्ञातम् । लोकेऽपि च धार्तराष्ट्रकुलक्षयः किं लज्जाकरो भवताम् । अपि च रे मूर्ख,

युष्मान्ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः ।
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ।। १७ ।।

भीमसेन इति । अनर्थकम् = व्यर्थम्, निधनम् = मरणम् । धार्तराष्ट्रकुलक्षयः = धार्तराष्ट्राणाम्=धृतराष्ट्रसुतानाम्, कुलस्य=वंशस्य क्षयः=विनाशः ।

अन्वयः—क्रोधात्, शत्रुकुलक्षयः, युष्मान्, लोके, ह्रेपयति, (किन्तु); सभायाम्, दाराणाम्, केशकर्षणम्, न लज्जयति ।। १७ ।।

व्याख्या—युष्मानिति । क्रोधात्, शत्रुकुलक्षयः=रिपुवंशविनाशः, युष्मान्=भवतः, सहदेवादीनिति भावः, लोके =जगति, ह्रेपयति = लज्जयति, लज्जितान् करोतीत्यर्थः, (किन्तु), सभायाम्=सदसि, दाराणाम्=स्त्रीणाम्, केशकर्षणम्=शिरोरुहकर्षणम्, न = नहि, लज्जयति = त्रपयति ? सभायां यदा द्रौपद्याः केशाः दुःशासनेन कृष्टास्तदा भवद्भिर्लज्जा नाऽनुभूता किन्त्विदानीं रिपुकुलक्षयो लज्जाजनकोऽनुभूयत इत्यहो मूढत्वम्, यतो हि स्त्रीकेशकर्षणादधिकं नैव किमपि लज्जाकरं भवतीति तात्पर्यम् ।। १७ ।।

टिप्पणी—युष्मानिति । ह्रेपयति— ह्री + णिच् + पुक् + लट् । "अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ" से पुक् का आगम हुआ है । दाराणाम्-दारा-शब्द नित्यबहुवचनान्त एवं पुँल्लिङ्ग है—"……भार्याजायाऽथपुंभूम्निदाराः" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ।। १७ ।।

भीमसेन—यह सब व्यर्थ है । दुर्योधन के साथ सन्धि न करने का आशय तभी प्रकट कर दिया गया था जब यहाँ से वन जाते हुए हम लोगों ने कौरव-वंश के विनाश की प्रतीज्ञा कर ली थी । क्या धृतराष्ट्र-पुत्रों के वंश का विनाश भी संसार में आप लोगों के लिए लज्जाजनक है ? और भी रे मूर्ख !—क्रोध से शत्रु का विनाश (करना) तुम लोगों को लज्जित करता है (किन्तु भरी) सभा में स्त्रीं (द्रौपदी) के केशों का खींचा जाना लज्जित नहीं करता ?।।१७।।

द्रौपदी—(जनान्तिकम् ।) णाह, ण लज्जन्ति एदे । तुम वि दाव मा विसुमरेरि । (नाथ, न लज्जन्त एते । त्वमपि तावन्मा विस्मार्षीः) ।

भीमसेनः— वत्स, कथं चिरयति पाञ्चाली ।

सहदेवः—आर्य, का खलु वेलाऽत्रभवत्याः प्राप्तायाः । किन्तु रोषावेशवशादार्य्याऽऽगताप्यार्येण नोपलक्षिता ।

भीमसेनः—(दृष्ट्वा सादरम्) देवि, वर्धितामर्षैरस्माभिरागतापि भवती नोपलक्षिता । अतो न मन्युं कर्तुमर्हसि ।

द्रौपदी—णाह, उदासीणेसु तुम्हेसु मह मण्णु ण उण कुविदेसु । (नाथ, उदासीनेषु युष्मासु मम मन्युः, न पुनः कुपितेषु ।)

द्रौपदीति । न लज्जन्ते = लज्जिताः न भवन्तीति भावः । मा विस्मार्षीः= न विस्मर ।

भीमसेन इति । कथम् = कस्मात्कारणात्, पाञ्चाली = पाञ्चलतनया, द्रौपदीति भावः, चिरयति = विलम्बते ?

सहदेव इति । का खलु वेला=बहुकाल इति यावत्, प्राप्तायाः=आगतायाः । रोषावेशवशात् = क्रोधावेगप्रभावादित्यर्थः, न उपलक्षिता = नावलोकिता ।

भीमसेन इति । वर्धितामर्षैः वर्धितम् = वृद्धिङ्गतः अमर्षः = क्रोधः यस्य, तैः, मन्युम् = क्रोधम् ।

द्रौपदीति । उदासीनेषु = तटस्थेषु, शत्रुप्रतिशोधपराङ्मुखेष्विति भावः ।

द्रौपदी—(अलग से) स्वामी ! ये लोग तो लज्जित नहीं होते । तुम भी कहीं भूल मत जाना ।

भीमसेन—वत्स ! द्रौपदी विलम्ब क्यों कर रही है ?

सहदेव—आर्य ! श्रीमतीजी को आये हुए बहुत समय हो गया लेकिन क्रोधावेग के कारण आपने अभी तक उन्हें नहीं देखा ।

भीमसेन—(देखकर आदरपूर्वक) देवि ! बढ़े हुए क्रोध के कारण आपके आ जाने पर भी मैं आप को नहीं देख सका था अत एव आप क्रोध न करें ।

द्रौपदी—नाथ ! आपके उदासीन होने पर (मुझे) क्रोध होता है, कुपित होने पर नहीं ।

भीमसेनः—यद्येवमपगतपरिभवमात्मानं समर्थयस्व । (हस्ते गृहीत्वा, पार्श्वे समुपवेश्य, मुखमवलोक्य ।) किं पुनरत्रभवतीमुद्विग्नामिवोपलक्षयामि ।

द्रौपदी—णाह, किं वि उव्वेअकालणं तुम्हेसु सण्णिहिदेसु । (नाथ, किमप्युद्वेगकारणं युष्मासु सन्निहितेषु ।)

भीमसेनः— किमिति नावेदयसि । (केशानवलोक्य ।) अथवा किमावेदितेन ।

जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु दूरमप्रोषितेषु च ।
पाञ्चालराजतनया वहते यदिमां दशाम् ।। १८ ।।

भीमसेन इति । अपगतपरिभवम्—दूरीभूतः परिभवः=तिरस्कारः अपमानो वा यस्य तम्, आत्मानम्=स्वम्, समर्थयस्व = मन्यस्व । उद्विग्नामिव = व्याकुलामिव, उपलक्षयामि = अवलोकयामि ।

द्रौपदीति । युष्मासु= भवादृशेषु वीरेषु सत्स्विति भावः, सन्निहितेषु=निकटस्थेषु, उद्वेगकारणम् = वैक्लव्यहेतुः, किमपि = न किमपीत्यर्थः ।

भीमसेन इति । किमिति नावेदयति = कथं न कथयसि ? किमावेदितेन = आवेदनस्य निष्प्रयोजनत्वमित्याशयः ।

अन्वयः—यत्, पाण्डुपुत्रेषु, जीवत्सु, दूरम्, अप्रोषितेषु, च, पाञ्चालराजतनया, इमाम्, दशाम्, वहते ।। १८ ।।

व्याख्या—जीवत्स्विति । यत् = यतो हि, पाण्डुपुत्रेषु = पाण्डवेषु, अस्मा-

भीमसेन—यदि ऐसा है तो समझ लो कि तुम्हारे अपमान का बदला ले लिया गया । (हाथ पकड़कर, पास में बैठाकर तथा मुख देखकर) क्यों ? आपको कुछ व्याकुल-सी देख रहा हूँ ?

द्रौपदी—नाथ ! निकट में आप के होते हुए उद्वेग का क्या कारण हो सकता है ?

भीमसेन—क्यों नहीं बतला रही हो ? (द्रौपदी के केशों को देखकर) अथवा बतलाने से ही क्या ?

जब कि (हम) पाण्डवों के जीवित रहते हुए तथा परदेश न जाने पर भी पाञ्चालराज की पुत्री (द्रौपदी) इस अवस्था को ढो रही है ।। १८ ।।

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमदिए, कहेहि णाहस्स को अण्णो मह परिहवेण खिज्जइ (हञ्जे बुद्धिमतिके ! कथय नाथस्य कोऽन्यो मम परिभवेण खिद्यते ।)

चेटी—जं देवो आणवेदि । (भीममुपसृत्य । अञ्जलिं बद्ध्वा) सुणादु-कुमालो । इदो वि अहिअदरं अज्ज उव्वेअकालणं आसी देवीए । (यद्दे-व्याज्ञापयति ! शृणोतु कुमारः । इतोऽप्यधिकतरमद्वेगकारणमासीद्देव्याः ।)

भीमसेनः—किं नामास्मादप्यधिकतरम् । बुद्धिमतिके, कथय ।

स्विति भावः, जीवत्सु = प्राणान् धारयत्सु, दूरम् = विप्रकृष्टम्, अप्रोषितेषु = परदेशेऽवसत्सु, च, पाञ्चालराजतनया = द्रौपदी, इमाम्=एताम्, अतिहीनामिति भावः, दशाम् = अवस्थाम्, वहते = प्राप्नोति ॥ १८ ॥

टिप्पणी—मा विष्मार्षीः—यहाँ पर "माङि लुङ्" से लुङ् लकार तथा "न माङ्योगे" से अट् या आट् आगमों का निषेध होने से मध्यमपुरुष के एक वचन में रूप सिद्ध हुआ है। मन्युम्—मन्यु शब्द क्रोध एवं शोक–दोनों का पर्यायवाची है–"मन्युः पुमान् क्रुधि दैन्ये शोके च" इति मेदिनी । जीवत्स्विति । प्रस्तुत पद्य में "जीवत्सु" तथा "अप्रोषितेषु" शब्दों से यह तात्पर्य है कि विधवा या वैसी स्त्री पर, जिसका पति परदेश में रह रहा हो, यदा कदा समाज के लोग अत्याचार कर बैठते हैं पर जिस स्त्री के पति पाण्डव जैसे वीर हों और वे भी जीवित हों तथा समीप में वर्त्तमान हों; उस पर यदि कोई अत्याचार करे तो यह निश्चय ही लज्जास्पद बात है। पद्य में विभावना एवं विशेषोक्ति का सन्देह सङ्कर अलङ्कार है। पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ १८ ॥

द्रौपदी—अरी बुद्धिमतिके ! स्वामी से कह दे न ! दूसरा कौन मेरे तिरस्कार से दुःखी होगा ?

चेटी—महारानी की जो आज्ञा। (भीमसेन के समीप जाकर तथा हाथ जोड़कर) सुनिए कुमार ! महारानी के दुःख का कारण इससे भी कुछ अधिक ही है।

भीमसेन—क्या कहती हो ? इससे भी अधिक ? बुद्धिमतिके कहो।

कौरव्यवंशदावेऽस्मिन्क एव शलभायते।
मुक्तवेणीं स्पृशन्नेनां कृष्णां धूमशिखामिव ॥ १९ ॥

चेटी—सुणादु कुमालो। अज्ज क्खु देवी अम्बासहिदा सुभद्दाप्पमुहेण सवत्तिवग्गेण परिवुदा अज्जाए गन्धालीए पादवन्दणं कादुं गदा। (शृणोतु कुमारः। अद्य खलु देव्यम्बासहिता सुभद्राप्रमुखेन सपत्नीवर्गेण परिवृता आर्याया गान्धार्याः पादवन्दनं कर्तुं गता।)

अन्वयः—(कृष्णाम्), धूमशिखाम्, इव, मुक्तवेणीम्, एनाम्, कृष्णाम्, स्पृशन्, एषः, कः, अस्मिन्, कौरव्यवंशदावे, शलभायते ॥ १९ ॥

व्याख्या—कौरव्येति। (कृष्णाम् = कृष्णवर्णाम्), धूमशिखाम् = धूमकेतुम्, इव = यथा, मुक्तवेणीम् = मुक्ता = असंहृता वेणी = केशसंरचना यस्याः ताम्, एनाम् = इमाम्, पुरोवर्तिनीमितिभावः, कृष्णाम् = द्रौपदीम्, स्पृशन् = स्पर्शं कुर्वन्, एषः = एतादृशः, द्रौपदीक्रोधहेतुरित्यर्थः, कः = कः जनः इति भावः, अस्मिन् = एतस्मिन्, कौरव्यवंशदावे = कौरव्यवंशः = कौरवकुलम् एव दावः = दावानलः, वनाग्निरित्यर्थः तस्मिन्, अथवा कौरव्याः = कौरवाः एव वंशाः = वेणवः तेषां दावे = दावानले, शलभायते = पतङ्गायते, पतङ्ग इवाचरतीतिभावः ॥१९॥

टिप्पणी—कौरव्येति। यहाँ पर वंश शब्द का श्लेष के द्वारा "कुल" तथा "बाँस" दोनों ही अर्थ किये जा सकते हैं। शलभायते—शलभ इव आचरति, शलभ + क्यङ्। पतङ्गों का अग्नि पतन द्वारा आत्मदाह प्रसिद्ध ही है। यहाँ पर "कौरववंश" अंशमें लुप्तोपमा, "कौरव्यवंशदाव" अंशमें रूपक तथा व्यङ्ग्योपमा है। इन सबों के अङ्गाङ्गिभाव से सङ्करालङ्कार है। छन्द पथ्यावक्त्र है ॥१९॥

चेटीति। सुभद्राप्रमुखेन = कृष्णभगिनिप्रधानेन, सपत्नीवर्गेण = समान-

(काले रंग की) धूमशिखा की भाँति खुली चोटी वाली इस द्रौपदी को स्पर्श करता हुआ यह कौन है जो इस कौरवकुल के दावानल में पतिङ्गे की तरह आचरण करता है (अर्थात् जल कर मरना चाहता है।) ॥ १९ ॥

चेटी—सुनिए कुमार! आज महारानी (द्रौपदी) माताजी (कुन्ती) के साथ सुभद्रा आदि प्रमुख सपत्नियों को लेकर पूजनीया गान्धारी की चरणवन्दना करने गई थीं।

भीमसेनः—युक्तमेतत् । वन्द्याः खलु गुरवः । ततस्ततः ।

चेटी—तदो पडिणिवुत्तमाणा भाणुमदीए देवी दिट्ठा (ततः प्रतिनिवर्तमाना भानुमत्या देवी दृष्टा ।)

भीमसेनः—(सक्रोधम्) आः, शत्रोर्भार्यया दृष्टा । हन्त, स्थानं क्रोधस्य देव्याः । ततस्ततः ।

चेटी—तदा ताए देवीं पेक्खिअ सहीजणदिण्णदिट्ठिए सगव्वं ईसि विहसिअ भणिअं । अइ जण्णसेणि, कसि तुम्हाणं अज्जवि केसा ण संजमीअन्ति । (ततस्तया देवीं प्रेक्ष्य सखीजनदत्तदृष्टया सगर्वमीषद्विहस्य भणितम् । अयि याज्ञसेनि, कस्माद्युष्माकमद्यापि केशा न संयम्यन्ते ।)

भीमसेनः—सहदेव, श्रुतम् ।

भार्यासमुदायेन, परिवृता=युक्ता, अम्बासहिता=कुन्तीयुक्ता, देवी=द्रौपदीत्यर्थः, गान्धार्याः=दुर्योधनमातुः, पादवन्दनम्=चरणवन्दनम् ।

भीमसेन इति । ततस्ततः=तदनन्तरम् ।

चेटीति । प्रतिनिवर्त्तमाना=प्रत्यागच्छन्ती, भानुमत्या= दुर्योधनपत्न्या, दृष्टा=अवलोकिता ।

भीमसेन इति । हन्त = विषादसूचकोऽयं शब्दः ।

चेटीति । सखीजनदत्तदृष्ट्या = सखीजनेषु = आलिजनेषु दत्ता = प्रक्षिप्ता दृष्टिः यया तया, सगर्वम्=साहङ्कारम्, ईषद्विहस्य = किञ्चिद्धसित्वा, भणितम्= निगदितम् । संयम्यन्ते = संह्रियन्ते ।

भीमसेन—यह तो ठीक है । गुरुजन वन्दनीय ही होते हैं । फिर क्या हुआ ?

चेटी—उसके बाद लौट रही महारानी को भानुमती ने देखा ।

भीमसेन—(क्रोधपूर्वक) ओह ! शत्रु की स्त्री ने देखा ? तब तो देवी का क्रोध उचित है ? फिर क्या हुआ ?

चेटी—उसके बाद भानुमती ने महारानी को देखकर सखियों की ओर संकेतकरके थोड़ा सा हंसकर अभिमानपूर्वक कहा—" अरे ! क्या द्रौपदी अब भी अपने केशोंको नहीं संवारती है ?

भीमसेन—सहदेव ! सुना (तुमने) ?

सहदेवः—आर्य, उचितमेवैतत्तस्याः। दुर्योधनकलत्रं हि सा पश्य।

स्त्रीणां हि साहचर्याद्भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि।
मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली॥ २०॥

भीमसेनः—बुद्धिमतिके! ततो देव्या किमभिहितम्।

सहदेव इति—तस्याः भानुमत्याः, दुर्योधनकलत्रम् = सुयोधनभार्या। यथा दुर्योधनो धृष्टस्तथैव तस्य भार्ययापि भाव्यमित्युचितशब्देन ध्वन्यते।

अन्वयः—हि, स्त्रीणाम्, चेतांसि, साहचर्यात्, भर्तृसदृशानि, भवन्ति, हि, मधुरा, अपि, वल्ली, विषविटपिसमाश्रिता, मूर्च्छयते॥ २०॥

व्याख्या—स्त्रीणामिति। हि = यतः, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, चेतांसि = चित्तानि, साहचर्यात्=सहवासात्, भर्तृसदृशनि=पतितुल्यानि, भवन्ति = जायन्ते। हि = यथा, मधुरा = माधुर्ययुक्ता, अपि, वल्ली = लतिका, विषविटपिसमाश्रिता= विषवृक्षावलम्बिता, सतीति शेषः, मूर्च्छयते=मोहयति, मूर्च्छां प्रापयतीत्यर्थः; जनमिति शेषः॥ २०॥

टिप्पणी—सुभद्राप्रमुखेन—सुभद्रा कृष्ण की बहन तथा अर्जुन की पत्नी थी, इस प्रकार वह द्रौपदी की सौत थी। सपत्नीवर्गेण–सपत्नीनां वर्गः तेन (ष. त.)।

स्त्रीणामिति। हि "हि हेतावधारणे" इत्यमरः। वल्ली–"वल्ली तु व्रततिर्लते" त्यमरः। प्रस्तुत पद्य में आर्या छन्द है॥ २०॥

भीमसेन इति। अभिहितम्=कथितम्।

सहदेव—आर्य! उसके लिए यह उचित ही है। वह दुर्योधन की पत्नी है न! देखो—

स्त्रियों का हृदय साथ–साथ रहने के कारण पति के समान ही हो जाता है। जिस प्रकार मधुर लता भी विषवृक्ष का आश्रय पाकर (लोगों को) मूर्च्छित कर देती है॥ २०॥

भीमसेन—बुद्धिमतिके! उसके बाद देवीने क्या कहा?

चेटी—कुमाल, जइ पढिहीणं मम वयणं भवे तदो देवी भणादि। (कुमार, यदि परिहीनं मम वचनं भवेत्तदा देवी भणति ।)

भीमसेनः—किं पुनरभिहितं भवत्या ।

चेटी—तदा मए परिकुव्विअ भणिअ। अइ भाणुमदि तुम्हाणं अमुक्केसु केसहत्थेषु कध अम्हाणं देवीए केसा संजमीअन्तित्ति। (ततो मया परिकुप्य भणितम् । अयि भानुमति, युष्माकममुक्तेषु केशहस्तेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त इति ।)

भीमसेनः—(सपरितोषम् ।) साधु बुद्धिमतिके, साधु । तदभिहितं यदस्मत्परिजनोचितम् । (अधीरमासनादुत्तिष्ठन्) भवति पाञ्चालराजतनये, श्रूयताम् । अचिरेणैव कालेन—

चेटीति । परिहीनम् = विनष्टम्, मम मुखादनिर्गतमित्यर्थः ।

चेटीति । परिकुप्य=परिक्रुध्य । अमुक्तेषु= असंयतेषु, केशहस्तेषु=केशव्रातेषु, संयम्यन्ते=बध्यन्ते ।

भीमसेन इति । अस्मत्परिजनोचितम् = अस्मदीयसेवकजनसमुचितम् । अचिरेण = शीघ्रेण ।

चेटी—कुमार ! यदि मैं न बोलती तो महारानी कुछ उत्तर देतीं ।

भीमसेन—तो फिर तुमने क्या कहा ?

चेटी—उसके बाद मैं ने क्रुद्ध होकर कहा—" अरी भानुमती ! जब तक तुमलोगों के केशपाश नहीं खुल जाते तब तक हमारी महारानी अपने केशों को कैसे बांधे ?

भीमसेन—(सन्तुष्ट होकर) वाह ! बुद्धिमतिके वाह ! तुमने वही कहा जो हमारे सेवकों के योग्य था (अधीरता के साथ आसन से उठते हुए) णीया पादाअरञ्चालराजपुत्री । सुनिए । बहुत शीघ्र ही—

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानापविद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥ २१ ॥

अन्वयः—(हे) देवि, चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य, सुयोधनस्य, स्त्यानापविद्धघनशोणितशोणपाणिः, भीमः, तव, कचान्, उत्तंसयिष्यति ॥ २१ ॥

व्याख्या—चञ्चदिति । (हे) देवि=हे महिषि द्रौपदि, चञ्चद्भुजेत्यादिः—चञ्चद्भ्याम् = चलद्भ्याम् भुजाभ्याम् = बाहुभ्याम् भ्रमिता = सञ्चालिता या चण्डा = भीषणा गदा तस्याः अभिघातैः = प्रहारैः सञ्चूर्णितम् = भग्नम् उरुयुगलम् = सक्थिद्वयम् यस्य तस्य, सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य, स्त्यानापविद्धेत्यादिः—स्त्यानम् = क्लिन्नम्' अपविद्धम् = संसक्तम् घनञ्च = निबिडञ्च यच्छोणितम् = रक्तम्, तेन शोणौ = रक्तवर्णौ पाणी = करौ यस्य सः, भीमः= अहं भीमसेनः, तव = भवत्याः, द्रौपद्या इत्यर्थः, कचान् = शिरोरुहान्, उत्तंसयिष्यति = अवभूषयिष्यति । दुर्योधनं हत्वा तवापमानस्य प्रतिकारं विधास्यामीत्याशयः ॥ २१ ॥

टिप्पणी—चेटीति । केशहस्तेषु—" हस्तः करे करिकरे सप्रकोष्ठकरेऽपि च । ऋक्षेकेशात्परोव्राते" इत्यमरः । चेटी के द्वारा कहे गये "अमुक्तेषु केशहस्तेषु" का तात्पर्य यह है कि भानुमती आदि कौरवपत्नियाँ अभी अपनी-अपनी चोटियाँ इसलिए बाँधती हैं चूंकि वे सधवा है । जब वे पाण्डवों द्वारा विधवा बना दी जायेंगी तब उनके केश पाश खुले रहेंगे चूंकि विधवा स्त्री के लिए केश बाँधना शास्त्रनिषिद्ध है और जब उनके केश खुल जायेंगे तभी द्रौपदी अपने केशपाश बाँधेगी ।

चञ्चदिति । प्रस्तुत पद्य में अनुप्रासालङ्कार है । वसन्ततिलका छन्द है ॥२१॥

हे देवि ! चपल भुजाओं द्वारा घुमाई गई गदा के प्रहारों से चूर-चूर हुई दोनों जङ्घाओं वाले दुर्योधन के चिकने, चिपके हुए तथा गाढ़े रुधिर से लाल हाथों वाला यह भीम तुम्हारे केशों को सँवारेगा ॥ २१ ॥

द्रौपदी—किं णाह, दुक्करं तुए परिकुविदेण। सव्वहा अणुगेह्णन्तु एदं ववसिदं भादरो। (कि नाथ, दुष्करं त्वया परिकुपितेन। सर्वथाऽनुगृह्णन्त्वेतद्व्यवसितं ते भ्रातरः।)

सहदेवः—अनुगृहीतमेतदस्माभिः।

(नेपथ्ये महान्कलकलः। सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति।)

भीमसेनः—

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम्॥ २२॥

द्रौपदीति। त्वया = भीमेन, परिकुपितेन=क्रुद्धेन, किं दुष्करं=किं कठिनम्, न किमपीत्यर्थः। एतत् = इदम्, व्यवसितम् = व्यवसायम्, निश्चयमित्यर्थः, अनुगृह्णन्तु = अनुमन्यन्ताम्।

अन्वयः—मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः, कोणाघातेषु, (सत्सु), गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः, कृष्णाक्रोधाग्रदूतः, कुरुकुलनिधनोत्पात-निर्घातवातः, अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः, अयम्, दुन्दुभिः, केन, ताडितः?।२२।

व्याख्या—मन्थायस्तेति। मन्थेन = मन्थनदण्डविशेषेण आयस्तम् = क्षुब्धम् यत् अर्णवाम्भः=समुद्रजलम् तेन प्लुतानि=व्याप्तानि कुहराणि= विवराणि, मध्यभाग इति यावत् यस्य, तथाभूतश्च, चलन्=भ्रमन् च यः मन्दरः = मन्दरनामकः पर्वतः, तस्य ध्वान इव = शब्द इव धीरः=गम्भीरः, कोणाघातेषु = वाद्यविशेषाणां निनादेषु (सत्सु), गर्जत्प्रलयेत्यादिः—गर्जन्तः=

द्रौपदी—नाथ! आपके क्रुद्ध हो जाने पर क्या कठिन है? आपके इस निर्णय का आपके भाई लोग सब प्रकार से समर्थन करें।

सहदेव—हमलोग सहमत हैं।

(नेपथ्य में भीषण कोलाहल होता है। सबलोग आश्चर्यपूर्वक सुनते हैं।)

भीमसेन—मन्थनदण्ड से क्षुब्ध समुद्र-जल से पूर्ण कन्दराओं वाले घूमते हुए मन्दराचल के शब्द की तरह अत्यधिक गम्भीर, कोणाघात होने पर, गरजते हुए प्रलयकालिक मेघ पङ्क्तियों के परस्पर टकराने के समान भयङ्कर, द्रौपदी के

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः ।)

कञ्चुकी—कुमार, एष खलु भगवान्वासुदेवः ।

शब्दं कुर्वन्तः ये प्रलयघनाः = प्रलयकालिकमेघाः तेषां घटाः = पङ्क्तयः तासाम् अन्योन्यम् = परस्परम् संघट्टः = सङ्घर्षः, तद्वच्चण्डः = भयङ्करः, कृष्णाक्रोधाग्रदूतः—कृष्णायाः = द्रौपद्याः, क्रोधस्य = कोपस्य अग्रदूतः = प्रथमोद्घोषकः, कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः—कुरुकुलस्य = कौरववंशस्य निधनम् = विनाशः तस्य उत्पातभूतः = अशुभसूचकः यः निर्घातवातः = प्रचण्डवायुः, अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः—अस्माकम् = भीमादीनां यः सिंहनादः = सिंहगर्जनम् तस्य प्रतिरसितम् = प्रतिशब्दः तस्य सखा = मित्रम्, तत्सदृश इत्यर्थः, अयम् = एषः, दुन्दुभिः = भेरी, केन = केन जनने, ताडितः = आहतः ? ।। २२ ।।

टिप्पणी—अर्णव—"सरस्वान्सागरोऽर्णवः" इत्यमरः । अम्भः पानी का पर्यायवाची है—"अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम् । मेघपुष्पं घनरसम्" इत्यमरः । कुहर विवर को कहते हैं—"कुहरं सुषिरं विवरं बिलम्" इत्यमरः । ध्वान शब्द को कहते हैं—"शब्दे निनाद-निनद-ध्वनि-ध्वान-खं-स्वनाः । ... संरावविरावाः" इत्यमरः कोणाघातेषु—एक लाख डमरुओं तथा दस हजार नगाड़ों को जब एक साथ बजाया जाता है तो उसे "कोणाघात" कहते हैं । इसका लक्षण देते हुए भरत ने कहा है—"ढक्काशतसहस्राणि भेरीशतशतानि च । एकदा यत्र हन्यन्ते कोणाघातः स उच्यते ।।"

दुन्दुभिः—भेरी को दुन्दुभि कहा जाता है—"भेरीस्त्रीदुन्दुभिः पुमान्" इति विश्वः । इस पद्य में उत्प्रेक्षा अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है । छन्द का लक्षण है—

"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" ।। २२ ।।

कञ्चुकी = सौविदः, वासुदेवः = वसुदेवपुत्रः, श्रीकृष्ण इत्यर्थः ;

क्रोध का प्रथम सूचक, कौरववंश के विनाश के लिए अशुभसूचक प्रचण्ड वायु के समान हमारे सिंहगर्जन की प्रतिध्वनि के मित्र जैसा यह नगाड़ा किसके द्वारा पीटा गया है ? ।। २२ ।।

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

कञ्चुकी—कुमार ! ये भगवान् वासुदेव ।

(सर्वे कृताञ्जलयः समुत्तिष्ठन्ति ।)

भीमसेनः—(ससम्भ्रमम् ।) क्वासौ भगवान् ।

कञ्चुकी—पाण्डवपक्षपातामर्षितेन सुयोधनेन संयमितुमारब्धः ।

(सर्वे सम्भ्रमं नाटयन्ति ।)

भीमसेनः—किं संयतः ।

कञ्चुकी—नहि नहि, संयमितुमारब्धः ।

भीमसेनः—किं कृतं देवेन ।

कञ्चुकी—ततः स महात्मा दर्शितविश्वरूपतेजःसम्पातमूर्च्छितमवधूय कुरुकुलमस्मच्छिबिरसन्निवेशमनुप्राप्तः कुमारमविलम्बितं द्रष्टुमिच्छति ।

कृताञ्जलयः = बद्धाञ्जलयः ।

कञ्चुकीति । पाण्डवपक्षपातामर्षितेन = पाण्डवानाम् = पाण्डुपुत्राणाम्, पक्षपातेन = पक्षाश्रयणेन अमर्षितः = कुपितः, तेन । संयमितुम् = बद्धुम् ।

कञ्चुकीति । दर्शितविश्वरूपतेजः सम्पातमूर्च्छितम्—दर्शितम् = प्रदर्शितम् यत् विश्वरूपम् = विराड्रूपम् तस्य तेजः सम्पातः = प्रकाशसमूहः तेन मूर्च्छितः = प्राप्तमूर्च्छः तम्, अवधूय = तिरस्कृत्य, अस्मच्छिबिरसन्निवेशम्—अस्माकं शिबिर-स्थानम्, अनुप्राप्तः = समायातः, अविलम्बितम् = अचिरेणैवेत्यर्थः ।

टिप्पणी—कञ्चुकी—यह राजाओं के अन्तःपुर का सेवक होता है । कञ्चुक

(सब लोग हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं ।)

भीमसेन—(घबराकर) कहाँ हैं ये भगवान् ?

कञ्चुकी—पाण्डवों का पक्षपात करने के कारण क्रुद्ध हुआ दुर्योधन (उन्हें) पकड़ने के लिए उद्यत हुआ है ।

भीमसेन—क्या पकड़ लिये गये ?

कञ्चुकी—नहीं नहीं, पकड़ने के लिए उद्यत हुआ है ।

भीमसेन—भगवान् ने क्या किया ?

कञ्चुकी—उसके बाद महात्मा (श्रीकृष्ण) ने अपने विराट्रूप को प्रदर्शित कर उसके तेजःपुञ्ज से कौरवों को मूर्च्छित तथा तिरस्कृत कर हमारे शिविर में लौट आये हैं और आपको अतिशीघ्र देखना चाहते हैं ।

भीमसेनः—(सोपहासम् ।) किं नाम दुरात्मा सुयोधनो भगवन्तं संयमितुमिच्छति । (आकाशे दत्तदृष्टिः ।) आः दुरात्मन्कुरुकुलपांसुल, एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम् ।

सहदेवः—आर्य, किमसौ दुरात्मा सुयोधनहतको वासुदेवमपि भगवन्तं स्वरूपेण न जानाति ।

भीमसेनः—वत्स, मूढः खल्वयं दुरात्मा कथं जानातु ! पश्य ।

धारण करने के कारण इसे कञ्चुकी कहा जाता है—"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः । सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ।।"

भीमसेन इति । कुरुकुलपांसुल = कुरुवंशपापिन् ! अतिक्रान्तमर्यादे–अतिक्रान्ता=उल्लङ्घिता मर्यादा=सीमा येन तस्मिन्, निमित्तमात्रेण = कारणमात्रेण ।

सहदेव इति । दुरात्मा=दुष्टः, सुयोधनहतकः = दुर्योधनाधमः, स्वरूपेण = ईश्वररूपेणेत्यर्थः ।

भीमसेन इति । मूढः=अज्ञः अयम्=दुर्योधनः, जानातु=अवगच्छेदित्यर्थः ।

टिप्पणी—दर्शितविश्वरूप०=भगवान् श्रीकृष्णने महाभारत युद्ध में अर्जुन को अपने विश्वरूप के दर्शन कराये थे । उनका यह विराट् रूप प्रसिद्ध है । दुर्योधन ने जब कृष्ण को पकड़ना चाहा तो विराट रूप दिखाकर उन्होंने कौरवों को मूच्छित कर दिया था ।

भीमसेन—(उपहास के साथ) क्या दुष्ट दुर्योधन भगवान् को बांधना चाहता है ? (आकाश की ओर देखते हुए) अरे दुष्ट ! कुरुवंश के पापी ! इस प्रकार सीमा का उल्लङ्घन करने वाले तुम्हारे लिए पाण्डवों का क्रोध तो निमित्तमात्र होगा ।

सहदेव—आर्य । दुष्ट दुर्योधन भगवान् वासुदेव के स्वरूप को नहीं जानता है क्या ?

भीमसेन—वत्स ! यह मूर्ख और दुष्ट भला कैसे जाने ? देखो—

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—आत्मारामाः, निर्विकल्पे, समाधौ, विहितरतयः ज्ञानोत्सेकात्, विघटिततमोग्रन्थयः, सत्त्वनिष्ठाः, तमसाम्, ज्योतिषाम्, वा, परस्तात्, यम्, कम् अपि, वीक्षन्ते, तम्, अमुम्, पुराणम्, देवम्, अयम्, मोहान्धः, कथम्, वेत्तु ॥ २३ ॥

व्याख्या—आत्मारामा इति । आत्मारामाः=आत्मरमणशीलाः, योगिन इति भावः, निर्विकल्पे = निवृत्तमिथ्याज्ञानरूपे, समाधौ = योगनियमविशेषे, विहितरतयः=कृतानुरागाः, ज्ञानोत्सेकात्=प्रकाशोद्रेकात्, विघटिततमोग्रन्थयः—विघटिताः =उच्छिन्नाः तमोग्रन्थयः = अज्ञानबन्धनानि यैस्ते, सत्त्वनिष्ठाः=सत्त्वे=सत्त्वगुणे, सात्त्विके भावे वा निष्ठा = अनुरागो येषां ते, तमसाम्=अन्धकाराणाम्, मिथ्या ज्ञानानामिति यावत्, ज्योतिषाम्=तेजसाम्, सत्त्वज्ञानानामिति भावः, वा = अथवा, परस्तात् = परम्, यम्=यादृशम्, कमपि = विलक्षणमित्यर्थः, वीक्षन्ते = पश्यन्ति, तम् = तादृशम् अमुम्=एवम्, श्रीकृष्णमिति भावः, पुराणम्=शाश्वतम्, देवम् = परमेश्वरम्, अयम्=एषः दुर्योधन इति भावः, मोहान्धः=मोहेन=अज्ञानेन अन्धः = विवेकशून्यः, कथम् = केन प्रकारेण, वेत्तु=जानातु ? अर्थात् न केनापि प्रकारेण परमात्मानं ज्ञातुं शक्नोतीति भावः ॥ २३ ॥

टिप्पणी—आत्मारामाः-आत्मनि आ=समन्तात् रमन्ते इति आत्मारामाः। अथवा आ=सम्यक् रमन्ते अस्मिन्निति आरामः, आत्मा आरामो येषां ते । रमु + क्रीडायाम् + घञ् । निर्विकल्पे = समाधि योग का एक नियम-विशेष हैं । यह दो प्रकार की होती है । जिस समाधि में प्रमाता-प्रमेयादि का भेद-विषयक

आत्मलीन रहनेवाले, निर्विकल्पक समाधि में अनुराग रखने वाले, ज्ञानाधिक्यके कारण जिनके तमोगुणी वन्धन टूट गये हैं ऐसे तथा सत्त्वगुण में निष्ठा रखनेवाले (मुनि लोग) अन्धकार एवं प्रकाश के परे जिस किसी को देख पाते हैं उस इन शाश्वत परमेश्वर (श्रीकृष्ण) को यह मोहान्ध (दुर्योधन भला) कैसे जाने ? ॥ २३ ॥

आर्य जयन्धर, किमिदानीमध्यवस्यति गुरुः ।

कञ्चुकी—स्वयमेव गत्वा महाराजस्याध्यवसितं ज्ञास्यति कुमारः ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

(नेपथ्ये कलकलान्तरम् ।)

भो भो द्रुपदविराटवृष्ण्यन्धकसहदेवप्रभृतयोऽस्मदक्षौहिणीपतयः कौरवचमूप्रधानयोधाश्च, श‍ृण्वन्तु भवन्तः ।

यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं
यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता ।
तद्द्यूतारणिसम्भृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः
क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ।। २४ ।।

ज्ञान बना रहता है उसे सविकल्पक समाधि तथा जिसमे प्रमाता–प्रमेयादि का भेदविषयक ज्ञान भी नष्ट हो जाता है उसे निर्विकल्पक समाधि कहते हैं। समाधि की यह उत्कृष्टावस्था मानी जाती है। प्रस्तुत पद्य में मन्दाक्रान्ता छन्द है जिसका लक्षण है–"मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्" ।। २३ ।।

आर्य इति । अध्यवस्यति = निश्चिनोति, कर्त्तुमिच्छतीति भावः ।

अन्वयः—सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा, (युधिष्ठिरेण), यत्, यत्नेन, मन्दीकृतम्, कुलस्य, शान्तिम्, इच्छता, शमवता, (तेन), यत्, विस्मर्तुम्, अपि, ईहितम्, द्यूतारणिसम्भृतम्, तत्, यौधिष्ठिरम्, इदम्, क्रोधज्योतिः, नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः, महत्, (सत्), कुरुवने, जृम्भते । २४ ।।

आर्य ! अब महाराज क्या करना चाहते हैं ?

कञ्चुकी–स्वयं ही जाकर महाराज के निश्चय को कुमार जानेंगे। (यह कह कर निकल गया ।)

(नेपथ्य में कोलाहल के बाद)

हे हे द्रुपद, विराट, वृष्णि, अन्धक और सहदेव आदि मेरी अक्षौहिणी सेना के नायको तथा कौरव की सेना के प्रधान योद्धाओ ! आपलोग सुनें—

सत्यव्रत के भङ्ग हो जाने के भय से प्रयत्नपूर्वक जिसे मन्द किया गया था, कुल की शान्ति चाहने वाले (उस) शान्तिशील (व्यक्ति) के द्वारा जिसे

भीमसेनः—(आकर्ण्य । सहर्षम्) जृम्भतां जृम्भतामप्रतिहतप्रसरमार्यस्य क्रोधज्योतिः ।

व्याख्या—यत्सत्यव्रतेति । सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा—सत्यम् = ऋतम् एव व्रतम्=नियमः तस्य भङ्गात् = विच्छेदात् भीरुः=भीतम् मनः=चित्तम् यस्य तेन, युधिष्ठिरेणेति शेषः, यत् = क्रोधज्योतिरित्यर्थः, यत्नेन=आयासेन, मन्दीकृतम्= स्वल्पीकृतम् कुलस्य=वंशस्य, शान्तिम् = कल्याणम् = इच्छता = कामयमानेन, शमवता=शान्तियुक्तेन, तेनेति शेषः, यत् = क्रोधज्योतिरित्यर्थः, विस्मर्त्तुम् = स्मृतिपथाद्दूरीकर्त्तुम्, अपि, ईहितम = चेष्टितम्, द्यूतारणिसम्भृतम्, द्यूतम् = पण एव अरणिः = अग्निमन्थनकाष्ठम् इव तेन सम्भृतम् = सम्वर्धितम् तत्= तादृशम्, यौधिष्ठिरम् = युधिष्ठिरजन्यम्, इदम्=एतत्, क्रोधज्योतिः=कोपतेजः, नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः=नृपसुतायाः = राजपुत्र्याः द्रौपद्या इति भावः, केशा-म्बराणाम्=शिरोरुहवसनानाम् आकर्षणैः = आहरणैः महत्=विशालम् (सत्) कुरुवने=कुरुवंशरूपारण्ये, जृम्भते = प्रकाशते ।। २४ ।।

टिप्पणी—यत्सत्यव्रतेति । सत्यमेव व्रतम् (उपमित समास है) । मन्दी-कृतम्–अमन्दं मन्दं यथा सम्पद्यते तत्कृतमिति मन्दीकृतम् (अभूततद्भावे च्विः) । द्यूतमेव अरणिः (उपमित स०) तेन सम्भृतम् (तृ० त०) । "द्यूतोऽक्षस्त्रिया-मक्षवती कैतवं पण इत्यपि" इत्यमरः । यज्ञ में लकड़ियों को परस्पर रगड़ कर आग उत्पन्न की जाने की प्रथा थी । जिन लकड़ियों का इस कार्य के लिए उप-योग किया जाता था उन्हें ही अरणि कहा जाता है—"निर्मन्थ्यदारुणित्वरणिः" इत्यमरः । यौधिष्ठिरम् = युधिष्ठिरस्येदम् योधिष्ठिरम्—"तस्येदम्" से अण् प्रत्यय हुआ है । प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग तथा उपमा अलङ्कार है । छंद शार्दूलविक्रीडित है ।। २४ ।।

भूला देना भी चाहा गया था, जुआ रूपी अरणि से बढी हुई वही युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि राजकुमारी (द्रौपदी) के केश एवं वस्त्रों के खींचे जाने के कारण विशाल होकर (सम्प्रति) कौरववंशरूपी जङ्गल में भड़क उठी हैं ।। २४ ।।

भीमसेन—(सुनकर, हर्षपूर्वक) बढ़े, आर्य की क्रोधाग्नि बिना किसी अवरोध के खूब बढ़े ।

द्रौपदी—णाह, किं दाणीं एसो पलअजलहरत्थणिदमंसलोद्धोसो क्खणे क्खणे समरदुन्दुही ताडीअदि। (नाथ, किमिदानीमेष प्रलयजलधरस्तनितमांसलोद्घोषः क्षणे क्षणे समरदुन्दुभिस्ताड्यते।)

भीमसेनः—देवि, किमन्यत्। यज्ञः प्रवर्तते।

द्रौपदी—(सविस्मयम्।) को एसो जण्णो। (क एष यज्ञः।)

भीमसेनः—रणयज्ञः तथाहि—

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः।
संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं

भीमसेन इति। जृम्भताम् = वर्धताम्, अप्रतिहतप्रसरम् = अप्रतिहतः = अनवरुद्धः प्रसरः = गतिः यस्य तादृशम्।

द्रौपदीति। प्रलयजलधरस्तनितमांसलोद्घोषकः–प्रलयकालिका ये जलधराः= विनाशकालिकाः ये मेघाः तेषां स्तनितम् = गर्जितम् इव मांसलः = गभीरः उद्घोषः = शब्दः यस्य तादृशः, समरदुन्दुभिः = सङ्ग्रामभेरी।

भीमसेन इति। प्रवर्तते = प्रवर्तमानो भवति, प्रारभ्यत इत्यर्थः।

अन्वयः—वयम्, चत्वारः, ऋत्विजः, (स्मः), सः, भगवान्, हरिः, कर्मोपदेष्टा, नरपतिः, सङ्ग्रामाध्वरदीक्षितः (अस्ति), पत्नी, गृहीतव्रता, (अस्ति), कौरव्याः, पशवः, (सन्ति), प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः, फलम्, (अस्ति),

---

द्रौपदी—नाथ! अभी यह प्रलयकालिक मेघगर्जन की भाँति गम्भीर शब्दवाली रण-भेरी बार-बार क्यों बजाई जा रही है?

भीमसेन—देवि! और क्या? यज्ञ प्रारम्भ हो रहा है।

द्रौपदी—(आश्चर्यपूर्वक) यह कौन सा यज्ञ है?

भीमसेन—रणयज्ञ। जैसे कि—

हम चारो भाई ऋत्विक् (यज्ञकर्त्ता) हैं। वे भगवान् श्रीकृष्ण यज्ञकर्म के उपदेशक (अर्थात् आचार्य) हैं। राजा (युधिष्ठिर) युद्धरूपी यज्ञ में दीक्षा ग्रहण किये हुए (यजमान) हैं। पत्नी (द्रौपदी) व्रतधारण की हुई है। कौरव (बलि के) पशु हैं। प्रिया के तिरस्कारजन्य दुःख का शमन ही (उसका)

राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः ॥ २५ ॥

(एषः), यशोदुन्दुभिः, राजन्योपनिमन्त्रणाय, स्फीतम्, रसति ॥ २५ ॥

व्याख्या—चत्वार इति । वयम् चत्वारः = भीमार्जुननकुलसहदेवा इति चतुःसंख्याका भ्रातरो वयमित्यर्थः, ऋत्विजः = याजकाः, वृताः सन्तो यज्ञकर्त्तारः स्म इत्यर्थः, सः = सन्धिप्रयासशील, इत्यर्थः, भगवान् = ईश्वरः, हरिः = श्रीकृष्णः कर्मोपदेष्टा = कर्त्तव्योपदेशकः, यज्ञस्य आचार्य इति भावः, वर्तत इति शेषः, नरपतिः = राजा, युधिष्ठिर इत्यर्थः, सङ्ग्रामाध्वरदीक्षितः = युद्धयज्ञदीक्षितः, वर्तत इति शेषः, पत्नी = भार्या, द्रौपदीति भावः, गृहीतव्रता = आचरितनियमा, यथा यजमानपत्नी उपवासादिकं व्रतमाचरति तथैवेति भावः, कौरव्याः = कुरुकुलोद्भवाः, दुर्योधनादय इत्यर्थः, पशवः = यज्ञे घातितव्याः जन्तुविशेषा इति भावः, प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः—प्रियायाः = प्रेयस्याः, द्रौपद्याः इत्यर्थः । यः परिभवः = अनादरः तस्माद् यत् क्लेशः = दुःखं तस्य उपशान्तिः = उपशमः, फलम् = परिणामः, यज्ञस्य लाभः इति भावः, (एषः = अयम्) यशोदुन्दुभिः = कीर्तिभेरी, राजन्योपनिमन्त्रणाय—राजन्यानाम् = क्षत्रियाणाम् उपनिमन्त्रणाय = आह्वानाय, स्फीतम् = प्रवृद्धं यथा तथा, सति = शब्दायते ॥ २५ ॥

टिप्पणी—प्रलयजलधरेति । मेघ के गर्जन का नाम स्तनित है— "स्तनितं गर्जितं मेघनिर्घोषो रसितादि चे"त्यमरः ।

चत्वार इति । ऋत्विजः—यजमान धन से जिन आग्नीध्र आदि का यज्ञ में वरण करता है उन्हें ऋत्विक् कहते हैं— "आग्नीध्राद्या धनैर्वार्या ऋत्विजो याजकाश्च ते" इत्यमरः । सङ्ग्रामाध्वरदीक्षितः—सङ्ग्राम एव अध्वरः (उपमित स०) तस्मिन् दीक्षितः (स० त०) । अध्वर यज्ञ को कहते हैं—"यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य में क्रमशः भीमार्जुनादि में ऋत्विक्, कृष्ण में आचार्य, युधिष्ठिर में यजमान, द्रौपदी में यजमानपत्नी तथा कौरवों में यज्ञ-पशु का आरोप होने से रूपकालङ्कार है । शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ २५ ॥

फल है । राजाओं का आह्वान करने के लिए ही यशरूपी दुन्दुभी जोरों से बज रही है ॥ २५ ॥

सहदेवः—आर्य, गच्छामो वयमिदानीं गुरुजनानुज्ञाता विक्रमानुरूपमाचरितुम् ।

भीमसेनः—वत्स, एते वयमुद्यता आर्यस्यानुज्ञामनुष्ठातुमेव (उत्थाय ।) तत्पाञ्चालि, गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलक्षयाय ।

द्रौपदी—(वाष्पं धारयन्ति ।) णाह, असुरसमराहिमुहस्स हरिणो विअ मङ्गलं तुम्हाणं होदु । जं च अम्बा कुन्दी आसासदि तं तुम्हाणं होदु । (नाथ असुरसमराभिमुखस्य हरेरिव मङ्गलं युष्माकं भवतु । यच्चाम्बा कुन्त्याशास्ते तद्युष्माकं भवतु ।)

उभौ—प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनमस्माभिः ।

द्रौपदी—अण्णं च णाह, पुणोवि तुम्हेहि समरादो आअच्छिअ अहं समास्सासइदव्वा । (अन्यच्च नाथ, पुनरपि युष्माभिः समरादागत्याहं समाश्वासयितव्या ।)

सहदेव इति । गुरुजनानुज्ञाताः=गुरुजनैः = श्रेष्ठजनैः अनुज्ञाताः = प्राप्तानुमतयः, विक्रमानुरूपम् = पराक्रमयोग्यम् ।

द्रौपदीति । असुरसमराभिमुखस्य=दैत्ययुद्धसन्मुखस्य, आशास्ते=आशां करोति।

उभाविति=प्रतिगृहीतम्=स्वीकृतम्, मङ्गलवचनम्=शुभाशंसनम् ।

द्रौपदीति । समरात् = युद्धात्, आगत्य = प्रत्यावर्त्य, समाश्वासयितव्या= सान्त्वनां प्रापयितव्या ।

सहदेव—आर्य ! अब हमलोग भी गुरुजनों की अनुमति लेकर अपने पराक्रम के अनुरूप कार्यों के सम्पदानार्थ चलते हैं ।

भीमसेन--वत्स ! हम सब महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार ही हैं । (उठकर) पाञ्चालपुत्री ! अब हमलोग कुरुवंश का विनाश करने के लिए चलते हैं ।

द्रौपदी--(आँसू भर कर) स्वामी ! दानवों के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान करनेवाले भगवान् विष्णु के समान आप लोगों का मङ्गल हो और माता कुन्ती आप लोगों के लिए जैसी मंगल-कामना करती हैं वैसा ही हो ।

दोनों—आपकी शुभ कामना को हमलोगों ने स्वीकार किया ।

द्रौपदी--स्वामी ! आपलोग युद्ध से लौटकर मुझे फिर से आश्वस्त करें ।

भीमसेनः—ननु पाञ्चालराजतनये, किमद्याप्यलीकाश्वासनया ।
भूयः परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम् ।
अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ॥ २६ ॥

द्रौपदी—णाह, मा क्खु जण्णसेणीपरिहवुद्दीविदकोवाणला अणवेक्खिदसरीरा सञ्चरिस्सध । जदो अप्पमत्तसञ्चरणिज्जाइं रिउबलाइं सुणीअन्ति ।

(नाथ ! मा खलु याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानला अनवेक्षितशरीराः सञ्चरिष्यथ । यतोऽप्रमत्तसञ्चरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते ।)

भीमसेन इति ! अलीकाश्वासनया = व्यर्थसान्त्वनयेत्यर्थः ।

अन्वयः—अनिःशेषितकौरव्यम्, परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्, वृकोदरम्, भूयः, न, पश्यसि ? ॥ २६ ॥

व्याख्या—भूयः परिभवेति । अनिःशेषितकौरव्यम् = अनिःशेषिताः = असमापिता अविनाशिता इत्यर्थः, कौरव्याः = कौरवाः येन तादृशः तम्, परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्—परिभवस्य = प्रियायाः केशवस्त्राकर्षणरूपतिरस्कारस्य क्लान्त्या = दुःखेन लज्जया = व्रीडया च विधुरितम् = उदस्तम् आननम् = मुखम् यस्य तम्, वृकोदरम् = भीमसेनम्, मामिति भावः, भूयः = पुनः, न = नहि, पश्यसि = द्रक्ष्यसीत्यर्थः ॥ २६ ॥

टिप्पणी—भूय इति । न पश्यसि—यहाँ पर "वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा" से वर्त्तमानसामीप्य होने के कारण भविष्यदर्थ में लट आया है । प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ २६ ॥

भीमसेन—पाञ्चाली ! अब इस मिथ्या आश्वासन से क्या ?

कौरवों का संहार न किए हुए (अतः) अपमान से उत्पन्न ग्लानि तथा लज्जा से ग्लान मुखवाले भीम को तुम पुनः नहीं देखोगी (अर्थात् यदि कौरवों का विनाश मैं न कर सका तो तुम्हें फिर अपना मुँह मैं नहीं दिखाऊँगा ।) ॥२६॥

द्रौपदी—(मुझ) याज्ञसेनी के तिरस्कार के कारण प्रज्वलित क्रोधाग्निवाले आपलोग (अपने) शरीर की उपेक्षा करके (युद्ध में) विचरण न करेंगे क्योंकि बहुत सावधानी के साथ शत्रु-सैन्य के बीच विचरण करना चाहिए—ऐसा सुना जाता है ।

भीमसेनः—अयि सुक्षत्रिये,

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के
मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ ।
स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे
संग्रामैकार्णवान्तःपयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥ २७ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

द्रौपदीति । याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानलाः—याज्ञसेन्याः = द्रौपद्याः, परिभवात् = तिरस्कारात् उद्दीपितः = प्रज्वलितः कोपानलः = क्रोधाग्निः येषां ते, अनवेक्षितशरीराः—अनवेक्षितानि = उपेक्षितानि शरीराणि=देहाः यैस्ते, अप्रमत्तसञ्चरणीयानि—अप्रमत्तम् = न, प्रमादः = अनवधानता यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा, सावधानतयेत्यर्थः, सञ्चरणीयानि = सञ्चरणयोग्यानि, रिपुबलानि= शत्रुसैन्यानि ।

अन्वयः—अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के, मग्नानाम्, स्यन्दनानाम्, उपरि, कृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ, स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे, सङ्ग्रामैकार्णवान्तःपयसि, विचरितुम्, पाण्डुपुत्राः पण्डिताः ॥ २७ ॥

व्याख्या—अन्योन्येति । अन्योन्यास्फालेत्यादिः—अन्योन्यम् = परस्परम् यः आस्फालः = संघर्षः तेन भिन्नाः = विदीर्णाः ये द्विपाः = करिणः, तेषां रुधिरवसामांसमस्तिष्कानि = रक्तमेदोमांसकपालानि, तेषां पङ्के = कर्दमे, मग्नानाम् = पतितानाम्, स्यन्दनानाम् = रथानाम्, उपरि = आश्रये इत्यर्थः, कृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ—कृतः = विहितः, पदन्यासः = चरणविन्यासः येन, तादृशः विक्रान्तः = पराक्रमयुक्तः पत्तिः = पदातिः यस्मिन् तादृशे, स्फीतासृक्पा-

भीमसेन—अरी सुक्षत्रिये !

पारस्परिक संघर्ष के कारण आहत हाथियों के रक्त, वसा, मांस तथा कपाल रूपी कीचड़ में फँसे हुए रथों के ऊपर पाँव रखकर वीरता प्रदर्शित कर

नेत्यादिः—स्फीतम् = प्रवृद्धम् यत् असृक् = रक्तम् तस्य पानगोष्ठीपु=आचमन-सभासु, रसन्त्यः = नदन्त्यः अशिवाः = अशुभरूपाः याः शिवाः = शृगाल्यः ताः एव तूर्याणि = मर्दलानि, तैः नृत्यन्तः = नृत्यं कुर्वन्तः कबन्धाः = अपमूर्ध-शरीराः यस्मिन् तादृशे, सङ्ग्रामैकार्णवान्तःपयसि—सङ्ग्रामः = समरः एव एकः = मुख्यः अर्णवः = समुद्रः तस्य अन्तःपयसि = मध्यसलिले, विचरितुम् = सञ्चरितुम्, पाण्डुपुत्राः = पाण्डुसुताः, युधिष्ठिरादय इति भावः, पण्डिताः = निपुणाः, सन्तीतिशेषः ॥ २७ ॥

टिप्पणी—अन्योन्येति । स्यन्दनानाम्—स्यन्दन रथ को कहते हैं—"याने चक्रिणि युद्धार्थे शताङ्गः स्यन्दनो रथ" इत्यमरः । विक्रान्तपत्तिः—पैदल सेना का नाम पत्ति है—"पदाति-पत्ति-पदग-पादातिक-पदाजयः । पदृगश्च पदिकश्च" इत्यमरः । स्फीतासृक्—असृक् का अर्थ रक्त होता है—"रुधिरोऽसृग्लोहितास्ररक्त—क्षतज-शोणितम्" इत्यमरः । शिवा—शृगाली को शिवा कहते हैं—"स्त्रियां शिवाभूरिमायगोमायुमृगधूर्तकाः" इत्यमरः ।

कबन्धाः—सिर कटे किन्तु तड़पते हुए धड़ का नाम कबन्ध है—"कबन्धोऽस्त्रीक्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम्" इत्यमरः । सङ्ग्रामैकार्णवः—अर्णव समुद्र का पर्यायवाची है—"उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य में उपमा तथा रूपक अलङ्कार है । स्रग्धरा छन्द है ॥ २७ ॥

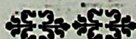
इति "कमलेश्वरी" व्याख्यायां वेणीसंहारनाटकस्य प्रथमोऽङ्कः ।



रही पैदल सेनावाले, अत्यधिक रक्त की पान गोष्ठी में अशुभ शब्द कर रही शृगालियों रूपी तुरहियों (की आवाज) से नाच रहे कबन्ध (विना सर के धड़) वाले, एकमात्र युद्धरूपी समुद्र के मध्यजल में विचरण करने के लिए (हम) पाण्डु-पुत्र निपुण हैं ॥ २७ ॥

(सब निकल जाते हैं ।)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥



द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कञ्चुकी ।)

कञ्चुकी—आदिष्टोऽस्मि महाराजदुर्योधनेन—'विनयंधर, सत्वरं गच्छ त्वम् । अन्विष्यतां देवी भानुमती । अपि निवृत्ता अम्बायाः पादवन्दनसमयान्न वेति । यतस्तां विलोक्य निहताभिमन्यवो राधेयजयद्रथप्रभृतयोऽस्मन्सेनापतयः समरभूमिं गत्वा सभाजयितव्याः' इति । यन्मया द्रुततरं गन्तव्यमिति । अहो प्रभविष्णुता महाराजस्य, यन्मम जरसाभिभूतस्य मर्यादामात्रमेवावरोधव्यापारः अथवा किमिति जरामुपालभेयं, यतः सर्वान्तःपुरचारिणामयमेव व्यावहारिको वेषश्चेष्टा च । तथाहि—

कञ्चुकीति । सत्वरम् = शीघ्रम्, अन्विष्यताम् = मृग्यताम्, निवृत्ता = परावृत्ता: अम्बाया:=मातुः, गान्धार्याः इति भावः, पादवन्दनसमयात्=चरणाभिवन्दनरूपाऽऽचारात् । निहताभिमन्यवः—निहतः = मारितः अभिमन्युः = अर्जुनसुतः यैस्ते, सभाजयितव्याः = अभिनन्दनीयाः, सत्कर्त्तव्याः इत्यर्थः । द्रुततरम् = अतिशीघ्रम् । प्रभविष्णुता = प्रभावशालिता, जरसाभिभूतस्य = जरसा=वार्द्धक्येन अभिभूतस्य = ग्रस्तस्य, मर्यादामात्रमेव = शिष्टाचारमात्रमेव, अवरोधव्यापारः=

(तत्पश्चात् कञ्चुकी प्रवेश करता है ।)

कञ्चुकी—महाराज दुर्योधन के द्वारा मुझे आज्ञा दी गई है—"विनयन्धर ! तुम जल्दी जाओ । महारानी भानुमती का पता लगाओ । माताजी (गान्धारी) चरण वन्दन करके वे लौटीं या नहीं क्योंकि उन्हें देखकर मुझे युद्धभूमि में जाकर अभिमन्यु का वध करनेवाले कर्ण, जयद्रथ आदि अपने सेनापतियों को सम्मानित करना है" इसलिए मुझे अतिशीघ्र चलना चाहिए । महाराज का प्रभाव भी बहुत है जो कि बुढ़ापे से जर्जर मेरे जैसे व्यक्ति का अन्तःपुर में रहकर कार्य करना मर्यादा की रक्षामात्र है । अथवा बुढ़ापे को क्यों उलाहना दूँ ? क्योंकि अन्तःपुर के सभी कर्मचारियों की वेश-भूषा और क्रिया-कलाप तो व्यवहारानुरूप ही हुआ करते हैं । जैसा कि—

नोच्चैः सत्यपि चक्षुषाक्षितुमलं श्रुत्वापि नाकर्णितं
शक्तेनाप्यधिकार इत्यधिकृता यष्टिः समालम्बिता ।
सर्वत्र स्खलितेषु दत्तमनसा जातं तथा नाद्धतं
सेवान्धीकृतजीवितस्य जरसा किं नाम यन्मे कृतम् ।। १ ।।

अन्तःपुरकार्यम् । जराम्=वृद्धावस्थाम्, उपालभेयम्=आक्षिपेयम् । व्यावहारिकः=व्यवहारसम्बन्धी, व्यवहारानुरूप इति भावः ।

टिप्पणी-कञ्चुकीति । पादवन्दनसमयात्–यहाँ पर समय शब्द कालवाचक नहीं अपि तु आचारबोधक है । --"समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः" इत्यमरः । जरसाऽभिभूतस्य--यहाँ पर कञ्चुकी ने अपनी वृद्धावस्था का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह उसके अनुरूप ही है । वृद्धावस्था की शिकायत करना कञ्चुकी की प्रमुख विशेषताओं में से एक है--"जरावैक्लव्ययुक्तेन विशेद् गात्रेण कञ्चुकी" । जैसा कि पहले भी कहा गया है; यह अन्तःपुर में विचरण करने वाला सेवक होता है । इसका विस्तृत लक्षण प्रथम अङ्क में दे दिया गया है ।

अन्वयः—चक्षुषि, सति, अपि, उच्चैः, ईक्षितुम्, अलम्, न, श्रुत्वा, अपि, न, आकर्णितम्, शक्तेन, अपि, अधिकारः, इति, अधिकृता, यष्टिः, समालम्बिता, सर्वत्र, स्खलितेषु, दत्तमनसा, मया, उद्धतम्, न जातम्, सेवान्धीकृतजीवितस्य, मे, जरसा, यत्, कृतम् (तत्), किं नाम ? ।। १ ।।

व्याख्या—नोच्चैरिति । चक्षुषि = नयने, सत्यपि=विद्यमानेऽपि, उच्चैः=ऊर्ध्वम्, ईक्षितुम् = अवलोकयितुम्, अलम् = पर्याप्तम्, न = नहि, क्षमते इति भावः, श्रुत्वाऽपि=आकर्ण्याऽपि, स्वामिनः कटुवचांसि श्रुत्वापीत्यर्थः, न आकर्णितम्

आँखें होते हुए भी ऊपर की ओर पूरी तरह नहीं देख सकते, सुनकर भी नहीं सुन सकते; समर्थ होते हुए भी राजचिह्न के नाते धारण की गई छड़ी पकड़ी जाती है, हर जगह गलतियों पर ध्यान देता हुआ मैं कभी भी उद्दण्डतापूर्वक नहीं चलता । बुढ़ापे में सेवा के कारण जीवन को सौंप देने वाले मेरे जैसे व्यक्ति के लिए जो कुछ किया है वह क्या किया है ? (अर्थात् यह कोई नई बात नहीं है ।) ।। १ ।।

(परिक्रम्य दृष्ट्वा आकाशे।) विहङ्गिके, अपि श्वश्रूजनपादवन्दनं कृत्वा प्रतिनिवृत्ता भानुमती। (कर्णं दत्त्वा।) किं कथयसि—आर्य, एषा भानुमती देवी पत्युः समरविजयाशंसया निर्वर्तितगुरुजनपादवन्दनाऽद्य-प्रभृत्यारब्धनियमा देवगृहे बालोद्याने तिष्ठतीति। तद्भद्रे, गच्छ त्वमात्म-व्यापाराय यावदहमप्यत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामीति। (परिक्रम्य)

= नैव श्रुतम्, श्रुतमश्रुतमेवेति भावः। शक्तेन = समर्थेन, अपि, अधिकारः = आचार इति भावः, इति = इत्येवम्, अधिकृता = गृहीता, यष्टिः यष्टिका, समालम्बिता = समाश्रिता, सर्वत्र = सर्वकर्मसु, स्खलितेषु = स्खलनेषु, कार्य-प्रच्युतिस्विति भावः, दत्तमनसा = समर्पितहृदयेन, सावधानीभूयेत्यर्थः, मया = कञ्चुकिना, उद्धतम् = अभिमानपूर्वकं यथा स्यात्तथा, न जातम् = न भूतम्, गमने औद्धत्यं न कार्यमिति भावः, सेवान्धीकृतजीवितस्य—सेवया = परिचर्यया अन्धीकृतम् = व्यर्थीकृतम् जीवितम् = जीवनम्, यस्य तादृशस्य, मे = मम, कञ्चुकिन इति भावः, जरसा = वार्द्धक्येन, यत् कृतम् = यदपि कार्यं सम्पादितम्, (तत् = तत्कार्यम्) किं नाम = न किमपीति भावः। वृद्धावस्था नैवोपालम्भ-नीयेति भावः॥ १॥

टिप्पणी—नोच्चैरिति दत्तमनसा—दत्तं मनो येन सः, तेन (बहु०) प्रस्तुत पद्य में विशेषोक्ति एवं काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥१॥

परिक्रम्येति। आकाशे=आकाशे दृष्टिं दत्त्वेत्यर्थः। प्रतिनिवृत्ता=समागता। समरविजयाशंसया = युद्धजयकामनया, निर्वर्तितगुरुजनपादवन्दना—निर्वर्तितम् = सम्पादितम् गुरुजनानाम् = श्रेष्ठजनानाम् पादवन्दनम् = चरणवन्दनम् यया सा, अद्यप्रभृति = अद्यारभ्य, आरब्धनियमा = आरब्धः = प्रारब्धः नियमः = व्रतम्

(घूमकर तथा आकाश की ओर देखते हुए) विहङ्गिके! क्या सास की चरणवन्दना करके भानुमती लौट आई? (कान लगाकर) क्या कहती हो— "आर्य! यह महारानी भानुमती पति की युद्ध-विजय-कामना से गुरुजनों की चरणवन्दना से निवृत्त होकर आज से व्रत धारण करती हुई देवमन्दिर के क्रीडोद्यान में ठहरी हुई है।" इसलिए कल्याणी! जाओ, तुम अपना काम करो। तब तक मैं भी महारानी के सम्बन्ध में महाराज को सूचित करता हूँ!

साधु पतिव्रते, साधु, स्त्रीभावेऽपि वर्तमाना वरं भवती न पुनर्महाराजः। योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु अथवा किंबलवत्सु वासुदेवसहायेषु पाण्डुपुत्रेष्वरिष्वद्याप्यन्तःपुरविहारसुखमनुभवति।. (विचिन्त्य।) इदमपरमयथातथं स्वामिनश्चेष्टितम् कुतः—

यया सा, बालोद्याने = नूतनवाटिकायाम्। आत्मव्यापाराय = स्वकार्याय, अत्रस्थाम् = इहस्थिताम्, उद्यानस्थितामित्याशयः, देवीम् = महिषीम्, भानुमतीमिति भावः, महाराजस्य = दुर्योधनस्येत्यर्थः, निवेदयामि = विज्ञापयामि। पतिव्रते = पातिव्रत्यपरायणे, स्त्रीभावे = स्त्रीत्वे, अपि वर्त्तमाना = स्थिता; स्त्री भवन्त्यपीत्यर्थः, वरम्=श्रेष्ठम्। उद्यतेषु=तत्परेषु, बलवत्सु = शक्तिमत्सु। अयथातथम् = असमीचीनम्, अयुक्तमित्यर्थः।

टिप्पणी—आकाशे = यह "आकाशभाषित" नामक नाट्योक्ति है—"किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते। श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तस्मादाकाशभाषितम्"॥ (सा० द० ६।१४०)। दूसरे किसी पात्र के विना ही बिन कही बात को सुना सा करके "क्या कहते हो ?" ऐसा कहकर जब कोई पात्र अपनी बात कहता है तो उसे "आकाशभाषित" कहते हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में विहङ्गिका के न रहने पर भी कञ्चुकी "किं कथयसि" कहकर मानो उसकी बात को सुन सा रहा हों, ऐसो प्रतीत होता है जो "आकाशभाषित" का उदाहरण है। समरविजयाशंसया–समरे विजयः (सं० त०) तस्य आशंसा तया (ष० त०)॥

(घूमकर) वाह ! प्रतिव्रते ! वाह ! आप स्त्री होकर भी अच्छी हैं महाराज नहीं क्योंकि शक्तिशाली, अथवा शक्तिशाली क्या, जिनके सहायक स्वयं कृष्ण हैं ऐसे, पाण्डव शत्रुओं के युद्ध के लिए सन्नद्ध रहते हुए भी आज भी ये रनिवास में आनन्द लूटने में लगे हुए हैं। (सोचकर) महाराज का यह एक दूसरा अनुचित कार्य है। क्योंकि—

आ शस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने-
स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः।
प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो
बालस्यायमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात् ॥ २ ॥

अन्वयः—आ शस्त्रग्रहणात्, अकुण्ठपरशोः, तस्य, मुनेः, अपि, जेता, अयम्, भीष्मः, पाण्डुसूनुभिः, शरैः, शायितः, (तत्), अस्य, तापाय, न, (किन्तु), प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य, एकाकिनः, च, अरातिलूनधनुषः, बालस्य, अभिमन्योः, वधात्, (अयम्), प्रीतः, अस्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—आशस्त्रेति। आशस्त्रग्रहणात् = आयुधग्रहणमारभ्य, अकुण्ठपरशोः = अप्रतिहतकुठारस्य, तस्य = प्रख्यातस्येत्यर्थः, मुनेः = ऋषेः, परशुरामस्येत्यर्थः, अपि, जेता = विजेता, अयम् = एषः, भीष्मः = गाङ्गेयः, भीष्मपितामह इति भावः, पाण्डुसूनुभिः = पाण्डुसुतैः, शरैः = बाणैः, शायितः = स्वापितः, युद्धभूमौ निपातित इत्यर्थः, तदिति शेषः, अस्य = मत्स्वामिनो दुर्योधनस्येत्यर्थः, तापाय = कष्टाय, न = नहि, (किन्तु) प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य—प्रौढाः = प्रवृद्धाः, प्राप्तवयस्काः च ते = अनेके = बहवः धनुर्धराः = चापधारिणः ते एव अरयः = शत्रवः तेषां विजयेन = जयेन श्रान्तः = श्लथः तस्य, एकाकिनः = असहायस्येत्यर्थः, च = तथा, अरातिलूनधनुषः—अरातिभिः = शत्रुभिः लूनम् = छिन्नं धनुः = कार्मुकम् यस्य तस्य, बालस्य = बालकस्य, अप्राप्ततरुण्यस्येत्यर्थः, अभिमन्योः = अर्जुनतनयस्य, वधात् = हननात् (अयम्), प्रीतः = प्रसन्नः, अस्तीति शेषः ॥ २ ॥

शस्त्रग्रहण करने के समय से लेकर अकुण्ठित कुठारवाले उस (प्रसिद्ध) ऋषि (परशुराम) के विजेता ये भीष्म पाण्डुपुत्रों के द्वारा बाणों (के प्रहार) से सुला दिये गये पर वह इन (दुर्योधन) के दुःख का कारण न बना (किन्तु) अनेक प्रौढ धनुर्धारी शत्रुओं पर विजय प्राप्व करने के कारण थके हुए, अकेले, तथा शत्रु द्वारा काटे गये धनुष वाले बालक अभिमन्यु के वध से (ये महाराज दुर्योधन) प्रसन्न हैं ॥ २ ॥

सर्वथा दैवं नः स्वस्ति करिष्यति तद्यावदत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः ।)

विष्कम्भकः

(ततः प्रविशत्यासनस्था देवी भानुमती, सखी चेटी च ।)

टिप्पणी—प्रौढ—"प्रवृद्धं प्रौढमेधितम्" इत्यमरः। अराति—यह शत्रु का पर्यायवाची है—"रिपौ वैरि······ अभिघातिपराऽरातिप्रत्यर्थिपरिपन्थिनः ।।" इत्यमरः । लूञ् छेदने + क्त = लूनम् । प्रस्तुत पद्य से यह ध्वनित होता है कि भीष्म जैसे योद्धा के पतन से दुर्योधन को तो दुःख होना चाहिए पर वह दुःखी नहीं दीखता पर अनेक योद्धाओं द्वारा मिलकर जो असहाय बालक अभिमन्यु का वध किया गया इससे वह बहुत प्रसन्न है । अर्थात् जहाँ उसे दुःख होना चाहिए वहाँ उसे दुःख नहीं होता और जहाँ उसे प्रसन्नता नहीं होनी चाहिए वहाँ उसे प्रसन्नता हो रही है जो सर्वथा अनुचित है । प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति तथा उत्तरार्द्ध में विभावना अलङ्कार है । शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ २ ॥

सर्वथेति । दैवम् = भाग्यम्, नः = अस्माकम्, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, स्वस्ति = कल्याणम्, करिष्यति = विधास्यति ।

टिप्पणी–**विष्कम्भक**–पाँच अर्थोपक्षेपकों में से विष्कम्भक भी एक अर्थोपक्षेपक है। भूत और भविष्यत् की कथाओं का सूचक तथा कथा का संक्षेप करने वाला विष्कम्भक कहलाता है। अङ्क के प्रारम्भ में इसकी स्थिति हुआ करती है। यह शुद्ध तथा मिश्र के भेद से दो प्रकार का होता है । जहाँ एक ही मध्यमपात्र या दो मध्यमपात्रों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है वह शुद्ध विष्कम्भक तथा जहाँ अधम एवं मध्यम पात्रों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है वहाँ मिश्र-विस्कम्भक होता है । साहित्यदर्पण के अनुसार इसका लक्षण है—

दैव ही सब प्रकार से हम लोगों का कल्याण करेंगे । तो तब तक यहाँ ठहरी हुई महारानी के विषय में महाराज को सूचना दे दूँ । (निकल जाता है ।)

विष्कम्भक समाप्त ।

(उसके बाद आसन पर बैठी हुई देवी भानुमती; सखी तथा चेटी प्रवेश करती है ।)

सखी—सहि भाणुमदि, कीस दाणिं तुमं सिविणअ दंसणमेत्तस्स किदे अहिमाणिणो महाराअदुज्जोहणस्स महिसी अविअ एव्वं विअलिअधीरभावा अतिमेत्तं संतप्पसि! (सखि भानुमति, कस्मादिदानीं त्वं स्वप्नदर्शनमात्रस्य कृतेऽभिमानिनो महाराजदुर्योधनस्य महिषी भूत्वैवंविगलितधीरभावातिमात्रं संतप्यसे)

चेटी—भट्टिणि, सोहणं भणादि सुवअणा। सिविणअन्तो जणा किं ण क्खु प्पलवदि। (भट्टिनि, शोभनं भणति सुवदना। स्वपञ्जनः किं न खलु प्रलपति।)

भानुमती—हञ्जे, एव्वं णेदं। किंणु एदं सिविणअं अदिमेत्तं अकुसलदंसणं मे पडिभादि। (हञ्जे, एवमेतत्। किन्त्वयं स्वप्नोऽतिमात्रमकुशलदर्शनो मे प्रतिभाति।)

"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भः आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात्सतु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥"(सा०द०६।५५–५६)

प्रस्तुत सन्दर्भ में शुद्ध विष्कम्भक है।

सखीति। स्वप्नदर्शनमात्रस्य कृते = स्वप्नावलोकनमात्रकारणेन, महिषी = कृताऽभिषेका राज्ञी, विगलितधीरभावा–विगलितः = विनष्टः धीरभावः = धैर्यं यस्याः सा, धैर्यहीनेत्यर्थः, अतिमात्रम् = अत्यधिकम्, संतप्यसे = क्लिश्यसे।

चेटीति। भट्टिनि = स्वामिनि! भणति = कथयति, स्वपन् = शयानः, प्रलपति = असम्बद्धं वचो भाषत इत्यर्थः।

भानुमतीति। अकुशलदर्शनः = अमङ्गलसूचकः, प्रतिभाति=प्रतीयते।

सखी—सखी भानुमती! तुम अभिमानी महाराज दुर्योधन की पटरानी होकर भी केवल स्वप्न देखने से ही अधीर होकर क्यों सन्तप्त हो रही हो?

चेटी—स्वामिनी! सुवदना ठीक ही कह रही है। सोया हुआ व्यक्ति क्या नहीं बड़बड़ाता?

भानुमती—अरी, यह तो ठीक है लेकिन यह स्वप्न मुझे बहुत अमङ्गलसूचक प्रतीत हो रहा है।

सखी—जइ एव्वं ता कहेदु पिअसही जेण अह्मेवि पडिट्ठावअन्तीआ प्पसंसाए देवदासकित्तणेण अ पडिहडिस्सामा। (यद्येवं तत्कथयतु प्रियसखी। येनावामपि प्रतिष्ठापयन्त्यौ प्रशंसया देवतासंकीर्तनेन च परिहरिष्याव:)

चेटी—देवि एव्वं णेदं। अकुसलदंसणावि। सिविणआप्पसंसाए कुशलपरिणामा होन्ति ति सुणीअदि। (देवि, एवमेतत्। अकुशलदर्शना अपि स्वप्ना: प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्तीति श्रूयते।)

भानुमती—जइ एव्वं ता कहइस्सम्। अवहिदा होध (यद्येवं तत्कथयिष्ये। अवहिते भवतम्।)

सखी—कहेदु पिअसही (कथयतु प्रियसखी।)

भानुमती—मुहुत्तअं चिट्ठ जाव सव्वं सुमरिस्सम्। (इति चिन्तां नाटयति।) (मुहूर्तं तिष्ठ यावत्सर्वं स्मरिष्यामि।)

टिप्पणी—हञ्जे। चेटी के सम्बोधन के लिए इसका प्रयोग किया जाता है—"हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वानं नीचां चेटीं सखीम्प्रति।" इत्यमर:।

सखीति। एवम् = अकुशलदर्शन:, प्रियसखी = भानुमती, आवामपि=सखीचेट्यावपि, प्रतिष्ठापयन्त्यौ = अशुभस्वप्नं शुभं सम्पादयन्त्यौ, देवतासङ्कीर्तनेन = देवस्तुत्या, परिहरिष्याव: = निवर्तनं करिष्याव:, अमङ्गलमिति शेष:।

चेटीति। कुशलपरिणामा: = मङ्गलान्ता:, मङ्गलसम्पादका इत्यर्थ:।

टिप्पणी—चेटीति। कुशलपरिणामा:—कुशलमेव परिणाम: येषां ते (बहु०)

भानुमतीति। अवहिते = सावधाने, (द्विवचनेरूपम्)।

सखी—यदि ऐसा है तो प्रिय सखी कहें जिससे हम दोनों धार्मिक-कथा तथा देवस्तुति द्वारा (उसका) परिहार करें।

चेटी—महारानी ! यह ऐसा ही है। अमङ्गलसूचक स्वप्न भी देवसङ्कीर्तनादि से मङ्गलकारक हो जाते हैं—ऐसा सुना जाता है।

भानुमती—यदि ऐसा है तो कहूँगी। तुम दोनों सावधान हो जाओ।

सखी—कहें प्रियसखी !

भानुमती—क्षण भर रूको जब तक सब स्मरण कर लूं। यह कहकर चिन्तन करने का अभिनय करती है।)

(ततः प्रविशति दुर्योधनः कञ्चुकी च ।)

दुर्योधनः—सूक्तमिदं कस्यचित् ।

गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः ।
करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ॥ ३ ॥

येनाद्य द्रोणकर्णजयद्रथादिभिर्हतमभिमन्युमुपश्रुत्य समुच्छ्वसितमिव नश्चेतसा ।

कञ्चुकी—देव, मेवमतिदुष्करमाचार्यस्य शस्त्रप्रभावात् । कर्णजयद्रथयोर्वा का नामात्र श्लाघा ।

अन्वयः—अपकारिणाम्, गुप्तया, वा, साक्षात्, महान्, (वा), अल्पः, स्वयम्, (वा), अन्येन, कृतः, अपकारः, महतीम्, प्रीतिम्, करोति ॥ ३ ॥

व्याख्या—गुप्त्येति । अपकारिणाम्=अहितकारिणाम्, शत्रूणामिति भावः, गुप्त्या = निभृतम्, वा=अथवा, साक्षात्=प्रत्यक्षम्, महान्=विपुलः (वा), अल्पः= लघुः, स्वयम्=आत्मना, (वा), अन्येन = इतरेण, कृतः = विहितः, अपकारः = अहितम्, महतीम् = विपुलाम्, प्रीतिम् = प्रसन्नताम् करोति = सम्पादयति ॥३॥

टिप्पणी—गुप्त्येति । प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ ३ ॥

उपश्रुत्य = अवगम्य, नः = अस्माकम्, चेतसा चित्तेन, समुच्छ्वसितमिव = सोच्छ्वासम् शान्तमित्यर्थः ।

(तत्पश्चात् दुर्योधन तथा कञ्चुकी प्रवेश करते हैं ।)

दुर्योधन—किसी ने ठीक ही कहा है कि—

अपकारियों (शत्रुओं) का, गुप्तरूप से या प्रकटरूप से, बड़ा या छोटा, अपने द्वारा या दूसरे के द्वारा किया गया अपकार अत्यधिक प्रसन्नता को उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

जिससे आज द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि के द्वारा मारे गये अभिमन्यु के विषय में सुनकर हमारे हृदय ने (राहत की) सांस ली है (अर्थात् हमारा हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो रहा है ।)

कञ्चुकी—महाराज ! आचार्य (द्रोण) के शस्त्रप्रभाव के लिए यह कोई दुःसाध्य कार्य नहीं था । तो इसमें कर्ण या जयद्रथ की कैसी प्रशंसा ?

राजा—विनयन्धर, किमाह भवान् एको बहुभिर्बालो लूनशरासनश्च निहत इत्यत्र का श्लाघा कुरुपुङ्गवानाम्। तदत्र न खलु कश्चिद्दोषः। मूढ पश्य—

हते जरति गाङ्गेये पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
या श्लाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति ॥ ४ ॥

कञ्चुकीति। आचार्यस्य = द्रोणाचार्यस्येत्यर्थः, शस्त्रप्रभावात् = आयुधसामर्थ्यात्, इदम्=अभिमन्युहननमिति भावः, न, अतिदुष्करम्=अतिदुःसाध्यम्।

राजेति। लूनशरासनः=छिन्नकोदण्डः, निहतः=मारितः, कुरुपुङ्गवानाम् = कौरवश्रेष्ठानाम्।

टिप्पणी—राजेति। लूनशरासनः— लूनः शरासनः यस्य सः (बहु०)।

अन्वयः—शिखण्डिनम्, पुरस्कृत्य, जरति, गाङ्गेये, हते, (सति), पाण्डुपुत्राणाम्, या, श्लाघा, सा, एव, अस्माकम्, (अपि), भविष्यति ॥ ४ ॥

व्याख्या—हते जरतीति। शिखण्डिनम् = शिखण्डिनामानं द्रुपदपुत्रम्, पुरस्कृत्य=युद्धभूमौ अग्रे कृत्वा, जरति=वृद्धे, गाङ्गेये=गङ्गातनये, भीष्मे इति भावः, हते=पातिते सति पाण्डुपुत्राणाम् = पाण्डवानाम्, या = यादृशी, श्लाघा= प्रशंसा अभूदिति शेषः, सा=तादृशी, एव, तथैवेति भावः, अस्माकम् = कौरवाणाम्, अपीति शेषः, भविष्यति ॥ ४ ॥

टिप्पणी—हत इति। शिखण्डिनम्=शिखण्डी द्रुपद का पुत्र था। उसका जन्म लड़की के रूप में हुआ था। पर बाद में वह तपस्या के कारण पुरुष बन गया। इस प्रकार वह नपुंसक माना जाता था। युद्ध में अर्जुन ने भीष्म को धराशायी करने के लिए उसका उपयोग किया था। शिखण्डी को अपने आगे करके अर्जुन जब युद्धस्थल में भीष्म से लड़ने आया तो भीष्म नपुंसक पर शस्त्र

राजा—विनयन्धर ! क्या कहा आपने—"कटे हुए धनुषवाला अकेला बालक बहुत से (लोगों) द्वारा मारडाला गया इसमें श्रेष्ठ कौरववीरों की क्या प्रशंसा ?" इसमें कोई दोष नही" है। मूर्ख ! देखो—

(युद्धस्थल में) शिखण्डी को आगे करके वृद्ध पितामह का वध करने से जो प्रशंसा पाण्डवों की हुई वही हमलोगों की भी होगी ॥ ४ ॥

कञ्चुकी—(सवैलक्ष्यम् ।) देव, न ममायं सङ्कल्पः किंतु वः पौरुषप्रतीघातोऽस्माभिरनालोचितपूर्व इत्यत एवं विज्ञापयामि ।

राजा—एवमिदम् ।

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम् ।। ५ ।।

प्रहार करना अनुचित समझकर शस्त्रसञ्चालन से विरत हो गया जिसका लाभ अर्जुन ने उठाया और मौका पाते ही उसने अपने बाणों से भीष्म के शरीर को छलनी करते हुए उसे धराशायी कर दिया । इस पद्य में भी पथ्यावक्त्र छन्द ही है ।। ४ ।।

कञ्चुकीति । सवैलक्ष्यम्=सलज्जमित्यर्थः । वः=युष्माकम्, पौरुषप्रतिघातः=पुरुषार्थवैफल्यम्, अनालोचितपूर्वः = अदृष्टपूर्वः, विज्ञापयामि=निवेदयामि ।

अन्वयः—पाण्डुसुतः, संयुगे, स्वबलेन, न, चिरात्, सहभृत्यगणम्, सबान्धवम्, सहमित्रम्, सहानुजम्, ससुतम्, सुयोधनम्, निहन्ति ।। ५ ।।

व्याख्या—सहभृत्यगणमिति । पाण्डुसुतः = पाण्डुपुत्रः, युधिष्ठिर इति भावः, संयुगे=रणे, स्वबलेन=स्वशक्त्या, स्वसेनयेति भावः, न चिरात्=शीघ्रम्, सहभृत्यगणम् = सपरिजनसमूहम्, सबान्धवम्, सबन्धुजनम्, सहमित्रम्=मित्रजनसहितम्, सहानुजम् = लघुभ्रातृभिः सहितं यथा स्यात्तथा, ससुतम् = सपुत्रम्, सुयोधनम्=दुर्योधनम्, निहन्ति = हनिष्यति । अत्र श्रुतात्मश्लाघो दुर्योधनोऽहङ्कारेण विपरीतं ब्रुवन् पाण्डुसुतमिति कर्मपदस्थाने पाण्डुसुत इति कर्तृपदम्, सुयोधन इति कर्तृपदस्थाने सुयोधनमिति कर्मपदं प्रयुक्तवान् ।। ५ ।।

कञ्चुकी—(लज्जा के साथ) महाराज ! मेरा यह अभिप्राय न था पर आपके पुरुषार्थ की विफलता को हमलोगों ने कभी नहीं देखा था इसलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ ।

राजा—यह ऐसा ही (अर्थात् ठीक) है ।

पाण्डुपुत्र (युधिष्ठिर) युद्ध में अपनी शक्ति (सेना) से शीघ्र ही सेवकों, बान्धवों मित्रों, छोटे भाइयों एवं पुत्रों सहित दुर्योधन को मार डालेगा ।। ५ ।।

कञ्चुकी—(कर्णौ पिधाय सभयम् ।) शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम् ।

राजा—विनयन्धर, किं मयोक्तम् ?

कञ्चुकी—

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतं सुयोधनः ॥ ६ ॥

एतद्विपरीतमभिहितं देवेन ।

राजा—विनयन्धर, अद्य खलु भानुमती यथापूर्वं मामनामन्त्र्य वासभवनात्प्रातरेव निष्क्रान्तेति व्याक्षिप्तं मे मनः । तदादेशय तमुद्देशं यत्रस्था भानुमती ।

टिप्पणी—सहभृत्यगणमिति । दुर्योधन आत्मप्रशंसा सुनकर इतना अहङ्कारोन्मत्त हो उठा कि उसे शब्द के सम्यक् प्रयोग का भी ध्यान न रहा । पञ्चम श्लोक में "पाण्डुसुतम्" के स्थान में "पाण्डुसुतः" तथा "सुयोधनः" के स्थान में "सुयोधनम्" का प्रयोग उसने कर दिया जिससे युधिष्ठिर द्वारा स्वयं उसी के मारे जाने की बात उसके मुँह से निकल गई । कञ्चुकी ने इसी श्लोक को सुधार कर पढ़ा । छठे श्लोक में 'पाण्डुसुतम्' तथा 'सुयोधनः" का प्रयोग कर उसने संशोधन कर दिया । प्रस्तुत पद्य ललिता छन्द में निबद्ध है । जिसका लक्षण है—"ससजा विषमे यदा गुरुः सभरास्याल्ललिता समे लगौ" ॥ ६ ॥

राजेति । अनामन्त्र्य = अपरामृश्य, व्याक्षिप्तम् = व्याकुलम्, उद्विग्नमित्यर्थः । उद्देशम् = स्थानम् ।

कञ्चुकी—(कान ढँक कर भयपूर्वक) पाप शान्त हो । अमङ्गल का नाश हो ।

राजा—विनयन्धर ! क्या मैंने कहा ?

कञ्चुकी—दुर्योधन अपने बल से सेवकों, मित्रों, छोटे भाइयों एवं पुत्रों सहित पाण्डुपुत्र (युधिष्ठिर) को युद्ध में मार डालेगा ॥ ६ ॥

इसे उलटा ही महाराज ने कह दिया था ।

राजा—विनयन्धर ! आज भानुमती पहले की भाँति मुझसे बिना परामर्श किये ही प्रातःकाल ही निवासगृह से चल पड़ी जिससे मेरा मन व्याकुल है । इसलिए तुम वह स्थान बतलाओ जहाँ भानुमती गई है ।

कञ्चुकी—इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

कञ्चुकी—(पुरोवलोक्य । समन्ततो गन्धमाघ्राय ।) देव, पश्य, पश्य, एतत्तुहिनकणशिशिरसमीरणोद्वेल्लितवृन्तबन्धुरशेफालिकाविरचितकुसुमप्रकरम् ईषदालोहितमुग्धवधूकपोलपाण्डुफलिनीविजितश्यामलतासौभाग्याम् उन्मीलितबहुलकुन्दकुसुमसुरभिशीतलं प्रभातकालरमणीयमग्रतस्ते बालोद्यानम् । तदवलोकयतु देवः । तथाहि—

कञ्चुकीति । तुहिनकणेत्यादिः—तुहिनस्य = हिमस्य कणैः = लेशैः, बिन्दुभिरित्यर्थः, शिशिरः = शीतलः यः समीरः = पवनः तेन उद्वेलितम् = प्रकम्पितम् यद् वृन्तम् = प्रसवबन्धनम् तेन बन्धुरशेफालिका = निम्नोन्नतनिर्गुण्डी तया विरचितः कुसुमप्रकरः = पुष्पसमूहः यत्र तादृशम्, ईषदालोहितेत्यादिः—ईषत् = स्वल्पम् आलोहिताः = आरक्ताः ये मुग्धवधूनाम् = सलज्जस्त्रीणाम् कपोलाः = गण्डप्रदेशाः तद्वत् पाण्डुः = पाण्डुरा, फलिनी = पियङ्गुः तया विजितम् = अधीनीकृतम्, श्यामलतानाम् = सोमलतानाम् सौभाग्यम् = सौन्दर्यम् यत्र तादृशम्, उन्मीलितेत्यादिः = उन्मीलितानि = विकसितानि बहुलानि = बहूनि कुन्दकुसुमानि = कुन्दपुष्पाणि तैः सुरभि = सुगन्धितम् अत एव शीतलम् = शिशिरम्,

कञ्चुकी—इधर से, इधर से महाराज (आवें) ।

(दोनों घूमते हैं)

कञ्चुकी—(सामने देखकर और चारों ओर गन्ध सूँघकर) महाराज ! देखिये, देखिये—ओस के कणों से शीतल वायु द्वारा हिलाये गये वृन्तों से गिरे हुए शेफालिका पुष्पों ने पुष्पों की ढेर सी लगा दी है जिसमें ऐसा, सलज्ज (या भोलीभाली) वधुओं के किञ्चित् लाल-लाल कपोल प्रदेश के समान पाण्डुर पियङ्गु (मेंहदी) द्वारा जीत लिया गया है । सोमलता का सौन्दर्य जिसमें ऐसे खिले हुए प्रचुर कुन्द-पुष्पों से सुगन्धित तथा शीतल एवं प्रातःकाल में मनोहर (दीखनेवाला) यह बालोद्यान आपके समक्ष है । तो महाराज (इसे) देखें । जैसा कि—

प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः
पुष्पैः समं निपतिता रजनीप्रबुद्धैः।
अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध-
संसूचितानि कमलान्यलयः पतन्ति ॥ ७ ॥

प्रभातकालरमणीयम्—प्रभातकाले = प्रातःकाले रमणीयम् = मनोरमम्, बालोद्यानम् = नूतनारामः, अग्रतः = अग्रे ।

टिप्पणी—वृन्त—"वृन्तं प्रसवबन्धनम्" इत्यमरः,। बन्धुर—"बन्धुरं तून्नतानतम्" इत्यमरः। पाण्डुर—"हरिणः पाण्डुरः" इत्यमरः। पियङ्गु—"प्रियङ्गुः फलिनीफली" इत्यमरः। श्यामलता—"श्यामासोमलतानिरोरि"ति हैमः। सौभाग्य—"सुभगः सुन्दरः—प्रिये" इति विश्वः।

अन्वयः—रजनीप्रबुद्धैः, प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः, पुष्पैः, समम्, निपतिताः, अलयः, अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्धसंसूचितानि, कमलानि, पतन्ति ॥ ७ ॥

व्याख्या—प्रालेयेति। रजनीप्रबुद्धैः—रजन्याम् प्रबुद्धानि = प्रस्फुटितानि तैः, प्रालेयेत्यादिः—प्रालेयेन=हिमेन मिश्रः = सम्पृक्तः मकरन्दः = पुष्परसः तेन करालाः = नतोन्नताः कोशाः = मध्यभागाः येषां तादृशैः, पुष्पैः = कुसुमैः, समम् = साकम्, निपतिताः = प्रच्युताः, अलयः = मधुकराः, अर्कांशुभिन्नेत्यादिः अर्कस्य = भानोः अंशुभिः = किरणैः भिन्नाः = प्रस्फुटिताः ये मुकुलाः = कुड्मलाः, कलिका इत्यर्थः। तेषाम् उदराणाम् = मध्यभागानाम् यः सान्द्रः = निविडः, तीव्र इति यावत्, गन्धः = सुरभिः तेन संसूचितानि = अवगतानि, कमलानि = पद्मानि, पतन्ति = गच्छन्ति, वेगेन गच्छन्तीति भावः ॥ ७ ॥

टिप्पणी—प्रालेयमिश्रेति। प्रस्तुत पद्य में तात्पर्यालङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है ॥ ७ ॥

रात्रिकाल में खिले हुए हिमकणमिश्रित पुष्परस से विषम मध्यभाग वाले फूलों के साथ गिरे हुए भौंरे, सूर्य की किरणों से खिली हुई कलियों के अन्तर्भाग की तीव्र गन्ध से प्रतीत होने वाले कमलों पर गिर रहे हैं ॥ ७ ॥

राजा—(समन्तादवलोक्य ।) विनयन्धर, इदमपरममुष्मिन्नुषसि रमणीयतरम् । पश्य—

जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै-
र्भाभिर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः ।
स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागा
मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः ॥ ८ ॥

अपरम् = अन्यम्, द्वितीयमित्यर्थः, अमुष्मिन् = एतस्मिन्, उषसि = प्रभातकाले, रमणीयतरम् = सुमनोहरम् ।

अन्वयः—जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टैः, भानोः, भाभिः, स्पृश्यमानाः, (अत एव), विबुद्धाः, नृपतयः, इव, एते, द्विरेफाः, घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागाः, (सन्तः), स्त्रीभिः, सार्धम्, विकचनलिनीगर्भशय्याम्, मुञ्चन्ति ।८।

व्याख्या—जृम्भेति । जृम्भारम्भेत्यादिः—जृम्भायाः=विकासस्य आरम्भः= उपक्रमः तेन प्रविततानि = विस्तृतानि यानि दलानि=पत्राणि तेषाम् उपान्ताः= समीपवर्तिभागाः ते एव जालानि = वातायनच्छिद्राणि तैः प्रविष्टाः, तैः, भानोः = सूर्यस्य, भाभिः = किरणैः, स्पृश्यमानाः = छुप्यमानाः (अत एव), विबुद्धाः =

राजा—(चारों ओर देखकर) विनयन्धर ! इस प्रभातकाल में यह दूसरा (दृश्य) और अधिक सुन्दर है । देखो—

खिलना प्रारम्भ होने पर फैली हुई पंखुड़ियों के छोररूपी झरोखों से होकर अन्दर प्रविष्ट हुई सूर्यकिरणों के संस्पर्श से जगे हुए ये भौंरे, जिनका अङ्गराग तीव्रगन्ध से कुछ-कुछ परिलक्षित हो रहा है, अपनी स्त्रियों के साथ प्रस्फुटित कमलिनी के मध्यभागरूपी शय्या को राजाओं के समान त्याग रहे हैं (अर्थात् जिस प्रकार पुष्पों का विकास प्रारम्भ होने पर फैली हुए पंखुड़ियों की छोरों के समान झरोखों में से होकर अन्दर प्रविष्ट हुई सूर्यकिरणों (या सेवकों के हाथों) के संस्पर्श से जगे हुए और जबर्दस्त रात्रिविहार के कारण (मिटे हुए अतः) थोड़ा-थोड़ा परिलक्षित होने वाले अङ्गराग (उबटन) से युक्त राजा लोग अपनी स्त्रियों के साथ कमलपुष्परचित शय्या को छोड़ते हैं—उसी प्रकार छोड़ रहे हैं) ॥ ८ ॥

कञ्चुकी—देव, नन्वेषा भानुमती सुवदनया तरलिकया च सहोपविष्टा तिष्ठति। तदुपसर्पतु देवः।

राजा—(दृष्ट्वा।) आर्य विनयन्धर, गच्छ त्वं साङ्ग्रामिकं मे रथमुपकल्पयितुम्। अहमप्येष देवीं दृष्ट्वाऽनुपदमागत एव।

कञ्चुकी—एष कृतो देवादेशः। (इति निष्क्रान्तः।)

सखी—पिअसहि, अवि सुमरिदं तुए। (प्रियसखि, अपि स्मृतं त्वया।)

विनिद्राः, नृपतयः = राजानः, इव = यथा, एते = इमे, द्विरेफाः = भ्रमराः, धनपरिमलेत्यादिः—धनः = निबिडः यः परिमलः = गन्धः तेन, स्तोकलक्ष्यः = ईषदनुमेयः, अङ्गरागः = अङ्गरक्तिमा विलेपनं वा येषां तादृशाः, (सन्तः), स्त्रीभिः = वनिताभिः, सार्धम् = सह, विकचनलिनीगर्भशय्याम्—विकचायाः = विकसितायाः नलिन्याः = कमलिन्याः गर्भः = मध्यभागः एव शय्या = शयनीयम् ताम्, मुञ्चन्ति = त्यजन्ति। यथा नृपतयः सेवककरैः स्पृष्टाः स्त्रीभिः सार्द्धं निद्रां त्यजन्ति तथैव भ्रमराः अपि सूर्यकिरणैः स्पृष्टाः भ्रमरीभिः सार्द्धं प्रातःकाले कमलगर्भरूपां शय्यां त्यजन्तीति भावः॥ ८॥

टिप्पणी—जृम्भारम्भेत्यादि। प्रस्तुत पद्य में उपमालङ्कार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है॥ ८॥

राजेति। साङ्ग्रामिकम्=युद्धे साधुः साङ्ग्रामिकः, तम्। उपकल्पयितुम्= सन्नद्धं कर्त्तुम्, अनुपदम्=अनुगम्, सद्य एवेत्यर्थः।

कञ्चुकी—महाराज! सुवदना और तरलिका द्वारा परिचारित की जाती हुई यह महारानी भानुमती बैठी है। इसलिए महाराज उनके समीप चलें।

राजा—(देखकर) आर्य विनयन्धर! तुम युद्ध के लिए मेरे रथ को तैयार करने के लिए जाओ। मैं भी महारानी को देखकर यह पीछे-पीछे आ ही गया।

कञ्चुकी—यह लीजिये, महाराज की आज्ञा का पालन किया। (ऐसा कहकर निकल गया)

सखी—प्रिय सखी! क्या तुम्हें स्मरण हुआ?

भानुमती—सहि, सुमरिदम् । अज्ज किल पमदवणे आसीणाए मम अग्गदो एव्वं दिव्वरूविणा णउलेन अहिसदं वावादिदम् । (सखि स्मृतम् । अद्य किल प्रमदवन आसीनाया ममाग्रत एव दिव्यरूपिणा नकुलेनाहिशतं व्यापादितम् ।)

उभे—(अपवार्य । आत्मगतम्) सान्तं पावम् । पडिहदं अमङ्गलम् । (प्रकाशम् ।) तदो तदो । (शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम् । ततस्ततः ।)

भानुमती—अदिसदावोव्विग्गहिआए विसुमरिदं मए । ता पुणोवि सुमरि अ कहइस्सम् । (अतिसंतापोद्विग्नहृदयया विस्मृतं मया । तत्पुनरपि स्मृत्वा कथयिष्ये ।)

राजा—(आत्मगतम्) अहो, देवी भानुमती सुवदनातरलिकाभ्यां सह किमपि मन्त्रयमाणा तिष्ठति । भवतु । अनेन लताजालेनान्तरितः शृणोमि तावदासां विश्रब्धालापम् । (तथा स्थितः ।)

भानुमतीति । दिव्यरूपिणा=अतिसुन्दरेण, अहिशतम्=सर्पशतम्, व्यापादितम्=हतम् ।

अतिसन्तापोद्विग्नहृदयया=अतिसन्तापेन उद्विग्नम् सम्भ्रान्तं हृदय यस्याः तया। सन्तापेन, अलम् = निरर्थकम् । 'अलं भूषणपर्याप्तिवारणेषु निरर्थके' इति विश्वः ।

भानुमती—हाँ सखी । स्मरण हुआ । आज प्रमदवन में बैठी हुई मेरे सामने देवताओं के सौन्दर्य को धारण करनेवाले किसी एक नेवले ने सैकड़ों सर्पों को मार डाला ।

दोनों—(दूसरी ओर मुँह फेरकर अपने आप) पाप शान्त हो । अमङ्गल का नाश हो ।

भानुमती—सन्ताप ने मेरे हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया । फिर मैं भूल गई, याद करके कहूँगी ।

राजा—(देख कर) अरे ! श्रीमती भानुमती सुवदना और तरलिका के साथ कुछ वार्तालाप करती हुई बैठी है । अच्छा झाड़ी के पीछे छिप कर पहले इनके विश्वस्त वार्तालाप को सुनूँ ।

सखी—सहि अलं संदावेण। कहेदु पिअसही। (सखि, अलं संतापेन। कथयतु प्रियसखी।)

राजा—(आत्मगतम्) किं नु खल्वस्याः संतापकारणम्। अथवाऽनामन्त्र्य मामियमद्य वासभवनान्निष्क्रान्तेति समर्थित एवास्या मया कोपः। अयि भानुमति अविषयः खलु दुर्योधनो भवत्याः कोपस्य।

किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया
निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखी नाद्यासि सम्भाविता।
अन्यस्त्रीजनसंकथालघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो
दोषं पश्यसि कं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि॥ ९॥

राजेति। अविषयः = अपात्रम्।

अन्वयः—मया, प्रमादात्, कण्ठे, भुजलतापाशः, शिथलीकृतः किम्? अद्य, निद्राच्छेदविवर्तनेषु, अभिमुखी, न, सम्भाविता, असि किम्? त्वया, अहम्, अन्यस्त्रीजनसङ्कथालघुः, स्वप्ने, लक्षितः (किम्?) (हे) प्रिये, परिजनोपलम्भयोग्ये, मयि, कम्, दोषम्, पश्यसि?॥ ९॥

व्याख्या—किं कण्ठ इति। मया = दुर्योधनेन, प्रमादात् = अनवधानात्, कण्ठे = मदीयग्रीवायाम्, भुजलतापाशः = त्वत्कृतबाहुलताबन्धनमित्यर्थः, शिथलीकृतः = श्लथीकृतः, किमिति प्रश्ने। अद्य = विगतरात्राविति भावः, निद्राच्छेदविवर्तनेषु = स्वापभङ्गपार्श्वपरिवर्तनेषु, अभिमुखी = अभिमुखो भूत्वेत्यर्थः, न

सखी—शोक करने से क्या लाभ, सखी? कहें तो।

राजा—अरे इनके खेद का क्या कारण है? अथवा आज ये मुझ से आज्ञा लिये बिना घर से चली आई हैं इससे प्रतीत होता है कि ये मुझ पर क्रुद्ध हैं, अयि भानुमती! यह दुर्योधन आपके क्रोध का पात्र नहीं है। देखिये:—

क्या कभी मैंने असावधानी के कारण कण्ठ में भुजारूपी लता के बन्धन को शिथिल तो नहीं किया? क्या मैंने निद्राभङ्ग में करवट बदलने पर तुम्हारी ओर मुख करके आज तुम्हारा आदर नहीं किया? अथवा क्या तुमने स्वप्न में मुझे अन्य स्त्री के साथ आलाप करने में अनुरक्त तो नहीं देखा? हे प्रिये! फिर सेवक के समान भर्त्सना योग्य मुझमें तुम क्या दोष देख रही हो?॥ ९॥

(विचिन्त्य ।) अथवा ।

इयमस्मदुपाश्रयैकचित्ता मनसा प्रेमविबद्धमत्सरेण ।
नियतं कुपितातिवल्लभत्वात्स्वयमुत्प्रेक्ष्य ममापराधलेशम् ॥ १० ॥

सम्भाविता = आलिङ्गनचुम्बनादिभिः न सम्मानितासि, किमिति शेषः । त्वया= भवत्या, भानुमत्येति भावः । अहम् = दुर्योधनः, अन्यस्त्रीजनसङ्कथालघुः = इतर-नारीजनसम्भाषणेन निःसारः, क्षुद्रः इत्यर्थः । स्वप्ने=स्वप्नावस्थायाम्, लक्षितः= ज्ञातः किमिति शेषः । प्रिये=हे दयिते । परिजनोपलम्भयोग्ये = परिचारकसदृश-प्रेमसंभाषणार्हे ! मयि=दुर्योधने, कम् = कीदृशम्, दोषम् = अपराधम्, पश्यसि= अवलोकयसि ? ॥ ९ ॥

टिप्पणी—किं कण्ठ इति । प्रमादात् = "प्रमादोऽनवधानता" इत्यमरः । शिथिलीकृतः = अशिथिलः शिथिलः कृत इत्यत्र अभूततद्भावे च्विः । प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है—"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूल-विक्रीडितम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—अस्मदुपाश्रयैकचित्ता, इयम्, प्रेमनिबद्धमत्सरेण, मनसा, अति-वल्लभत्वात्, मम, अपराधलेशम्, स्वयम्, उत्प्रेक्ष्य, नियतम्, कुपिता ॥ १० ॥

व्याख्या—इदमिति । अस्मदुपाश्रयैकचित्ता = मदालम्बनमात्रहृदया, इयम् = भानुमती, प्रेमविबद्धमत्सरेण = प्रेम्णा = प्रीत्या, विबद्धः=उत्पादितः, मत्सरः = कोपो यस्मिन् तेन = तथाभूतेन, मनसा = चेतसा, अतिवल्लभत्वात्= अतिप्रेमभावात् ; मम = दुर्योधनस्येति भावः । अपराधलेशम् = दोषगन्धम्, स्वयम् = आत्मनैव, उत्प्रेक्ष्य = प्रकल्प्य, नियतम् = निश्चितम् कुपिता=क्रुद्धा, सञ्जातेति शेषः ॥ १० ॥

टिप्पणी—इयमिति । अस्मदुपाश्रयैकचित्ता = वयमुपाश्रयो यस्य, ईदृशम्, एकम् चित्तम् यस्याः सा (बहु०) । प्रेमविबद्धमत्सरेण = प्रेम्णा विबद्धो

(सोचकर) अथवा—

एकमात्र हममें आश्रित चित्तवाली यह निश्चय ही अपने मन से, जिसमें द्वेष उत्पन्न हो गया है, अति प्रिय होने के कारण मेरे किसी थोड़े से अपराध की कल्पना करके क्रुद्ध हो गई है ॥ १० ॥

तत्रापि शृणुमस्तावत्किन्नु वक्ष्यतीति ।

भानुमती—तदो अहं तस्स अदिसइददिव्वरुविणो णउलस्स दंसणेण उच्छुआ जादा हिदहिअआ अ । तदो उज्झिअ तं आसणट्ठाणं लदामंडवं पविसिदुं आरद्धा । (ततोऽहं तस्यातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता हृतहृदया च । तत उज्झित्वा तदासनस्थानं लतामडपं प्रवेष्टुमारब्धा ।)

राजा—(सवैलक्ष्यं आत्मगतं) किं नामातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता हृतहृदया च । तत्किमनया पापया माद्रीसुतानुरक्तया वयमेवं विप्रलब्धाः । ('सोत्प्रेक्षम् इयमस्मत्-'(२।१०) इति पठित्वा ।) मूढ दुर्योधन, कुलटाविप्रलभ्यमात्मानं बहुमन्यमानोऽमुना किं वक्ष्यसि । किं (कण्ठे-(२।९) इत्यादि पठित्वा । दिशोऽवलोक्य ।) अहो, एतदर्थमेवास्याः प्रातरेव विविक्तस्थानाभिलाषः सखीजनसंकथासु च पक्षपातः । दुर्योधनस्तु मोहादविज्ञातबन्धकीहृदयसारः क्वापि परिभ्रान्तः । आः पापे मत्परिग्रहपांसुले ।

मत्सरो यस्मिन् तेन (बहु०) । अपराधलेशम् = "गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयो"रिति विश्वः । प्रस्तुत पद्य में औपच्छन्दसिक छन्द है जिसका लक्षण है—"षड्विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः । न समात्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्तेरलौ गुरुः । तत्रैवान्तेऽधिके गुरौ स्यादौपच्छन्दसिकं कवीन्द्रहृद्यमिति ॥ १० ॥

भानुमतीति । ततः = भुजङ्गशतमारणानन्तरम्, अतिशयितदिव्यरूपिणः = अतिशयितम् = अतिक्रान्तं/दिव्यरूपम् = स्वर्गसौन्दर्यम् तदस्यास्तीति तथाभूतस्य, अनुपमसौन्दर्यशालिन इत्यर्थः । नकुलस्य = सर्पघातकप्राणिविशेषस्य, दुर्योधनस्य भ्रान्तिपक्षे—नकुलस्य = माद्रीसुतस्य, उत्सुका = उत्कण्ठिता, पक्षे कामपरवशा जातेति भावः । उज्झित्वा = त्यक्त्वा ।

तो भी सुनेंगे कि यह क्या कहेगी ।

भानुमती—सखी ! तब मैं उस अतिशय दिव्य सौन्दर्य वाले नकुल के दर्शन से उत्कण्ठित (कामपीडित) हो गई ।

राजा—(उलझनपूर्वक मन ही मन) क्या अत्यन्त सौन्दर्यशाली नकुल के

तद्भीरुत्वं तव मम पुरः साहसानीदृशानि
श्लाघा सास्मद्वपुषि विनयव्युत्क्रमेऽप्येष रागः ।
तच्चौदार्यं मयि जडमतौ चापले कोऽपि पन्थाः
ख्याते तस्मिन्वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत् ॥ ११ ॥

राजेति । विप्रलब्धाः = वञ्चिताः । सोत्प्रेक्षम् = सोपहासम्, कुलटाविप्रलभ्यमानम् = कुलटया = वेश्यमानया, विप्रलभ्यमानम् = प्रीतिप्रदर्शनेन प्रतार्यमाणम् । बहुमन्यमानः = धन्यं मन्यमानः । विविक्तस्थानाभिलाषः = निर्जनस्थानेच्छा, अविज्ञातबन्धकी हृदयसारः = अनवगतपुंश्चलीहृदयतत्त्वः । मत्परिग्रहपांसुले = मत्पत्नी च असौ पांसुला = कुलटा, तस्याः संबोधने रूपम् ।

टिप्पणी—राजेति । अविज्ञातबन्धकी हृदयसारः='पुंश्चली धर्षणी बन्धक्यसती कुलटेश्वरी' इत्यमरः । पति को छोड़कर परपुरुष में अनुरक्त रहने वाली स्त्री को बन्धकी कहा जाता है । परिग्रह का अर्थ पत्नी होता है—'पत्नी परिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः ।

अन्वयः—मम, पुरः, तव, तत्, भीरुत्वम्, (एवमिदानीम्) ईदृशानि, साहसानि, अस्मद्वपुषि, सा श्लाघा, विनयव्युत्क्रमे, अपि, एषः, रागः, जडमतौ, मयि, तत्, औदार्यम्, चापले, च, कोऽपि, पन्थाः, वितमसि, ख्याते, तस्मिन् कुले, जन्म, एतत्, कौलीनम् ॥ ११ ॥

दर्शन से यह उत्कण्ठित हो गई है ? तो क्या माद्री के पुत्र पर आसक्त हुई इस पापिनी ने हमें इस प्रकार धोखा दिया है ? (उपहासपूर्वक 'इयमस्मद' २।१० इत्यादि पढ़कर) मूढ़ दुर्योधन, पुंश्चली द्वारा वञ्चित स्वयं को बहुत मानने वाला तू अब क्या कहेगा ? ('किं कण्ठे शिथिलीकृत' २।८ इत्यादि को पढ़कर तथा चारो ओर देखकर) अहो ! इसीलिए प्रभात में ही एकान्तस्थान के लिए इसकी उत्कट इच्छा तथा सखियों के साथ स्वैर-आलाप में इसका ऐसा प्रेम है । दुर्योधन तो मोह में पड़कर व्यभिचारिणी के हृदय की वास्तविकता को न जानने के कारण किसी धोखे में ही रहा । अरी पापिनी, मेरी अधम पत्नी—

कहाँ मेरे समक्ष तुम्हारी वह भीरुता और कहाँ तेरे ऐसे साहसपूर्ण अनुचित कार्य ! कहाँ हमारे शरीर की वह प्रशंसा और कहाँ मर्यादा के अतिक्रमण में

सखी—तदो तदो ! (ततस्ततः ।)

भानुमती—तदो सोवि मं अणुसरन्तो एव्व लदामण्डवं पविट्ठो । (ततः सोऽपि मामनुसरन्नेव लतामण्डपं प्रविष्टः ।

व्याख्या—तद्भीरुत्वमिति । मम = मे, दुर्योधनस्येति भावः । पुरः=समक्षम्, तव = ते, भानुमत्याः इति भावः । तत् = तादृशम्, पूर्वप्रदर्शितमिति भावः । भीरुत्वम् = भीतिः, (एवमिदानीम्) ईदृशानि = एतादृशानि, परपुरुपानुरागरूपाणीति तात्पर्यम् । साहसानि = दुष्करकृत्यानि, अस्मद्वपुषि=अस्मच्छरीरे, सा = तादृशी, श्लाघा = प्रशंसा, प्रेमाधिक्यमित्यर्थः । विनयव्युत्क्रमे = विनयस्य= पातिव्रत्यरूपस्य सदाचारस्य व्युत्क्रमे = अतिक्रमणे, अपि = च, एषः = परपुरुषविषयक इति भावः । रागः = अनुरागः, जडमतौ = मन्दबुद्धौ, मयि=दुर्योधन इति भावः । तत् = तादृशम्, औदार्यम् = उदारता, अनुरागाभिव्यक्तिरूपमौदार्यमिति भावः । चापले च = चाञ्चल्ये च, पुंश्चलीत्वरूपे इति भावः । कोऽपि = विलक्षणः, पन्थाः=मार्गः, वितमसि=निष्कलङ्के, ख्याते=प्रसिद्धे, कुले=वंशे, जन्म= उद्भव, एतत्=इदम्, परपुरुषसङ्गमरूपमिति भावः । कौलीनम्=लोकवादः ।११।

टिप्पणी—तद्भीरुत्वमिति । साहसानि = "साहसं तु न मे दुष्करकर्मणि" इति हैमः । चापले = "मीनेऽपि चपला तु स्यात् विप्पल्यां विद्युति श्रियाम् । पुंश्चल्यामिति हैमः । कौलीनम् = "स्यात्कौलीनं लोकवाद" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य में परस्पर विरुद्ध कार्यों की सङ्घटना के कारण विषमालङ्कार है । मन्दाक्रान्ता छन्द हैं ।। ११ ।।

सखीति । अनुसरन् = अनुगच्छन् । लतामण्डपम् = निकुञ्जम् ।

तुम्हारी यह आसक्ति ! कहाँ मुझ मन्दबुद्धि के प्रति तेरी वह उदारता और कहाँ चञ्चलता का यह विलक्षण मार्ग ! कहाँ उस निर्मल तथा प्रख्यात वंश में जन्म और कहाँ यह निन्दनीय कार्य ! (अर्थात् तुम्हारे ये दोनों प्रकार के कार्य परस्पर विरुद्ध है जो आश्चर्य में डालने वाले हैं ।। ११ ।।

सखी—उसके बाद, उसके बाद ?

भानुमती—उसके बाद बैठने के उस स्थान को छोड़कर (मैं) लतामण्डप में चली गई । तब वह भी मेरे पीछे,पीछे आता हुआ लतामण्डप में ही घुस गया ।

राजा—(आत्मगतम्) अहो, कुलटोचितमस्याः पापाया अशालीनत्वम् ।

यस्मिंश्चिरप्रणयनिर्भरबद्धभाव-
मावेदितो रहसि मत्सुरतोपभोगः ।
तत्रैव दुश्चरितमद्य निवेदयन्ती
ह्रीणासि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन् ॥ १२ ॥

उभे—तदो तदो (ततस्ततः ।)

राजेति । पापायाः = पापशीलायाः, अशालीनत्वम् = निर्लज्जत्वम् ।

अन्वयः—(हे) पापहृदये, यस्मिन्, सखीजने (त्वया) रहसि, मत्सुरतोपभोगः, चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावम्, आवेदितः, तत्र, एव, अस्मिन्, (सखीजने) अद्य, दुश्चरितम्, निवेदयन्ती, (त्वम्) न, ह्रीणा, असि, (किम्) ? ॥ १२ ॥

व्याख्या—यस्मिन्निति । (हे) पापहृदये = पापचित्ते ! यस्मिन् सखीजने = यस्मिन् आलिसमूहे (त्वया) रहसि = एकान्ते, मत्सुरतोपभोगः = मदीयकामक्रीडाव्यापारः, चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावम् = बहुकालिकप्रेमाधिक्येनाविष्कृतचित्ताभिप्रायम्, आवेदितः = विज्ञापितः, तत्र एव = तथाभूत एव, अस्मिन् = एतस्मिन्, सखीजने = वयस्यासङ्घे, अद्य = इदानीम्, दुश्चरितम् = दुराचारम्, परपुरुषसङ्गमरूपमिति भावः । निवेदयन्ती = कथयन्ती, त्वमितिशेषः; न ह्रीणाऽसि = न लज्जिताऽसि, किमिति शेषः ॥ १२ ॥

टिप्पणी—यस्मिन्निति । प्रस्तुत पद्य में पर्यायालङ्कार है । मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ १२ ॥

राजा—ओह ! इस पापिनी की कैसी कुलटाओं जैसी निर्लज्जता है !

अरी पापपूर्णहृदयवाली ! जिन सखियों से तूने मेरे सुरत के उपभोग का (अर्थात् कामक्रीडाव्यापार का) अत्यधिक प्रेम के कारण बड़े चाव से वर्णन किया था, आज उन्हीं इन सखियों से अपने दुराचार को बतलाती हुई तू क्य !लज्जित नहीं होती ? ॥ १२ ॥

दोनों—उसके बाद ?

भानुमती—तदो तेण सप्पगब्भप्पसारिअकरेण अवहिदं मे त्थणं सुअम्। (ततस्तेन सप्रगल्भप्रसारितकरेणापहृतं मे स्तनांशुकम् ।)

राजा—(सक्रोधम्, आत्मगतम्) अलमिदानीमतः परमाकर्णनेन । भवतु तावत्तस्य परवनितावस्कन्दनप्रगल्भस्य माद्रीसुतहतकस्य जीवितमपहरामि ! (किञ्चिद्गत्वा । विचिन्त्य) अथवा इयमेव तावत्पापशीला प्रथममनुशासनीया । (इति निवर्तते ।)

उभे—तदो तदो (ततस्ततः ।)

भानुमती—तदा अज्जउत्तस्स पभादमङ्गलतूररवमिस्सेण वारविलासिणीजणसंगीदरवेण पडिबोधिदह्मि । (तत आर्यपुत्रस्य प्रभातमङ्गलतूर्यरवमिश्रेण वारविलासिनीजनसङ्गीतरवेण प्रतिबोधितास्मि ।)

भानुमतीति । सप्रगल्भप्रसारितकरेण = सगर्वप्रसारितहस्तेन, स्तनांशुकम् = कुचाच्छादकवस्त्रम् ।

राजेति । परवनितावस्कन्दनप्रगल्भस्य = परकीयपत्नीपधर्षणधृष्टस्य, माद्रीसुतहतकस्य = माद्रीपुत्राधमस्य ।

भानुमतीति । प्रभातमङ्गलतूर्यरवमिश्रेण = प्रातःकालिकमाङ्गलिकवाद्यशब्दयुक्तेन, वारविलासिनीजनसङ्गीतरवेण = वेश्याजनगानध्वनिना, प्रतिबोधिता = जागरिता ।

भानुमती—तब उसने धृष्टता के साथ हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली ।

राजा—(क्रोधपूर्वक मन ही मन) अब इससे अधिक सुनना व्यर्थ है । अच्छा, तो मैं पराई स्त्री को दूषित करने में पटु उस अधम माद्रीपुत्र के प्राण लिये लेता हूँ । (कुछ दूर जाकर, सोचकर) अथवा इसी पापिनी को पहले दण्ड देना चाहिए । (लौट पड़ता है ।)

दोनों—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

भानुमती—उसके बाद आर्यपुत्र के उद्बोधन के लिए प्रातःकालिक माङ्गलिक वाद्यध्वनि से मिश्रित वेश्याओं के सङ्गीत की ध्वनि से मैं जाग पड़ी ।

राजा—(सवितर्कम् आत्मगतम् ।) किं नाम प्रतिबोधितास्मीति स्वप्नदर्शनमनया वर्णितं भवेत् । अथवा सखीवचनादेव व्यक्तिर्भविष्यति ।

सुवदना—ज एत्थ अच्चाहिदं तं भाईरहीप्पमुहाणं णइणं सलिलेण अवहारिअदु । ब्रह्मणाणं वि आसीसाए हुदाहुदिसुअन्धिणा ज्जलणेण अवहारिअदु । (यदित्रात्याहितं तद्भागीरथीप्रमुखानां नदीनां सलिलेनापह्रियताम् । ब्राह्मणानामप्याशिषा हुताहुतिसुगन्धिना ज्वलनेन (च) अपह्रियताम् ।

राजा—(आत्मगतम्) अलं विकल्पेन । स्वप्नदर्शनमेवैतदनया वर्णितम् । मया पुनर्मन्दधियाऽन्यथैव सम्भावितम् ।

सुवदनेति । अत्याहितम्=महाभीतिः, अमङ्गलमित्यर्थः । हुताहुतिसुगन्धिना= शोभनो गन्धोऽस्येति सुगन्धिः, हुता या आहुतिः, तथा सुगन्धिः तेन, ज्वलनेन = अग्निना, अपह्रियताम् = निराक्रियताम् ।

टिप्पणी—भागीरथीप्रमुखानामित्यादि । ऐसी परम्परा रही है कि स्वप्न में किसी प्रकार का अनिष्ट-दर्शन होने पर गङ्गा आदि पवित्र नदियों में स्नान कर लेने से तथा ब्राह्मणों को भोजन-दानादि से सन्तुष्ट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त कर लेने से तथा अग्नि में सविधि आहुति डालकर उस प्रज्वलित अग्नि के ताप से अनिष्ट-निवारण हो जाता है ।

राजेति । मन्दधिया = जडमतिना, मूर्खेणेति भावः । सम्भावितम् = तर्कितमिति भावः ।

राजा—(तर्क-वितर्क करते हुए मन ही मन) "मैं जाग पड़ी" इस कथन से प्रतीत होता है कि इसने स्वप्न-दर्शन का वर्णन किया है । अथवा, सखियों की बातों से ही स्पष्ट हो जायगा ।

सुवदना—इसमें जो कुछ भी अमङ्गल हो उसे गङ्गा आदि प्रमुख नदियों के जल से दूर कर दिया जाय । ब्राह्मणों के आशीर्वाद से तथा आहुति दिये गये एवं प्रज्वलित अग्नि के द्वारा नष्ट कर दिया जाय ।

राजा—(मन ही मन) सन्देह करना बेकार है । इसने स्वप्न-दर्शन का ही वर्णन किया था पर मैं मूर्ख कुछ अन्य ही समझ बैठा था ।

दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो
दिष्ट्या नो परुषं रुषार्धकथने किञ्चिन्मया व्याहृतम् ।
माम्प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता ।
मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातञ्जगत् ।। १३ ।।

अन्वयः—दिष्ट्या, अहम्, अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात्, (भानुमत्याः समीपम्) नो, गतः, दिष्ट्या, अर्धकथने, रुषा, मया, किञ्चित्, परुषम्, नो, व्याहृतम, दिष्ट्या, विमूढहृदयम्, माम्, प्रत्याययितुम्, कथा, अन्तम्, गता, दिष्टया, जगत्, मिथ्यादूषितया, अनया, विरहितम्, न, जातम् ।। १३ ।।

व्याख्या—दिष्ट्येति । दिष्ट्या = भाग्येन, अहम् = दुर्योधन इति भावः । अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात् = अर्धेन = असम्पूर्णेन, श्रुतः = आकर्णितः, यो विप्रलम्भः = यद्भ्रान्तिकारकं वचनम्, तेन जनितः = उत्पन्नः, क्रोधः = कोपः, तस्मात्, नो = न, गतः = यातः (भानुमत्याः समीपं माद्रीसुतसमीपं वा हननार्थमितिभावः) । दिष्ट्या = भाग्येन, अर्धकथने = अर्धोक्तौ, रुषा = कोपेन, मया = दुर्योधनेनेति भावः, किञ्चित् = किमपि, परुषम् = कठोरवचनम्, नो = नहि, व्याहृतम् = कथितम्, दिष्ट्या, विमूढहृदयम् = विमूढम् = उचितानुचितविवेचनेऽक्षमं हृदयम् = चित्तम् यस्य तम्, माम् = दुर्योधनम्, प्रत्याययितुम् = बोधयितुम्, कथा = स्वप्न-वार्त्तालापः, अन्तम् = समाप्तिम, गता = प्राप्ता, दिष्ट्या, जगत् = संसारः, मिथ्यादूषितया = मिथ्याव्यभिचाररूपदोषयुक्तया,

यह मेरा सौभाग्य ही है कि मैं आधी सुनी बात से होनेवाली वञ्चनासे उत्पन्न क्रोध के वशीभूत होकर (भानुमती अथवा माद्रीपुत्र के पास उनके प्राणहरणहेतु) नहीं चला गया । यह भी मेरा सौभाग्य ही है कि सभी बातें पूरी नहीं हो पाई थीं तभी क्रोध से मैंने कठोर वचनों का प्रयोग नहीं किया । मेरे भाग्य से ही मुझ मूर्ख को विश्वास दिलाने के लिए यह स्वप्न वृत्तान्त समाप्ति पर पहुँच गया और यह भी सौभाग्य की ही बात है कि मिथ्यादोषारोपण से युक्त इस (भानुमती) से यह संसार विहीन नहीं हुआ । (अर्थात् मैंने इसकी हत्या कर इसे संसार से विदा नहीं कर दिया ।) ।। १३ ।।

भानुमती—हला, कहेहि किं एत्थ जिं वा असुहसूअअं त्ति। (हला, कथय किमत्र प्रशस्तं किं वाऽशुभसूचकमिति।)

सखी चेटी च—(अन्योन्यमवलोक्य। अपवार्य) एत्थ णत्थि त्थोअं वि सुहसुअअम्। तदो अलोअं कधअन्ती पिअसहीए अवराहिणी भविस्सम्। सो दाणीं सिणिद्धो जणो जो पुच्छिदो परुसं वि हिदं भणादि। (प्रकाशम्) सहि, सव्वं एव्वं एदं असुहणिवेदणम्। ता देवदाणं पणामेण दुजादि-जणपडिग्गहेण अ अन्तरीअदु। ण हु दाढिणो णउलस्स वा दंसणं अहि सदवहं अ सिविणेय पसंसन्ति विअक्खणाओ। (अत्र नास्ति स्तोकमपि शुभसूचकम्। ततोऽलीकं कथयन्ती प्रियसख्या अपराधिनी भविष्यामि। स इदानीं स्निग्धो जनो यः पृष्टः परुषमपि हितं भणति। सखि, सर्वमेवैतदशुभनिवेदनम्। तद्देवतानां प्रणामेन द्विजातिजनप्रतिग्रहेण चान्तर्यताम्। न खलु दंष्ट्रिणो नकुलस्य वा दर्शनमहिशतवधं च स्वप्ने प्रशंसन्ति विचक्षणाः।)

अनया = भानुमत्येति भावः। विरहितम् = वियुक्तम्, न जातम्। भाग्यवशादेव एतत्सर्वं जातमित्याशयः ॥ १३ ॥

टिप्पणी—दिष्ट्येति। दिष्ट्या = "दिष्ट्या समुपतोषं चेत्यानन्दे"त्यमरः। विमूढहृदयम् = विमूढं हृदयं यस्य सः तम् (बहु०)। प्रस्तुत पद्य में शार्दूल-विक्रीडित छन्द है॥ १३ ॥

भानुमतीति। अत्र = स्वप्ने, प्रशस्तम् = मङ्गलसूचकम्।

सखी चेटी चेति। स्तोकम्=अल्पम्, अलीकम्=असत्यम्, परुषम्=कर्कशम्, प्रकाशम् = सर्वश्राव्यम्, भणति = कथयति। द्विजातिजनप्रतिग्रहेण = ब्राह्मणो-

---

भानुमती—सखी, बतलाओ तो इस (स्वप्न) में क्या शुभसूचक और क्या अशुभसूचक है?

सखी तथा दासी—(परस्पर एक दूसरी को देखकर, एक ओर को) इसमें तनिक भी शुभसूचक नहीं है। यदि इस सम्बन्ध में झूठ कहूँगी तो प्रिय सखी की अपराधिनी हो जाऊँगी। प्रेमीजन वही है जो पूछे जाने पर हितकर बातें ही कहे चाहे वे कठोर ही क्यों न हो। (प्रकट) सखी, यह तो सारा ही अमङ्गल-सूचक है। इसलिए देवताओं को प्रणाम करके तथा ब्राह्मणों को दान देकर

राजा—(आत्मगतम्) अवितथमाह सुवदना । नकुलेन पन्नगशतवधः स्तनांशुकापहरणं च नियतमनिष्टोदर्कं तर्कयामि ।

पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः ।
शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम् ।। १४ ।।

दृश्यकदानेन, अन्तर्यताम् = अन्तरीक्रियताम्, शाम्यतामिति भावः । दंष्ट्रिणः= दंशकस्य, भुजगस्येत्यर्थः, अहिशतवधम्=सर्पशतहननम्, उदर्कम् = परिणामम्, उत्तरकालिकं फलमिति यावत् । तर्कयामि=अनुमिनोमि ।

अन्वयः—कामम्, शुभाशुभाः, स्वप्नाः, पर्यायेण, दृश्यन्ते, हि, पुनः, इयम्, शतसंख्या, सानुजम्, माम्, स्पृशति, इव ।। १४ ।।

व्याख्या—पर्यायेणेति । कामम्=यद्यपि, शुभाशुभाः = शुभाः अशुभाश्चेति शुभाशुभाः मङ्गलसूचकाः अमङ्गलसूचकाश्चेति भावः । स्वप्नाः = स्वप्नानि, पर्यायेण = क्रमशः, दृश्यन्ते=विलोक्यन्ते, हि = निश्चयेन, पुनः = परन्तु, इयम्= एषा, अहिगतेति भावः । शतसंख्या, सानुजम्=लघुभ्रातृसहितम्, माम्=दुर्योधनम्, स्पृशतीव = विषयीकरोतीव । वयमपि शतं सहोदराः, सर्पाश्चापि शतम्, अतः शतसंख्याकानां सर्पाणां प्रसङ्गेन स्वप्नोऽयं मामेव संकेतयतीति भावः ।। १४ ।।

टिप्पणी—पर्यायेणेति । शतसंख्येति = सौ भाई होने के कारण स्वप्न में नेवले द्वारा सौ सर्पों के वध की बात को दुर्योधन अपने पक्ष में लेकर भयभीत हो रहा है । पद्य में प्रयुक्त 'शतसंख्यां' शब्द दुर्योधन के भय को द्योतितकर रहा है । पथ्यावक्त्र छन्द है ।। १४ ।।

अनिष्ट का निवारण किया जाय । स्वप्न में किसी दाँतवाले प्राणी या नेवले का दर्शन अथवा सौ-सौ सर्पों के वध को विद्वान् लोग अच्छा नहीं मानते ।

राजा—(मन ही मन) सुवदना ने ठीक ही कहा । नेवले के द्वारा सौ-सौं सर्पों का वध तथा चोली का अपहरण निश्चय ही परिणाम में अनिष्टकारक है, ऐसा मैं समझता हूँ ।

यद्यपि शुभ-अशुभ स्वप्न लोगों को समय-समय पर दीखते ही हैं पर यह सौ संख्या तो, मानो छोटे भाइयों सहित मुझे ही निर्दिष्ट कर रही है ।। १४ ।।

(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा ।)

आः ममापि नाम दुर्योधनस्यानिमित्तानि हृदयक्षोभमावेदयन्ति । (सावष्टम्भम् ।) अथवा भीरुजनहृदयप्रकम्पनेषु का गणना दुर्योधनस्यैवंविधेषु । गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा—

'ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तोत्पातिकं तथा ।
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति' ॥ १५ ॥

वामाक्षिस्पन्दनम् = वामनेत्रस्पन्दनम्, अनिमित्तानि = अमङ्गलसूचकानि, हृदयक्षोभम् मनोदुःखम् । सावष्टम्भम् = सगर्वम् ।

टिप्पणी—वामाक्षिस्पन्दनम् = पुरुषों की बाईं आंख तथा स्त्रियों की दाईं आँख का फड़कना लोक में अशुभ-सूचक माना जाता है ।

अन्वयः—ग्रहाणाम्, चरितम्, स्वप्नः, तथा, अनिमितोत्पातिकम्, (एते) काकतालीयम्, फलन्ति, तेभ्यः, प्राज्ञाः, न, बिभ्यति ॥ १५ ॥

व्याख्या—ग्रहाणामिति । ग्रहाणाम् = नक्षत्राणाम्, सूर्यादीनामिति यावत् चरितम् = सञ्चरणम्, राश्यन्तरगमनमिति भावः । स्वप्नः = सुषुप्तिसमये दृष्टो दृश्यविशेषः, तथा, अनिमित्तोत्पातिकम् = आकस्मिकमहावायुप्रवहणम्, (एते) काकतालीयम् = अतर्कितागतं यथा स्यात्तथा, फलन्ति = परिणामं जनयन्ति; तेभ्यः = स्वप्नादिभ्यः, प्राज्ञाः = पण्डिताः, बुद्धिमन्तो जनाः इति भावः, न = नहि, बिभ्यति = भयं प्राप्नुवन्ति ॥ १५ ॥

टिप्पणी—ग्रहाणामिति । काकतालीयम् = ताड़के वृक्ष के नीचे से उड़ते हुए कौए पर यदि ताड़ का फल टूट कर गिर जाय और उससे उसकी मृत्यु हो जाय तो इसे एक संयोग ही माना जा सकता है । ऐसे ही संयोग या आकस्मिक

(बाईं आँख के फड़कने का अभिनय करके) ओह ! अपशकुन मुझ दुर्योधन के भी हृदय को व्याकुल कर रहे हैं । (गर्व के साथ) अथवा डरपोक लोगों के हृदय को कँपा देनेवाले ऐसे अपशकुनों के विषय में दुर्योधन का भला क्या परवाह हो सकती है ! अङ्गिरा ने भी इसी भाव को छन्दोबद्ध किया है—

ग्रहों की गति, स्वप्न, अपशकुन तथा उत्पात—ये सब काकतालीय न्याय से (संयोग वश ही) फल देते हैं अतः बुद्धिमान् व्यक्ति उनसे नहीं डरते ॥ १५ ॥

तद्भानुमत्याः स्त्रीस्वभावसुलभामलीकाशङ्कामपनयामि ।

भानुमती—हला सुवअणे, पेक्ख दाव उदअगिरिसिहरन्तरविमुक्करह-वरो विअलन्तसंझाराअप्पसण्णदुरालोअमण्डलोजादो भअवं दिवहणाहो । (हला सुवदने पश्य तावदुदयगिरिशिखरान्तरविमुक्तरथवरो विगलत्सन्ध्याराग-प्रसन्नदुरालोकमण्डलो जातो भगवान् दिवसनाथः ।

सखी—सहि, रोसाणिदकणअपत्तसरिसेण लदाजालन्तरापडिदकिरण-निवहेण पिञ्जरिदोज्जाणभूमिभाओ पूरिदपदिण्णो विअरिउदुप्पेक्खणिज्जो जादो भअवं सहस्सकिरणो । ता समओ दे कुसुमचन्दणगब्भेण अग्घेण पज्जुवट्ठादुम् । (सखि, रोसानितकनकपत्रसदृशेन लताजालान्तरापतितकिरण-

---

परिस्थिति वश कहीं कोई काम हो या किसी पर कोई विपत्ति आवे तो वहाँ पर "काकतालीन्याय" का प्रयोग किया जाता है ।

प्रस्तुत पद्य में प्राकरणिक स्वप्न का अप्राकरणिक अन्य वस्तुओं (दुर्योधन सहित सौ भाइयों) के साथ चूँकि सम्बन्ध हुआ है अतः दीपकालङ्कार है । पथ्यावक्त्र छन्द है ।। १५ ।।

अलीकाशङ्काम् = असत्यसंशयम्, स्वप्नदर्शनजन्यमित्यर्थः ।

भानुमतीति । उदयगिरिशिखरान्तरविमुक्तरथवरः = उदयगिरेः = उदया-चलस्य, यः शिखरः = शृङ्गः, तस्यान्तरात् = मध्यात्, विमुक्तः = विसृष्टः, रथवरः = स्यन्दनश्रेष्ठः यस्य तादृशः, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, दिवसनाथः = सूर्यः, विगलितसन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलः = विगलितः = विनष्टः यः सन्ध्यारागः = सन्ध्याकालिकरक्तिमा, तेन प्रसन्नम् = निर्मलम्, अतो दुरालोकम् = दुरवलोकनीयम्, मण्डलम् = बिम्बम् यस्य, तादृशः, जातः = सम्पन्नः ।

सखीति । रोसानितकनकपत्रेण = रोसानितम् = रोसने = निकषग्रावणि

तो अब भानुमती के स्त्री-स्वभाव-सुलभ मिथ्या-संशय को दूर करता हूँ ।

भानुमती—अरी सुवदना ! देखो तो, भगवान् सूर्य, जिसका उदयाचल के शिखर से छिपा हुआ उत्तम रथ बाहर निकल आया है, सन्ध्या की लालिमा के नष्ट हो जाने से स्वच्छ एवं दुरवलोकनीय बिम्ब वाला हो गया है ।

सखी—सखी ! शान पर खरादे गये सोने के पत्र के समान, लता-समूह के

निवहेन पिञ्जरितोद्यानभूमिभागः पूरितप्रतिज्ञ इव रिपुदुःप्रेक्षणीयो जातो भगवान् सहस्रकिरणः। तत्समयस्ते कुसुमचन्दनगर्भेणार्घेण पर्युपस्थातुम्।)

भानुमती— हञ्जे तरलिए, उवणहि मे अग्घभाअणं जाव भअवदो सहस्सरस्सिणो अवरिअं णिव्वट्टेमि। (हञ्जे तरलिके, उपनय मेऽर्घभाजनं यावद्भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्यां निर्वर्तयामि।)

चेटी—जं देवी आणवेदि। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशन्ती) देवि एदं अग्घभाअणम्। ता णिव्वट्टीअदु भअवदो सहस्सरस्सिणो सवरिआ (यद्देवी आज्ञापयति। देवि एतदर्घभाजनम्। तन्निर्वर्त्यतां भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्या।)

राजा—(आत्मगतम्) अयमेव साधुतरोऽवसरः समीपमुपगन्तुं देव्याः।

घृष्टम्, शाणोल्लीढमिति भावः, यत् कनकपत्रम् = स्वर्णपत्रम्, तेन सदृशः= तुल्यः, तेन। लताजालान्तरापतितकिरणनिवहेन = लतासमूहमध्यप्रविष्टरश्मिसमुदायेन, पिञ्जरितोद्यानभूमिभागः = पिञ्जरितः = पीतीकृतः, उद्यानभूमिभागः = आरामभूप्रदेशः, येन तादृशः, रिपुदुःप्रेक्षणीयः, = शत्रुदुर्दशनीयः, प्रचण्डातपत्वादितिभावः। सहस्रकिरणः = सहस्ररश्मिः, सूर्य इति भावः। पर्युपस्थातुम्=अर्चितुम्।

भानुमतीति। सपर्याम् = पूजाम्, निवर्तयामि=सम्पादयामि।

अन्तर्भाग में पड़े हुए किरण-जाल से उद्यान के भू-प्रदेश को पीलाकर देनेवाला भगवान् सूर्य (सहस्रकिरणों वाला) मानो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके शत्रुओं के लिए दुर्दर्शनीय बन गये हैं। इसलिए पुष्पचन्दन से युक्त अर्घ द्वारा अर्चन करने के लिए आपका समय हो गया है।

भानुमती—अरी तरलिका ! मेरा अर्घ्यपात्र ला दो ताकि में भगवान् सूर्य की पूजा कर लूँ।

दासी—जैसी देवी की आज्ञा ! (निकल कर पुनः प्रवेश करती हुई) देवी ! यह रहा अर्घ्यपात्र ! अब आप भगवान् सूर्य की पूजा से निबट लें।

राजा—(मन ही मन) महारानी के समीप जाने का यही अच्छा अवसर है।

(प्रविशति)

(राजोपसृत्य संज्ञया परिजनमुत्सार्य स्वयमेवार्घपात्रं गृहीत्वा ददाति ।)

सखी —(स्वगतम् ।) कहं महाराओ समागदो । हन्त, किदो से पिअसहीए णिअमभङ्गो रण्णा । (कथं महाराजः समागतः । हन्त, कृतोऽस्याः प्रियसख्या नियमभङ्गो राज्ञा ।)

भानुमती—(दिनकराभिमुखी भूत्वा) भअव, अम्बरमहासरेक्कसहस्सपत्त, पुव्वदिसाबहूमुहमण्डलकुङ्कुमबिसेसअ, सअलभुवणाङ्गणदीवअ, एत्थ सिविणअदंसण जं किं वि अच्चाहिदं तं भअवदो पणामेण कुसलपरिणामि ससदब्भादुअस्य अज्जउत्तस्स होदु । (अर्घ्यं दत्त्वा ।) हला, उवणेहि मे कुसुमाइं जाव अवराणं वि देवदाणं सवरिअं णिव्वट्ठेमि । (हस्तौ प्रसारयति ।) (भगवन्, अम्बरमहासर एकसहस्रपत्र, पूर्वदिशावधूमुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक, सकलभुवनाङ्गणदीपक, अत्र स्वप्नदर्शने यत्किमप्यत्याहितं तद्भगवतः प्रणामेन कुशलपरिणामि सशतभ्रातृकस्यार्यपुत्रस्य भवतु । हला, उपनय मे कुसुमानि यावदपरासामपि देवतानां सपर्यां निर्वर्तयामि ।)

राजोपसृत्येति । उपसृत्य=समीपं गत्वा । संज्ञया=संकेतेन, उत्सार्य = पृथक्कृत्वा ।

(प्रवेश करता है)

(राजा पास जाकर संकेत से सखियों को हटाकर स्वयं ही अर्घ्य पात्र लेकर देते हैं ।)

सखी—(मन ही मन) महाराज क्यों आ गए ? ओह ! (बस अब) इनका व्रतभङ्ग हो गया ।

भानुमती—(सूर्याभिमुख होकर) आकाशरूपी विशाल जलाशय के अद्वितीय सहस्रदल (कमल) ! पूर्वदिशारूपी वधू के मुखमण्डल के कुङ्कुमतिलक ! समस्त संसाररूपी आङ्गन के दीपक ! इस स्वप्न-दर्शन में जो भी अनिष्ट हो वह भगवान् के अभिवादन से सभी भाइयों सहित आर्यपुत्र के लिए कल्याणप्रद हो । (अर्घ्य देकर) अरी ? मुझे फूल दो (जिससे कि मैं) अन्य देवताओं की भी पूजा कर सकूँ । (दोनों हाथ फैलाती है ।)

(राजा पुष्पाण्युपनयति । स्पर्शसुखमभिनीय कुसुमानि भूमौ पातयति ।)

भानुमती—(सरोषम्) अहो पमादो परिअणस्स । (परिवृत्य दृष्ट्वा । ससम्भ्रमम्) कघ अज्जउत्तो (अहो प्रमादः परिजनस्य । कथमार्यपुत्रः ।)

राजा—देवी अनिपुणः परिजनोऽयमेवंविधे सेवावकाशे । तत्प्रभवत्यनुशासने देवी । अयि प्रिये ।

भानुमतीति । अम्बरमहासरएकसहस्रपत्र = अम्बरम् = आकाशम्, एव महासरः = विपुलजलाशयः, तस्मिन्, एकम् = मुख्यम्, सहस्रपत्रम् = पङ्कजम्, तत्सम्बुद्धौ । पूर्वदिशावधूमुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक = पूर्वदिशैव वधूः = नवपरिणीता स्त्री, तस्याः मुखमण्डलस्य = आननमण्डलस्य, कुङ्कुमविशेषः = कुङ्कुमतिलकः, तत्सम्बुद्धौ । सकलभुवनाङ्गनदीपक = सकलं भुवनम्=समस्तः संसारः, एव आङ्गनम् = प्राङ्गणम्, तस्य, दीपकः = प्रदीपः, तत्सम्बुद्धौ; अत्याहितम्= महद्भयम् । कुशलपरिणामि = मङ्गलफलदायकमिति भावः । अपरासाम् = अन्यासाम् ।

भानुमतीति । प्रमादः = अनवधानता ।

राजेति । अनिपुणः = अकुशलः, अनुशासने = दण्डदाने, प्रभवति = समर्था भवति ।

टिप्पणी—राजेति । बहुत सी पुस्तकों में राजा की "तत्प्रभवत्यनुशासने देवी" इस उक्ति के बाद "भानुमती—लज्जां नाटयति" (अर्थात्—भानुमती—लज्जा का अनुभव करती है ।) ऐसा अतिरिक्त पाठ मिलता है इसके बाद पुनः "राजा—अयि प्रिये" यहाँ से प्रारम्भ होता है ।

(राजा फूल देता है और स्पर्श-सुख का नाट्य करके फूलों को भूमि पर गिरा देता है ।)

भानुमती—(क्रोधपूर्वक) ओह ! सेवकों की कैसी असावधानी है । (घूमकर और देखकर घबराहट के साथ) क्या आर्यपुत्र !

राजा—देवी ! यह सेवक इस प्रकार की सेवा के अवसर के लिए चतुर नहीं है । इसलिए देवी दण्ड देने में समर्थ हैं । अरी प्रिये !

विकिर धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः-
परिजनपथवर्तिन्यत्र किं सम्भ्रमेण ।
स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोच्चैः
प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिस्त्वं स्पृशास्मान् ।। १६ ।।

अन्वयः—परिजनपथवर्तिनि, अत्र, धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि, चक्षुः, विकिर, सम्भ्रमेण, किम्, हे देवि, स्मितमधुरम्, उदारम्, उच्चैः, माम्, आलप, मम, पाण्योः, अञ्जलिः, प्रभवति, (अत एव) त्वम्, अस्मान्, स्पृश ।। १६ ।।

व्याख्या—विकिरेति । परिजनपथवर्तिनि = सेवकमार्गस्थिते, अत्र=मयि, दुर्योधन इति भावः । धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि = धवलः = स्वच्छः, चासौ दीर्घः = विशालः, अपाङ्गः = नेत्रप्रदेशः, तं ससर्पितु शील यस्य तादृशम्, स्वच्छ-विशालनेत्रप्रदेशपर्यन्तव्याप्तमितिभावः । चक्षुः = नेत्रम्, विकिर = विक्षिप, सम्भ्रमेण = उद्वेगेन, किम् = कथमुद्वेगयुक्ता भवसीति भावः । हे देवि ! स्मित-मधुरम् = स्मितेन = ईषद्धास्येन, मधुरम् = सुन्दरम्, उदारम् = दक्षिण यथा स्यात्तथा, उच्चैः = उच्चैः स्वरेणेत्यर्थः, मामालप = मया सह वार्तालापं कुर्वि-त्यर्थः । मम = दुर्योधनस्य, पाण्योः = हस्तयोः, अञ्जलिः = सम्पुटः, प्रभवति= प्रकर्षेण वर्तते, अत एव त्वम् = भानुमतीति भावः, अस्मान् = दुर्योधनमिति भावः, स्पृश = स्पर्शं कुर्वित्यर्थः ।। १६ ।।

टिप्पणी—विकिरेति । प्रस्तुतपद्य के अन्तिम चरण में "प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिस्त्वं स्पृशास्मान्" के स्थान में "प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुम् त्वाम्" ऐसा पाठ भी कहीं कहीं मिलता है जो भावार्थ की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त जान पड़ता है । प्रस्तुत पद्य में दीपकालङ्कार तथा मालिनी छन्द है—"ननमयययुतेयं मालिनीभोगिलोकैः ।। १६ ।।

प्रिये ! घबराहट की क्या आवश्यकता है ? स्वच्छ और विशालनेत्र प्रदेश की ओर चलनेवाली अपनी दृष्टि सेवक के मार्ग पर स्थित इस (मुझ दुर्योधन) पर डालो । मुझसे मन्दहास्यपूर्वक मधुर तथा उदारतापूर्ण बातें उच्च स्वर में करो । मेरे हाथों की अञ्जलि (तुम्हारी सेवा के लिए) प्रस्तुत है इसलिए तुम मुझे स्पर्श करो ।। १६ ।।

भानुमती—अज्जउत्त, अब्भणुण्णादाए दुए अत्थि न कस्सि विणिअमे अहिलासो। (आर्यपुत्र, अभ्यनुज्ञातायास्त्वयास्ति मे कस्मिन्नपि नियमेऽभिलाषः।)

राजा—श्रुतविस्तर एवास्मि भवत्याः स्वप्नवृत्तान्तं प्रति। तदलमेवं प्रकृतिसुकुमारमात्मानं खेदयितुम्।

भानुमती—अज्जउत्त, मे सङ्का बाहेइ। ता अणुमण्णदु मं अज्जउत्तो। (आर्यपुत्र, मां शङ्का बाधते। तदनुमन्यतां मामार्यपुत्रः।)

राजा—(सगर्वम्।) देवि, अलमनया शङ्कया। पश्य—

किं नो व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं
किं द्रोणेन किमङ्गराजविशिखैरेवं यदि क्लाम्यसि।
भीरु भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायासुखोपस्थिता
त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शङ्कास्पदं किं तव॥ १७॥

भानुमतीति। अभ्यनुज्ञातायाः=आज्ञापितायाः, नियमे=व्रते, अभिलाषः=इच्छा।

राजेति। श्रुतविस्तरः=आकर्णितविस्तारः, प्रकृतिसुकुमारम्=स्वभावसुकोमलम्, खेदयितुम्=परितापयितुम्, अलम्=व्यर्थमिति भावः।

अन्वयः—यदि, एवम्, क्लाम्यसि (तर्हि) व्याप्तदिशाम्, प्रकम्पितभुवाम्, नः, अक्षौहिणीनाम्, किम्, फलम्? द्रोणेन, किम्? अङ्गराजविशिखैः, किम्? हे भीरु! त्वम्, मे, भ्रातृशतस्य, भुजवनच्छायासुखोपस्थिता, दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी (असि), तव, किम्, शङ्कास्पदम्?॥ १७॥

भानुमती—महाराज! आपकी अनुज्ञा प्राप्त कर कोई व्रत लेने की मेरी इच्छा है।

राजा—मैं आपके स्वप्नवृत्तान्त को विस्तार के साथ सुन चुका हूँ अत एव स्वभाव से कोमल अपने (शरीर) को कष्ट देना व्यर्थ है।

भानुमती—आर्यपुत्र! मुझे सन्देह सता रहा है इसलिए आप मुझे (व्रत लेने की) आज्ञा प्रदान करें।

राजा—(गर्व के साथ) देवी! इस सन्देह से बस करो। देखो—

यदि तुम इस प्रकार दुःखी होओगी तो दिशाओं में छा जानेवाली तथा

व्याख्या—किनो व्याप्तदिशामिति । यदि=चेत्, त्वमितिशेषः, एवम् = इत्थम्, क्लाम्यसि = परितप्ता भवसि (तर्हि) व्याप्तदिशाम्=व्याप्ताः=आच्छादिताः, दिशाः=काष्ठाः, याभिः, तासाम्, प्रकम्पितभुवाम्=प्रकम्पिता=दोलायिता, भू=भूमिः याभिः, तासाम्, नः = अस्माकम्, अक्षौहिणीनाम् = चतुरङ्गिणीनां सेनानाम्, किं फलम्=किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः । द्रोणेन=द्रोणाचार्येण, किम्= किं फलम् ? अङ्गराजविशिखैः=अङ्गराजस्य=अङ्गदेशाधिपतेः, कर्णस्येति भावः; विशिखैः=बाणैः, किम्=किं फलम् ? हे भीरु=हे भयशीले ! त्वम्=भानुमतीति भावः, मे=मम, दुर्योधनस्येत्यर्थः, भ्रातृशतस्य = सहोदरशतस्य, भुजवनच्छायासुखोपस्थिता=बाहुरूपारण्यच्छायायां सुखेनोपविष्टेति भावः, दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी = दुर्योधन एव केसरीन्द्रः = सिंहराजः, तस्य गृहिणी = गृहस्वामिनी, पत्नीत्यर्थः, असीति क्रियाशेषः, तव=भानुमत्याः, किम्=कीदृशम्, शङ्कास्पदम्= सन्देहस्थानम् । अर्थादेतादृशमहिमामण्डितया त्वया न कोऽपि सन्देहो विधेय इति भावः ।। १७ ।।

टिप्पणी—कि नो व्याप्तदिशामिति । अक्षौहिणीनाम् = दुर्योधन के पास अक्षौहिणी सेना थी । अक्षौहिणी सेना में २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े तथा १०९३५० पैदल सिपाही हुआ करते हैं । इसे ही चतुरंगिणी सेनाभी कहते हैं । अमर कोश में दश अनीकिनी का नाम अक्षौहिणी कहा गया है— "दशानीकिन्यक्षौहिणी" । जिस सेना में १ हाथी, २ रथ, ३ घोड़े औ ५ सिपाही हों उसे पत्ति कहते हैं । तीन पत्ति का नाम सेनामुख, तीन सेनामुख का नाम गुल्म, तीन गुल्म का नाम गण, तीन गण का नाम वाहिनी, तीन वाहिनी का नाम पृतना, तीन पृतना का नाम चमू, तीन चमूका नाम अनीकिनी तथा दस अनीकिनी का नाम अक्षौहिणी है—"एकेभैकरथा=अश्वापत्तिः पञ्च पदातिका ।

पृथ्वी को कँपा देने वाली हमारी अक्षौहिणी सेना का क्या फल हुआ ? आचार्य द्रोण से क्या फल हुआ ? अङ्गदेश के राजा कर्ण के बाणों का क्या फल हुआ ? हे भयशीले ! तुम (मेरेसहित) सौ भाइयों के बाहुरूपी कानन की छाया में सुखपूर्वक बैठी हुई दुर्योधनरूपी सिंहराज की पत्नी हो; तुम्हारे लिए शङ्का का स्थान कैसा ? ।। १७ ।।

भानुमती—अज्जउत्त, ण हु मे किं वि आसङ्काकालणं तुम्हेसु सण्णिहिदेसु। किन्तु अज्जउत्तस्स एव्व मणोरहसम्पत्तिं अहिणन्दामि। (आर्यपुत्र, न खलु मे किमप्याशंककारणं युष्मासु सन्निहितेषु। किन्त्वार्यपुत्रस्यैव मनोरथसम्पत्तिमभिनन्दामि।)

राजा—अयि सुन्दरि, एतावन्त एव मनोरथा यदहं दयितया सङ्गतः स्वेच्छया विहरामीति पश्य—

प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं
लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा।
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा
पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं न दुर्योधनस्य॥ १८॥

पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्यायथोत्तरम्। सेनामुखं गुल्मगुणौ वाहिनी पृतना चमूः। अनीकिनी, दशानीकिन्यक्षौहिणी" त्यमरः। प्रस्तुत पद्य में रूपकालङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥ १७॥

भानुमतीति। युष्मासु = दुर्योधनसहितशतसंख्याकभ्रातृषु सत्स्विति भावः। सन्निहितेषु = समीपे स्थितेषु। मनोरथसम्पत्तिम् = मनोभिलाषपूर्णताम्, साफल्यमित्यर्थः।

राजेति। दयितया=कान्तया, सङ्गतः = युक्तः, विहरामि=विहारङ्करोमि।

अन्वयः—प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभम्, लज्जायोगात्, अविशदकथम्, मन्दमन्दस्मितम्, वा, नियममुषितालक्तकाग्राधरम्, वा, ते, वक्त्रेन्दुम्, पातुम्, इच्छा, (मे सदैव वर्तते) (अतः) परम्, दुर्योधनस्य, किं न, असुलभम् (वर्तते)॥ १८॥

भानुमती—आर्यपुत्र! आप लोगों के निकट रहने पर मुझे सन्देह का कोई कारण ही नहीं है किन्तु मैं आर्यपुत्र की ही मनोरथ-सिद्धि की कामना कर रही हूँ।

राजा—अरी सुन्दरी! मेरे तो केवल ये ही मनोरथ हैं कि मैं प्रिया के साथ मिलकर स्वच्छन्द विहार करूँ। देखो—

जो प्रेमपूर्ण तथा निश्चल नेत्रों से कमल की शोभा को पी रहा है, लज्जा के कारण जिससे स्पष्ट वचन नहीं निकल रहे हैं तथा जिस पर मन्दमन्द मुस्कान है

(नेपथ्ये महान् कलकलः ! सर्वे आकर्णयन्ति ।)

भानुमती—(सभयं राजान परिष्वज्य !) परित्ताअदु परित्ताअदु अउज़-उत्तो । (परित्रायताम् परित्रायतामार्यपुत्रः !)

व्याख्या—प्रेमाबद्धेति । प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभम्=प्रेम्णा = अनुरागेण, आबद्धे = युक्ते, अत एव स्तिमिते = सार्द्रे, ये नयने = नेत्रे, ताभ्याम् आपीयमाना = अधरीक्रियमाणा, अब्जस्य = कमलस्य, शोभा = सौन्दर्यम्, येन तथाभूतम्, लज्जायोगात् = कलवधूचितत्रपायोगादिति भावः, अविशदकथम् = अवृहद्वाचम्, मन्दमन्दस्मितम् = ईषद्धसितम्, वा = तथा, नियममुषितालक्तकाग्राधरम् = नियमेन = व्रतेन, मुषितम् = त्यक्तम्, अलक्तकम् = लाक्षा, ओष्ठरञ्जनद्रव्यमित्यर्थः, यत्र तादृशः अग्राधरः = अधराग्रभागः यत्र तथाभूतम्, वेति पादपूर्तौ, ते = तव, वक्त्रेन्दुम् = मुखचन्द्रम्, पातुम् = पानं कर्त्तुम्, चुम्बितुमित्यर्थः, इच्छा = अभिलाषा, मे सदैव वर्तत इति शेषः । (अतः) परम् = अधिकम् दुर्योधनस्य = ममेति भावः, किन्न, असुलभम् = दुष्प्रापम् अस्तीति शेषः । अन्यत्सर्वं प्राप्यमस्तीति भावः ।। १८ ।।

टिप्पणी—प्रेमाबद्धेति । स्तिमितम् = भीगी वस्तु का नाम स्तिमित है—"आर्द्रं सार्द्रं क्लिन्नं तिमितं स्तिमितं समुन्नयुतं च" इत्यमरः । प्रेमाधिक्य के कारण नेत्रों में जब प्रेमाश्रु उमड़ आते हैं तो नेत्र गीले हो जाते हैं । अलक्तकम्= अलक्तक लाक्षारस को कहा जाता है जिससे होठों को रंगा जाता है । आजकल इसके स्थान में लिपस्टिक का प्रयोग चल पड़ा हैं । प्रस्तुत पद्य मन्दाक्रान्ता छन्द में है ।। १८ ।।

भानुमतीति । परिष्वज्य = गाढं संगृह्य, आलिङ्ग्येत्यर्थः, परित्रायताम् = रक्षतु सम्भ्रमे द्विरुक्तिः ।

और जिसमें अधर के अग्रभाग से व्रत के कारण लाक्षारस के चिह्न दूर हो गये हैं, ऐसे तुम्हारे मुखचन्द्र के पान (चुम्बन) की इच्छा (मुझे सदैव रहती है) । दुर्योधन के लिए अन्य कौन (वस्तु दुर्लभ है ?) ।। १८ ।।

(नेपथ्य में तीव्र कलकलध्वनि होती है । सब सुनते हैं ।)

भानुमती—(भय से राजा का आलिङ्गन करके) रक्षा कीजिए आर्यपुत्र, रक्षा कीजिए ।

राजा—(समन्तादवलोक्य ।) प्रिये, अलं सम्भ्रमेण । पश्य—

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पांसुदण्डोऽन्तरिक्षे
झाङ्कारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः ।
प्रासादानां निकुञ्जेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीर-
श्चण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरु किं सम्भ्रमेण ॥ १९ ॥

अन्वयः—दिक्षु, व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः, अन्तरिक्षे, तृणजटिलचलत्पांसुदण्डः, पथिषु, झाङ्कारी, शर्करालः, विटपिनाम्, स्कन्धकाषैः, सधूमः, प्रासादानाम्, निकुञ्जेषु, अभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीरः, चण्डारम्भः, समीरः, परिदिशम्, वहति, हे भीरु, सम्भ्रमेण, किम् ॥ १९ ॥

व्याख्या—दिक्ष्विति । दिक्षु = दिशासु, व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः = व्यूढानि = इतस्ततः विक्षिप्तानि, अङ्घ्रिपाणाम् = तरुणाम्, अङ्गानि = शाखाः येन तादृशः; अन्तरिक्षे = आकाशे, तृणजटिलचरत्पांसुदण्डः = तृणैः = घासादिखण्डैः, जटिलः = जटाकः, चलंश्च = भ्रमंश्च, पांसूनाम् = धूलीनाम्, दण्डः स्तम्भः यस्मिन् सः; पथिषु = मार्गेषु, झाङ्कारी = झङ्कारेत्यस्फुटशब्दकारी, शर्करालः = शर्कराः सन्ति अस्येति शर्करालः = बालुकापरिव्याप्तः, विटपिनाम् = वृक्षाणाम्, स्कन्धकाषैः = प्रकाण्डकर्षणैः, सधूमः = धूमयुक्तः, प्रासादानाम् = हर्म्याणाम्, देवमन्दिराणां नृपभवनानाञ्चेति भावः । निकुञ्जेषु = अन्तःप्रदेशेषु, अभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीरः = अभिनवः = नूतनो यो जलदः = मेघः, तस्य यः उद्गारः = शब्दः तद्वद्गभीरोऽत एव धीरश्च = शस्तश्च, चण्डारम्भः = प्रचण्डोपक्रमः, समीरः = वायुः, परिदिशम् = सर्वदिक्षु, वहति = वाति, हे भीरु = हे

राजा—(चारों ओर देखकर) प्रिये ! घबराओ मत । देखो—

दिशाओं में बिखेर दिया है वृक्षों की टहनियों को जिसने ऐसा, आकाश में तृणों को परिव्याप्त करके धूलि के दण्ड (बवण्डर) को चलाने वाला, मार्गों में झाँय-झाँय करने वाला तथा जो कंकरिनों से भरा है एवं वृक्षों की शाखाओं की (परस्पर) रगड़ से धूमयुक्त और महलों के कुञ्जों में नूतन मेघ के गर्जन के समान गम्भीर और धीर शब्दवाला यह वायु चारों ओर बह रहा है । (इसलिए) हे भीरु ! इसमें घबराने की क्या बात है ? ॥ १९ ॥

सखी—महाराअ, आरोहीअदु एदं दारुपव्वअप्पासादम् । उव्वेअ-आरी क्खु अअं उत्थिदपरुसरअकलुसीकिदणअणो उम्मूलिदतरुवरसद्दवित्त-त्थमन्दुरापरिब्भट्टवल्लहतुलङ्गमपज्जाउलीकिदजणपद्धई भीसणासमीरणो। (महाराज, आरुह्यतामेतद्दारुपर्वतप्रासादम् । उद्वेगकारी खल्वयमुत्थितपरुषरजः-कलुषीकृतनयन उन्मूलिततरुवरशब्दवित्रस्तमन्दुरापरिभ्रष्टवल्लभतुरङ्गमपर्याकुली-कृतजनपद्धतिर्भीषणः समीरणः ।)

भयशीले ! सम्भ्रमेण = उद्वेगेन, किम् = किं प्रयोजनम् । सर्वमेतत्स्वाभाविक-मतस्त्वया न भेतव्यमित्याशयः ॥ १९ ॥

टिप्पणी—दिक्ष्विति । पांसुदण्डः = पांसु का अर्थ धूलि होता है—'रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना न द्वयोः रजः' इत्यमरः । प्रासादानाम्=देवालयानां और राजमहल का नाम प्रासाद है—"प्रासादो देवभूभुजाम्" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य स्रग्धरा वृत्त में निबद्ध है ॥ १९ ॥

सखीति । दारुपर्वतप्रासादम् = काष्ठनिर्मितक्रीडापर्वतस्थराजभवनम्, आरुह्यताम् = आलम्ब्यताम् । उत्थितपरुषरजःकलुषीकृतनयनः = उत्थितम् = उद्गतम्, यत्परुषम् = कठिनम्, रजः = धूलिः, तेन कलुषीकृतानि = व्याकुली-कृतानि, नयनानि = नेत्राणि यैः, तादृशः, उन्मूलिततरुवरशब्दवित्रस्तमन्दुरा-परिभ्रष्टवल्लभतुरङ्गमपर्याकुलीकृतजनपद्धतिः = उन्मूलिताः = उत्पाटिताः, ये तरुवराः = महान्तो द्रुमाः, तेषां पतता, शब्देन = ध्वनिना, वित्रस्ताः=भीताः, अतो मन्दुरायाः = अश्वशालायाः, परिभ्रष्टाः = उन्मुक्ताः, ये वल्लभाः = श्रेष्ठतमाः, तुरङ्गमाः = अश्वाः, तैः पर्याकुलीकृता =व्याकुलीकृता, जनपद्धतयः= मनुष्यमार्गाः, येन तादृशः, भीषणः = भयङ्करः, समीरणः = वायुः ।

सखी—महाराज ! इस दारुपर्वत के प्रासाद के अन्दर चलिये । उठी हुई कठोर धूलि से नेत्रों को व्याकुल कर देनेवाला, उखड़े हुए बड़े-बड़े वृक्षों के शब्द से भयभीत होकर अश्वशाला से भागे हुए उत्तम घोड़ों से मनुष्यों के मार्ग को अस्तव्यस्त कर देनेवाला तथा हृदय को क्षुब्ध करनेवाला यह भयानक झञ्झावात है ।

राजा—(सहर्षम्) उपकारि खल्विदं वात्याचक्रं सुयोधनस्य। यस्य प्रसादादयत्नपरित्यक्तनियमया देव्या सम्पादितोऽस्मन्मनोरथः कथमिति।

न्यस्ता न भ्रुकुटिर्न बाष्पसलिलैराच्छादिते लोचने
नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं स्पृशन्वारितः।
तन्व्या लग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिङ्गितं
भङ्क्तास्या नियमस्य भीषणमरुन्नायं वयस्यो नु मे॥ २०॥

राजेति। वात्याचक्रम्=वातानाम् = वायूनां समूहः वात्या, तस्याः चक्रम् = वृत्ताकारेण प्रवहणम्। प्रासादात् = अनुग्रहात्, अयत्नपरित्यक्तनियमया = अनायासेन त्यक्तव्रतया, सम्पादितः = पूरितः, मनोरथः = मनोऽभिलाषः।

अन्वयः—तन्व्या, भयवशात्, भ्रुकुटिः, न, न्यस्ता, बाष्पसलिलैः, लोचने, न, आच्छादिते, अन्यतः, आननम्, न, नीतम्, स्पृशन्, अहम्, सशपथम्, न, वारितः, लग्नपयोधरम्, आलिङ्गितम्, आबद्धम्, (अतः) अस्याः, नियमस्य, भङ्क्ता, अयम्, भीषणमरुत्, न, (किन्तु) मे, वयस्यः, नु॥ २०॥

व्याख्या—न्यस्तेति। तन्व्या=कृशाङ्ग्या, भानुमत्येति भावः। भयवशात्= भीतिहेतोः, भ्रुकुटिः = भ्रुकुटिः, न = नहि, न्यस्ता =आरोपिता, बाष्पसलिलैः= अश्रुजलैः, लोचने = नयने, न=नहि, आच्छादिते=पूरिते, अन्यतः=अन्यत्र, अन्यस्यां दिशीति तात्पर्यम्, मुखम् = आननम्, न=नहि, नीतम्=कृतम्, मुखपरिवर्त्तनन्न कृतमिति भावः। स्पृशन् = स्पर्शं कुर्वन्, अहम्=दुर्योधनः, सशपथम्=शपथपूर्वकं यथा स्यात्तथा, न वारितः = न निवारितः, लग्नपयोधरम् = सम्मिलितस्तनं यथा स्यात्तथा, आलिङ्गितम्=आलिङ्गनम् (भावे क्त-

राजा—(हर्षपूर्वक) यह झञ्झावात सुयोधन के लिए उपकारक ही है जिसकी कृपा से बिना प्रयत्न के ही व्रत छोड़ देनेवाली देवी ने हमारी मनोभिलाषा पूरी कर दी। क्योंकि इस कृशाङ्गी ने न भ्रुकुटि टेढ़ी की, न आँसुओं से आँखों को ढँके, न मुख को ही दूसरी ओर किया और नहीं स्पर्श करते हुए मुझे शपथ पूर्वक रोका ही (अपि तु) भय के कारण स्वयं इसने अपने स्तनों को दबाकर मेरा आलिङ्गन किया अतः इसके व्रत को भङ्ग करने वाला यह भीषण वायु नहीं हैं बल्कि मेरा परम मित्र है॥ २०॥

तत्सम्पूर्णमनोरथस्य मे कामचारः सम्प्रति विहारेषु। तदितो दारुपर्वतप्रासादमेव गच्छामः।

(सर्वे वात्यावाधां रूपयन्तः परिक्रामन्ति।)

राजा—

कुरु घनोरु पदानि शनैः शनैरयि विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम्।
सुतनु बाहुलतोपनिबन्धनं मम निपीडय गाढमुरःस्थलम् ॥ २१ ॥

प्रत्ययः), आवद्धम् = कृतम्, (अतः) अस्याः = भानुमत्याः, नियमस्य = व्रतस्य, भङ्क्ता = भञ्जकः, अयम् = एषः, भीषणमरुत् = भयंकरो वायुः, न = नहि वर्तते (किन्तु) मे=मम, वयस्यः = मित्रम्, सहायक इत्यर्थः, नु=उत्प्रेक्षे। उपकारकत्वान्मम सहायक एवाऽयं वायुरित्यभिप्रायः ॥ २० ॥

टिप्पणी—न्यस्तेति। प्रस्तुत पद्य में 'काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। प्रस्तुत पद्य के तृतीय चरण में "लग्नपयोधरम्" के स्थान में कहीं कहीं "मग्नपयोधरम्" पाठ भी मिलता है। शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ २० ॥

तदिति। सम्पूर्णमनोरथस्य = पूरितमनोऽभिलाषस्य, मे = मम, सम्प्रति = इदानीम्, विहारेषु = क्रीडासु, कामचारः=स्वेच्छाचारः।

(वात्यावाधाम् = झञ्झावातजन्यकष्टम्, रूपयन्तः = अभिनयन्तः)

अन्वयः—(हे) धनोरु, शनैः शनैः, पदानि, कुरु, अपि (प्रिये) परिवेपिनीम्, गतिम्, विमुञ्च, (हे) सुतनु, बाहुलतोपनिबन्धनम्, मम, गाढम्, उरःस्थलम्, निपीडय ॥ २१ ॥

व्याख्या—कुर्विति। (हे) घनोरु = हे निवडजङ्घे! शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, पदानि = चरणन्यासान्, कुरु=सम्पादय, अयि=प्रिये, परिवेपिनीम्=

इसलिए पूर्ण मनोरथ वाला मैं अब इच्छानुसार विहार कर सकता हूँ। तो यहाँ से दारुपर्वत के प्रासाद में ही चलूँ।

(सब आँधी के कष्ट का अभिनय करते हुए कठिनता से चलते हैं)

राजा—हे निबिड जङ्घाओं वाली! धीरे-धीरे पैर रखो, लड़खड़ाती गति को छोड़ो। हे सुन्दर शरीरवाली! अपनी भुजलताओं से पकड़कर मेरे वक्षःस्थल का गाढ आलिङ्गन करो ॥ २१ ॥

(प्रवेशं रूपयित्वा ।) प्रिये, अलब्धावकाशः समीरणासारः स्तिमितत्वाद्गर्भगृहस्य । विस्रब्धमुन्मीलय चक्षुरुन्मृष्टरेणुनिकरम् ।

भानुमती—(सहर्षम् ।) दिट्ठिआ उह दाव उप्पादसमीरणो ण बाधेइ । (दिष्ट्येह तावदुत्पातसमीरणो न बाधते !)

सखी—आरोहणसम्भमणिस्सहं पिअसहीए ऊरुजुअलम् । ता कीस दाणी महाराओ आसणवेदीं ण भूसेदि । (आरोहणसम्भ्रमनिःसह प्रियसख्या ऊरुयुगलम् । तत्कस्मादिदानीं महाराज आसनवेदीं न भूषयति ।)

कम्पमानाम्, गतिम् = गमनम्, विमुञ्च = परित्यज, (हे) सुतनु=सुन्दरशरीरे, बाहुलतोपनिबन्धनम् = बाहुः = भुजः, लतेव = वल्लीव, तया उपनिबन्धनम्= आबन्धः, तद्यथा स्यात्तथा, मम=दुर्योधनस्य, तव प्रियतमस्येत्यर्थः, गाढम्=दृढम्, उरःस्थलम्, निपीडय = आलिङ्गय, सुखदं प्रगाढालिङ्गनं कुर्विति भावः ॥२१॥

टिप्पणी—कुर्विति । घनोरु = घनौ ऊरू यस्याः, सा (बहु०) तत्सम्बुद्धौ रूपम् । इस पद्य में उपमा अलङ्कार तथा द्रुतविलम्बित छन्द है जिसका लक्षण है—"द्रुतविलम्बितमाह्नभौभरौ" ॥ २१ ॥

प्रिय इति । समीरणासारः = समीरणस्य=वायोः, आसारः = वेगः, अलब्धावकाशः = अप्राप्तस्थानः, गर्भगृहस्य = अन्तर्गेहस्य, स्तिमितत्वात् = आवरणात् । विस्रब्धम् = विस्रम्भो विश्वासः तेन सहितं यथा स्यात्तथा, निःशङ्कमितिभावः ।/ उन्मृष्टरेणुनिकरम् = उन्मृष्टः = प्रोञ्छितः, रेणुनिकरः = रजःसमुदायः यस्मात् तत्, चक्षुः = नयनम्, उन्मीलय=उद्घाटय ।

सखीति । आरोहणसम्भ्रमनिःसहम् = आरोहणस्य=दारुपर्वते आगमनस्य, सम्भ्रमेण = त्वरया, निःसहम् = अक्षमम्, ऊरुयुगलम् = जङ्घाद्वयम् । आसन-

---

(प्रवेश करने का नाट्य करके) हे प्रिये ! इस गर्भगृह के बन्द होने के कारण (यहाँ) आँधी को स्थान नहीं मिला । अतः निःशङ्क धूल पोंछकर आँखें खोलो ।

भानुमती—(प्रसन्नता के साथ) सौभाग्य से यहाँ उत्पात-वायु नहीं सता रही है ।

सखी—प्रियसखी की दोनों जङ्घाएं (ऊपर) चढ़ने की शीघ्रता के

राजा—(देवीमवलोक्य ।) भवति, अनल्पमेवापकृतं वात्यासम्भ्रमेण । तथाहि—

रेणुर्बाधां विधत्ते तनुरपि महतीं नेत्रयोरायतत्वा-
दुत्कम्पोऽल्पोऽपि पीनस्तनभरितमुरः क्षिप्तहारं दुनोति ।
ऊर्वोर्मन्देऽपि याते पृथुजघनभराद्वेपथुर्वर्धतेऽस्या
वात्या खेदं मृगाक्ष्याः सुचिरमवयवैर्दत्तहस्ता करोति ॥ २२ ॥

वेदीम् = आसनार्थम् = उपवेशनार्थम् कृता वेदी = चत्वरम्, ताम्, न भूषयति = नालङ्करोति ।

राजेति । भवति = भानुमति ! अनल्पम् = अधिकम्, अपकृतम् = अपकारः कृतः, भवत्येति शेषः । वात्यासम्भ्रमेण = वायुसमूहभयेन ।

अन्वयः—तनुः, अपि, रेणुः, (अस्याः) नेत्रयोः, आयतत्वात्, महतीम्, वाधाम्, विधत्ते, अल्पः, अपि, उत्कम्पः, पीनस्तनभरितम्, क्षिप्तहारम्, उरः, दुनोति, मन्दे, अपि, याते, पृथुजघनभरात्, अस्याः, उर्वोः, वेपथुः, वर्धते, मृगाक्ष्याः, अवयवैः, दत्तहस्ता, वात्या, (अस्याः) सुचिरम्, खेदम्, करोति ॥ २२ ॥

व्याख्या—रेणुरिति । तनुः = अल्पः, अपि रेणुः = धूलिः, (अस्याः = भानुमत्याः) नेत्रयोः = नयनयोः, आयतत्वात् = विशालत्वात्, महतीम् = अत्यधिकाम्, वाधाम् = कष्टम्, विधत्ते = करोति, अल्पः = ईषत्, अपि

कारण अशक्त हो गई हैं । तो अब महाराज आसन-वेदिका (चबूतरे) को क्यों नहीं अलङ्कृत करते ?

राजा—(देवी को देखकर) भद्रे ! आँधी के उत्थान ने तो बहुत ही अपकार किया क्योंकि—थोड़ी सी धूलि भी (इसके) नेत्रों की विशालता के कारण पीड़ा दे रही है; थोड़ा सा भी कम्पन स्थूलस्तनों के भार से दबे हुए तथा जिस पर से हार को पृथक् कर दिया गया है एसे (इसके) वक्षःस्थल को कष्ट दे रहा है; धीरे-धीरे चलने पर भी स्थूल जघन (कटि) के भार के कारण इसकी जङ्घाओं में कम्पन बढ़ रहा है; (इस प्रकार) झञ्झावात इसी मृगनयनी के अङ्गो से सहायता प्राप्त कर इसे ही अधिक समय तक कष्ट दे रहा है ॥ २२ ॥

(सर्वे उपविशन्ति ।)

राजा—तत्किमित्यनास्तीर्णं कठिनशिलातलमध्यास्ते देवी ।

लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्तं
त्वद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य ।
अध्यासितुं तव चिरं जघनस्थलस्य
पर्याप्तमेव करभोरु ममोरुयुग्मम् ॥ २३ ॥

उत्कम्पः = कम्पनम्, पीनस्तनभरितम् = स्थूलकुचभाराक्रान्तम्, क्षिप्तहारम्= क्षिप्तं हारं यत्र तत्, उरः = वक्षः, दुनोति = पीडयति, मन्दे = शिथिले, अपि याते = गमने, पृथुजघनभरात् = स्थूलस्त्रीश्रोणिपुरोभागस्य भारात्, अस्याः = भानुमत्याः, ऊर्वोः = जङ्घयोः, वेपथुः = कम्पनम्, वर्धते = वृद्धिं प्राप्नोति, मृगाक्ष्याः = हरिणनेत्रायाः, भानुमत्याः इति भावः । अवयवैः = अङ्गैः, दत्तहस्ता = कृतसाहाय्या, वात्या = वायुसमूहः, (अस्याः) सुचिरम् = बहुकालं यावत, खेदम् = दुःखम् करोति = सम्पादयति ॥ २२ ॥

टिप्पणी—रेणुरिति । प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है ॥ २२ ॥

राजेति । अनास्तीर्णम् = वस्त्रेणानाच्छिन्नमित्यर्थः, अध्यास्ते = उपविशति, किमिति प्रश्ने ।

अन्वयः—हे करभोरु, पवनाकुलितांशुकान्तम्, (अत एव) त्वद्दृष्टिहारि, मम, ऊरुयुग्मम्, लोलांशुकस्य, (अतः) मम, लोचनबान्धवस्य, तव, जघनस्थलम्, चिरम्, अध्यासितुम्, पर्याप्तम्, एव ॥ २३ ॥

(सब बैठते हैं ।)

राजा—तो क्या इस तरह बिछावन-विहीन कठोर शिलातल पर ही महारानी बैठेंगी ?

हे करभोरु ! वायु से चञ्चल वस्त्र के छोरवाला और तुम्हारी दृष्टि को हरनेवाला मेरा यह ऊरुयुगल, चञ्चल वस्त्रवाले और आँखों को प्रिय तुम्हारे जघनस्थल के चिरकाल तक आश्रय लेने के लिए पर्याप्त है ॥ २३ ॥

(प्रविश्य पटाक्षेपेण सम्भ्रान्तः ।)

कञ्चुकी—देव, भग्नं भग्नम् ।

(सर्वे साकूतं पश्यन्ति ।)

राजा—केन ?

कञ्चुकी—भीमेन ।

राजा—कस्य ।

व्याख्या—लोलांशुकस्येति । (हे) करभोरु = हे करभजङ्घे ! पवनाकुलितांशुकान्तम् = पवनेन = वायुना, आकुलितः = स्वस्थानाद्व्यस्तीकृतः, अंशुकान्तः = वस्त्रान्तो यस्मिन् तत् (अत एव) त्वद्दृष्टिहारि = तव नेत्रहरणशीलम्, मम = मे, दुर्योधनस्येत्यर्थः, ऊरुयुग्मम् = जघनयुगलम्, लोलांशुकस्य = चञ्चलवस्त्रस्य (अतः) मम = दुर्योधनस्य, लोचनबान्धवस्य = नयनबन्धोः, तव = भवत्याः, जघनस्थलस्य = जघनम् = कटिपश्चाद्भागः, स्थलमिव = पट्टमिव, तस्य, चिरम् = दीर्घकालम्, अध्यासितुम् = आश्रयाय, पर्याप्तम् = समर्थम्, एवेत्यवधारणे, अस्तीति क्रियाशेषः ।। २३ ।।

टिप्पणी—लोलांशुकस्येति । करभोरु=कलाई से लेकर अंगुलियों तक हथेली के हिस्से को करभ कहते हैं—"मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः ।" इत्यमरः । जघनस्थलस्य = जघनं स्थलमिव, तस्य । यहाँ पर "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे" से समास किया गया है । प्रस्तुत पद्य में दो योग्य वस्तुओं की संघटना के कारण सम अलङ्कार है । छन्द वसन्ततिलका है—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः ।। २३ ।।

(साकूतम् = साश्चर्यमित्यर्थः)

(पर्दा हटाकर प्रवेश करके घबड़ाया हुआ)

कञ्चुकी—महाराज ! टूट गया, टूट गया ।

(सब आश्चर्य के साथ देख रहे हैं ।)

राजा—किसके द्वारा ?

कञ्चुकी—भीम के द्वारा ।

राजा—किसका ?

कञ्चुकी—भवतः।

राजा—आः, किं प्रलपसि।

भानुमती—अज्ज, किं अणिट्ठं मन्तेसि। (आर्य, किमनिष्टं मन्त्रयसे।)

राजा—धिक्प्रलापिन्, वृद्धापसद, कोऽयमद्य ते व्यामोहः।

कञ्चुकी—देव, न खलु कश्चिद्व्यामोहः। सत्यमेव ब्रवीमि।

भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम्।
पतितं किङ्किणीक्वाणबद्धाक्रन्दमिव क्षितौ ॥ २४ ॥

भानुमतीति। अनिष्टम् = अशुभकारकम्, मन्त्रयसे = चिन्तयसि।

राजेति। वृद्धापसद = वृद्धाधम, व्यामोहः = मतिविभ्रमः।

अन्वयः—भीमेन, मरुता, भवतः, रथकेतनम्, भग्नम्, क्षितौ, किङ्किणीक्वाणबद्धाक्रन्दम्, इव, पतितम् ॥ २४ ॥

व्याख्या—भग्नमिति। भीमेन=भीषणेन, पक्षे भीमसेनेन, मरुता=पवनेन, पक्षे पवनरूपेण, भवतः=श्रीमतस्तव, दुर्योधनस्येत्यर्थः, रथकेतनम्=स्यन्दनध्वजम्, भग्नम् = छिन्नम्, क्षितौ = भूमौ, किङ्किणीक्वाणबद्धाक्रन्दम् = किङ्किणीनाम्= क्षुद्रघण्टिकानां, क्वाणेन = शब्देन, बद्धः = प्रारब्धः, आक्रन्दः = विलापः, येन, तथाभूतमिव, पतितम् = अध आगतम् ॥ २४ ॥

टिप्पणी—भग्नमिति। प्रस्तुत पद्य में "भीमेन मरुता" के दो अर्थ होते हैं—भीषणवायु और वायुरूप भीमसेन। भीमसेन चूंकि वायु के पुत्र थे अतः

कञ्चुकी—आपका।

राजा—अरे! आ बक रहा है?

भानुमती—आर्य! क्या अशुभ (बातें) बोल रहे हो?

राजा—धिक्कार! बकवादी, नीच बुड्ढे! आज तुझे यह कैसा मतिविभ्रम हो गया है?

कञ्चुकी—महाराज! मुझे कोई मतिविभ्रम नहीं हुआ है। सत्य ही कह रहा हूँ—

भयङ्कर वायु से तोड़ दी गई आपके रथ की पताका, घुँघरुओं के शब्द से मानों विलाप करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी है ॥ २४ ॥

राजा—बलवत्समीरणवेगात्कम्पिते भुवने भग्नः स्यन्दनकेतुः। तत्कि-मित्युद्धतं प्रलपसि भग्नं भग्नमिति।

कञ्चुकी—देव, न किञ्चित्। किन्तु शमनार्थमस्यानिमित्तस्य विज्ञापयितव्यो देव इति स्वामिभक्तिर्मां मुखरयति।

भानुमती—अज्जउत्त, अन्तुरीअदु एदं पसण्णब्रह्मणवेअघोसेण। (आर्यपुत्र, अन्तर्यतामेतत्प्रसन्नब्राह्मणवेदघोषेण।)

राजा—(सावज्ञम्।) ननु गच्छ। पुरोहितसुमित्राय निवेदय।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रान्तः।)

"आत्मा वै जायते पुत्र" इस न्याय से स्वयं तद्रूप होने के कारण भीमसेन के लिए "मरुता" शब्द सार्थक हो जाता है। इस पद्य में भीमसेन द्वारा दुर्योधन के भावी जङ्घाभज्जन की सूचना भी मिलती है। किङ्किणी = किङ्किणी छोटी छोटी घंटियों को कहते हैं—"किङ्किणी क्षुद्रघण्टिका" इत्यमरः। लोक में घुंघरू शब्द से यह प्रसिद्ध है। पथ्यावक्त्र छन्द है॥ २४॥

राजेति। बलवत्समीरणवेगात्=प्रबलपवनप्रवाहात्, स्यन्दनकेतुः=रथपताका।

कञ्चुकीति। अस्य = ध्वजभङ्गरूपस्य, अनिमित्तस्य = अपशकुनस्य, शमनार्थम् = शान्त्यर्थम्, मुखरयति = वक्तुं प्रेरयति।

भानुमतीति। अन्तर्यताम् = निवार्यताम्।

राजा—प्रबल वायु-वेग से विश्व के कम्पित हो जाने पर यदि रथ की पताका टूट ही गई तो क्यों इस प्रकार उद्दण्डतापूर्वक प्रलाप कर रहे हो—"टूट गया टूट गया"।

कञ्चुकी—महाराज! कुछ भी नहीं, किन्तु इस अनिष्ट के शमन के लिए महाराज को सूचित कर देना चाहिए, यह स्वामि-भक्ति ही मुझे कहने के लिए प्रेरित कर रही है।

भानुमती—आर्यपुत्र, प्रसन्न हुए ब्राह्मण के वेदपाठ से इस (अपशकुन) का निवारण करें।

राजा—(तिरस्कारपूर्वक) अरे जाओ। पुरोहित सुमित्र से कह दो।

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है।)

(प्रविश्य)

प्रतीहारी —(सोद्वेगमुपसृत्य ।) जअदि जअदि महाराओ । महाराअ, महादेवी क्खु एसा सिन्धुराअमादा दुस्सला अ पडिहारभूमाए चिट्ठदि । (जयति जयति महाराजः । महाराज, महादेवी खल्वेषा सिन्धुराजमाता दुःशला च प्रतीहारभूमौ तिष्ठति ।)

राजा —(किंचिद्विचिन्त्यात्मगतम् ।) किं जयद्रथमाता दुःशला चेति । कच्चिदभिमन्युवधामर्षितैः पाण्डुपुत्रैर्न किञ्चिदत्याहितमाचेष्टितं भवेत् । (प्रकाशम्) गच्छ । प्रवेशय शीघ्रम् ।

प्रतीहारी—जं देवो आणवेदि । [यद्देव आज्ञापयति ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

(ततः प्रविशति सम्भ्रान्ता जयद्रथमाता दुःशला च ।

(उभे सास्रं दुर्योधनस्य पादयोः पततः ।)

प्रतीहारीति । सिन्धुराजमाता = जयद्रथजननी, दुःशला = दुर्योधनभगिनी; प्रतीहारभूमौ = द्वारि ।

टिप्पणी —दुश्शला = दुश्शला दुर्योधन की बहन थी ।

राजेति । अभिमन्युवधामर्षितैः=अभिमन्युघातेन क्रुद्धैः; आचेष्टितम्=कृतम् ।

(सास्रम् = अश्रुणा सहितम्, वाष्पपूरितनयनमित्यर्थः ।)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी —(घबराई हुई समीप जाकर) जय हो, महाराज की जय हो । महाराज ! यह सिन्धुराज जयद्रथ की माता और आपकी बहन दुश्शला द्वार-भूमिपर उपस्थित है ।

राजा—(कुछ सोचकर मन ही मन) क्या, जयद्रथ की माता और दुश्शला ? कहीं अभिमन्यु के वध से क्रुद्ध पाण्डवों ने कुछ अनिष्ट तो नहीं कर डाला ! (प्रकट) जाओ, शीघ्र अन्दर ले आओ ।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा । (चली जाती है ।)

(उसके बाद घबराई हुई जयद्रथ-माता तथा दुश्शला प्रवेश करती है ।)

(दोनों अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ दुर्योधन के पैरों पर गिर पड़ती हैं ।)

माता—परित्ताअदु परित्ताअदु कुमालो। (परित्रायतां परित्रायतां कुमारः।)

(दुःशला रोदिति।)

राजा—(ससम्भ्रममुत्थाप्य।) अम्ब, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। किमत्याहितम्। अपि कुशलं समराङ्गणेष्वप्रतिरथस्य जयद्रथस्य।

माता—जाद, कुदो कुसलम्। (जात, कुतः कुशलम्।)

राजा—कथमिव।

माता—(साशङ्कम्।) अज्ज क्खु पुत्तवहामरिसिदेण गण्डीविणा अणत्थमिदे दिवहणाहे तस्स वहो पडिण्णादो। (अद्य खलु पुत्रवधामर्षितेन गाण्डीविनाऽनस्तमिते दिवसनाथे तस्य वधः प्रतिज्ञातः।)

राजा—(सस्मितम्।) इदं तदश्रुकारणमम्बाया दुःशलायाश्च। पुत्रशोकादुत्तप्तस्य किरीटिनः प्रलपितैरेवमवस्था। अहो मुग्धत्वमबलानां नाम। अम्ब, कृतं विषादेन। वत्से दुःशले, अलमश्रुपातेन। कुतश्चायं तस्य धन-

राजेति। समाश्वसिहि=समाश्वसनं कुरु, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। समराङ्गणेषु=युद्धभूमिषु अप्रतिरथस्य = अविद्यमानप्रतिपक्षस्यन्दनस्य।

मातेति। गाण्डीविना=अर्जुनेन, अनस्तमिते=अस्तमप्राप्ते, दिवसनाथे=सूर्ये। राजेति। किरीटिनः = अर्जुनस्य, प्रलपितैः = प्रलापैः, दुर्योधनबाहुपरि-

माता—रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, कुमार !

(दुश्शला रोती है।)

राजा—(घबराहट के साथ उठाकर) माताजी ! धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ! क्या अनर्थ हुआ ? अद्वितीय वीर जयद्रथ रण-भूमि में सकुशल तो हैं ?

माता—वत्स ! कुशल कहाँ ?

राजा—क्यों, क्या हुआ ?

माता—(आशङ्कापूर्वक) आज पुत्रवध से क्रुद्ध गाण्डीवधारी अर्जुन ने सूर्यास्त से पहले ही उसके वध की प्रतिज्ञा की है।

राजा—(मुस्कुराकर) तो माताजी और दुश्शला के आँसुओं का कारण यह है। पुत्रशोक से विह्वल अर्जुन के प्रलापों से यह अवस्था है। ओह !

ञ्जयस्य प्रभावो दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य महारथजयद्रथस्य विपत्ति-मुत्पादयितुम् ।

माता—जाद जाद, दे हि पुत्तबन्धुवहारमरिसुद्दीविदकोवाणला अण-पेक्खिदसरीरा वीरा परिक्कामन्ति । (जात, जात, ते हि पुत्रबन्धुवधामर्षोद्दी-पितकोपानला अनपेक्षितशरीरा वीराः परिक्रामन्ति ।)

राजा-(सोपहासम्) एवमेतत् । सर्वजनप्रसिद्धैवामर्षिता पाण्डवानाम् । पश्य ।

हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना दुःशासनेनाज्ञया
पाञ्चाली मम राजचक्रपुरतो गौर्गौरिति व्याहृता ।
तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डिवधरो नासीत्पृथानन्दनो
यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत् ॥ २५ ॥

घरक्षितस्य = दुर्योधनस्य = मम, बाहुः = भुजा, परिघः = अर्गला, इवेति, तेन रक्षितस्य = पालितस्य ।

मातेति । अनपेक्षितशरीराः = उपेक्षितदेहाः ।

राजेति । सर्वजनप्रसिद्धा = निखिललोकख्याता, अमर्षिता = क्रोधः ।

अन्वयः—मम, आज्ञया, दुःशासनेन, हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना, पाञ्चाली राजचक्रपुरतः, गौर्गौः, इति, व्याहृता, तस्मिन्, एव, (समये) सः, गाण्डिवधरः, पृथानन्दनः, किम् नु, न, आसीत्, तत्, क्षत्रियवंशजस्य, कृतिनः, यूनः, क्रोधा-स्पदम्, किम्, न ॥ २५ ॥

स्त्रियों में कितना भोलापन होता है । माताजी ! दुःख मत कीजिए । प्रिय दुश्शला ! आँसू न गिराओ अर्जुन में यह इतनी सामर्थ्य कहाँ कि वह दुर्योधन की भुजारूपी परिघ से रक्षित महारथी जयद्रथ के लिए विपत्ति उत्पन्न कर सकें ।

माता—बेटा, बेटा ! पुत्र एवं बन्धुओं के वध को न सहने से प्रज्वलित क्रोधाग्निवाले वे (पाण्डव) वीर अपने शरीर की परवाह न करके घूम रहे हैं ।

राजा—(उपहासपूर्वक) ऐसा ही है । पाण्डवों की असहिष्णुता को सभी लोग जानते हैं । देखो—

मेरी आज्ञा से दुःशासन के हाथ से खींचे गये (अत एव) चञ्चल केशों और वस्त्रवाली पाञ्चालपुत्री (द्रौपदी) से राजसमूह के समक्ष "गाय-गाय"

माता—असमत्तपडिण्णाभारस्स अप्पवहो से पडिण्णादो (असमाप्त-प्रतिज्ञाभारेणात्मवधस्तेन प्रतिज्ञातः ।)

व्याख्या—हस्ताकृष्टेति । मम = दुर्योधनस्य, आज्ञया = आदेशेन; दुःशासनेन = दुःशासन नाम्ना ममानुजेन, हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना= कराकृष्ट-चञ्चलकचवस्त्रा, पाञ्चाली=पाञ्चालराजदुहिता, द्रौपदीति भावः, राजचक्रपुरतः= भूपतिसमूहसमक्षम्, गौर्गौः = गौरस्मि, गौरस्मि, गौरिव रक्षणीयाऽहमस्मीति भावः, इति = एवम्, व्याहृता = उक्तवती, तस्मिन् = तादृशे सङ्कटपूर्णे इत्यर्थः; एव = अपि, समय इति शेषः, सः = प्रसिद्धः, गाण्डिवधरः = गाण्डीवधारी; पृथानन्दनः = पृथासुतः, अर्जुन इति भावः, किनु नासीत् = आसीदेवेत्यर्थः । तत् = व्याहरणम्, क्षत्रियवंशजस्य = राजन्यकुलोत्पन्नस्य, कृतिनः प्रवीणस्य, शस्त्रादिसञ्चालन इति भावः, यूनः = युवकस्य, क्रोधास्पदम् = कोपस्थानम्, किं न = किं नासीत्, अपितु, आसीदेव, किन्तु सः किमपि कर्त्तुं नाशक्नोदतस्त-स्मान्न भेतव्यमित्याशयः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—हस्तेति । गौर्गौरिति । राजसभा में राजपत्नियों का "गौ-गौ (गाय-गाय)" कहकर चिल्लाना अपमान का सूचक है । "गौ-गौ" कहकर चिल्लाने का तात्पर्य है कि "मैं गाय के सदृश तुम्हारे लिए अवध्य हूँ इसलिए मेरी रक्षा करो" । वस्त्रापकर्षण के समय द्रौपदी भी "गौ-गौ" कहकर चिल्लाई थी और पाण्डव देखते रह गये थे । प्रस्तुत पद्य में शार्दूल विक्रीडित छन्द है।२५।

मातेति । असमाप्तप्रतिज्ञाभारेण = असमाप्तः = अपूरितः प्रतिज्ञायाः = प्रणस्य, भारः = भरः, येन, तेन, आत्मवधः = निजमरणम्, प्रतिज्ञातः = सङ्कल्पितः ।

ऐसा कहलाया था । क्या गाण्डीवधारी वह पृथा का पुत्र उस समय वहाँ नहीं था ? क्या क्षत्रियवंश में उत्पन्न शस्त्र-निपुण युवक के लिए वह क्रोध का स्थान नहीं था ? ॥ २५ ॥

माता—प्रतिज्ञा का भार समाप्त न कर लेने पर उसने आत्मघात की प्रतिज्ञा की है ।

राजा—यद्येवमलमानन्दस्थानेऽपि ते विषादेन। ननु वक्तव्यमुत्सन्न-सानुजो युधिष्ठिर इति। अन्यच्च मातः, का शक्तिरस्ति धनञ्जयस्याऽन्यस्य वा कुरुशतपरिवारवर्धितमहिम्नः कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादिमहारथपराक्रम-द्विगुणीकृतनिरावरणविक्रमस्य नामाऽपि ग्रहीतुं ते तनयस्य। अयि सुत-पराक्रमानभिज्ञे!

धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन।
एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः।२६।

राजेति। आनन्दस्थाने = हर्षस्थाने, उत्सन्नसानुजः = उत्सन्नः = मृतः, सानुजः = अनुजैः = लघुभ्रातृभिः सहितः इति। कुरुशतपरिवारवर्धितमहिम्नः = कुरूणां शतम् = शतावयवः समुदायः, स एव परिवारः = बान्धवः, तेन वर्धितः = वृद्धिम्प्राप्तः महिमा = महत्व यस्य, तस्य, कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादि-महारथपराक्रमद्विगुणीकृतनिरावरणविक्रमस्य = कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादिमहा-रथानां पराक्रमैः द्विगुणीकृतः = द्विगुणत्वं प्रापितः, निरावरणः = आवरणरहितः, विक्रमः = पराक्रमः यस्य, तस्य। सुतपराक्रमानभिज्ञे = सुतस्य = पुत्रस्य, पराक्रमः = विक्रमः, तस्य अनभिज्ञा, तत्सम्बुद्धौ।

अन्वयः—धर्मात्मजम्, च, यमौ, प्रति, कथा, एव, न, अस्ति, वृकोदर-किरीटभृतोः, मध्ये, एकः, अपि, कः, विस्फुरितमण्डलचापचक्रम्, सिन्धुराजम्, बलेन, अभिषेणयितुम्, समर्थः ॥ २६ ॥

राजा—यदि ऐसा है तो आपको हर्ष के स्थान में विषाद नहीं करना चाहिए। तब तो कहना चाहिए कि युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयों सहित नष्ट हो गया। दूसरे, माताजी, अर्जुन या अन्य किसी में क्या शक्ति है जो तुम्हारे पुत्रका सौ कौरवों के समूह से जिसका महत्त्व बढ़ गया है और कृप, कर्ण, द्रोण अश्वत्थामा आदि महारथियों के द्वारा जिसका दुर्धर्ष पराक्रम दुगना हो गया है—नाम भी ले सके। अरी, पुत्र के पराक्रम से अपरिचित।

युधिष्ठिर और जोड़ियों (नकुल तथा सहदेव) का तो कहना ही नहीं भीम और अर्जुन में से कौन सा एक, चमकते हुए वर्तुलाकार धनुर्मण्डल वाले सिन्धुराज (जयद्रथ) पर बलपूर्वक आक्रमण करने में समर्थ है? ॥ २६ ॥

भानुमती—अज्ज उत्त, जइवि एव्वं तहवि गुरुकिदपडिण्णाभारोट्ठाणं क्खु सङ्काए। (आर्यपुत्र, यद्यप्येवं तथापि गुरुकृतप्रतिज्ञाभारः स्थानं खलु शङ्कायाः)

माता–जाद साहु, कालो इदं भणिअं भाणुमदीए। (जात, साधु, कालोचितं भणितं भानुमत्या।)

राजा—आः ममापि नाम दुर्योधनस्य शङ्कास्थानं पाण्डवाः। पश्य—

व्याख्या—धर्मात्मजमिति। धर्मात्मजम् = धर्मतनयम्, युधिष्ठिरमित्यर्थः, च = तथा, यमौ = युगलौ, नकुलसहदेवावित्यर्थः, प्रति, कथा = कथनम्, एव नास्ति = इमे जयद्रथस्य न किमपि कर्त्तुं शक्नुवन्तीति भावः। वृकोदरकिरीटभृतोः = भीमार्जुनयोः, मध्ये, एकः अपि कः = कतर इत्यर्थः, विस्फुरितमण्डलचापचक्रम् = विस्फुरितम् = चपलम्, मण्डलम् = वर्तुलाकारम्, यस्य, तादृशं चापचक्रम् = धनुश्चक्रं यस्य, तम्, सिन्धुराजम् = सिन्धुदेशाधिपम्, जयद्रथमिति भावः, बलेन = ऊर्जितेन, अभिषेणयितुम् = सेनयाऽभियातुम्, समर्थः = क्षमः ? न कोऽपि क्षम इत्यर्थः। अत्र पाण्डवापेक्षया जयद्रथस्याधिकबलवत्त्वं सूचितम् ॥ २६ ॥

टिप्पणी—धर्मात्मजमिति—प्रस्तुत पद्य में वसन्ततिलका छन्द है।२६॥

भानुमतीति। यद्यपि, एवम् = पाण्डवापेक्षया जयद्रथोऽधिकः शक्तिमान्, तथापि गुरुकृतप्रतिज्ञाभारः = महता कृतः प्रतिज्ञाभारः, शङ्कायाः = संशयस्य, स्थानम् = आस्पदम्।

मातेति। जात = पुत्र, साधु = सम्यक्, कालोचितम् = समयानुरूपम्, भानुमत्या भणितम् = कथितम्।

भानुमती—आर्यपुत्र! यद्यपि यह सत्य है, परन्तु की गई भीषण प्रतिज्ञा के भारवाला अर्जुन शङ्का का कारण है।

माता—बेटा! भानुमती ने अच्छी और समयोचित बात कही है।

राजा—ओह! क्या मुझ दुर्योधन के लिए भी पाण्डव शङ्का का कारण हो सकते हैं? देखो—

कोदण्डज्याकिणाङ्कैरगणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदेहैः
श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः ।
रेणुग्रस्तार्कभासां प्रचलदसिलतादन्तुराणां बलाना-
माक्रान्ता भ्रातृभिर्मे दिशि दिशि समरे कोटयः सम्पतन्ति ॥२७॥

अन्वयः—कोदण्डज्याकिणाङ्कैः, अगणितरिपुभिः, कङ्कटोन्मुक्तदेहैः, श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः, सितकमलवनभ्रान्तिम्, उत्पादयद्भिः, मे, भ्रातृभिः, रेणुग्रस्तार्कभासाम्, प्रचलदसिलतादन्तुराणाम्, बलानाम्, कोटयः, आक्रान्ताः, दिशि, दिशि समरे, सम्पतन्ति ॥ २७ ॥

व्याख्या—कोदण्डेति । कोदण्डज्याकिणाङ्कैः = कोदण्डस्य = विशालधनुषः, ज्यायाः = प्रत्यञ्चायाः, किणानाम् = धर्षणजन्यव्रणानाम्, अङ्कः = चिह्नं येषां तैः, अगणितरिपुभिः = अवहेलितारिभिः, कङ्कटोन्मुक्तदेहैः = कवचरहितशरीरैः, श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः = मिलितपरस्परच्छत्रैः, सितकमलवनभ्रान्तिम् = श्वेतपद्मवनभ्रमम्, उत्पादयद्भिः = जनयद्भिः, मे = मम, दुर्योधनस्येत्यर्थः, भ्रातृभिः = अनुजैः, रेणुग्रस्तार्कभासाम् = रेणुभिः = धूलिभिः, ग्रस्ता = आच्छादिता, अर्कस्य = रवेः, भाः = आभा, यैः तानि, तेषाम्, प्रचलदसिलतादन्तुराणाम् = प्रचलन्त्यः = विस्फुरन्त्यः, असिलताः = खड्गवल्लर्यः, ताभिः दन्तुराणि = निम्नोन्नतानि, भीषणानीत्यर्थः, तेषाम्, बलानाम् = सेनानाम्, कोटयः = कोटिसंख्याः, कोटिसंख्याविशिष्टाः सेना इत्याशयः, आक्रान्ताः = व्याप्ताः, दिशिदिशि = प्रतिदिशम्, समरे = रणे, सम्पतन्ति = सम्यक् भूमौ गच्छन्ति ॥ २७ ॥

धनुष की प्रत्यञ्चा के घर्षण चिह्न से युक्त, शत्रुओं की चिन्ता न करनेवाले (अत एव) अपने-अपने शरीर पर से कवच खोल देने वाले तथा परस्पर सटे हुए छत्रों से श्वेतकमल के वन की भ्रान्ति को उत्पन्न करनेवाले मेरे भाइयों के अधिष्ठित सेनाओं की कोटि-कोटि संख्या, जिन्होंने धूलि से सूर्य की आभा को ग्रस लिया है और जो घुमाई गई खड्ग रूपी लताओं से विकराल है, दिशा-दिशा में युद्धभूमि में मिलकर जा रही है ॥ २७ ॥

अपिच भानुमति, विज्ञातपाण्डवप्रभावे, किन्त्वमप्येवमाशङ्कसे, पश्य—
दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे।
तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्वानां ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥२८॥

टिप्पणी—कोदण्डेति। कोदण्डज्याकिणाङ्कैः=कोदण्ड धनुष का नाम है— "धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्। इष्वासोपि॥" इत्यमरः। धनुष की डोरी का नाम ज्या है—"मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः।" इत्यमरः।

आतपत्रैः=आतपात्त्रायते इत्यातपत्रम्, तैः। आतपत्र छाता को कहते हैं— "छत्रं त्वातपत्रमित्यमरः।" प्रस्तुत पद्य स्रग्धरा छन्द में निबद्ध है॥ २७॥

अन्वयः—दुःशासनस्य, हृदयक्षतजाम्बुपाने, च, गदया, दुर्योधनस्य, उरुभङ्गे, तेजस्विनाम्, पाण्डवानाम्, यथा, प्रतिज्ञा, तथा, समरमूर्धनि, जयद्रथवधे, अपि, ज्ञेया॥ २८॥

व्याख्या—दुःशासनस्येति। दुःशासनस्य=पाञ्चालीकचवस्त्रापहारकस्य मदीयानुजस्य, हृदयक्षतजाम्बुपाने=वक्षःस्थलरक्तजलपाने, च=तथा, गदया= शस्त्रविशेषेण, दुर्योधनस्य=ममेत्यर्थः, उरुभङ्गे=जघनभङ्गे, तेजस्विनाम्= पराक्रमिणाम्, पाण्डवानाम्=पाण्डुपुत्राणाम्, युधिष्ठिरादीनामित्यर्थः, यथा= यादृशी, प्रतिज्ञा=प्रणः, निष्फलेति शेषः, तथा=तेनैव प्रकारेण, समरमूर्धनि= प्रधानसङ्ग्रामे, जयद्रथवधे=सिन्धुराजविनाशविषये, अपि=च, ज्ञेया=बोद्धव्या। यथा भीमसेनेन दुःशासनस्य हृदयरक्तपाने ममोरुभङ्गे च कृता प्रतिज्ञा विफला तथैवेयमपि निष्फला बोद्धव्येत्यभिप्रायः॥ २८॥

टिप्पणी—दुःशासनस्येति। हृदयक्षतजाम्बुपाने=यहाँ पर रक्त के लिए 'क्षतज' शब्द का प्रयोग किया गया है। क्षताज्जातं क्षतजम्। अर्थात् क्षत से उत्पन्न होने के कारण रक्त को क्षतज कहा गया है।

और पाण्डवों के प्रभाव को जानने वाली भानुमती! तू भी ऐसी आशङ्का कैसे कर रही है? देख—

दुःशासन के हृदय से रक्तरूपी जल के पीने और गदा से दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़ डालने के विषय में तेजस्वी पाण्डवों की जैसी प्रतिज्ञा (निष्फल) थी वैसी ही युद्धभूमि में जयद्रथ के वध के विषय में जाननी चाहिए॥ २८॥

कः कोऽत्र भोः जैत्रं मे रथमुपकल्पय तावत्। यावदहमपि तस्य प्रगल्भस्य पाण्डवस्य जयद्रथपरिरक्षणेनैव मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसम्पादितमशस्त्रपूतं मरणमुपदिशामि। (प्रविश्य)

कञ्चुकी—देव

उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः।
सज्जोऽयं नियमितवल्गिताकुलाश्वः शत्रूणां क्षपितमनोरथो रथस्ते ॥२९॥

तेजस्विनाम् = यहाँ पर काकु के द्वारा 'तेजस्विनाम्' का अर्थ वस्तुत 'अतेजस्विनाम्' ही है। प्रस्तुत पद्य वसन्ततिलका छन्द में निवद्ध है ॥ २८ ॥

जैत्रम् = जयनशीलम्, उपकल्पय = उपपादय, प्रगल्भस्य = धृष्टस्य, मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसम्पादितम् = मिथ्या = मृषाभूता या प्रतिज्ञा = प्रणः, तया जनितं यद् वैलक्ष्यम् = लज्जा, तेन सम्पादितम् = कृतम्, अशस्त्रपूतम् = शस्त्रेण = आयुधेन, पूतम् = पवित्रम् = शस्त्रपूतम्, न शस्त्रपूतमशस्त्रपूतम्।

अन्वयः—उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः, प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः, नियमितवल्गिताकुलाश्वः, शत्रूणाम्, क्षपितमनोरथः, अयम्, ते, रथः सज्जः (विद्यते) ॥ २९ ॥

व्याख्या—उद्घातेति। उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः = उद्घातैः = आहननैः, या क्वणिता = शब्दं कुर्वती, विलोलाः = चञ्चलाः, हेम्नः = सुवर्णस्य,

अरे यहाँ कोई है? मेरे जयशील रथ को तैयार करो तो अब मैं भी केवल जयद्रथ की रक्षामात्र से उस धृष्ट पाण्डव का, झूठी प्रतिज्ञा से होनेवाली लज्जा से किये गये शस्त्र (के प्रहार) से पवित्र न हुए मरण का उपदेश देता हूँ।

(प्रवेश करके)

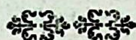
कञ्चुकी—महाराज!

प्रतिघात से बजती हुई चञ्चल, सुवर्ण की घण्टियों वाला, लटकती मालाओं से दुगने किये गये चामर के हास (उज्ज्वलता) वाला, गति के नियमित होने से चञ्चल घोड़ों वाला और शत्रुओं की मनोभिलाषाओं को नष्ट कर देनेवाला आपका यह रथ तैयार है ॥ २९ ॥

राजा—देवि, प्रविश त्वमभ्यन्तरमेव। ('यावदहमपि तस्य प्रगल्भस्य पाण्डवस्य'—इत्यादि पठन् परिक्रामति।)

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

इति द्वितीयोऽङ्कः।

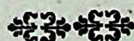


घण्टाः = क्षुद्रघण्टिकाः इत्यर्थः, यस्य, सः, प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः = प्रालम्बेन = प्रकर्षेणालम्बमानेन, द्विगुणितः = द्विगुणीकृतः, वृद्धिं प्रापित इत्यर्थः, चामराणाम् = प्रकीर्णकानाम्, प्रहासः = शुभ्रकान्तिः, यस्य सः, नियमित-वल्गिताकुलाश्वः = नियमिताः=नियन्त्रिताः, वल्गितेन=गतिविशेषेण, आकुलाः = अतिचपलाः, अश्वाः = तुरगाः, यत्र सः, शत्रूणाम् = रिपूणाम्, क्षपितमनोरथः= क्षपिताः = विनाशिताः, मनोरथाः = मनोभिलाषाः येन सः अयम् = एषः, ते = तव, रथः=स्यन्दनम्, सज्जः = सन्नद्धम्, विद्यत इति शेषः॥ २९॥

टिप्पणी—अशस्त्रपूतम् = शस्त्र के द्वारा यदि क्षत्रिय की मृत्यु होती है तो वह पवित्र मृत्यु समझी जाती है और यदि वैसा न हो तो वह मृत्यु अशस्त्रपूत अर्थात् अपवित्र समझी जाती है।

उद्घातेति—प्रस्तुत पद्य प्रहर्षिणी छन्द में निबन्ध है जिसका लक्षण है—"त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्"॥ २९॥

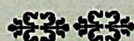
इति "कमलेश्वरी" संस्कृतव्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः।



राजा—देवी! तुम भी अन्दर जाओ। ("तो अब मैं उस धृष्ट-पाण्डवा…") इत्यादि कहता हुआ घूमता है।

(सब निकल जाते हैं)

द्वितीय अङ्क समाप्त।



तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विकृतवेषा राक्षसी ।)

राक्षसी—(विकृतं विहस्य । सपरितोषम् ।)

हदमाणुशमंशशोणिएहिं कुम्भणहश्शं वजाहिं शञ्चिदम् ।
अणिश अ पिवामि शोणिअं वलिशशदं शमले हुवीअदु ॥ १ ॥

(हतमानुषमांसशोणितैः कुम्भसहस्रं वसाभिः सञ्चितम् ।
अनिशं च पिवामि शोणितं वर्षशतं समरो भवतु ॥ १ ॥)

(नृत्यन्ती सपरितोषम् ।) जइ सिन्धुलाअवहदिअहे विअ दिअहे दिअहे शमलकम्म पडिअज्जई अज्जुणो तदो पज्जत्तभलिदकोट्ठागाले मंशशोणि

विकृतवेषा=विकृतः = अदर्शनीयो वेषो यस्याः सा ।

अन्वयः–हतमानुषमांसशोणितैः, वसाभिः, कुम्भसहस्रम्, सञ्चितम्, शोणितम्, अनिशम्, पिवामि, च, समरः, वर्षशतम्, भवतु ॥ १ ॥

व्याख्या–हतमानुषेति । हतमानुषमांसशोणितैः=समरे, मृतमानवानां पललरक्तैः, वसाभिः = मेदोभिः, कुम्भसहस्रम् = घटसहस्रम्, सहस्रसंख्याकघटाः । इति यावत्, सञ्चितम्=उपचितम्, अस्माभिरिति शेषः । शोणितम् = रुधिरम्, अनिशम्=रात्रिन्दिवम्, पिवामि = पानं करोमि अहमिति शेषः । (अतः) समरः = सङ्ग्रामः, वर्षशतम्=शतं वर्षाणि, भवतु=प्रचलतु । एतेन जयद्रथवधदिवसे भीषणः सङ्ग्रामो जात इति सूच्यते ॥ १ ॥

(तत्पश्चात् विकृतवेषवाली राक्षसी प्रवेश करती है ।)

राक्षसी—(भयङ्कर हँसी हँसकर सन्तोष के साथ)

मारे गये मनुष्यों की मांसराशि के हजारों घड़े चर्बीसहित सञ्चित करलेने पर मैं दिनरात शोणित पी रही हूँ । यह सङ्ग्राम सौ वर्षों तक चलता रहे ॥१॥

(नाचती हुई सन्तोष के साथ) यदि सिन्धुदेश के राजा (जयद्रथ) के वध के दिन के समान अर्जुन प्रतिदिन युद्ध–पराक्रम करता रहे तो मेरा घर

एहि मे गेहे हुविअदि। (परिक्रम्य दिशोऽवलोक्य।) अह कहिं क्खु गदे से लुहिलप्पिए हुवि अदि। होदु। शद्दावइश्शं दाव। अले लुहिलप्पिआ लुहिलप्पिआ, इदो एहि।

(यदि सिन्धुराजवधदिवस इव दिवसे दिवसे समरकर्म प्रतिपद्यतेऽर्जुनस्ततः पर्याप्तभरितकाष्ठागारं मांसशोणितैर्मे गृहं भविष्यति। अथ क्व खलु यतो मे रुधिरप्रियो भविष्यति। भवतु। शब्दायिष्ये तावत्। अरे रुधिरप्रिय रुधिरप्रिय, इत एहि।)

(ततः प्रविशति तथाविधो राक्षसः)

राक्षसः—(श्रमं नाटयन्।)

पच्चग्गहदाणं मंशए जइ उण्हे लुहिले अ लब्भइ।
ता एशे मह पलिश्शमे क्खणमेत्तं एव्व लहु णश्शइ ॥ २ ॥
(प्रत्यग्रहतानां मांसं यद्युष्णं रुधिरं च लभ्येत।
तदेष मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्येत ॥ २ ॥)

टिप्पणी—हतमानुषेति। वर्षशतम्=यहां पर "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" (पा० सू०) से द्वितीया विभक्ति हुई है ॥ १ ॥

शब्दायिष्ये = आकारयामि।

अन्वयः—यदि, प्रत्यग्रहतानाम्, मांसम्, च, उष्णम्, रुधिरम्, लभ्येत, तत्, मम, एषः, परिश्रमः, क्षणमात्रमेव, लघु, नश्येत् ॥ २ ॥

व्याख्या—प्रत्यग्रेति यदि = चेत, प्रत्यग्रहतानाम् = तत्क्षणमारितानाम्,

---

मांस और शोणित से भरे हुए कोठेवाला हो जायगा। (घूमकर और चारों ओर देखकर) न जाने रुधिरप्रिय कहाँ है? तो इस रण-क्षेत्र में अपने प्रिय पति रुधिरप्रिय का पता लगाऊँ। (घूमकर) अच्छा, पुकारती हूँ। ओ रुधिरप्रिय, रुधिरप्रिय, इधर आ, इधर आ।

(तब उसी प्रकार का राक्षस प्रवेश करता है।)

राक्षस—(थकावट का अभिनय करता हुआ)

यदि ताजा मरे हुए लोगों का मांस और गर्म रुधिर मिल जाय तो मेरी यह थकावट क्षणभर में ही तुरन्त नष्ट हो जाय। २ ॥

(राक्षसी पुनर्व्याहरति ।)

राक्षसः—(आकर्ण्य) अले के मं शद्दावेदि । (विलोक्य ।) कहं पिआ मे वशागन्धा । (उपसृत्य ।) वशागन्धे, कीश मं शद्दावेशि । (अरे का मां शब्दायते । कथं प्रिया मे वसागन्धा । वसागन्धे, कस्मान्मां शब्दायसे)

लुहिलाशवपाणमत्तिए लणहिण्डन्तखलन्तगत्तिए ।
शद्दाअशि कीश मं पिए पुलिशशहश्शं हदं शुणीअदि ॥ ३ ॥
(रुधिरासवपानमत्ते रणहिण्डनस्खलद्गात्रि ।
शब्दायसे कस्मान्मां प्रिये पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते ॥ ३ ॥

अभिनवमृतानामित्यर्थः, मांसम्=पिशितम्, च=पुनः, उष्णम्=अशीतम्, रुधिरम्=शोणितम्. लभ्येत = प्राप्येत, तत्=तर्हि, मम=रुधिरप्रियस्येति भावः, एषः= अयम्, परिश्रमः=सङ्ग्रामभ्रमणजन्या भ्रान्तिः, क्षणमात्रमेव=झटित्येव, लघु= अतिशीघ्रम्, अनायासमिति यावत्, नश्येत् = विनष्टः स्यात् । अभिनवमांस-शोणितभक्षणेनाहं श्रमरहितो भविष्यामीत्याशयः ।। २ ।।

टिप्पणी—प्रत्यग्रेति । शब्दायते = शब्दं करोतीति शब्दायते । यहाँ पर "शब्दवैर" इत्यादि पाणिनीय सूत्रसे क्यङ् प्रत्यय हुआ है ।। २ ।।

अन्वयः—रुधिरासवपानमत्ते, रणहिण्डनस्खलद्गात्रि, (हे) प्रिये, माम्, कस्मात् शब्दायसे, पुरुषसहस्रम्, हतम्, श्रूयते ।। ३ ।।

व्याख्या—रुधिरासवेति । रुधिरासवपानमत्ते = रुधिरम् = रक्तम् एव आसवः = मद्यम्, तस्य पानेन = आचमनेन, मत्ता = उन्मत्ता, तत्सम्बुद्धौ; रणहिण्डनस्खलद्गात्रिरणे=सङ्ग्रामे, हिण्डनेन = इतस्ततो भ्रमणेन, स्खलन्ति =

(राक्षसी फिर पुकारती है ।)

राक्षस—(सुनकर) अरे ! कौन मुझे पुकार रही है ? (देखकर) क्या मेरी प्रिया वसागन्धा ? (समीप जाकर) वसागन्धा ! किसलिए मुझे पुकार रही हो ?

रुधिररूपी मद्य के पीने से मत्त हुई, युद्ध-क्षेत्र में भ्रमण करने से शिथिल अङ्गों वाली, हे प्यारी ! तू मुझे क्यों पुकार रही है ? सुना जाता है कि हजारों पुरुष मारे गये हैं ॥ ३ ॥

राक्षसी—अले लुहिलप्पिआ, एदं क्खु मए तुह कालणादो पच्चग्गहदश्श कश्शवि लाएशिणीप्पहूदवशाशिणेहचिक्कणं कोण्हं णवलुहिलं अग्गमंशं अ आणीदम् । ता पिवाहि णम् । (अरे रुधिरप्रिय, इदं खलु मया तव कारणात्प्रत्यग्रहतस्य कस्यापि राजर्षेः प्रभूतवसास्नेहचिक्कणं कोष्णं नवरुधिरमग्रमासं चानीतम् । तत्पिबैतत ।)

राक्षसः—(सपरितोषम ।) वशागन्धे, शुट्ठु शोहणं तुए किदम् । बलिअह्मि पिवाशिए । ता उवणेहि । ता उवणेहि । (वसागन्धे सुष्ठु शोभनं त्वया कृतम् । बलवदस्मि पिपासितः । तदुपनय ।)

श्लथानीत्यर्थः, गात्राणि = शरीराङ्गाणि यस्याः, सा, तत्सम्बुद्धौ, प्रिये = प्रेयसि, माम् = रुधिरप्रियम्, कस्मात् = कथम्, शब्दायसे = आह्वयसि ? पुरुषसहस्रम् = सहस्रसंख्याकपुरुषाः, हतम् = विनाशितम्, श्रूयते = आकर्ण्यते ॥ ३ ॥

राक्षसीति = प्रत्यग्रहतस्य = नूतनमारितस्य, राजर्षेः = ऋषितुल्यभूपतेः, प्रभूतवसास्नेहचिक्कणम् = प्रचुरमेदः स्नेहमसृणम्, कोष्णम् = ईषदुष्णम्, अग्रमांसम् = उत्तममांसम् ।

टिप्पणी—राक्षसीति । प्रभूतवसास्नेहचिक्कणम् = चिकने पदार्थ के लिए अमर कोष में "चिक्कणं मसृणं स्निग्धम्" कहा गया है ।

राक्षस इति । सुष्ठु = मनोहरम्, शोभनम् = सुन्दरम्, बलवत् = अतिशयितम्, पिपासितः = पानेच्छायुक्तः अस्मीत्यन्वयः ।

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय ! मैं यह तेरे लिए ताजा मरे हुए किसी राजर्षि का अत्यधिक चर्बी की चिकनाहट से चिकना तथा कुछ-कुछ गर्म ताजा रुधिर तथा उत्तम मांस को लाई हूँ । तो इसे पी लो ।

राक्षस—(सन्तोष के साथ) वसागन्धे ! तुमने बहुत अच्छा किया । मैं बहुत अधिक प्यासा हूँ । तो लाओ ।

राक्षसी—अले लुहिलप्पिआ, एदिशे वि णाम हदणलगअतुलङ्गमशोणिअवशाशमुद्ददुश्शञ्चले शमले पडिब्भमन्ते तुमं पिवाशिएशित्ति अच्चलिअम्। (अरे रुधिरप्रिय, ईदृशेऽपि नाम हतनरगजतुरङ्गमशोणितवसासमुद्रदुःसञ्चरे समरे परिभ्रमंस्त्वं पिपासितोऽसीत्याश्चर्यम्)।

राक्षसः—(सक्रोधम्) अइ शुस्थिदे, णं पुत्तशोअशन्तत्तहिअअं शामिणीं हिडिम्बादेवीं पेक्खिदुं गदम्हि। (अयि सुस्थिते, ननु पुत्रशोकसन्तप्तहृदयां स्वामिनीं हिडिम्बादेवीं प्रेक्षितुं गतोऽस्मि।)

राक्षसीति। हतनरगजेत्यादिः—हतानाम् = मारितानाम्, नरगजतुरङ्गमाणाम् = मनुष्यहस्तिघोटकानाम्, शोणितवसे = रुधिरवसे एव समुद्रः = सागरः, अत एव दुःसञ्चरः = दुर्गमः, तस्मिन्, समरे = युद्धे, परिभ्रमन्=इतस्ततो विचरन् त्वम् = रुधिरप्रियः, पिपासितः = पानेच्छायुक्तः असीति आश्चर्यम् = अद्भुतम्। एतादृशे युद्धे सत्यपि तव पिपासा न दूरीभूतेति महदाश्चर्यम्।

राक्षस इति। सुस्थिते = निश्चिन्ते, पुत्रशोकसन्तप्तहृदयाम् = सुतशोकदग्धचित्ताम्, हिडिम्बादेवीम् = हिडिम्बानाम्नीं भीमपत्नीं राक्षसीम् प्रेक्षितुम् = द्रष्टुम्।

टिप्पणी—हिडिम्बादेव्या इति। हिडिम्बा एक राक्षसी थी जिससे भीम ने विवाह किया था। इससे उत्पन्न पुत्र का नाम घटोत्कच था जिसका वध श्रीकृष्ण ने कर्ण के अमोघ अस्त्र से करा दिया था। इससे हिडिम्बा को पुत्रशोक हुआ था।

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय! मारे गये मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ों के रक्त तथा चर्बी के समुद्र के कारण दुर्गम ऐसे युद्ध में घूमते हुए भी तुम प्यासे ही हो यह तो वड़ा आश्चर्य है।

राक्षस—(क्रोधपूर्वक) अरी निश्चिन्त बैठी हुई, मैं पुत्र शोक से व्याकुल हृदयवाली स्वामिनी हिडिम्बा को देखने गया था।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ अज्जवि शामिणीए हिडिम्बादेवीए घडुक्कअ-शोए ण उपसमइ । (रुधिरप्रिय अद्यापि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या घटोत्कच-शोको नोपशाम्यति ।)

राक्षसः—वशागन्धे, कुदो शे उवशमे केवलं अहिमण्णुशोअशमाणदु-क्खाए शुभद्दादेवीए जण्णशेणीए अ कधं कधंवि शमाश्शाशीअदि । (वसागन्धे, कुतोऽस्या उपशमः केवलमभिमन्युशोकसमानदुःखया सुभद्रादेव्या याज्ञसेन्या च कथं कथमपि समाश्वास्यते ।)

राक्षसी—लुहिलप्पिआ, गेण्ह एदं हत्थिशिलक्कवालशञ्चिअं अग्गमं-शावदंशम् पिवाहि शोणिआशवम् । (रुधिरप्रिय, गृहाणैतद्धस्तिशिरःकपाल-सञ्चितमग्रमांसोपदंशं पिब शोणितासवम् ।)

राक्षसीति । अद्यापि = इदानीमपि, घटोत्कचशोकः=घटोत्कचविनाशोद्भवः सन्तापः, न उपशाम्यति = न शान्तो भवति ।

राक्षस इति । अभिमन्युशोकसमानदुःखया = अर्जुनसुतवधजन्यशोकेन समानं दुःखं यस्याः, सा, तया याज्ञसेन्या=द्रौपद्या, कथं कथमपि = केनापि प्रकारेण, समाश्वास्यते = 'मा शोकं कुरु' इति सान्त्वना प्रदीयते ।

राक्षसीति । हस्तिशिरःकपालसञ्चितम् = हस्तिनः = गजस्य, शिरसः = मस्तकस्य, कपाले=खर्परे, सञ्चितम्=एकत्रीकृतम्, अग्रमांसोपदंशम्=अग्रमांसम् = उत्तममांसम् एव उपदंशम् = व्यञ्जनम् । शोणितासवम् = शोणितम् = रक्तम् एव आसवम् = मद्यम् । पिब = पानं कुरु ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! अभी तक स्वामिनी हिडिम्बा देवी का घटोत्कच की मृत्यु से उत्पन्न शोक शान्त नहीं हो पाया है ?

राक्षस—वसागन्धे ! इसे शान्ति कहाँ ! अभिमन्यु के शोक से समान दुःखवाली सुभद्रा देवी तथा द्रौपदी के द्वारा किसी प्रकार सान्त्वना दी जा रही है ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, यह हाथी के मस्तकरूपी खप्पर में सञ्चित उत्तममांस (कलेजी) रूपी व्यञ्जन को ले तथा रुधिररूपी मद्य को पी ।

राक्षसः—(तथा कृत्वा) वशागन्धे, अह किअप्पहूदं तुए शञ्चिअं लुहिलं अग्गमंशं अ। (वसागन्धे, अथ कियत्प्रभूतं त्वया सञ्चितं रुधिरमग्रमांसं च।)

राक्षसी—अले लुहिलप्पिआ, पूव्वशञ्चिअं तुमं वि जाणाशि जेव्व। णवशञ्चिअं शिणु दाव। भअदत्तशोणिएहिं कुम्भे शिन्धुलाअवशाहिं कुम्भे दुवे दुवदमच्छाहिवभूलिश्शवशोमदत्तबह्लिअप्पमुहाणं णलिन्दानं अण्णाणं वि पाकिदपुलिशाणं लुहितमंशेहिं पुलिदाइं घडशदाइं अशक्खाइ शन्ति मे गेहे। (अरे रुधिरप्रिय, पूर्वसञ्चितं त्वमपि जानास्येव। नवसञ्चितं शृणु तावत्। भगदत्तशोणितैः कुम्भः सिन्धुराजवसाभिः कुम्भौ द्वौ द्रुपदमत्स्याधिपभूरिश्रवः-सोमदत्तवाह्लीकप्रमुखाणां नरेन्द्राणामन्येषामपि प्राकृतपुरुषाणां रुधिरमांसैः पूरितानि घटशतान्यसंख्यानि सन्ति मे गेहे।)

टिप्पणी—अग्रमांसोपदंशम् = यहाँ पर "उपदंशस्तृतीयायाम्" सूत्र से णमुल् प्रत्यय तथा "तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्" से समास हुआ है।

अग्रमांसम् = उत्तम या श्रेष्ठ के लिए अग्रशब्द प्रयुक्त है—"प्रवेकानुत्तमोत्तमाः। मुख्यवर्यवरेण्याश्च प्रवर्हानवरार्ध्यवत्। पराध्याग्रप्राग्रहरे" इत्यमरः। अग्रमांसवस्तुतः हृदय के कोमल मांस को अर्थात् कलेजी को कहते हैं—"बुक्काऽग्रमांसम्" इत्यमरः।

राक्षस इति। प्रभूतम् = प्रचुरम्, सञ्चितम् = एकत्रीकृतम्।

राक्षसीति। भगदत्तशोणितैः = भगदत्तनामकनृपस्य रक्तैः, कुम्भः = एको घटः, सिन्धुराजवसाभिः = सिन्धुराजस्य = जयद्रथस्य वसाभिः = मेदोभिः, नरेन्द्राणाम् = राज्ञाम्, प्राकृतपुरुषाणाम् = सामान्यपुरुषाणाम्।

राक्षस—(वैसा करके) वसागन्धे! तो कितने प्रचुर परिमाण में तू हृदयमांस और रक्त सञ्चित कर रखी हो?

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय! पहले के सञ्चित किये गये को तो तू जानता ही है। नये इकट्ठे किये गये के बारे में सुन। भगदत्त के रक्त का एक घड़ा, सिन्धुराज (जयद्रथ) की चर्बी के दो घड़े और द्रुपद, मत्स्यनरेश, भूरिश्रवा, सोमदत्त, वाल्हीक प्रभृति प्रधान-प्रधान राजाओं के तथा और भी दूसरे साधारण पुरुषों के रुधिरमांसादि से भरे हुए सैकड़ों असङ्ख्य घड़े मेरे घर में हैं।

राक्षसः—(सपरितोषमालिङ्गय ।) शाहु शुग्धलिणीए, शाहु । इमिणा दे शुग्धलिनीत्तणेण अज्ज उण शामिणीए हिडिम्बादेवीए शम्विद्दाणण प्पणट्टं मे जम्मदालिद्दम् । (साधु सुगृहिणी, साधु । अनेन ते सुगृहिणीत्वेनाद्य स्वामिन्या हिडिम्बादेव्याः संविधानेन प्रनष्टं मे जन्मदारिद्रचम् ।)

राक्षसी—लुहिलप्पिआ, केलिशे शामिणीए शविहाणए किदे । (रुधिर-प्रिय, कीदृशं स्वामिन्या संविधानं कृतम् ।)

राक्षसः—वशागन्धे, आणत्ते क्खु हग्गे शामिणीए हिडिम्बादेवीए जह लुहिलप्पिआ, अज्जप्पहुदि तुए अज्जउत्तभीमशेणश्श पिट्ठदोऽणुपिट्ठं शमले आहिण्डिदव्वं त्ति । ता तश्श अग्गुमग्गगामिणो हअमाणुशशोणि-अणइदप्पणट्ठबुभुक्खापिवाशश्श इव एत्र मे शग्गलोआ हुविअदि । तुमं वि वोशद्धा भविअ लुहिलवशाहि कुम्भशहश्शं शञ्चेहि । (वसागन्धे, आज्ञप्तः खल्वहं स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या यथा रुधिरप्रिय, अद्यप्रभृति त्वया आर्यपुत्रभीम-

---

राक्षस इति । ते = तव, अनेन = त्वयि स्थितेन, सुगृहिणीत्वेन = उत्तम-गृहकार्यकारिणीत्वेन, हिडिम्बादेव्याः = भीमसेनपत्न्याः, संविधानेन = नियोगेन मे = मम, जन्मदारिद्रचम् = जीवनपर्यन्तं यद् दारिद्रचम् तद् प्रनष्टम् = समाप्तम् अद्य इत्यन्वयः ।

राक्षसीति । कीदृशम् = किंविधम्, स्वामिन्या = हिडिम्बादेव्या, संविधानम् = नियोगः ।

राक्षस—(सन्तोष के साथ आलिङ्गन करके) शाबास, चतुरगृहिणी, शाबास ! तेरे इस चतुर गृहिणी होने से तथा स्वामिनी हिडिम्बा देवी के उपाय से मेरा जीवन भर का दारिद्रच नष्ट हो गया ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! स्वामिनी ने कैसा उपाय किया है ।

राक्षस—वसागन्धे ! स्वामिनी हिडिम्बा देवी ने मुझे आदेश दिया है कि—"हे रुधिरप्रिय, आज से तू युद्धक्षेत्र में आर्यपुत्र भीमसेन के पीछे-पीछे घूमेगा ।" इसलिए उसके मार्ग पर चलनेवाले मेरे लिए मृत मनुष्यों के रक्त की नदी के दर्शन से जिसकी भूख और प्यास नष्ट हो जायेगी, यहीं स्वर्गलोक हो जायेगा ।

सेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठं समर आहिण्डितव्यमिति । तत्तस्यानुमार्गगामिनो हतमानुष-शोणितनदीदर्शनप्रनष्टबुभुक्षापिपासस्येहैव मे स्वर्गलोको भविष्यति । त्वमपि विस्रब्धा भूत्वा रुधिरवसाभिः कुम्भसहस्रं सञ्चिनु ।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ, किं णिमित्तं कुमालभीमशेणश्श पिट्ठदो आहिण्डीअदि । (रुधिरप्रिय, किन्निमित्तं कुमारभीमसेनस्य पृष्ठत आहिण्ड्यते ।)

राक्षसः—वशागन्धे, तेण हि शामिणा विओदलेण दुश्शाशणश्श लुहिलं पादुं पडिण्णादम् । तं च अम्हेहि लक्खशेहि अणुप्पवशिअ पादव्वम् । (वसागन्धे, तेन हि स्वामिना वृकोदरेण दुःशासनस्य रुधिरं पातुं प्रतिज्ञातम् । तच्चास्माभी राक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यम् ।)

राक्षसी—(सहर्षम् ।) शाहु शामिणीए, शाहु । शुशंविहाणे मे भत्ता किदे । (साधु स्वामिनि, साधु । सुसंविधानो मे भर्ता कृतः ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः ।)

राक्षस इति । पृष्ठतः = पृष्ठस्य, अनुपृष्ठम् = पश्चात्, आहिण्डितव्यम् = भ्रमितव्यम्, युद्धभूमाविति शेषः । हतमानुषेत्यादि = हतानाम् = मृतानाम्, मानुषाणाम् = नराणाम्, शोणितस्य = रक्तस्य, या नदी, तस्याः दर्शनेन प्रनष्टा बुभुक्षा = भोक्तुमिच्छा, पिपासा = पातुमिच्छा यस्य, सः, तस्य, स्वर्गलोकः = स्वर्गतुल्यो लोकः, विस्रब्धा = विश्वासयुक्ता निश्चिन्तेति यावत्, कुम्भसहस्रम् = घटसहस्रम्, सञ्चिनु = सञ्चयं कुरु ।

राक्षस इति । वृकोदरेण = भीमसेनेन ।

राक्षसीति । सुसंविधानः = सुशोभनं संविधानं यस्य सः ।

तू भी निर्भीक होकर रुधिर और चर्वी से हजारों घड़े इकट्ठे कर ले ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! किसलिए कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे घूमते हो ?

राक्षस—वसागन्धे ! स्वामी वृकोदर (भीमसेन) ने दुःशासन का रुधिर पीने की प्रतिज्ञा कर रखी है । उसे हम राक्षसों को ही उनके भीतर प्रविष्ट होकर पीना है ।

राक्षसी—(हर्ष के साथ) धन्य हो स्वामिनी, धन्य हो । आपने मेरे पति के लिए अच्छी व्यवस्था कर दी है ।

(नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है ।)

राक्षसी—(आकर्ण्य ससम्भ्रमम् ।) अले लुहिलप्पिआ, किं णु क्खु एशे महन्ते कलअले शुणीअदि । (अरे रुधिरप्रिय किं नु खल्वेष महान्कलकलः श्रूयते ।)

राक्षसः—(दृष्ट्वा ।) वशागन्धे, एशे क्खु धिट्ठज्जुम्मेण दोणे केशेशु आकड्ढिअ अशिवत्तेण वावादीअदि । (वसागन्धे, एष खलु धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते ।)

राक्षसी—(सहर्षम् ।) लुहिलप्पिआ एहि । गच्छिअ दोणश्श लुहिलं पिबम्ह । (रुधिरप्रिय, एहि । गत्वा द्रोणस्य रुधिरं पिबावः ।)

राक्षसः—(सभयम् ।) वशागन्धे, ब्रह्मणशोणिअं क्खु एदं गलअं दहन्ते दहन्ते पविशदि । ता किं एदिणा । (वसागन्धे, ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद् गलं दहद्दहत् प्रविशति । तत्किमेतेन ।)

राक्षस इति । धृष्टद्युम्नेन = द्रुपदपुत्रेण, द्रोणः = द्रोणाचार्यः, केशेषु = कचेषु, आकृष्य = गृहीत्वा, असिपत्रेण = खड्गेन, व्यापाद्यते = हन्यते ।

टिप्पणी—धृष्टद्युम्नेनेति । युधिष्ठिर से "अश्वत्थामा मारा गया" यह सुनकर पुत्रशोक से द्रोणाचार्य शस्त्र का परित्याग कर जब युद्धभूमि में उपस्थित था तभी मौका पाकर द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने तलवार से उसे मार डाला । द्रुपद को वरदान प्राप्त था कि तुम्हारे पुत्र के द्वारा द्रोणाचार्य का वध होगा इसलिए धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का वध किया ।

राक्षस इति । ब्राह्मणशोणितम् = विप्रशरीरस्य रक्तम्, गलम् = कण्ठम्,

---

राक्षसी—(सुनकर घबराहट के साथ) अरे रुधिरप्रिय ! यह कैसा तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है ?

राक्षस—(देखकर) वसागन्धे ! यह द्रोण धृष्टद्युम्न द्वारा केश खींचकर तलवार से मारा जा रहा है ।

राक्षसी—(हर्षपूर्वक) रुधिरप्रिय ! आओ । चलकर द्रोण का रक्त पीयेंगे ।

राक्षस—(भय से) वसागन्धे ! यह ब्राह्मण का रक्त है । गले को जलाता हुआ अन्दर जाता है । इसलिए इससे क्या लाभ ?

(नेपथ्ये पुनः कलकलः ।)

राक्षसी—लुहिलप्पिआ, पुणोवि एशे महन्ते कलअले शुणीअदि। (रुधिरप्रिय, पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते ।)

राक्षसः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य ।) वशागन्धे, एशे क्खु अश्शत्थामे आकट्टिदाशिवत्ते एदो एव्व आअच्छदि। कदावि दुपदशुदलोशेण अम्हेवि वावादईश्शइ। ता एहि । अतिक्कमम्ह । (वसागन्धे एष खल्वश्वत्थामाकृष्टासिपत्र इत एवागच्छति। कदाचिद् द्रुपदसुतरोपेणावामपि व्यापादयिष्यति। तदेहि । अतिक्रमावः ।)

(इति निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेशकः ।

दहत् = भस्मं कुर्वत्, ब्राह्मणस्य तेजस इति भावः । किमेतेन = किं पानेन, न पातव्यमिति भावः ।

राक्षस इति । अश्वत्थामा = द्रोणसुतः, आकृष्टासिपत्रः = आकृष्टम् = कोशान्निःसृतम्, असिपत्रम् = खड्गो यस्य सः, अत एव = अस्मादेव मार्गात्, द्रुपदसुतरोषेण = धृष्टद्युम्नविषयकक्रोधेन, असावेव मत्पितृघातक इति क्रोधहेतुः । व्यापादयिष्यति = हनिष्यति । तत् = तस्मात्, एहि = आगच्छ, अतिक्रमावः आवामिति शेषः ।

टिप्पणी—प्रवेशकः—प्रवेशक का लक्षण करते हुए विश्वनाथ ने कहा है—

"प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ।।" सा० द० ६।५७ ।।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल होता है)

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! यह पुनः तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है ।

राक्षस—(नेपथ्य की ओर देखकर) वसागन्धे ! यह अश्वत्थामा तलवार खींचे इधर ही आ रहा है । कहीं द्रुपद के पुत्र पर आये क्रोध से हमें भी मार डाले । इसलिए आओ बचकर निकल चलें ।

(दोनों निकल जाते हैं ।)

प्रवेशक समाप्त ।

(ततः प्रविशत्याकृष्टखड्गः कलकलमाकर्णयन्नश्वत्थामा)

अश्वत्थामा—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः।
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥ ४ ॥

अर्थात्—प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है। इसमें नीच पात्रों का ही प्रयोग होता है। दो अङ्कों के बीच में इसकी स्थिति होती है। इसकी दूसरी विशेषताएँ विष्कम्भक के समान ही होती हैं।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में राक्षस एवं राक्षसी नीच पात्र हैं तथा सिन्धुराज के वध की भूतकालिक घटना एवं भविष्य में होनेवाले दुःशासन-वध की घटना की सूचना भी इससे मिलती है अतः यह प्रवेशक नामक नाटकाङ्ग है।

आकृष्टखड्गः = आकृष्टासिः, कलकलम् = कोलाहलम्, आकर्णयन् = शृण्वन्, अश्वत्थामा = द्रोणपुत्रः।

अन्वयः—अद्य, पुरः, अयम्, महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी, श्रवणभैरवः, स्थगितरोदसीकन्दरः, अभूतपूर्वः, रवः, समरोदधेः, मुहुः, कुतः, (भवति) ॥ ४ ॥

व्याख्या—महाप्रलयेति। अद्य = सम्प्रति, पुरः = अग्रे ममेति शेषः, अयम् = एषः, महाप्रलयेत्यादिः = महाप्रलये = महाप्रलयसमये ये मारुताः = पवनाः, तैः क्षुभितौ = इतस्ततः सञ्चालितौ यौ पुष्करावर्त्तकौ = पुष्करावर्त्तकनामधेयौ

(उसके बाद तलवार उठाये और कोलाहल सुनते हुए अश्वत्थामा का प्रवेश)

अश्वत्थामा—आज सामने सङ्ग्रामरूपी समुद्र से बार-बार यह महाप्रलय के समय वायु के द्वारा सञ्चालित पुष्कर और आवर्त्तक नामक मेघों के तीव्र और गम्भीर गर्जन की प्रतिध्वनि का अनुकरण करनेवाला कर्णकटु और पृथ्वी तथा आकाश के मध्यवर्ती भाग (अन्तरिक्ष) रूपी कन्दरा कोढँक देनेवाला अभूतपूर्व शब्द किसलिए हो रहा है ? ॥ ४ ॥

(विचिन्त्य ।) ध्रुवं गाण्डीविना सात्यकिना वृकोदरेण वा यौवनदर्पादतिक्रान्तमर्यादेन परिकोपितस्तातः । यतः समुल्लङ्घ्यशिष्यप्रियतामात्मप्रभावसदृशमाचेष्टते । तथाहि—

मेघविशेषौ, तयोः यत् प्रचण्डम् = भयावहम्, घनगर्जितम् = मेघस्तनितम्, तस्य यः प्रतिरवः = प्रतिशब्दः, तस्य अनुकारी = सदृशः, श्रवणभैरवः = कर्णकटुः, श्रुतिभीषणो वा, स्थगितरोदसीकन्दरः = स्थगितः = व्याप्तः, रोदस्यौ=द्यावापृथिव्यौ एव कन्दरः = पर्वतविवरः येन तादृशः, अभूतपूर्वः = पूर्वं न भूतः, पूर्वमश्रुत इत्यर्थः, रवः = शब्दः, समरोदधेः = समरः = सङ्ग्राम एव उदधिः= सागरः तस्मात्, मुहुः=वारम्वारम्, कुतः=कस्माद्धेतोः, भवतीति शेषः ।।४।।

टिप्पणी—महाप्रलयेति । पुष्करावर्त्तकेति = पुष्कर और आवर्त्तक ये दोनों मेघ की श्रेष्ठ जातियाँ हैं । प्रलयकाल में इनका गरजना एवं वरसना प्रसिद्ध है । कालिदास ने भी मेघदूत में इनका उल्लेख किया है—"जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानाम् ०।। (पूर्वमेघ श्लोक—६)

रोदसी—जहाँ पृथ्वी और आकाश का सहप्रयोग हो वहाँ रोदसी शब्द-प्रयुक्त होता है । कहा गया है—

"रोदश्च रोदसी चापि दिवि भूमौ पृथक् पृथक् ।
सहप्रयोगेऽप्यनयो रोदस्यावपि रोदसी ।।"

इसके अतिरिक्त विश्वकोष में भी —"द्यावापृथिव्यो रोदस्यौ रोदसी रोदसीति च" कहा गया है । प्रस्तुत पद्य में उपमा अलङ्कार तथा पृथ्वी छन्द है । छन्द का लक्षण है—"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः" ।। ४ ।।

विचिन्त्येति । गाण्डीविना = अर्जुनेन, सात्यकिना = यदुवंशजातेन, वृकोदरेण = भीमेन, यौवनदर्पात् = युवावस्थाजन्यगर्वात्, अतिक्रान्तमर्यादेन = अतिक्रान्ता = उल्लङ्घिता, मर्यादा = सीमा येन तादृशः, तेन, तातः = मत्पिता; परिकोपितः =क्रोधितः, शिष्यप्रियताम् = शिष्यस्नेहम्, समुल्लङ्घ्य = परित्यज्य;

(सोचकर) निश्चय ही युवावस्थाजन्य गर्व से मर्यादा का उल्लङ्घन कर देने वाले अर्जुन या सात्यकि अथवा भीमसेन द्वारा क्रुद्ध किये गये पिताजी शिष्य-स्नेह को छोड़कर अपने पराक्रम के योग्य कार्य कर रहे हैं । क्योंकि—

यद्दुर्योधनपक्षपातसदृशं युक्तं यदस्त्रग्रहे
रामाल्लब्धसमस्तहेतिगुरुणो वीर्यस्य तत्साम्प्रतम् ।
लोके सर्वधनुष्मतामधिपतेर्यच्चानुरूपं रुषः
प्रारब्धं रिपुघस्मरेण नियतं तत्कर्म तातेन मे ॥ ५ ॥

आत्मप्रभावसदृशम् = आत्मनः = स्वस्य, प्रभावेण = सामर्थ्येन, सदृशम्=तुल्यम् अनुरूपमित्यर्थः, आचेष्टते = कुरुते ।

अन्वयः—यत्, दुर्योधनपक्षपातसदृशम्, यत्, अस्त्रग्रहे, युक्तम्, यत्, रामात्, लब्धसमस्तहेतिगुरुणः, वीर्यस्य, साम्प्रतम्, च यत्, लोके, सर्वधनुस्मताम् अधिपतेः, रुषः, अनुरूपम्, तत्, कर्म, रिपुघस्मरेण, मे, तातेन, नियतम्, प्रारब्धम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—यद् दुर्योधनेति । यत् = कर्म, सर्वत्र यच्छब्देनाग्रे वक्ष्यमाणं कर्माभिधीयते, दुर्योधनपक्षपातसदृशम् = दुर्योधनस्य = कुरुपतेः, पक्षपातः = पक्षग्रहणम्, तस्य, तादृशम् = तुल्यम्, यत् अस्त्रग्रहे = आयुधग्रहणे, युक्तम् = उचितम्, यत्, रामात् = परशुरामात्, लब्धसमस्तहेतिगुरुणः = लब्धाः = अधिगताः याः समस्तहेतयः = सम्पूर्णशस्त्राणि, ताभिः गुरु = महत्, तस्य, वीर्यस्य = पराक्रमस्य, साम्प्रतम् = युक्तम्, च = तथा, यत् लोके = जगति, सर्वधनुष्मताम् = सर्वेषाम् = अखिलानाम्, धनुस्मताम् = धनुर्धारिणाम्, अधिपतेः= स्वामिनः, रुषः = क्रोधस्य, अनुरूपम् = योग्यम्, तत्=तादृशम्, कर्म = कार्यम्, रिपुघस्मरेण = रिपूणाम् = शत्रूणाम्, घस्मरः=भक्षकः विनाशक इति यावत्, तेन, मे = मम, तातेन = पित्रा, द्रोणेनेति भावः । नियतम् = निश्चितम्, प्रारब्धम्=आरब्धम् । सम्प्रति मे पिता रिपुनाशने नियतं प्रवृत्त इति भावः ॥५॥

जो (कर्म) दुर्योधन के प्रति प्रेम के योग्य है, जो (कर्म) शस्त्र उठा लेने पर उचित है, जो (कर्म) परशुराम से प्राप्त सम्पूर्ण शस्त्रों के कारण महान् पराक्रम के योग्य है और जो (कर्म) सब धनुर्धारियों के अधिपति के क्रोध के अनुरूप है, शत्रुओं के भक्षक पिताजी ने निश्चितरूप से आज वही कर्म प्रारम्भ कर दिया है ॥ ५ ॥

(पृष्ठतो विलोक्य ।) तत्कोऽत्र । रथमुपनयतु । अथवाऽलमिदानीं मम रथप्रतीक्षया । सशस्त्र एवास्मि सजलजलधरप्रभाभास्वरेण सुप्रग्रहविमल-कलधौतत्सरुणाऽमुना खड्गेन यावत्समरभुवमवतरामि । (परिक्रम्य वामाक्षि-स्पन्दनं सूचयित्वा ।) अये, ममापि नामाश्वत्थाम्नः समरमहोत्सवप्रमोद-निर्भरस्य तातविक्रमदर्शनलालसस्यानिमित्तानि समरगमनविघ्नमुत्पाद-

टिप्पणी—यद् दुर्योधनेति । रामाल्लब्धेति = द्रोणाचार्य ने परशुराम से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी । हेतयः = 'हेति' शस्त्र को कहा जाता है— "रवेर्रचिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः" इत्यमरः । रिपुघस्मरेण = घस्मर भक्षक को कहा जाता है—"भक्षको घस्मरोद्भरः" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षालङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।। ५ ।।

पृष्ठतो विलोक्येति । सजलजलधरप्रभाभास्वरेण = सजलः जलपूरितः, यो जलधरः = मेघः, तस्य प्रभा = कान्तिः, विद्युदिति भावः, तद्वत् भास्वरम् = दीप्यमानम्, तेन, सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणा = सुप्रग्रहः = सुखेन ग्रहीतुं योग्यः, विमलम् = निर्मलम्, यत् कलधौतम् = सुवर्णम्, तेन निर्मितः त्सरुः= खड्गमुष्टिः, यस्य तेन, खड्गेन = असिना, समरभुवम्, युद्धभूमिम्, अवतरामि । वामाक्षिस्पन्दनम् = वामनेत्रस्फुरणम् ।

टिप्पणी—वामाक्षिस्पन्दनमिति । पुरुषों के बायें नेत्र का फड़कना शास्त्र में अपशकुनसूचक माना जाता है ।

समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य = समरः = सङ्ग्रामः एव महोत्सवः = महानन्दः, तस्य यः प्रमोदः = आनन्दः, तत्र निर्भरस्य = प्रमग्नस्य, तातविक्रम-

(पीछे की ओर देखकर) यहाँ कौन है ? रथ लाओ । अथवा अब मुझे रथ की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए । जलपूरित मेघ की कान्ति के समान चमकने वाले और अच्छी तरह पकड़ने योग्य तथा निर्मल सुवर्णनिर्मित मूठवाले इस खड्ग से शस्त्र सज्जित हूँ ही । तब युद्धभूमि में उतरता हूँ । (घूमकर और बायें नेत्र की फड़कन को सूचित करके) ओह ! मुझ अश्वत्थामा के लिए भी, जिसे युद्धरूपी महोत्सव का अत्यधिक हर्ष है और जिसे पिता के पराक्रम को

यन्ति । भवतु । गच्छामि । (सावष्टम्भं परिक्रम्याग्रतो विलोक्य ।) कथमवधीरितक्षात्रधर्माणामुज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानां विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचेतसां द्विरदतुरङ्गमचरणचारिणामगणितकुलयशःसदृशपराक्रमव्रतानां रणभूमेः समन्तादपक्रामतामयं महान्नादो बलानाम् (निरूप्य)

दर्शनलालसस्य पितृपराक्रमदर्शनोत्कण्ठितस्य, अनिमित्तानि = अपशकुनानि, समरगमनविघ्नम् = सङ्ग्रामावतरणान्तरायम्, उत्पादयन्ति = जनयन्ति ।

सावष्टम्भम् = सगर्वम्, अवधीरितक्षात्रधर्माणाम् = अवधीरितः = तिरस्कृतः, क्षात्रधर्मः = क्षत्रियमर्यादा यैस्तेषाम्, उज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानाम् = उज्झितम् = परित्यक्तम्, सत्पुरुषोचितम् = सज्जनोचितम्, लज्जा = व्रीडा एव अवगुण्ठनम् = आवरणम् यैस्तेषाम्, स्वामिसत्कारः = प्रभुकृतं सम्मानं यैस्ते तथाभूताः, अत एव लघु = क्षुद्रम्, चेतः = हृदयम् येषाम्, तादृशानाम्, द्विरदतुरङ्गमचरणचारिणाम् = द्विरदतुरङ्गमाः = गजाश्वाः, तेषां चरणैः = पादैः, चारिणाम् = संचरणशीलानाम्, गजघोटकैर्गच्छतामिति यावत् । अगणितकुलयशःसदृशपराक्रमव्रतानाम् = अगणितम् = अविचारितम्, कुलयशःसदृशम् = वंशकीर्त्यनुरूपम्, पराक्रमव्रतम् = विक्रमनियमः येषां तेषाम्, रणभूमेः, समन्तात् = सर्वतोभावेन, अपक्रामताम् = पृथग्गच्छताम्, बलानाम् = सैन्यानाम् ।

देखने की तीव्र उत्कण्ठा है, ये अपशकुन युद्ध में जाने में विघ्न उत्पन्न कर रहे हैं । अच्छा, चलता हूँ ।

(गर्व के साथ घूमकर और आगे की ओर देख कर) क्षात्रधर्म की उपेक्षा करने वाली, सज्जनोचित लज्जा के आवरण को त्याग देनेवाली, स्वामी द्वारा किये गये सम्मान को भुला देने के कारण क्षुद्र हृदयवाली, कुल एवं वंश के अनुरूप पराक्रम व्रत की चिन्ता न करने वाली, युद्ध-क्षेत्र से चारों ओर भाग खड़ी होने वाली और हाथी घोड़ों तथा पैदल सेना का यह महान कोलाहल क्यों है ? (ध्यान से देख कर) ओह ! धिक्कार है ! ये कर्ण आदि महारथी भी युद्ध से क्यों भाग रहे हैं ? पिता से सञ्चालित होने पर भी सेना की यह अवस्था हो

हा हा धिक्कष्टम् । कथमेते महारथाः कर्णादयोऽपि समरात्पराङ्मुखा भवन्ति । कथं नु ताताधिष्ठितानामपि बलानामियमवस्था भवेत् । भवतु, संस्तम्भयामि । भो भोः कौरवसेनासमुद्रवेलापरिपालनमहामहीधरा नरपतयः कृतं कृतममुना समरपरित्यागसाहसेन ।

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥ ६ ॥

पराङ्मुखाः = पराचीनाः, विमुखा इत्यर्थः । संस्तम्भयामि = अवरोधयामि । कौरवसेनेत्यादि—कौरवसेना = कौरवबलम् एव समुद्रः = सागरः, तस्य वेला = तटम्, प्रान्तप्रदेश इत्यर्थः, तस्याः परिपालने = संरक्षणे, महामहीधराः = महापर्वततुल्याः, हे नरपतयः = हे नरेन्द्राः, समरपरित्यागसाहसेन = समरस्य = युद्धाङ्गणस्य, परित्यागः = परिवर्जनम् एव साहसम् = सहसा कृतं कर्म तेन, कृतम् = अलम् ।

टिप्पणी—वेलापरिपालनेति । पर्वत समुद्र के तटों की रक्षा करते हैं । यदि पर्वत न हों तो समुद्र अपने तटों को उखाड़ फेंके । इसी प्रकार प्रधान योद्धा सेना के चारों ओर रहकर उसकी रक्षा करते हैं ।

अन्वयः—यदि, समरम्, अपास्य, मृत्योः, भयम्, नास्ति, इति, इतः, अन्यतः, प्रयातुम् युक्तम्, अथ, जन्तोः, मरणम्, अवश्यम्, एव, किम्, इति, मुधा, यशः, मलिनम्, कुरुध्वे ॥ ६ ॥

व्याख्या—यदि समरमिति । यदि = चेत्, समरम् = सङ्ग्रामम्, अपास्य = त्यक्त्वा, मृत्योः = मरणात्, भयम् = भीतिः, नास्ति = न विद्यते, इति = अस्यां स्थितौ, इतः = अस्मात् स्थानात्, सङ्ग्रामस्थलादिति भावः । अन्यतः = अन्यत्र, प्रयातुम् = पलाय्य गन्तुम्, युक्तम् = उचितम्, अथ = अन्यथा, यदि जन्तोः =

सकती है ? अच्छा, मैं (इन्हें) रोकता हूँ । हे हे कौरवसेनारूपी समुद्र के तट की रक्षा के कार्य में विशाल पर्वतों के समान राजाओं ! युद्ध से पलायन के इस दुष्कर्म से बस करो ।

यदि सङ्ग्राम का त्याग करके मृत्यु का भय न रहे तब तो यहाँ से अन्यत्र भाग जाना उचित है परन्तु यदि प्राणी की मृत्यु अवश्यम्भावी है तो क्यों इस प्रकार व्यर्थ में अपनी कीर्ति को कलङ्कित कर रहे हो ? ॥ ६ ॥

अपि च।

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे।
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम्।
कर्णालं सम्भ्रमेण व्रज कृप समरं मुञ्च हार्दिक्यशङ्कां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरां को भयस्यावकाशः ॥ ७ ॥

प्राणिनः, मरणम्=मृत्युः, अवश्यम् = ध्रुवम्, एवेति निश्चये, तदा किम्=कथम्, इति=एवम्, मुधा = व्यर्थम्, यशः = कीर्त्तिम्, मलिनम्=मलीमसम्, कुरुध्वे= सम्पादयध्वे ॥ ६ ॥

टिप्पणी—यदि समरमिति। प्रस्तुत पद्य में पुष्पिताग्रा छन्द है जिसका लक्षण है—

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।" ६ ॥

अन्वयः—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः, अन्तः, औवीयमाणे, सर्व-धन्वीश्वराणाम्, गुरौ, मम, पितरि, अस्मिन् (सङ्ग्रामे) सेनानाथे (सति) कर्ण, सम्भ्रमेण, अलम्, कृप, समरम्, व्रज, हार्दिक्य, शङ्काम्, मुञ्च, चापद्वितीये, ताते, रणधुराम्, वहति (सति) भयस्य, कः, अवकाशः ॥ ७ ॥

व्याख्या—तव भयं सम्भवत्यपि नेत्याह अस्त्रज्वालेति। अस्त्रज्वालावलीढ-प्रतिबलजलधेः=अस्त्राणि = आयुधानि, एव ज्वालाः=हेतयः, ताभिः=अवलीढम्= व्याप्तम्, प्रतिबलम्=शत्रुसैन्यम्, जलधिः=समुद्रः इव, युधिष्ठिरसैन्यसागर इति भावः, तस्य, अन्तः=मध्ये, औवीयमाणे = और्वः = वडवानलः इव आचरन् इति औवीयमाणः, तस्मिन्, रिपुसैन्योत्साहनाशके इत्यर्थः, सर्वधन्वीश्वराणाम्= सकलधनुर्धराधिपानाम्, गुरौ = श्रेष्ठे, मम = अश्वत्थाम्नः, पितरि = जनके,

और भी—

शस्त्रों रूपी ज्वालाओं से व्याप्त शत्रु-सैन्यरूपी सागर के मध्य वडवानल के सदृश, समस्त श्रेष्ठ धनुर्धारियों के गुरु, मेरे पिता के सेनाध्यक्ष रहते हुए हे कर्ण, घबराहट से बस करो, हे कृप, युद्ध-क्षेत्र में जाओ, हें हार्दिक्य; भय छोड़ो। धनुष को सहायक के रूप में धारण करने वाले (मेरे) पिता के युद्ध-सञ्चालन का भार ग्रहण करने पर भय का स्थान कहाँ है ? ॥ ७ ॥

(नेपथ्ये ।)

कुतोऽद्यापि ते तातः ।

अश्वत्थामा—(श्रुत्वा ।) किं ब्रूथ—'कुतोऽद्यापि ते तातः' इति। (सरोषम्) आः क्षुद्राः भीरवः, कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया ।

अस्मिन् = एतस्मिन्, युद्धे इति शेषः, सेनानाथे=सेनाध्यक्षे सति कर्ण=हे राधेय, सम्भ्रमेण = उद्वेगेन, अलम् = व्यर्थम्, कृप=हे कृपाचार्य, समरम्=रणाङ्गणम्, व्रज=गच्छ, हार्दिक्य=हे हार्दिकसुत, शङ्काम्=सन्देहम्, भयरूपमिति भावः, मुञ्च=त्यज, चापद्वितीये=चापः=धनुः द्वितीयः = सहायकः यस्य सः तस्मिन्, गृहीत-कोदण्डे इत्यर्थः, ताते=पितरि, रणधुराम् = युद्धभारम्, वहति=धारयति सति, भयस्य=भीतेः, कः अवकाशः = न किमपि स्थानमित्याशयः ।। ७ ।।

टिप्पणी—अस्त्रज्वालेति । "अस्त्र ही ज्वाला है" इस अर्थ में "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे" से समास हुआ है। और्वायमाणे=और्वं वडवानल को कहते हैं–"और्वस्तु वाडवो बडवानलः" इत्यमरः । "और्वं इव आचरन्" इस अर्थ में और्व शब्द से "कर्त्तुः क्यङ्सलोपश्च" इस सूत्र से क्यङ् प्रत्यय तथा लट् एवं शानच् आदि आने से और्वायमाण सिद्ध होता है । प्रसिद्धि है कि समुद्र के बीच एक घोड़ी = वडवा रहती है वह हमेशा अपने मुँह से आग की भयंकर लपटें छोड़ती रहती है । इससे अगाध समुद्र का जल जलकर कम होता रहता है जिससे उसमें कभी बाढ़ नहीं आने पाती । द्रोणाचार्य भी शत्रु सेनारूपी सागर में वडवानल जैसा व्यवहार कर रहे हैं; यही कथन का तात्पर्य है । प्रस्तुत पद्य के "और्वायमाणे" में उपमा तथा चतुर्थ चरण में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । स्रग्धरा छन्द है ।। ७ ।।

नेपथ्ये = जवनिकान्तर्भूमौ ।

कुत इति । तव पिता मृत इति भावः । वः = युष्माकम्, प्रलपताम् = कथयताम्, जिह्वया = रसनया, सहस्रधा = सहस्रकृत्वः, दीर्णम् = विदीर्णम् ।

(नेपथ्य में)

कहाँ अब भी तुम्हारे पिता हैं ?

अश्वत्थामा—(सुनकर) क्या कह रहे हो–"कहाँ हैं अब भी तुम्हारे

दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का
वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्त भिन्नाः ।
छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः
पापं पापाः कथयत कथं शौर्यराशेः पितुर्मे ॥ ८ ॥

अन्वयः—द्वादश, अर्काः, दहनकिरणैः, विश्वम्, दग्धुम्, न, उदिताः, सप्तधा, भिन्नाः, सप्त वाताः, दिशि-दिशि, न, वाताः, गगनतलम्, पुष्करावर्त्तकाद्यैः, मेघैः, न, छन्नम्, हे पापाः शौर्यराशेः, मे, पितुः, पापम्, कथम्, कथयत ॥ ८ ॥

मम पितुः साम्प्रतं न मरणकाल इत्यत आह—दग्धुं विश्वमिति ।

व्याख्या—द्वादश अर्काः = द्वादश सूर्याः, दहनकिरणैः = दाहकरश्मिभिः, विश्वम् = लोकम्, दग्धुम्=भस्मसात् कर्त्तुम्, न निसृताः, सप्तधा=सप्तप्रकारेण, भिन्नाः=गुणिताः, सप्तवाताः=सप्तपवनाः दिशि-दिशि=सर्वासु दिक्षु, न वाताः=न अवहन्, प्रलयकालिकाः एकोनपञ्चाशत्पवनाः न वाताः इति भावः । गगनतलम्= नभोमण्डलम्, पुष्करावर्तकाद्यैः = पुष्करावर्त्तकादिनामधेयैः, मेघैः=जलदैः, न छन्नम्=न आच्छादितम्, तथापि हे पापाः=हे पापिनः, शौर्यराशेः=वीर्यसमूहस्य, पराक्रमिण इत्यर्थः, मम पितुः = जनकस्य, पापम् = पापयुक्तं कथनम्, मरण-घोषणामित्यर्थः, कथम् = कस्मात्, कथयत = ब्रूत । प्रलयलक्षणाभावान्मम पितुर्मरणन्न सम्भवतीत्याशयः ॥ ८ ॥

पिता" । (क्रोधपूर्वक) ओह ! नीच कायर पुरुषो ! इस प्रकार प्रलाप करते हुए तुम लोगों की यह जीभ हजार टुकड़े होकर गिर क्यों नहीं जाती ?

अपनी दाहक किरणों से संसार को जला डालने के लिए बारहो सूर्य उदित नहीं हुए, सात-सात प्रकार के सात (७×७ = ४९) पवन प्रत्येक दिशा में न चले, और पुष्कर तथा आवर्त्तक आदि मेघों ने आकाश को आच्छादित नहीं किया; तब हे पापियो ! शूरता की राशि मेरे पिता के सम्बन्ध में अनिष्ट बात कैसे कह रहे हो ? ॥ ८ ॥

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः सप्रहारः ।)

सूतः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः । (इति पादयोः पतति ।)

अश्वत्थामा—(विलोक्य ।) अये, कथं तातस्य सारथिरश्वसेनः । आर्य, ननु त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य सारथिरसि । किं मत्तः परित्राणमिच्छसि ।

सूतः—(सकरुणम् ।) कुतोऽद्यापि ते तातः ।

अश्वत्थामा—(सावेगम्) किं तातो नामास्तमुपगतः ।

सूतः—अथ किम् ।

अश्वत्थामा—हा तात, (इति मोहमुपगतः ।)

सूतः—कुमार, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

टिप्पणी—दग्धुमिति । प्रलय के समय ही बारह सूर्यों का उदय होता है, उनचासपवन चलने लगते हैं तथा पुष्कर और आवर्त्तक नामक मेघ भीषण वृष्टि करते हैं ।

प्रस्तुत पद्य में कारण के न होते हुए भी कार्य का कथन होने से विभावनालङ्कार है–क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ।" मन्दाक्रान्ता छन्द है ।८।

अश्वत्थामेति । त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य = लोकत्रयरक्षणसमर्थस्य, परित्राणम्= रक्षणम्, अस्तम्=विनाशम्, उपगतः=प्राप्तः ।

मोहम् = मूर्च्छाम् ।

(घायल तथा घबड़ाया हुआ प्रवेश करके)

सूत—बचाइये, बचाइये कुमार । (ऐसा कहकर पैरों पर गिर जाता है ।)

अश्वत्थामा—(देखकर) अरे, पिताजी का सारथि अश्वसेन ? आर्य ! तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ (मेरे पिता) के सारथि हो। क्या मुझसे रक्षा चाहते हो ?

सूत—(करुणापूर्वक) कहाँ अब भी आपके पिताजी (हैं ।) ?

अश्वत्थामा—(आवेग के साथ) क्या पिताजी नहीं रहे ?

सूत—और क्या ?

अश्वत्थामा—हाय, पिताजी ! (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाता है ।)

सूत—कुमार, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ।

अश्वत्थामा—(लब्धसंज्ञः सास्रम् ।) हा तात, सुतवत्सल, हा लोकत्रयैकधनुर्धर, हा जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहणप्रणयिन् , क्वासि ? प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

सूतः—कुमार, अलमत्यन्तशोकावेगेन । वीरपुरुषोचितां विपत्तिमुपगते पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव ।

अश्वत्थामा—(अश्रूणि विमुच्य ।) आर्य, कथय कथय कथं तादृग्भुजवीर्यसागरस्तातोऽपि नामास्तमुपगतः ।

अश्वत्थामेति । लब्धसंज्ञः = प्राप्तचैतन्यः, विगतमूर्च्छ इत्यर्थः । लोकत्रयैकधनुर्धर = लोकत्रये = त्रिलोक्याम्, एकः = अद्वितीयः, धनुर्धरः=धनुर्धारी तत्सम्बुद्धौ, जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन् = जामदग्न्यस्य = परशुरामस्य, अस्त्रम् = प्रहरणम् एव सर्वस्वम् = धनम्, तस्य प्रतिग्रहे = आदाने, प्रणयी = स्निग्धः, तत्सम्बोधने । मे = मह्यम्, प्रतिवचनम्=उत्तरम्, प्रयच्छ=देहि ।

सूत इति । वीरपुरुषोचिताम् = शूरजनानुरूपाम्, विपत्तिम्, आपदम्, मृत्युरूपामिति भावः, उपगते = प्राप्ते, वीर्येण=शौर्येण ।

अश्वत्थामेति । अश्रूणि = नेत्रबाष्पाणि, विमुच्य = त्यक्त्वा, तादृग्भुजवीर्यसागरः = तादृक् = तादृशम्, अखिललोकविश्रुतमित्यर्थः, यद्भुजवीर्यम्= बाहुपराक्रमः, तदेव सागर इव = समुद्र इव यस्य सः ।

अश्वत्थामा—(होश में आकर तथा आँखों में आँसू भरकर) हा तात ! हा पुत्रवत्सल ! हा तीनों लोकों में अद्वितीय धनुर्धर ! हा परशुराम के अस्त्ररूपी धन को लेने में प्रेम रखनेवाले ! तुम कहाँ हो ? मुझे उत्तर दो ।

सूत—कुमार, अधिक शोक न करो । पिता के शूरपुरुषोचित मृत्यु पाने पर तुम उनके अनुरूप ही पराक्रम से शोक-सागर को तर कर सुखी होओ ।

अश्वत्थामा—(आँसू बहाकर) आर्य, बतलाओ, बतलाओ, वैसे बाहुपराक्रम के समुद्र पिताजी भी किस तरह मृत्यु को प्राप्त हुए ?

किं शिष्यात् गुरुदक्षिणां गुरुगदां भीमप्रियः प्राप्तवान् ।
सूतः—शान्तं पापम् ।
अश्वत्थामा—अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना ।
सूतः—कथमेवं भविष्यति ।
अश्वत्थामा—गोविन्देन सुदर्शनस्य निशितं धारापथं प्रापितः ।
सूतः—एतदपि नास्ति ।
अश्वत्थामा—शङ्के नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् ॥ ९ ॥

पद्यरूपेण स्वपितुर्घातिविषये अश्वत्थामा पृच्छति–किं शिष्यादिति ।

अन्वयः—भीमप्रियः, (मत्पिता) शिष्यात्, गुरुगदाम्, गुरुदक्षिणाम्, प्राप्तवान्, किम् ? अन्तेवासिदयालुः (असौ), उज्झितनयेन, जिष्णुना, आसादितः, (किम्) ? (सः) गोविन्देन, सुदर्शनस्य, निशितम्, धारापथम्, प्रापितः (किम्) ? एभ्यः, अन्यतः चतुर्थात्, गुरोः, आपदम्, अहम्, न, खलु, शङ्के ॥ ९ ॥

व्याख्या—भीमप्रियः = भीमः = वृकोदरः, प्रियः = स्नेह्यः यस्य सः, मत्पिता = द्रोण इति भावः, शिष्यात् = भीमात्, गुरुगदाम् = भीषणगदाम्, गुरुदक्षिणाम् = गुरुगदारूपां गुरुदक्षिणामित्यर्थः । प्राप्तवान् = आसादितवान्,

क्या भीम से प्रेम करनेवाले (मेरे पिता) ने भारी गदावाले भीम से गुरुदक्षिणा पा ली है ?

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो ।

अश्वत्थामा—(तो) उचित मर्यादा का परित्याग करके अर्जुन ने शिष्य पर दया रखनेवाले (पिताजी) को अभिभूत कर दिया है ?

सूत—ऐसा कैसे होगा ?

अश्वत्थामा—(तो) निश्चय ही श्रीकृष्ण ने सुदर्शन की धारा के मार्ग को प्राप्त करा दिया ?

सूत—यह भी नहीं है ।

अश्वत्थामा—इन से अतिरिक्त किसी चौथे से मैं पिताजी की विपत्ति की आशङ्का नहीं करता ॥ ९ ॥

सूतः—कुमार,

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः
किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति सङ्ख्ये।
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं
त्यक्तं तदाऽस्य विहितं रिपुणाऽतिघोरम् ॥ १० ॥

किमिति प्रश्ने, भीमगदया पिताहत किमिति प्रश्नाशयः। अन्तेवासिदयालुः= अन्तेवासिनः=शिष्याः, तेषु दयालुः=कृपालुः, शिष्यप्रिय इत्यर्थः, असाविति शेषः, उज्झितनयेन = त्यक्तमर्यादेन, जिष्णुना = अर्जुनेन, आसादितः=प्राप्तः, अभिभूत इत्यर्थः। किमिति सम्बन्धोऽत्रापि। सः, गोविन्देन=श्रीकृष्णेन, सुदर्शनस्य = सुदर्शननामकचक्रस्य, निशितम्=तीक्ष्णम्, धारापथम्=धारायाः= शस्त्रस्याग्रभागस्य, पन्थाः=मार्गः, तम्, प्रापितः=गमितः, मारित इत्यर्थः, किमिति योज्यम्। एभ्यः = एतेभ्यः, भीमार्जुनगोविन्देभ्यः इत्यर्थः, अन्यतः= अन्यस्मात्; चतुर्थात् = तृतीयातिरिक्तादिति भावः, गुरोः = पितुः द्रोणस्येत्यर्थः, आपदम्=विपत्तिम् मृत्युरूपामिति भावः। अहम्=अश्वत्थामा, न खलु= नैव, शङ्के=सन्देह्मि। एभ्योऽतिरिक्तो मत्पितुर्हन्ता न सम्भवति तर्हि कथं मृत्युमधिगतस्तात इति भावः ॥ ९ ॥

टिप्पणी—किं शिष्यादिति। भीमप्रियः—द्रोणाचार्य कौरवों एवं पाण्डवों के शस्त्र-विद्या-गुरु थे। वे सभी शिष्यों से स्नेह रखते थे। अद्वितीय पराक्रम के कारण भीम उन्हें बहुत प्रिय था तथा अर्जुन के प्रति भी वे पूर्ण दयालु थे चूँकि

द्रोणस्य पराक्रमाधिक्यं प्रतिपादयन्नाह एतेऽपीति।

अन्वयः—एते, अपि, कुपितस्य, महास्त्रपाणेः, तस्य, धूर्जटेः, इव, संख्ये, किम्, तुलाम्, उपयान्ति ? तु, शोकोपरुद्धहृदयेन, (तेन) यदा, शस्त्रम्, न्यस्तम्, तदा, रिपुणा, अस्य, अतिघोरम्, विहितम् ॥ १० ॥

सूत—कुमार !

क्या वे सब लोग भी महादेव के समान हाथ में महान् अस्त्र धारण करने वाले, क्रुद्ध हुए उसका सङ्ग्राम में सामना कर सकते हैं ? किन्तु जब शोक से आक्रान्त हृदयवाले (आपके पिता) ने शस्त्र त्याग दिया तब शत्रु ने इसके प्रति अत्यन्त दारुण कार्य किया। (अर्थात् उनका बध कर दिया।) ॥ १० ॥

अश्वत्थामा— किं पुनः कारणं शोकस्यास्त्रपरित्यागस्य वा ।

सूतः—ननु कुमार एव कारणम् ।

अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ।

सूत—श्रूयताम् । (अश्रूणि विमुच्य ।)

अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा
स्वैरं शेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा ।
तच्छ्रुत्वासौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः
शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ।। ११ ।।

व्याख्या—एते = इमे, अपि = च, कुपितस्य = क्रुद्धस्य; महास्त्रपाणेः = महत् = विशालम्, अस्त्रम् = आयुधम्, पाणौ = करे यस्य तादृशस्य, तस्य = द्रोणाचार्यस्य, धूर्जटेः महादेवस्य, इव = यथा, संख्ये = सङ्ग्रामे, किमिति प्रश्ने, तुलाम् = सादृश्यम् । उपयान्ति = गच्छन्ति ? तु = किन्तु, शोकोपरुद्धहृदयेन= शोकेन=शुचा, उपरुद्धम् = व्याप्तम्, हृदयम् = चित्तं यस्य सः तेन, तेनेति शेषः; यदा=यस्मिन् काले, शस्त्रम्=प्रहरणम, न्यस्तम् = त्यक्तम्, तदा=तस्मिन् काले, रिपुणा=शत्रुणा, अस्य=तव पितुर्द्रोणस्येत्यर्थः, अतिघोरम्=अतिनृशंसम्, विहितम्= सम्पादितम् । त्यक्तशस्त्रो द्रोणो रिपुणा व्यापादित इति भावः ।। १० ।।

टिप्पणी—एतेऽपीति । प्रस्तुत पद्य में उपमा अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है ।। १० ।।

सूत इति । अश्रूणि = नेत्रवास्पाणि, विमुच्य = परित्यज्य ।

शस्त्रत्यागे कारणं प्रतिपादयन्नाह—अश्वत्थामा हत इति ।

अन्वयः—सत्यवाचा, पृथासूनुना, "अश्वत्थामा हत" इति, स्पष्टम्, उक्त्वा, शेषे, गजः, इति, स्वैरम्, व्याहृतम्, किल, दयिततनयः, असौ (द्रोणः), तत्, श्रुत्वा,

---

धनुर्विद्या में अर्जुन भी परम निपुण था । पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।।९।।

अश्वत्थामा—शोक अथवा अस्त्र-त्याग का क्या कारण था ?

सूत—बस, कुमार ही कारण थे ।

अश्वत्थामा—क्या मैं ही (कारण था) ?

सूत—सुनिये । (आँसू बहाकर)

पृथापुत्र (युधिष्ठिर) ने "अश्वत्थामा मारा गया" यह स्पष्ट कहकर

अश्वत्थामा—हा तात, हा सुतवत्सल, हा वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित, हा शौर्यराशे, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरपक्षपातिन् ।

तस्य, राज्ञः, प्रत्ययात्, आजौ, शस्त्राणि, च, नयनसलिलम्, अपि, तुल्यम् मुमोच ॥

व्याख्या—सत्यवाचा = सत्यम् = ऋतम्, वाक् = वाणी यस्य सः तेन, पृथासूनुना = पृथासुतेन, युधिष्ठिरेणेति भावः । "अश्वत्थामा हतः" = "द्रोण-पुत्रः व्यापादितः" इति = एवम्, स्पष्टम् = सुश्रवणीयम्, उक्त्वा = कथयित्वा, शेषे = अन्ते, वचनसमाप्तावित्यर्थः, गजः = हस्ती, इति = एतत्, स्वैरम्=मन्दं, व्याहृतम्=उक्तम्, किल=निश्चयेन, दयिततनयः = दयितः = प्रियः; तनयः = पुत्रः यस्य सः, असौ = सः, द्रोणाचार्य इति शेषः, तत् = "अश्वत्थामा हत" इति वचनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, तस्य = सत्यवक्तुः, राज्ञः = नृपतेः, युधिष्ठिरस्येति भावः । प्रत्ययात् = विश्वासात्, आजौ = रणे, शस्त्राणि = प्रहरणानि, च = तथा, नयनसलिलम्=नेत्रजलम्, अश्रु इत्यर्थः, अपि = च; तुल्यम् = समकालम्, मुमोच = तत्याज ॥ ११ ॥

टिप्पणी—अश्वत्थामा हत इति । महाभारत युद्ध में द्रोण को मारने के लिए श्रीकृष्ण की योजना के अनुसार युधिष्ठिर के मुख से "अश्वत्थामा हतः" कहलवाया गया था । वास्तविकता यह थी कि अश्वत्थामा नामक हाथी मारा गया था किन्तु "गजः" शब्द को बहुत धीरे से कहा गया जिसे द्रोणाचार्य नहीं सुन सके फलतः उन्हें लगा कि उनका पुत्र अश्वत्थामा ही मारा गया है जिसके शोक में उन्होंने तत्काल शस्त्र त्याग दिया और उनके शस्त्र त्यागते ही मौका पाकर धृष्टद्युम्न ने उन्हें मार डाला । पद्य में मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ ११ ॥

अश्वत्थामा इति । वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित = वृथा = व्यर्थम्, मदर्थम् =

वाक्य के शेष (भाग) में 'हाथी' यह धीरे से कहा । पुत्र को प्रेम करनेवाले यह (द्रोणाचार्य) उसे सुनकर उस राजा (युधिष्ठिर) के विश्वास से युद्ध में शस्त्र तथा आँसू को भी एक साथ छोड़े ॥ ११ ॥

अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रवत्सल, हा मेरे लिए व्यर्थ ही जीवन त्यागनेवाले, हा वीर्यराशि, हा शिष्य को प्रेम करनेवाले, हा युधिष्ठिर के पक्षपाती······ !

(इति रोदिति)

सूतः—कुमार, अलमत्यन्तपरिदेवनया कार्पण्येन।

अश्वत्थामा—

श्रुत्वा वधं मम मृषा सुतवत्सलेन
तात त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः।
जीवाम्यहं पुनरिह भवता विनाऽपि
क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः ॥ १२ ॥

परित्यक्तम् = उज्झितम्, जीवितम् = जीवनं येन तत्सम्बोधने। सूत इति। परिदेवनया = विलापेन, कार्पण्येन = कादर्येण।

अहं तव स्नेहयोग्यो नास्मीत्यत आह—श्रुत्वेति।

अन्वयः—(हे) तात, मम, मृषा, वधम्, श्रुत्वा, सुतवत्सलेन, त्वया, शरैः, सह, असवः, विमुक्ताः, अहो, अहम्, पुनः, भवता, विना, अपि, जीवामि, तत्, क्रूरे, अपि, मयि, तव, मुधा, पक्षपातः ॥ १२ ॥

व्याख्या—(हे) तात=हे पितः, मम = अश्वत्थाम्नः, मृषा=मिथ्या, वधम् = हननम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, सुतवत्सलेन = पुत्रस्नेहयुक्तेन, त्वया = भवता द्रोणेनेति भावः, । शरैः = बाणैः, सह=साकम्, असवः=प्राणाः, विमुक्ताः, अहो इति खेदे, अहम् = तव पुत्रः अश्वत्थामा, पुनः = इदानीमपि, भवता = त्वया, विनाऽपि = अन्तरेणापि, जीवामि = जीवनं धारयामि, तत्=तस्मात्, क्रूरेऽपि= निष्ठुरेऽपि, मयि= अश्वत्थाम्नि, तव = भवतः, मुधा = वृथा, पक्षपातः = स्नेहभावः आसीदिति शेषः। अहं निष्ठुरस्त्वञ्च सदय इति तात्पर्यम् ॥ १२ ॥

(ऐसा कहकर रोता है।)

सूत—कुमार, अधिक विलाप और कायरता से बस करो।

अश्वत्थामा—हे तात ! पुत्र से स्नेह रखने वाले आपने मेरे वध का झूठा समाचार सुनकर बाणों के साथ ही प्राणों को भी त्याग दिया किन्तु अहो ! मैं आपके विना भी जी रहा हूँ इसलिए मुझ निष्ठुर पर आपका पक्षपात व्यर्थ ही था ॥ १२ ॥

(इति मोहमुपगतः)

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु कुमारः ।

(ततः प्रविशति कृपः)

कृपः—(सोद्वेगं निःश्वस्य ।)

धिक्सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग्भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजायाः
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ॥ १३ ॥

टिप्पणी—श्रुत्वा वधमिति । अन्य संस्करणो में "जीवाम्यहं पुनरहो भवता विनाऽपि" के स्थान में "जीवाम्यहं पुनरयं भवता वियुक्तः" ऐसा पाठ–भेद प्राप्त होता है । दोनों का तात्पर्य एक ही है अतः इसमें विवाद का कोई विषय नहीं है । प्रस्तुत पद्य के द्वितीय चरण में सहोक्ति अलङ्कार है । वसन्ततिलका छन्द है ॥ १२ ॥

अन्वयः—सानुजम्, कुरुपतिम्, धिक् (अस्ति) अजातशत्रुम्, धिक् (अस्ति) विफलशस्त्रभृतः, भूपतीन्, धिक् (अस्ति) अस्मान्, धिक् (अस्ति) खलु, यैः, तदा, द्रुपदात्मजायाः. च, अद्य, द्रोणस्य, केशग्रहः, लिखितैः, इव, वीक्षितः ॥ १३ ॥

व्याख्या—धिक्सानुजमिति । सानुजम् = अनुजैः = लघुभ्रातृभिः सहितम् सानुजम् = ससहोदरम्, कुरुपतिम् = कुरुराजम्, दुर्योधनम्, धिक् = धिक्कारः,

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है ।)

सूत—धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें कुमार !

(तत्पश्चात् कृपाचार्य प्रवेश करते हैं ।)

कृप—(उद्वेगपूर्वक लम्बी साँस लेकर)

छोटे भाइयों सहित कुरुराज को धिक्कार है; अजातशत्रु (युधिष्ठिर) को धिक्कार है; व्यर्थ शस्त्र धारण करनेवाले राजाओं को धिक्कार है; हम सब को धिक्कार है; जिन्होंने उस समय द्रौपदी के तथा आज द्रोण के केशग्रहण को चित्रलिखित के समान देखा ॥ १३ ॥

तत्कथं नु खलु वत्समद्य द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम् । अथवा हिमवत्सार-गुरुचेतसि ज्ञातलोकस्थितौ तस्मिन्न खलु शोकावेगमहमाशङ्के । किन्तु पितुः परिभवमसदृशमुपश्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति अथवा—

अस्तीति क्रियापदं सर्वत्र वाक्यान्ते योज्यम्, अजातशत्रुम् = अनुत्पन्नरिपुम्, युधिष्ठिरमिति भावः, धिक्, विफलशस्त्रभृतः=विफलम् = निष्फलम्, शस्त्रम्= आयुध बिभ्रति इति विफलशस्त्रभृतः, तान्, भूपतीन् = राज्ञः, धिक्, अस्मान्= माम्, महाभारतयुद्धे यावन्तोऽपि योद्धारस्तान् सर्वानित्याशयः, धिक्, खलु= निश्चयेन, यैः = यैर्वीरैः, तदा = तस्मिन् समये, द्रुपदात्मजायाः = द्रुपदसुतायाः, द्रौपद्याः इत्यर्थः, च=पुनः, अद्य=अस्मिन् दिने, द्रोणस्य=द्रोणाचार्यस्य, केशग्रहः= कचाकर्षणम्, लिखितैः=चित्रस्थैः, इव=यथा, वीक्षितः=दृष्टः ॥ १३ ॥

श **टिप्पणी**—धिक्सानुजमिति । भरी सभा में जब द्रौपदी के केश-वस्त्र खींचे जा रहे थे तो उस समय बहुत से वीर सभा में उपस्थित थे पर किसी ने भी उस दुष्कृत्य का विरोध नहीं किया था। युद्ध में भी जब द्रोण को केश खींचकर मारा जा रहा था तब भी सभी चित्रलिखित से देखते रह गये थे इसीलिए कृपाचार्य ने "लिखितैरिव वीक्षितः" का प्रयोग किया है। पद्य में काव्यलिङ्ग अलंकार है ॥ १३ ॥

तत्कथमिति । हिमवत्सारगुरुचेतसि = हिमवतः = हिमालयस्य, सारवत्= बलवत्, गुरु=महत्, चेतः = हृदयम् यस्य तस्मिन् । ज्ञातलोकस्थितौ = सुपरिचितसंसारमर्यादे, तस्मिन् = अश्वत्थाम्नि, शोकावेगम् = अधिकशोकोद्वेगम्, असदृशम् = अनुचितम्, परिभवम् = मरणम्, उपश्रुत्य = ज्ञात्वा, व्यवस्यति = यतते ।

तो पुत्र अश्वत्थामा को कैसे देख सकूँगा ? अथवा हिमालय के समान बलशाली और उदार हृदयवाले तथा लोकव्यवहार को जाननेवाले उस (अश्वत्थामा) में मुझे शोक के आवेग का सन्देह नहीं करना चाहिए। किन्तु पिता के अनुचित अपमान को सुनकर (मैं) नहीं जानता कि वह क्या कर डालेगा । अथवा,

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते।
केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन् नूनं निःशेषिताः प्रजाः ॥ १४ ॥

(विलोक्य ।) तदयं वत्सस्तिष्ठति । यावदुपसर्पामि (उपसृत्य ससम्भ्रमम् ।) वत्स समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

अश्वत्थामा—(संज्ञां लब्ध्वा । सास्रम्) हा तात, सकलभुवनैकगुरो, (आकाशे ।) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर,

---

अन्वयः—एकस्य, अयम्, दारुणः, पाकः, तावत्, भुवि, वर्तते, द्वितीये, अस्मिन्, केशग्रहे, (सति) प्रजाः, नूनम्, निःशेषिताः, (भविष्यन्ति) ॥ १४ ॥

व्याख्या—एकस्येति । एकस्य = द्रौपद्याः कचाकर्षणस्य, अयम् = एषः, दारुणः = भीषणः, पाकः = फलम्, तावत् = इदानीम्, भुवि = जगति, वर्तते = विद्यते, द्वितीये = द्रौपदीकचाकर्षणातिरिक्ते द्रोणविषये इत्यर्थः, अस्मिन् = एतस्मिन्, केशग्रहे = शिरोरुहकर्षणे, सति, प्रजाः = जनाः, नूनम् = ध्रुवम्, निःशेषिताः = विनष्टाः, भविष्यन्तीति क्रियापदं युज्यम् ॥ १४ ॥

टिप्पणी—एकस्येति । प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है—"यजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्" ॥ १४ ॥

उपसर्पामि = समीपे गच्छामि ।

अश्वत्थामेति । संज्ञाम् = चेतनाम्, लब्ध्वा = प्राप्य, सास्रम् = अश्रुसहितम् ।

एक (केशग्रहण) का तो भूतल पर यह भीषण परिणाम उपस्थित है । इस द्वितीय केशग्रहण के होने पर निश्चय ही समस्त प्रजा विनष्ट हो जायगी ॥ १४ ॥

(देखकर) तो यह वत्स अश्वत्थामा खड़ा है । तब इसके समीप जाता हूँ । (समीप जाकर घबराहट के साथ) वत्स, धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो ।

अश्वत्थामा—(चेतना पाकर, आँखों में आँसू भरकर) हा तात ! हा सम्पूर्ण संसार के प्रधान गुरु ! (आकाश की ओर देखकर) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर,

आजन्मनो न वितथं भवता किलोक्तं
न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रुः।
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषात्
सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम् ॥ १५ ॥

सूतः—कुमार, एष ते मातुलः पार्श्वे शारद्वतस्तिष्ठति ।

अश्वत्थामा—(पार्श्वे विलोक्य । सबाष्पम्) मातुल,

अन्वयः—भवता, आजन्मनः, वितथम्, न, उक्तम्, किल, यत्, जनम्, न, द्वेक्षि, अतः, त्वम्, अजातशत्रुः, (असि, किन्तु) तत्, सर्वम्, मम, भाग्यदोषात्, द्विजवरे, गुरौ, (मम) ताते, एकपदे, एव, कथम्, निरस्तम् ? ॥ १५ ॥

व्याख्या—आजन्मन इति । भवता = त्वया युधिष्ठिरेणेति भावः, आजन्मनः = जन्मप्रभृति, वितथम् = असत्यम्, न = नहि, उक्तम् = कथितम्, किलेति प्रसिद्धौ, यत् = यस्मात्, जनम् = लोकम्, न द्वेक्षि = न द्वेषं करोषि, अतः = एतस्मात्, त्वम् = युधिष्ठिरः, अजातशत्रुः = अनुत्पन्नारिः, असि किन्तु, तत् = मृषाकथनाभावादि, सर्वम् = निखिलम्, मम = अश्वत्थाम्नः, भाग्यदोषात् = दैवदोषात्, द्विजवरे = विप्रश्रेष्ठे, गुरौ = आचार्ये (तत्रापि मम) ताते = पितरि, एकपदे = एकस्थाने एव कथम् = कस्माद्धेतोः, निरस्तम् = परित्यक्तम् । सत्यवचसा त्वया मत्पितृमृत्युहेतुभूतं यद्वितथमुक्तन्तत्तु मद्भाग्यदोषादेवेति भावः ॥ १५ ॥

टिप्पणी—आजन्मन इति । प्रस्तुत पद्य में परिकर अलङ्कार तथा वसन्त-तिलका छन्द है ॥ १५ ॥

जन्म से लेकर आपने कभी भी असत्य-भाषण नहीं किया क्योंकि तुम किसी से द्वेष नहीं करते हो इसलिए तुम अजातशत्रु कहलाते हो किन्तु मेरे भाग्य के दोष से (एकतो) ब्राह्मणश्रेष्ठ (दूसरे) आचार्य (तीसरे मेरे) पिता के विषय में एक साथ ही यह सब (गुण) तुम्हारे द्वारा कैसे छोड़ दिया गया ? ।१५।

सूत—कुमार, यह तुम्हारे मामा शारद्वत समीप में खड़े हैं ।

अश्वत्थामा—(पार्श्व में देखकर आँसुओं के साथ) मामा !

गतो येनाद्य त्वं सह रणभुवं सैन्यपतिना
य एकः शूराणां गुरुसमरकण्डूनिकषणः।
परीहासाश्चित्राः सततमभवन्येन भवतः
स्वसुः श्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल गतः ॥ १६ ॥

कृपः—परिगतपरिगन्तव्य एव भवान्। तदलमत्यन्तशोकावेगेन।

अन्वयः—येन, सैन्यपतिना, सह, अद्य, त्वम्, रणभुवम, गतः, यः, एकः, शूराणाम, गुरुसमरकण्डूनिकषणः, (आसीत्), येन (सह), भवतः, चित्राः, परिहासाः, सततम्, अभवन्, (हे) मातुल, ते, सः, श्लाघ्यः, स्वसुः, भर्त्ता, क्व, नु, खलु, गतः ? ॥ १६ ॥

व्याख्या—गतो येनेति। येन, सैन्यपतिना = सेनानायकेन, सह = साकम्, अद्य = अस्मिन् दिवसे, त्वम् = भवान्, कृपाचार्य इति भाव:, रणभुवम् = युद्धभूमिम्, गतः = व्रजितः, यः, एकः = एकाकी, एव शूराणाम् = वीराणाम्, गुरुसमरकण्डूनिकषणः = विशालयुद्धखर्जननिवारणः, आसीदिति शेषः, येन = द्रोणाचार्येण, सहेति शेषः, भवतः = श्रीमतस्तव, चित्राः=अनेकरूपाः, परीहासाः= हास्यव्यङ्ग्यवचनादयः, सततम् = निरन्तरम्, अभवन्=जाताः, हे मातुल = हे मातुर्भ्रातः ! ते = तव, सः = लोकप्रसिद्धः, श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः, स्वसुः = भगिन्याः, भर्त्ता=पतिः, क्व = कुत्र, नु खल्विति प्रश्ने, गतः प्रयातः ? ॥ १६ ॥

टिप्पणी—गतो येनाद्येति। प्रस्तुत पद्य में एक ही द्रोण का अनेक प्रकार से उल्लेख होने से उल्लेखालङ्कार है। छन्द शिखरिणी है ॥ १६ ॥

कृप इति। परिगतपरिगन्तव्यः=परिगतः=विदितः, परिगन्तव्यः=वेदितव्यः येन सः।

जिस सेनापति के साथ आज तुम युद्ध-भूमि में गये थे, जो अकेला ही वीरों की युद्धकी भारी खुजली को मिटा देनेवाला था, जिसके साथ निरन्तर आपके अनोखे हँसी-मजाक हुआ करते थे; हे मामा ! आपके वे प्रशंसनीय भगिनीपति (बहनोई) कहाँ गये ? ॥ १६ ॥

कृप—आप ज्ञातव्य (बातों) को जानते ही हैं। इसलिए अत्यधिक शोकावेग से बस कीजिए।

अश्वत्थामा—मातुल, परित्यक्तमेव मया परिदेवितम्। एषोऽहं सुत-वत्सलं तातमेवानुगच्छामि।

कृपः—वत्स अनुपपन्नमीदृशं व्यवसितं भवद्विधानाम्।

सूतः—कुमार, अलमतिसाहसेन।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः।
करोम्यविरहं तस्य वत्सलस्य सदा पितुः॥ १७॥

अश्वत्थामेति। परिदेवितम् = प्रलापः, सुतवत्सलम्=पुत्रस्नेहिनम्, तातम्= पितरम् अनुगच्छामि = अनुसरामि, अहमपि प्राणत्यागं करोमीत्याशयः।

कृप इति। अनुपपन्नम् = अयुक्तम्, व्यवसितम्, व्यवसायः।

अन्वयः—तातः, मद्वियोगभयात्, इतः, परलोकम्, गतः, तस्य, वत्सलस्य, पितुः, सदा, अविरहम्, करोमि॥ १७॥

व्याख्या—मद्वियोगेति, तातः = पिता, द्रोणाचार्य इति भावः, मद्वियोग-भयात्=मद्विरहभीतेः, इतः=अस्माल्लोकात्, परलोकम् = स्वर्गमित्यर्थः, गतः = प्रयातः, तस्य=तादृशस्य, वत्सलस्य=स्नेहयुक्तस्य, पितुः=जनकस्य, सदा=सर्वदा, अविरहम्=वियोगाभावम्, करोमि=विदधामि। स्वप्राणांस्त्यक्त्वा तातसमीप-मेव गच्छामीत्याशयः॥ १७॥

टिप्पणी—मद्वियोगेति इस पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा पथ्या-वक्त्र छन्द है॥ १७॥

अश्वत्थामा—मामा! मैंने विलाप छोड़ दिया है। अब मैं भी पुत्रवत्सल पिता का ही अनुसरण करता हूँ। (अर्थात् अपने प्राणों को त्यागने जा रहा हूँ।)

कृप—वत्स, आप जैसों के लिए यह उचित नहीं है।

सूत—कुमार, दुःसाहस न करो।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,

मेरे वियोग के भय से पिताजी यहां से परलोक चले गये। उस स्नेही पिता का (मैं) सर्वदा अवियोग कर रहा हूँ। (अर्थात् मरकर सदा के लिए उनके पास ही जा रहा हूँ।)॥ १७॥

कृपः—वत्स, यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । पश्य—

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः ।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा ॥ १८ ॥

सूतः—आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वतः कथयति तत्तथा ।

कृप इति । लोकयात्रा = लोकव्यवहारः, लोकद्वयेऽपि = इहलोकपरलोकयोरपि, अनुवर्त्तनीयाः = अनुसरणीयाः ।

अन्वयः—निवापाञ्जलिदानेन, केतनैः, श्राद्धकर्मभिः, तस्य, उपकारे, त्वम्, जीवन्, शक्तः किम्, उत, अन्यथा ? ॥ १८ ॥

व्याख्या—निवापेति । निवापाञ्जलिदानेन = जलाञ्जलिदानेन, पितृतर्पणेनेत्यर्थः, केतनैः = श्राद्धाङ्गभूतैर्ब्राह्मणभोजनगृहदानादिभिः, श्राद्धकर्मभिः= प्रेतत्वविमोचनात्मकैर्वेदोक्तकर्मभिः तस्य=दिवङ्गतस्य, द्रोणस्येति भावः, उपकारे= कल्याणे, त्वम्=अश्वत्थामा, जीवन् = प्राणान् धारयन्, शक्तः = क्षमः, किमुतेति प्रश्ने, अन्यथा =अन्यप्रकारेण ? ॥ १८ ॥

टिप्पणी—निवापेति । निवापाञ्जलिदानेन=निवाप पितृदान को कहते हैं—"निवापः पितृदानं स्यात्" इत्यमरः । केतनैः=श्राद्धाङ्गभूत ब्राह्मणभोजनविषयक निमन्त्रण को केतन कहते हैं—"केतनं तु निमन्त्रणे । गृहे केतौ च कृत्ये च" इति मेदिनी । पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ १८ ॥

कृप—वत्स, जब तक यह संसार है तब तक यह लोक-व्यवहार भी रहेगा। पुत्र दोनो लोकों में ही पितरों के अनुकूल आचरण करे । देखो—

पितरों को दी जानेवाली जलाञ्जलि के दान से, ब्राह्मण-भोज (तथा) पिण्डदानादि श्राद्धकर्मों से उनका कल्याण करने में तुम जीते जी समर्थ हो या अन्य प्रकार से (अर्थात मरकर) ? ॥ १८ ॥

सूत—आयुष्मन, तुम्हारे मामा शारद्वत जैसा कह रहे हैं वह वैसाही है (अर्थात् ठीक है) ।

अश्वत्थामा—आर्य, सत्यमेवेदम्। किंत्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम्। यद्गच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तथाविधमपि पितरं द्रक्ष्यामि। (उत्तिष्ठन्खड्गमालोक्य, विचिन्त्य) कृतमद्यापि शस्त्रग्रहणविडम्बनया। भगवन् शस्त्र ?

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि
प्रभावाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्न विषयः।
परित्यक्तं येन त्वमसि सुतशोकान्नतु भया-
द्विमोक्ष्ये शस्त्र त्वामहपि यतः स्वस्ति भवते ॥ १९ ॥

अन्वयः—येन, नोचितम्, अपि, (त्वम्) परिभवभयात्, गृहीतम्, आसीः, यस्य, प्रभावात्, तव, कश्चित्, विषयः, न (इति) खलु, न, अभूत्, तेन, त्वम्, सुतशोकात्, परित्यक्तम्, असि, न तु, भयात, (अतः) हे शस्त्र, अहम्, अपि, त्वाम्, विमोक्ष्ये, यतः, भवते, स्वस्ति, अस्तु ॥ १९ ॥

व्याख्या—गृहीतमिति। येन = येन मम पित्रा द्रोणेनेत्यर्थः, नोचितम् = अनुचितम्, अपि = च, त्वम्, परिभवभयात् = पराजयात्, गृहीतम् = धृतम्, आसीः = अभूः, यस्य = द्रोणस्य, प्रभावात् = सामर्थ्यात्, तव = शस्त्रस्य, कश्चित् = कोऽपि, विषयः = लक्ष्यः, न = नहि, इति खलु, न अभूत् = नाऽऽसीत्,

अश्वत्थामा—आर्य, यह सत्य ही है किन्तु शोकावेग के अत्यन्त दुर्वह होने के कारण पिता से वियुक्त होकर क्षण-भर के लिए भी (मैं) प्राणों को नहीं धारण कर सकता हूँ। इसलिए उसी स्थान को जा रहा हूँ जहाँ उस दशा में वर्त्तमान (मृत) भी पिता को देख सकूँ। (उठते हुए तलवार को देखकर और सोचकर) अब शस्त्र धारण करने का ढोंग बेकार है। भगवन् शस्त्र !

जिसने उचित न होने पर भी अपमान के भय से तुम्हे धारण किया था और जिसके प्रभाव से कोई तुम्हारा विषय नहीं हुआ, यह बात नहीं थी क्योंकि उसने पुत्रशोक के कारण न कि भय से तुम्हें छोड़ दिया इसलिए हे शस्त्र ! मैं भी तुम्हें छोड़ रहा हूँ। आपका कल्याण हो ॥ १९ ॥

(इत्युत्सृजति ।)

(नेपथ्ये)

भो भो राजानः कथमिह भवन्तः सर्वे गुरोर्भारद्वाजस्य परिभावममुना नृशंसेन प्रयुक्तमुपेक्षन्ते ।

अश्वत्थामा—(आकर्ण्य, शनैः शनैः शस्त्रं स्पृशन्) किं गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवः ।

(पुनर्नेपथ्ये ।)

तेन=तादृशेन, मम पित्रेति भावः, त्वम् = भवान्, सुतशोकात्=पुत्रमृत्युजन्य-दुःखात, परित्यक्तम् = उज्झितम्, असि, न तु, भयात् = भीतेः, रिपुविषयक-भीतेरित्यर्थः, अतः हे शस्त्र = हे आयुध, अहम्=अश्वत्थामा, अपि त्वाम्= भवन्तम् शस्त्रमित्यर्थः, विमोक्ष्ये = त्यजामि, यतः = यस्मात्, भवते = शस्त्राय, स्वस्ति = कल्याणम्, अस्तु = भवतु । तव कल्याणार्थंम्मया त्वं त्यज्यस इति भावः ॥ १९ ॥

टिप्पणी—गृहीतमिति । नोचितम्—ब्राह्मण जाति के लिए शस्त्र धारण करना उचित नहीं माना जाता है इसलिए "नोचितम्" कहा गया है । पद्य के तृतीय चरण में परिसङ्ख्या अलङ्कार हैं । छन्द शिखरिणी है ॥ १९ ॥

भारद्वाजस्य = भरद्वाजवंशोद्भवस्य, परिभवम् = मरणम्, अमुना = अनेन, द्रुपदपुत्रेण धृष्टद्युम्नेनेति भावः, नृशंसेन = अतिघोरेण, प्रयुक्तम् = विहितम्, उपेक्षन्ते = तिरस्कुर्वन्ति ।

(यह कहकर छोड़ता है ।)

(नेपथ्य में)

हे हे राजाओं ! यहाँ खड़े आप सब इस क्रूर के द्वारा किये गये आचार्य भारद्वाज (द्रोणाचार्य) के तिरस्कार की कैसे उपेक्षा कर रहे हैं ?

अश्वत्थामा—(सुनकर धीरे-धीरे शस्त्र को छूता हुआ) क्या गुरु भारद्वाज का तिरस्कार ?

(पुनः नेपथ्य में)

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्
द्रोणस्याजौ नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य।
मौलौ पाणिं पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशंसं
धृष्टद्युम्नः स्वशिबिरमयं याति सर्वे सहध्वम्॥ २०॥

(सक्रोधं सकम्पं च कृपसूतौ दृष्ट्वा।) किं नामेदम्।

अन्वयः—आजौ, शोकात्, न्यस्तशस्त्रस्य, त्रिभुवनगुरोः, नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य, आचार्यस्य, द्रोणस्य, पलितधवले, मौलौ, पाणिम्, न्यस्य, नृशंसम्, कृत्वा, अयम्, धृष्टद्युम्नः, स्वशिबिरम्, याति, (तत्) सर्वे, सहध्वम् ॥२०॥

व्याख्या—आचार्यस्येति। आजौ = युद्धे, शोकात् = पुत्रमृत्युजन्यदुःखात्, न्यस्तशस्त्रस्य = त्यक्तायुधस्य, त्रिभुवनगुरोः = लोकत्रयाचार्यस्य, नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य = नयनसलिलैः = नेत्राम्बुभिः, अश्रुभिरित्यर्थः, क्षालितम् = स्नातम् अतः आर्द्रम् = क्लिन्नम् आननम् = मुखमण्डलम्, यस्य तथाभूतस्य, आचार्यस्य = शस्त्रविद्यानिपुणस्य शिक्षकस्येत्यर्थः, द्रोणस्य = द्रोणाचार्यस्य, पलितधवले = पलितेन = जरया शुक्लेन केशेनेत्यर्थः, धवले = श्वेते, मौलौ = मस्तके, पाणिम् = हस्तम्, न्यस्य = संस्थाप्य, नृशंसम् = अतिघोरम् क्रूरकर्मेति भावः, कृत्वा = विधाय, अयम् = एषः, धृष्टद्युम्नः = द्रुपदपुत्रः, स्वशिबिरम् = स्वसैन्यनिवासस्थानम्, याति = गच्छति, तत्, सर्वे = निखिलाः, सैनिकाः इत्यर्थः सहध्वम् = मर्षयत ? आततायी धृष्टद्युम्नो याति किन्तु यूयं न किमपि कुरुथेति भावः। ॥ २० ॥

टिप्पणी—आचार्यस्येति। प्रस्तुत पद्य में मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ २० ॥

युद्ध में शोक के कारण शस्त्र का परित्याग किए हुए, आँसुओं से धुले अतः भीगे मुख-मण्डलवाले, तीनों लोकों के गुरु, आचार्य द्रोण के बुढ़ापे के कारण श्वेत केशों से युक्त उज्ज्वल मस्तक पर हाथ रखकर यह धृष्टद्युम्न क्रूर कर्म करके अपने शिविर को जा रहा है और तुम सब इसे सह रहे हो ? ॥ २० ॥

(क्रोध पूर्वक काँपते हुए कृप एवं सूत को देखकर) यह क्या (बात है)?

प्रत्यक्षमात्तधनुषां मनुजेश्वराणां प्रायोपवेशसदृशं व्रतमास्थितस्य।
तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे व्यापारितं सिरसि शस्त्रमशस्त्रपाणेः॥२१॥

कृपः—वत्स एवं किल जनः कथयति।

अश्वत्थामा—किं तातस्त दुरात्मना परिमृष्टमभूच्छिरः।

अन्वयः—आत्तधनुषाम्, मनुजेश्वराणाम्, प्रत्यक्षम्, प्रायोपवेशसदृशम्, व्रतम्, आस्थितस्य, अशस्त्रपाणेः, मे, तातस्य, पलितमौलिनिरस्तकाशे, शिरसि, शस्त्रम्, व्यापारितम् ॥ २१ ॥

व्याख्या—प्रत्यक्षमिति। आत्तधनुषाम् = आत्तम्=धृतम्, धनुः = चापम्, यैस्तेषाम्, मनुजेश्वराणाम् = राज्ञाम्, प्रत्यक्षं = समक्षम्, प्रायोपवेशसदृशम् = प्रायः = अनशनम् तदर्थमुपवेशः = उपवेशनम्, तत्सदृशम् = तत्तुल्यम्, व्रतम् = नियमम्, आस्थितस्य = गृहीतस्य, अशस्त्रपाणेः = आयुधशून्यकरस्य, मे = मम, तातस्य = पितुः, पलितमौलिनिरस्तकाशे = पलितैः = श्वेतैः, मौलिभिः = केशैः, निरस्तः = अभिभूतः, काशः = काशनामकः स्वच्छतृणविशेषः, येन तस्मिन् शिरसि = शीर्षे, शस्त्रम् = आयुधम्, व्यापारितम् = प्रयुक्तम्। शस्त्रसज्जितानां राज्ञां समक्षन्त्यक्तशस्त्रे पितरि मे शस्त्रप्रहारः कृत इति महदनुचितमिति भावः २१

टिप्पणी—प्रत्यक्षमिति। प्रायोपवेश—प्रायः का अर्थ अनशन होता है और उसके लिए बैठने को प्रायोपवेश कहते हैं—"प्रायोभूम्न्यन्तगमने" इत्यमरः। "प्रायश्चानशने मृत्यौ प्रायो बाहुल्यतुल्ययो"रिति विश्वः। पद्य में उपमालङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है॥ २१॥

अश्वत्थामेति। दुरात्मना = दुष्टेन धृष्टद्युम्नेन, तातस्य = पितुः, शिरः = शीर्षम्, परिमृष्टम् = स्पृष्टम्, किमभूत् = किमिति प्रश्ने।

धनुर्धारी राजाओं के सामने अनशन के लिए बैठने के सदृश व्रत लिए हुए, शस्त्ररहित हाथवाले, मेरे पिता के उजले केशों से काश को तिरस्कृत करनेवाले मस्तक पर शस्त्र चलाया गया ?॥ २१॥

कृप—वत्स, लोग ऐसा ही कह रहे हैं।

अश्वत्थामा—क्या दुष्ट के द्वारा पिताजी का मस्तक छुआ गया ?

सूतः—(सभयम् ।) कुमार, आसीदयं तस्य तेजोराशेर्देवस्य नवः परिभवावतारः ।

अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय, मम मन्दभागधेयस्य कृते शस्त्र-परित्यागात्तथाविधेन क्षुद्रेणात्मा परिभावितः । अथवा—

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकान्धमनसा
शिरः श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत् ।
असंख्यातास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपो-
र्ममैवायं पादः शिरसि निहितस्तस्य न करः ॥ २२ ॥

सूत इति । तस्य = द्रोणस्य, तेजोराशेः = तेजस्समूहस्य, नवः = नूतनः प्रथम इति यावत्, परिभवावतारः = तिरस्कारोत्पत्तिः ।

अश्वत्थामेति । परिभावितः = तिरस्कारितः ।

अन्वयः—शोकान्धमनसा, (तेन) रणशिरसि, देहे, परित्यक्ते, (सति); श्वा, वा, काकः, वा, द्रुपदतनयः, शिरः, परिमृशेत् । असंख्यातास्त्रौघद्रविण-मदमत्तस्य, रिपोः, च, मम, एव शिरसि, अयम्, पादः, निहितः, तस्य, (शिरसि) करः, न ॥ २२ ॥

व्याख्या—परित्यक्त इति शोकान्धमनसा = शोकेन = शुचा, पुत्रमृत्यु-जन्यदुःखेनेति भावः, अन्धम = उद्विग्नम्, मनः = चित्तम्, यस्य तेन, (तेन = द्रोणाचार्येणेति शेषः) रणशिरसि = रणाङ्गणे, देहे = शरीरे, परित्यक्ते =

सूत—(डरते हुए) कुमार, तेजोराशि देव का यह नूतन तिरस्कार था ।

अश्वत्थामा—हा तात ! हा पुत्रवत्सल ! मुझ अभागे के लिए शस्त्रत्याग के कारण ऐसे नीच से अपना अपमान कराया । अथवा—

युद्ध-भूमि में शोक से उद्विग्न मनवाले उनके द्वारा शरीर त्याग देने पर कुत्ता या कौवा या द्रुपदपुत्र (धृष्टद्युम्न), कोई भी (उनके) सिर को छू सकता है । यह तो अगणित शस्त्रों के समूहरूपी धन से मदमत्त शत्रुओं का मेरे ही सिर पर पैर रखा गया है; उनके (पिता के सिर पर) हाथ नहीं ।

(अथवा—अगणित शस्त्रों के समूहरूपी धन से मदमत्त शत्रुओं के सिर पर मेरा यह पैर ही रखा हुआ है न कि हाथ ।) ॥ २२ ॥

आः दुरात्मन्पाञ्चालापसद ?

तातं शस्त्रग्रहणविमुखं निश्चयेनोपलभ्य
त्यक्त्वा शङ्कां खलु विदधतः पाणिमस्योत्तमाङ्गे ।
अश्वत्थामा करधृतधनुः पाण्डुपाञ्चालसेना-
तूलोत्क्षेपप्रलयपवनः किं न यातः स्मृतिं ते ।। २३ ।।

उज्झिते सति, श्वा = कुक्कुरः, = अथवा, काकः = ध्वांक्षः, वा = अथवा, द्रुपदतनयः = द्रुपदसुतः धृष्टद्युम्न इति भावः, शिरः = मस्तकम्, परिमृशेत् = परिमृशतु, कोऽपि स्पृशतु इति तात्पर्यम् । असंख्यातास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य = असंख्यातानि = अगणितानि, अस्त्राणि = प्रहरणानि, तेषामोघः = समूहः, एव द्रविणम् = धनम्, तज्जन्यो यो मदः = गर्वः, तेन मत्तस्य, रिपोः = शत्रोः, च = पुनः, मम = अश्वत्थाम्नः, एव, शिरसि = मूर्ध्नि, अयम् = एषः, पादः = चरणः, निहितः = स्थापितः, तस्य = पितुः, शिरसीति शेषः, करः = हस्तः, धृष्टद्युम्नस्य हस्त इति भावः, न = नहि । (अथवा—असंख्यातास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य, रिपोः च, शिरसि, ममैव; अयम्, पादः, विहितः, न, करः इतीत्थमप्यन्वेतुञ्छक्यते ।) ।। २२ ।।

टिप्पणी—परित्यक्त इति । अन्य कई संस्करणों में असंख्यातास्त्रौघ० के स्थान में स्फुरद्दिव्यास्त्रौघ० इत्यादि पाठ-भेद प्राप्त होता है ।

परित्यक्त इति । महाभारत की कथा के अनुसार यह प्रसिद्ध है कि द्रोणाचार्य जब पुत्र शोक से सन्तप्त होकर योग के द्वारा प्राणत्याग कर चुके थे तब धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काटा था । पद्य के तृतीय चरण में रूपकालङ्कार है । छन्द शिखरिणी है ।। २२ ।।

पाञ्चालापसद = पाञ्चालकुलाधम ! आः इति खेदे ।

अन्वयः—शस्त्रग्रहणविमुखम्, तातम्, निश्चयेन, उपलभ्य, शङ्काम्, त्यक्त्वा, अस्य, उत्तमाङ्गे, पाणिम्, विदधतः, ते, स्मृतिम्, किम्, पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलयपवनः, करधृतधनुः, अश्वत्थामा, न, यातः, खलु ।। २३ ।।

ओह ! दुष्ट, अधम पाञ्चाल,

पिता को निश्चित रूप से शस्त्रग्रहण से विरत हुए जानकर, (इसीलिए)

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रो, अमिथ्यावादिन्, धर्मपुत्र, सानुजस्य ते किमनेनापकृतम्। अथवा किमनेनालीकप्रकृतिजिह्मचेतसा। अर्जुन, सात्यके, बहुशालिन्वृकोदर, माधव, युक्तं नाम भवतां सुरासुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य द्विजन्मनः परिणतवयसः सर्वाचार्यस्य विशेषतो मम पितुरमुना द्रुपदकुलकलङ्केन मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमाङ्गमुपेतम्। अथवा सर्व एवैते पातकिनः किमेतैः—

व्याख्या—स्वप्रभावं सूचयन्नाह तातमिति। शस्त्रग्रहणविमुखम् = आयुधधारणपराङ्मुखम्, तातम् = पितरम्, निश्चयेन = ध्रुवेण; उपलभ्य = प्राप्य, ज्ञात्वेति भावः, शङ्काम् = सन्देहम्, मृत्युभयमिति भावः, त्यक्त्वा = विहाय, अस्य = शस्त्ररहितस्य मत्पितुरित्यर्थः, उत्तमाङ्गे = शिरसि, पाणिम् = करम्, विदधतः = स्थापयतः, ते = तव, स्मृतिम् = स्मरणपथम्, किमिति प्रश्ने, पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलयपवनः = पाण्डूनाम् = पाण्डुपुत्राणाम्, पाञ्चालानाञ्च = धृष्टद्युम्नादीनाञ्च, या सेना सैव तूलः = कार्पासः, तस्य उत्क्षेपे = उत्क्षेपणे, प्रलयपवनः = प्रलयकालिको वायुः, करधृतधनुः = हस्तधृतकोदण्डः, अश्वत्थामा = द्रोणपुत्रोऽहम्, न यातः = न प्राप्तः, बुद्धौ न समायातः? खल्विति प्रश्ने ॥ २३ ॥

टिप्पणी—तातमिति। प्रस्तुत पद्य में परम्परितरूपक अलङ्कार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर इति। अमिथ्यावादिन् = सत्यवक्तः, अलीकप्रकृतिजिह्मचेतसा = अलीका = मिथ्या, प्रकृतिः = स्वभावः, तथा जिह्मम् = कुटिलम, चेतः =

भय छोड़कर इसके सिर पर हाथ डालते हुए तुझे क्या हाथ में धनुष धारण करनेवाला और पाण्डु तथा पाञ्चाल सेनारूपी रुई को उड़ा देने में प्रलयकालिक वायु, अश्वत्थामा का स्मरण नहीं आया? ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर! युधिष्ठिर! अजात शत्रु! सत्यवादी! धर्मपुत्र! अनुज सहित तुम्हारा इसने क्या अपकार किया था? अथवा इस झूठे स्वभाव के और कुटिल हृदयवाले से क्या? अर्जुन! सात्यकि! बाहुशाली भीम! माधव! क्या आप लोगों को उचित था कि—देव, दानव और मानवों के लोकों में अद्वितीय धनुर्धर,

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।
नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥ २४ ॥

हृदयम्, यस्य सः तेन । सुरेति—सुराश्च = देवाश्च, असुराश्च = दानवाश्च, मनुजाश्च = मानवाश्च, तेषां लोकाः, तत्रैको यो धनुर्धरः, तस्य, सर्वलोक-श्रेष्ठवीरस्येत्यर्थः; द्विजन्मनः = विप्रस्य, परिणतवयसः = वृद्धस्य । मनुजपशुना= मनुजः पशुरिव तेन । उत्तमाङ्गम् = मस्तकम्, उपेतम् = उपेक्षितम् ।

टिप्पणी—मनुजपशुनेति । मनुजः पशुरिवेति मनुजपशुस्तेनेति मनुज-पशुना-यहाँ पर "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे" से समास हुआ है ।

अन्वयः—यैः, मनुजपशुभिः, निर्मर्यादैः, उदायुधैः, भवद्भिः, इदम्, गुरुपातकम्, कृतम्, अनुमतम्, वा, दृष्टम्, तेषाम्, नरकरिपुणा, सार्द्धम्, सभीमकिरीटिनाम्, (भवताम्, असृङ्मेदोमांसैः, अयम् अहम्, दिशाम्, बलिम्, करोमि ॥ २४ ॥

व्याख्या—कृतमनुमतमिति । यैः, मनुजपशुभिः=पशुतुल्यमानवैः, निर्मर्यादैः= त्यक्तमर्यादैः, ये तु युद्धमर्यादामतिक्रान्तास्तैरित्यर्थः, उदायुधैः = उद्गतानि = उत्थितानि, आयुधानि=शस्त्राणि येषां तैः, भवद्भिः = युष्माभिः, धृष्टद्युम्ना-दिभिरिति यावत्, इदम् = एतत्, गुरुपातकम् = महत्पापम्, ब्राह्मणगुरुवधजन्य-ब्रह्महत्यारूपमिति भावः, कृतम्=विहितम्, अनुमतम् = समर्थितम्, वा=अथवा,

ब्राह्मण, वृद्ध तथा सबके गुरु और विशेष कर मेरे पिता का सिर द्रुपदकुलकलङ्क; मनुष्य के रूप में पशु (धृष्टद्युम्न) द्वारा छुए जाते समय उपेक्षा करें । अथवा ये सबके सब पापी हैं । इनसे (कुछ कहने से) क्या (लाभ) ?

मनुष्य रूप में स्थित पशु, मर्यादाविहीन, अस्त्र-शस्त्र उठाये हुए जिन आप लोगों के द्वारा यह महान् पाप किया गया है, समर्थित हुआ है अथवा देखा गया है; उन श्रीकृष्ण के साथ भीम और अर्जुन के सहित (आपलोगों के) रुधिर, चर्बी, और मांस से मैं दिशाओं को बलि देने जा रहा हूँ ॥ २४ ॥

कृप:—वत्स, किं न सम्भाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति।

अश्वत्थामा—भो भोः पाण्डवमत्स्यसोमकमागधेयाः क्षत्रियापसदाः,

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना
कृतं यद्रामेण श्रुतिमुपगतं तन्न भवताम्।

दृष्टम् = वीक्षितम्, तेषाम् = तादृशानाम्, नरकरिपुणा = नरकासुरशत्रुणा, श्रीकृष्णेनेत्यर्थः, सार्द्धम् = सह, सभीमकिरीटिनाम् = भीमार्जुनसहितानाम्, भवतामिति शेषः, असृङ्मेदोमांसैः=रक्तवसाऽऽमिषैः, अयम्=सम्प्रति, अहम्= अश्वत्थामा, दिशाम् = सर्वासु दिक्षु, दिग्देवताभ्य इति यावत्, बलिम्, उपहारम्, करोमि = विदधामि। सङ्ग्रामे निखिलान् व्यापादयिष्यामीति भावः।। २४।।

टिप्पणी—कृतमनुमतमिति। निर्मर्यादैः—निरस्त्र व्यक्ति के साथ युद्ध करना युद्ध की मर्यादा के प्रतिकूल है इसलिए ऐसा कहा गया हैं। नरकरिपुणा—प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) का शासक 'नरक' नामक एक असुर था जिसे देवताओं की प्रार्थनापर श्रीकृष्णने युद्ध में मारडाला था, तभी से श्रीकृष्ण 'नरकरिपु' कहे जाते हैं। इसके साथ ही श्रीकृष्ण का नाम लेने से व्यक्ति को नरक की प्राप्ति नहीं होती अतः इस अर्थ में भी उन्हें "नरकरिपु" कहा जा सकता है।

बलिम्—देवताओं को दिया जाने वाला उपहार-विशेष बलि कहलाता हैं—"करोपहारयोः पुंसि बलिः प्राण्यङ्गजे स्त्रिया" मित्यमरः। पद्य में हरिणी-छन्द है ।। २४ ।।

कृप इति। दिव्यास्त्रग्रामकोविदे = दिव्यास्त्राणाम् = दिव्यायुधानाम्, ग्रामः=समूहः, तस्य कोविदः = पण्डितः, तस्मिन्।

अन्वयः—पितुः, मूर्ध्नि, स्पृष्टे, (सति), ज्वलदनलभास्वत्परशुना, रामेण, यत्, कृतम्, तत्, भवताम्, श्रुतिम्, न, उपगतम्? क्रोधान्धः, अश्वत्थामा, अद्य,

कृप—वत्स, भारद्वाज के समान बाहुशाली, दिव्य अस्त्र-समूह के पण्डित आप में क्या सम्भव नहीं है?

अश्वत्थामा-अरे अरे पाण्डव, मत्स्य, सोमक, मागध आदि अधम क्षत्रियो! पिता के सिर के स्पर्श किये जाने पर जलती हुई अग्नि के समान चमकते

किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविघसं
न कर्म क्रोधान्धः प्रभवति विधातुं रणमुखे ।। २५ ।।

रणमुखे, अरिरुधिरासारविघसम्, तत्, कर्म, विधातुम्, न, प्रभवति, किम् ? ।२५।

व्याख्या—पितुर्मूर्ध्नीति । पितुः = परशुरामस्य पितुः जमदग्नेः, मूर्ध्नि = मस्तके, स्पृष्टे सति, हैहयवंशजेन सहस्रार्जुननाम्ना राज्ञा परशुरामपितुर्जमदग्नेर्मस्तकं छिन्नमिति पुराणप्रसिद्धिः । ज्वलदनलभास्वत्परशुना = ज्वलन् = ज्वालाञ्जनयन्, योऽनलः = अग्निः, स इव भास्वान् = दीप्यमानः, परशुः = कुठारः, यस्य तेन, रामेण = परशुरामेण, यत् = यत्कर्मेत्यर्थः, कृतम् = सम्पादितम्, तत् = तत्कर्म, भवताम् = युष्माकम्, श्रुतिम् = कर्णम्, नोपगतम् = न प्राप्तम् किम् ? क्रोधान्धः = क्रोधेन = कोपेन, अन्धः = विवेकरहितः, अश्वत्थामा = द्रोणपुत्रोऽहम्, अद्य = साम्प्रतम्, अरिरुधिरासारविघसम् = अरीणाम्=रिपूणाम्, रुधिरस्य=रक्तस्य यः आसारः=धारासम्पातः, महावृष्टिरित्यर्थः, स एव विघसः= भोजनशेषसदृशः, यस्मिन् तत्, तादृशम्, तत्कर्म=तत्कार्यम्, विधातुम्=कर्त्तुम्, न प्रभवति = नहि समर्थो भवति, किमिति प्रश्ने । परशुरामेण यथा त्रिःसप्तकृत्वः क्षत्रियवधः कृतस्तथैवाहमपि सकलपाण्डवसेनावधङ्करिष्यामीति भावः ।। २५ ।।

टिप्पणी—पितुरिति । हैहयवंश के राजा सहस्रार्जुन द्वारा माँगने पर परशुराम के पिता जमदग्नि ने कामधेनु को देना स्वीकार नहीं किया था जिससे क्रुद्ध होकर सहस्रार्जुन ने जमदग्नि का सिर काट लिया था। परशुराम उस समय आश्रम में नहीं थे। उनकी माता रेणुका ने २१ बार छाती पीटकर परशुराम को पुकारा था। बाद में परशुराम ने सहस्रार्जुन का वध करके २१ बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया था। पद्य में शिखरिणी छन्द है ।। २५ ।।

हुए फ़रसे वाले राम (परशुराम) ने जो कार्य किया था, क्या वह आपलोगों के कान में नहीं पहुँचा है ? क्रोध से अन्धा अश्वत्थामा आज युद्ध के मोर्चे पर उस कर्म को, जिसमें शत्रुओं के रक्त की वर्षा ही विघस (पितरों को दिया जाने वाला भोजन) है, करने में समर्थ नहीं है क्या ? (अर्थात् अवश्य समर्थ है।) ।। २५ ।।

सूत! गच्छ त्वं सर्वोपकरणैः साङ्ग्रामिकैः सर्वायुधैरुपेतं महाहवलक्षणां नामास्मत्स्यन्दनमुपनय।

सूतः—यदाज्ञापयति कुमारः (इति निष्क्रान्तः ।)

कृपः—वत्स, अवश्यप्रतिकर्तव्येऽस्मिन्दारुणे निकाराग्नौ सर्वेषामस्माकं कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम् । किन्तु ।

अश्वत्थामा—किमतः परम् ।

कृपः—सैनापत्येऽभिषिच्य भवन्तमिच्छामि समरभुवमवतारयितुम् ।

अश्वत्थामा—मातुल, परतन्त्रमिदमकिञ्चित्करं च ।

कृपः—वत्स, न खलु परतन्त्रं नाकिञ्चित्करं पश्य—

सूत इति । साङ्ग्रामिकैः = सङ्ग्रामे साधुस्तैः, स्यन्दनम् = रथम् ।

कृप इति । अवश्यप्रतिकर्त्तव्ये = अवश्यं प्रतिकारयोग्ये, दारुणे = भीषणे, निकाराग्नौ = तिरस्कारानले, त्वामन्तरेण = त्वां विना, प्रतिकर्त्तुम् = प्रतिकारङ्कर्त्तुम्, शक्तः = समर्थः ।

सूत, तुम जाओ और सब साधनों तथा युद्ध के अस्त्रों से युक्त हमारे "महाहवलक्षण" नामक रथ को लाओ ।

सूत—जो कुमार की आज्ञा । (ऐसा कहकर निकल जाता है ।)

कृप—वत्स, अवश्य ही प्रतिकार करने योग्य, भीषण, इस तिरस्काररूपी अग्नि का हम सब में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन प्रतीकार करने में समर्थ है ?

अश्वत्थामा—तो इससे अधिक क्या ?

कृप—सेनापति के पद पर अभिषेक करके आपको युद्ध-भूमि में उतारना चाहता हूँ ।

अश्वत्थामा—मामा, यह अपने अधिकार से बाहर है और महत्त्वपूर्ण भी नहीं है ।

कृप—वत्स, न तो यह अपने अधिकार के बाहर है और न ही अमहत्त्वपूर्ण । देखो—

भवेदभीष्ममद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम् ।
यदि तत्तुल्यकक्षोऽत्र भवान्धुरि न युज्यते ॥ २६ ॥

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीभवितुं किं पुनर्यौधिष्ठिरबलम् । तदेवं मन्ये परिकल्पिताभिषेकोपकरणः कौरवराजो नचिरात्त्वामेवाभ्यपेक्षमाणस्तिष्ठतीति ।

अन्वयः—यदि, तत्तुल्यकक्षः, भवान्, अत्र, धुरि, न, युज्यते, (तदा) अभीष्मम्, अद्रोणम्, धार्तराष्ट्रबलम्, कथम्, भवेत् ॥ २६ ॥

व्याख्या—भवेदिति । यदि = चेत्, तत्तुल्यकक्षः=तयोः = भीष्मद्रोणयोः, तुल्या = सदृशी, कक्षा = श्रेणी यस्य तादृशः, भवान् = त्वम्, अत्र = एतस्मिन्, धुरि = सैनापत्यरूपधुरायाम्, न = नहि, युज्यते = नियुक्तः क्रियते, तदेतिशेषः, अभीष्मम् = भीष्मरहितम्, अद्रोणम् = द्रोणविहीनम्, धार्तराष्ट्रबलम् = कौरव-सैन्यम्, कथम् = केन प्रकारेण, भवेत् = स्यात् । भवान् सेनापतिपदेऽवश्यम-भिषेक्तव्य इति भावः ॥ २६ ॥

टिप्पणी—भवेदिति । प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ २६ ॥

कृतपरिकरस्येति । कृतपरिकरस्य=बद्धकटिबन्धस्येत्यर्थः, परिपन्थीभवितुम्= शत्रूभवितुम् । परिकल्पिताभिषेकोपकरणः = परिकल्पितानि = सङ्गृहीतानि, अभिषेकस्य–उपकरणानि = साधनानि येन तादृशः, कौरवराजः = दुर्योधनः, नचिरात् = शीघ्रम्, अभ्यपेक्षमाणः = प्रतीक्षमाणः ॥

टिप्पणी—परिपन्थीभवितुम् = परिपन्थिन् शत्रु का पर्यायवाची है— "दस्युशात्रवशत्रवः, अभिघाति पराराति प्रत्यर्थिपरिपन्थिनः" इत्यमरः ।

यदि उन (भीष्म और द्रोण) की श्रेणी के (व्यक्ति) आप सेनापति के इस (पद) पर नहीं नियुक्त किये जाते (तब) भीष्म और द्रोण से रहित धृतराष्ट्र के पुत्र की सेना कैसे रह सकेगी ? ॥ २६ ॥

कमर कसे हुए आप जैसे का तीनों लोक भी शत्रु बनने में समर्थ नहीं हो सकते फिर युधिष्ठिर की सेना तो क्या ? इसलिए मैं तो समझता हूँ कि अभिषेक की सामग्री तैयार करके कौरवराज अब तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा है ।

अश्वत्थामा—यद्येवं त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिदं चेतस्तत्प्रतीकारजलावगाहनाय। तदहं गत्वा तातवधविषण्णमानसं कुरुपतिं सैनापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमाश्वासनया मन्दसन्तापं करोमि।

कृपः—वत्स, एवमिदम्। अतस्तमेवोद्देशं गच्छावः।

(इति परिक्रामतः।)

(ततः प्रविशतः कर्णदुर्योधनौ।)

दुर्योधनः—अङ्गराज,

अश्वत्थामा इति। त्वरते = शीघ्रताङ्कुरुते, परिभवानलदह्यमानम् = तिरस्काराग्निसन्तप्यमानम्, तत्प्रतीकारजलावगाहनाय = तत्परिशोधनाम्बुनिमज्जनाय, तातवधविषण्णमानसम् = पितृहत्याखिन्नहृदयम्, सैनापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमाश्वासनया = सैनापत्यस्य = सेनानायकपदस्य, यत् स्वयं ग्रहणम् = स्वयमेव कथयित्वाऽङ्गीकरणम्, तद्रूपो यः प्रणयः = प्रेम, तेन या समाश्वासना= सान्त्वना, तया, मन्दसन्तापम् = मन्दः = अल्पीभूतः, सन्तापः = खेदः यस्य तत् तादृशम्।

अङ्गराज = अङ्गदेशाधिप।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है तो तिरस्कार की अग्नि से जलता हुआ यह मेरा मन भी प्रतिशोध के जल में प्रवेश करने के लिए उतावला हो रहा है। इसलिए मैं चलकर पिता के वध से दुःखित हृदयवाले कुरुराज (दुर्योधन) को स्वयं सेनापति-पद स्वीकार करने रूपी प्रेम से सान्त्वना देकर सन्ताप को कम करूँ।

कृप—वत्स, ऐसा ही होना चाहिए। इसलिए उसी स्थान को चलें।

(दोनों घूमते हैं।)

(तत्पश्चात् कर्ण और दुर्योधन प्रवेश करते हैं।)

दुर्योधन—अङ्गराज !

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं
बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् ।
आचार्यः सुतनिधनं निशम्य सङ्ख्ये
किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत् ।। २७ ।।

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तैः प्रकृतिर्दुस्त्यजेति । यतः शोकान्धमनसा तेन विमुच्य क्षत्रधर्मकार्कश्यं द्विजातिधर्मसुलभो दैन्यपरिग्रहः कृतः ।

अन्वयः—तेजस्वी, धृतायुधप्लवाभ्याम्, बाहुभ्याम्, रिपुहतबन्धुदुःखपारम्, व्रजति, संख्ये, आचार्यः, सुतनिधनम्, निशम्य, शस्त्रग्रहसमये, किम्, विशस्त्रः, आसीत ? ।। २७ ।।

व्याख्या—तेजस्वीति । तेजस्वी = शौर्ययुक्तः, धृतायुधप्लवाभ्याम् = आयुधम् = शस्त्रम् एव प्लवम् = उडुपः, तत् धृतं याभ्यां बाहुभ्याम्=भुजाभ्याम्, रिपुहतवन्धुदुःखपारम् = रिपुणा = शत्रुणा, हतः = व्यापादितः, यः बन्धुः = आत्मीयजनः, तस्य दुःखस्य = सन्तापस्य, पारम् = परतटम्, व्रजति = गच्छति, किन्तु संख्ये = सङ्ग्रामे, आचार्यः = द्रोणाचार्यः, सुतनिधनम् = पुत्रमरणम्, निशम्य = श्रुत्वा, शस्त्रग्रहसमये = आयुधधारणकाले, किम्=कस्मात्, विशस्त्रः= शस्त्ररहित,, आसीत् = अभूत् ? ।। २७ ।।

टिप्पणी—तेजस्वीति । पद्य में रूपकालङ्कार तथा प्रहर्षिणी छन्द है ।।२७।।

अथवेति । सूक्तम् = सुष्ठु कथितम्, अभियुक्तैः = नीतिविद्भिः, प्रकृतिः= स्वभावः, दुस्त्यजा = दुःखेन त्यक्तुं योग्या । शोकान्धमनसा = सन्तापविमूढ-चेतसा, क्षात्रधर्मकार्कश्यम् = क्षत्रियधर्मकाठिन्यम्, द्विजातिधर्मसुलभः = विप्र-धर्मसुप्राप्यः, दैन्यपरिग्रहः = दीनताऽङ्गीकरणम् ।।

तेजस्वी (पुरुष) अस्त्ररूपी नौका धारण की हुई भुजाओं से शत्रु द्वारा मारे गये आत्मीयजन के सन्ताप को पार किया करता है । (किन्तु) आचार्य पुत्र की मृत्यु को सुनकर युद्ध में शस्त्र ग्रहण के समय निःशस्त्र क्यों हो गये ? ।। २७ ।।

अथवा नीतिज्ञों ने ठीक ही कहा है कि स्वभाव को छोड़ना कठिन होता है । क्योंकि शोक से सन्तप्त हृदयवाले उन (द्रोणाचार्य) के द्वारा क्षात्रधर्म की कठोरता को छोड़कर ब्राह्मण-धर्म-सुलभ दीनता अपना ली गई ।

कर्णः—राजन्, खल्विदमेवम्।

दुर्योधनः—कथं तर्हि।

कर्णः—एवं किलास्याभिप्रायो यथाऽश्वत्थामा मया पृथिवीराज्येऽभिषेक्तव्य इति। तस्याभावाद् वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान्।

दुर्योधनः—(सशिरःकम्पम्।) एवमिदम्।

कर्णः—एतदर्थं च कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासङ्ग्रामस्य राजकस्य परस्परक्षयमपेक्षमाणेन तेन प्रधानपुरुषवध उपेक्षा कृता।

दुर्योदनः—उपपन्नमिदम्।

कर्ण इति। कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासङ्ग्रामस्य = कौरवपाण्डवानां पक्षपातेन = पक्षावलम्बनेन, प्रवृत्तः = प्रारब्धः, महासङ्ग्रामः = भीषणयुद्धम् येन तस्य, राजकस्य = राजसमूहस्य, परस्परक्षयम् = अन्योन्यविनाशम्, अपेक्षमाणेन = कामयमानेन, तेन = द्रोणाचार्येण, प्रधानपुरुषवधे = मुख्यवीरजनविनाशे, उपेक्षा = उदासीनता, कृता।

दुर्योधन इति। उपपन्नम् = युक्तियुक्तम्।

कर्ण—राजन्, यह ऐसी (बात) नहीं है।

दुर्योधन—फिर कैसी (बात) है।

कर्ण—उसका अभिप्राय यह था कि "मैं पृथिवी के राज्य पर अश्वत्थामा को अभिषिक्त करूँगा। उसके न रहने पर मुझ वृद्ध ब्राह्मण का शस्त्र-धारण करना व्यर्थ है"; यही सोचकर उसने वैसा किया।

दुर्योधन—(सिर हिलाते हुए) ऐसा ही है।

कर्ण—और इसीलिए कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति पक्षपात के कारण महायुद्ध में प्रवृत्त हुए राज-समूह का परस्पर विनाश चाहनेवाले उनके द्वारा प्रधान पुरुषों के वध में उपेक्षा की गई है।

दुर्योधन—यह बात युक्तियुक्त मालूम पड़ रही है।

कर्णः—अन्यच्च राजन्, द्रुपदेनाप्यस्य बाल्यात्प्रभृत्यभिप्रायवेदिना न स्वराष्ट्रे वासो दत्तः ।

दुर्योधनः—साधु अङ्गराज ! साधु । निपुणमभिहितम् ।

कर्णः—न चायं ममैकस्याभिप्रायः । अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदमन्यथा मन्यन्ते ।

दुर्योधनः—एवमेतत् । कः सन्देहः ?

दत्त्वाऽभयं सोऽतिरथो बध्यमानं किरीटिना ।
सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत्कथमन्यथा ॥ २८ ॥

अन्वयः—एवम्, न, चेत्, (तदा) अन्यथा, अतिरथः, सः, अभयम्, दत्त्वा, किरीटिना, बध्यमानम्, सिन्धुराजम्, कथम्, उपेक्षेत ।। २८ ।।

व्याख्या—दत्त्वाऽभयमिति । एवम् = इत्थम्, त्वदुक्तमिति भावः, न चेत् = न स्यात्, (तदा) अन्यथा = अन्यप्रकारेण, अतिरथः = अगणितैः सह योद्धा, सः = द्रोणः, अभयम् = अभीतिम्, दत्त्वा = प्रदाय, अर्जुनेन तव वधो न भविष्यतीत्यभयदानं जयद्रथाय दत्त्वेति भावः । किरीटिना = अर्जुनेन, बध्यमानम् = हन्यमानं, सिन्धुराजम् = जयद्रथम्, कथम् = कस्मात्, उपेक्षेत = तिरस्कुर्यात्, नोपेक्षेतेत्यर्थः ।। २८ ।।

टिप्पणी—दत्त्वाभयमिति । अतिरथः—अगणित व्यक्तियों से एक साथ ही युद्ध करनेवाले व्यक्ति को (अतिरथ) कहा जाता है । यह महारथी से भी उच्च श्रेणी का व्यक्ति होता है—"अमितान्योधयेद्यस्तु सम्प्रोक्तोऽतिरथस्तु सः ।"

कर्ण—और भी, राजन्, बाल्यावस्था से ही इनके अभिप्राय को जाननेवाले द्रुपद ने भी इन्हें अपने राज्य में निवास-स्थान नहीं दिया था ।

दुर्योधन—वाह, अङ्गराज, वाह ! बहुत ठीक कहा है (तुमने)

कर्ण—और यह एक मेरा ही विचार नहीं है । दूसरे बुद्धिमान लोग भी इसे गलत नहीं समझते हैं ।

दुर्योधन—ऐसा ही है । (इसमें) क्या सन्देह है ?

यदि ऐसा न होता तो वह महारथी अभय देकर अर्जुन द्वारा वध किये जाते हुए सिन्धुराज को कैसे उपेक्षित कर देता ? ।। २८ ।।

कृपः—(विलोक्य ।) वत्स, एष दुर्योधनः सूतपुत्रेण सहास्यां न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति । तदुपसर्पावः ।

(तथा कृत्वा ।)

उभौ—विजयतां कौरवेश्वरः ।

दुर्योधनः—(दृष्ट्वा ।) अये, कथं कृपोऽश्वत्थामा च (आसनादवतीर्य कृपं प्रति ।) गुरो ! अभिवादये । (अश्वत्थामानमुद्दिश्य ।) आचार्यपुत्र !

एह्यस्मदर्थहततात परिष्वजस्व
क्लान्तैरिमैर्मम निरन्तरमङ्गमङ्गैः ।

दत्त्वाभयम्—द्रोणाचार्य ने जयद्रथ को अर्जुन से उसकी रक्षा करने का वचन दिया था पर चूँकि द्रोण के साथ धोखा हुआ था इसलिए वे उसे नहीं बचा सके । कर्ण इसी प्रसङ्ग को लेकर दुर्योधन के समक्ष उसकी गलत व्याख्या कर रहा है । पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ २८ ॥

कृप इति । सूतपुत्रेण=कर्णेन, न्यग्रोधच्छायायाम्=वटच्छायायाम्, उपविष्टः=आसीनः । उपसर्पावः=समीपं गच्छावः ।

टिप्पणी—कृप इति । न्यग्रोध वटवृक्ष को कहते हैं—"न्यामोवटश्च न्यग्रोधौ" इत्यमरः ।

अन्वयः—(हे) अस्मदर्थहततात एहि, क्लान्तैः, इमैः, अङ्गैः, मम, अङ्गम्,

---

कृप—(देखकर) वत्स, यह दुर्योधन सूतपुत्र (कर्ण) के साथ वटवृक्ष की छाया में बैठा हुआ है । तो (हमलोग) उनके समीप चलें ।

(वैसा करके)

दोनों—कौरवेश्वर की जय हो ।

दुर्योधन—(देखकर) अरे ! कैसे कृप और अश्वत्थामा ! (आसन से उतर कर कृप से) आचार्य ! मैं प्रणाम करता हूँ । (अश्वत्थामा को लक्ष्य करके) आचार्यपुत्र ?

हमारे प्रयोजन से मारे गये पितावाले, आओ, अपने क्लान्त अङ्गों से मेरे

स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते
शोकेऽपि नो विकृतिमेति तनूरुहेषु ॥ २९ ॥

(आलिङ्ग्य पार्श्वे उपवेशयति ।)

(अश्वत्थामा वाष्पमुत्सृजति ।)

कर्णः—द्रौणायने ! अलमत्यर्थमात्मानं शोकानले प्रक्षेप्तुम् ।

निरन्तरम्, परिष्वजस्व, ते, पितुः, सदृशः, तव, एषः, भुजयोः, स्पर्शः, नः, शोकेऽपि, तनूरुहेषु, विकृतिम्, एति ॥ २९ ॥

व्याख्या—एहीति । हे, अस्मदर्थहततात=अस्मदर्थम् = मम प्रयोजनार्थम्, हतः = मारितः, तातः = पिता यस्य सः तत्सम्बोधने, एहि=आगच्छ, क्लान्तैः= मलिनैः, इमैः = एतैः, अङ्गैः = अवयवैः, मम = दुर्योधनस्य, अङ्गम् = शरीरम्, निरन्तरम् = गाढं यथा स्यात्तथा, परिष्वजस्व = आलिङ्गय, ते = तव, पितुः = जनकस्य, द्रोणस्येति भावः, सदृशः = तुल्यः, तव = भवतः, एषः = अयम्, त्वया कृत इति यावत्, भुजयोः=बाह्वोः, स्पर्शः=आमर्शः, नः = अस्माकम्, शोकेऽपि = दुःखेऽपि, तनूरुहेषु = लोमसु, विकृतिम् = विकारम्, एति = गच्छति । त्वत्कृतो बाहुस्पर्शो मम शरीरे रोमाञ्चमुत्पादयतीति भावः ॥ २९ ॥

टिप्पणी—एहीति । तनूरुहेषु—"तनूरुहं रोमलोमे" इत्यमरः ।

अन्य संस्करण में—"शोकेऽपि यो महति निर्वृतिमादधाति" ऐसा पाठान्तर मिलता है। पद्य के तृतीय चरण में उपमा अलङ्कार है। वसन्ततिलका छन्द है ॥ २९ ॥

कर्ण इति । द्रौणायने = अश्वत्थामन्, शोकानले = शोकाग्नौ, आत्मानम्= स्वम्, अत्यर्थम् = अत्यन्तम्, प्रक्षेप्तुम् अलमित्यन्वयः ।

अङ्ग का गाढ आलिङ्गन करो । तुम्हारी भुजाओं का यह स्पर्श तुम्हारे पिता (के स्पर्श) के समान ही है जो शोक में भी हमारे रोमों में विकार को प्राप्त हो रहा है (अर्थात् रोमाञ्च पैदा कर रहा है ।) ॥ २९ ॥

(आलिङ्गन करके पास में बैठाता है ।)

(अश्वत्थामा आँसू बहाता है ।)

कर्ण—द्रोणपुत्र ! शोकानल में अपने को अत्यन्त सन्तप्त करने से बस करो ।

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, को विशेष आवयोरस्मिन्व्यसनमहार्णवे। पश्य-

तातस्तव प्रणयवान्स पितुः सखा मे
शस्त्रे यथा तव गुरुः स तथा ममापि।
किं तस्य देहनिधने कथयामि दुःखं
जानीहि तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव ॥ ३० ॥

कृपः—वत्स ? यथाह कुरुपतिस्तथैवैतत्।

अश्वत्थामा—राजन्, एवं पक्षपातिनि त्वयि युक्तमेव शोकभारं लघूकर्तुम्। किन्तु

अन्वयः—सः, तव, प्रणयवान्, तातः, मे, पितुः, सखा, (आसीत्), शस्त्रे, सः, यथा तव, गुरुः, तथा, मम; अपि, (आसीत्), तस्य, देहनिधने, किम्, दुःखम्, कथयामि, तत्, गुरुशुचा, मनसा, त्वम्, एव, जानीहि ॥ ३० ॥

व्याख्या—तातस्तवेति। सः = द्रोणः, तव = भवतः, प्रणयवान्=स्नेहवान्, तातः = पिता, मे = मम, पितुः = जनकस्य, धृतराष्ट्रस्येत्यर्थः, सखा = मित्रम्, आसीदितिशेषः, शस्त्रे = शस्त्रसम्बन्धे, सः = पूर्वोक्तो द्रोण इत्यर्थः, यथा = येन प्रकारेण, तव = भवतः, गुरुः = आचार्यः, तथा = तेनैव प्रकारेण, ममापि = दुर्योधनस्यापि, आसीत्। तस्य = द्रोणस्य, देहनिधने = शरीरविनाशे, किम् = कथम्, दुःखम्=क्लेशम्, कथयामि=वच्मि ? तत् = तद्दुःखमित्यर्थः, गुरुशुचा= महच्छोकेन, मनसा = अन्तःकरणेन, त्वमेव = अश्वत्थामा एव, मत्सदृशः शोकसन्तप्त इत्यर्थः, जानीहि=बुध्यस्व ॥ ३० ॥

टिप्पणी—तातस्तवेति। पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ॥ ३० ॥

दुर्योधन—गुरुपुत्र ! हम दोनों (दुर्योधन और अश्वत्थामा) के इस दुःखरूपी महासमुद्र में क्या अन्तर है ? देखो—

वह तुम्हारे प्रणयी पिता मेरे पिता के मित्र थे। शस्त्रविद्या में वह जैसे तुम्हारे गुरु थे वैसे ही मेरे भी। उनके शरीर का अन्त हो जाने पर किस प्रकार अपने दुःख को कहूँ ? उसे तो महान् शोकवाले मन से तुम्हीं जान लो ॥३०॥

कृप—वत्स, कुरुराज ने जैसा कहा है वह ठीक ही है।

अश्वत्थामा—राजन् ! (मेरे प्रति) प्रेम रखने वाले आप के लिए मेरे शोक-भार को हल्का करना ठीक है। किन्तु—

मयि जीवति यत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ॥ ३१ ॥

कर्णः—द्रौणायने किमत्र क्रियते यदनेनैव सर्वपरिभवपरित्राणहेतुना शस्त्रमुत्सृजता तादृशीमवस्थामात्मा नीतः ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, किमाह भवान्किमत्र क्रियत इति । श्रूयतां यत्क्रियते ।

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा ।

अन्वयः—मयि, जीवति, (सति), तातः, यत्, केशग्रहम्, अवाप्तवान्, (तदा), अन्ये, पुत्रिणः, पुत्रेभ्यः, स्पृहाम्, कथम्, करिष्यन्ति ? ॥ ३१ ॥

व्याख्या—मयि जीवतीति । मयि = स्वपुत्रे अश्वत्थाम्नीत्यर्थः, जीवति = प्राणान् धारयति सति, तातः = पिता, यत् = यदि, केशग्रहम् = शिरोरोहग्रहणम्, अवाप्तवान् = प्राप्तवान्, तदा अन्ये = इतरे, पुत्रिणः = पुत्रवन्तः, पुत्रेभ्यः = सुतेभ्यः, स्पृहाम् = पुत्राभिलाषमित्यर्थः, कथम् = कस्मात्, करिष्यन्ति = विधास्यन्ति । मादृशे पुत्रे जीवत्यपि यदा तात एतादृशीं दुर्दशाम्प्राप्तवान् तदा जनाः कथमुत्तमपुत्राकांक्षां करिष्यन्तीति भावः ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—मयि जीवतीति । इस पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ ३१ ॥

अन्वयः—पाण्डवीनाम, चमूनाम, मध्ये, स्वभुजगुरुमदः, यः, यः, शस्त्रम्, बिभर्ति, पाञ्चालगोत्रे यः, यः, शिशुः, वा, अधिकवया, (वा), गर्भशय्याम्, गतः,

मेरे जीते जी जब पिता ने केशग्रहण (रूपी दुर्दशा) को प्राप्त किया तो दूसरे पुत्रवान् लोग (उत्तम) पुत्रों के लिए कैसे कामना करेंगे ? ॥ ३१ ॥

कर्ण—द्रोण-पुत्र ! इसमें क्या किया जाय, जब सबको तिरस्कार से बचाने में समर्थ उसने ही शस्त्र त्याग करते हुए अपनी ऐसी दसा कराई है ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, क्या कहा आपने 'इसमें क्या किया जाय ?' जो किया जाय सो सुनिये—

पाण्डवों की सेनाओं के बीच, अपने बाहुबल के महान् गर्व से युक्त जो-जो शस्त्रधारण करता है; पाञ्चाल वंश में जो-जो बच्चा है, या अधिक आयुवाला है

यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ॥ ३२ ॥
अपि च । भो जामदग्न्यशिष्य कर्ण,

यः, यः, तत् कर्मसाक्षी (वर्तते), रणे, मयि, चरति, (सति), यः, यः, च, प्रतीपः, (भविष्यति); इह, क्रोधान्धः, अहम्, तस्य, तस्य, स्वयम्, जगताम्, अन्तकस्य, अपि, अन्तकः, (अस्मि) ॥ ३२ ॥

व्याख्या—यो य इति । पाण्डवीनाम्=पाण्डवसम्बन्धिनीनाम्, चमूनाम्=सैन्यानाम्, मध्ये=अन्तराले, स्वभुजगुरुमदः=स्वभुजौ=स्वबाहू एव गुरुः=महान्, मदः=गर्वः, यस्य, सः, यो यः=यो यो जनः, शस्त्रम्=प्रहरणम्, बिभर्त्ति=धारयति, पाञ्चालगोत्रे=पाञ्चालवंशे, यो यः शिशुः=बालकः, वा=अथवा, अधिकवयाः=अधिकवयोयुक्ताः, युवा प्रौढो वृद्धो वेति तात्पर्यम्, वा=अथवा, गर्भशय्याम्=गर्भः=मातुर्गर्भाशयः एव शय्या=शयनीयम्, ताम्, गतः=प्राप्तः, वर्तते इति शेषः, यो यः, तत्कर्मसाक्षी=तस्य=तादृशस्य, कर्मणः=कृत्यस्य, द्रोण-वधरूपस्य=घृणितकर्मण इति भावः, साक्षी=साक्षाद्द्रष्टा, वर्तत इति शेषः, रणे=युद्धे, मयि=अश्वत्थाम्नि, चरति=भ्रमति सति, यो यश्च, प्रतीपः=प्रतिकूला-चारी भविष्यतीति शेषः, इह=अत्र, युद्धे इत्यर्थः, क्रोधान्धः,=अतिक्रुद्धः, अहम्=अश्वत्थामा, तस्य, तस्य=पूर्वोक्तस्य, सर्वविधविरोधिन इत्यर्थः, स्वयम्=एका-कीत्यर्थः, जगताम्=लोकानाम्, अन्तकस्य=विनाशकस्य यमस्य, अपि=च, अन्तकः=विनाशकः, यमः, अस्मीति क्रियाशेषः । सङ्ग्रामे पूर्वोक्तान् सर्वान् शत्रून् हनिष्यामीति मे दृढो निश्चय इति भावः ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—यो य इति । पद्य के चतुर्थ चरण में रूपकालङ्कार है । स्रग्धरा छन्द है ॥ ३२ ॥

या गर्भशय्या में वर्त्तमान है; जो-जो उस कर्म का साक्षी है और जो-जो भी युद्ध में मेरे विचरण करने पर विरुद्ध होगा; क्रोध से अन्धा हुआ मैं उस-उसका स्वयम्-संसार के विनाशक यमराज का भी यमराज (विनाशकरनेवाला) होऊँगा ॥ ३२ ॥

और भी, हे परशुराम के शिष्य कर्ण,

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिताः
क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः ।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे
यद्रामेण कृत तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—अयम्, सः, देशः, यस्मिन्, अरातिशोणितजलैः, ह्रदाः, पूरिताः, तातस्य, केशग्रहः क्षत्रात्, एव, तथाविधः, परिभवः, (आस्ते), मे, तानि, एव, अहितशस्त्रघस्मरगुरूणि, भास्वन्ति, अस्त्राणि, (सन्ति), (पुरा) रामेण, यत्, कृतम्, क्रोधनः, द्रौणायनिः, तदेव कुरुते ॥ ३३ ॥

व्याख्या—देशः सोऽयमिति । अयम्=एषः, सः=तादृशः, देशः=भूभागः, यस्मिन्=यत्र, अरातिशोणितजलैः=शत्रुरुधिरसलिलैः, ह्रदाः=जलाशयाः, पूरिताः=भरिताः, तातस्य=पितुः, केशग्रहः=कचग्रहः, क्षत्रात्=क्षत्रियात्, एव तथाविधः=तादृशः, परिभवः=अनादरः, आस्ते इति शेषः, मे = मम, तानि=तादृशानीत्यर्थः, एव, अहितशस्त्रघस्मरगुरूणि = अहितशस्त्राणाम् = शत्रुप्रहरणानाम्, घस्मराणि= भक्षकाणि, गुरूणि = महान्ति च, भास्वन्ति=दीप्यमानानि, अस्त्राणि=आयुधानि, सन्तीति शेषः, (पुरा = प्राचीनसमये) रामेण = परशुरामेण, यत्=यत्कर्मेत्यर्थः, कृतम् = सम्पादितम्, क्रोधनः = कोपनः, द्रौणायनिः = द्रोणपुत्रः, अहमश्वत्थामा, तदेव = तत्कर्मैव, कुरुते=करिष्यतीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—देशः सोऽयमिति । पद्य का अन्तिम शब्द "कुरुते" वस्तुतः "करिष्यति" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" से लट् आया है । पद्य के द्वितीयचरण में उपमा तथा तृतीय एवं चतुर्थ चरणों में निदर्शना अलङ्कार है । शार्दूल विक्रीडित छन्द है ॥ ३३ ॥

यह वही देश है जिसमें शत्रुओं के रक्तरूपी जल से जलाशय भर गये थे । पिता का केशग्रहण क्षत्रिय से ही होनेवाला वैसा ही अपमान है; मेरे वे ही शत्रुओं के अस्त्रों के भक्षक और महान् चमकते हुए शस्त्र हैं; जो (पहले) परशुराम ने किया था, कुपित द्रोण-पुत्र (भी आज) वही करेगा ॥ ३३ ॥

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, तस्य तथाविधस्यानन्यसाधारणस्य ते वीरभावस्य किमन्यत्सदृशम्।

कृपः—राजन्, सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसितः समरभरः। तदहमेवं मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तुं लोकत्रयमपि समर्थः। किं पुनर्यौधिष्ठिरबलम्। अतोऽभिषिच्यतां सैनापत्ये।

दुर्योधनः—सुष्ठु युज्यमानमभिहितं युष्माभिः, किन्तु प्राक्प्रतिपन्नोऽयमर्थोऽङ्गराजस्य।

कृपः—राजन्, असदृशपरिभवशोकसागरनिमज्जन्तमेनमङ्गराजस्यार्थे नैवोपेक्षितुं युक्तम्। अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम्। अतः किमस्य पीडा न भविष्यति।

कृप इति। सुमहान्=अतिशयितः, समरभरः=युद्धभारः, वोढुम्=धारयितुम्। अध्यवसितः=कृतनिश्चय इत्यर्थः।

कृतपरिकरः=परिधापितसन्नाहः, उच्छेतुम्=विनाशयितुम्। यौधिष्ठिरबलम्=युधिष्ठिरसैन्यम्। सैनापत्ये=सेनापतिपदे।

दुर्योधन इति। सुष्ठु = शोभनम्, युज्यमानम्=उचितम्, अभिहितम्=उक्तम्, प्राक्प्रतिपन्नः = पूर्वनिर्णीतः।

दुर्योधन—आचार्यपुत्र, तेरे ऐसे प्रसिद्ध असाधारण पराक्रम के अनुरूप और क्या हो सकता है?

कृप—राजन्, द्रोण-पुत्रने युद्ध का यह महान् भार वहन करने का निश्चय किया है। इससे मैं समझता हूँ कि आपके द्वारा पुरस्कृत होकर यह तीनों लोकों का भी विनाशकर डालने में समर्थ है, फिर युधिष्ठिर की सेना तो क्या? इसलिए इसे सेनापति-पद पर अभिषिक्त कर दिया जाय।

दुर्योधन—आपने ठीक युक्तियुक्त कहा है। लेकिन यह (सेनापति-पद) तो पहले ही अङ्गराजा (कर्ण) के लिए स्वीकृत कर लिया गया है।

कृप—राजन्, अङ्गराज के कारण असामान्य अपमान से उत्पन्न शोक-सागर में डूबे हुए इसकी उपेक्षा करना उचित नही है। इसे भी उसी शत्रु-वंश को दण्ड देना है। क्या इससे इसे पीडा नहीं होगी?

अश्वत्थामा—राजन्, किमद्यापि युक्तायुक्तविचारणया।

प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशा-
मकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम्।
इयं परिसमाप्यते रणकथाऽद्य दोःशालिना-
मपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुवः॥ ३४॥

कृप इति। असदृशपरिभवशोकसागरे = असदृशः = अनुपमः, अयोग्य इत्यर्थः, यः परिभवः = तिरस्कारः, तस्माद् यः शोकः = दुःखम्, स सागर इव, तस्मिन्, निमज्जन्तम् = बुडन्तम्, एनम् = द्रोणपुत्रमित्यर्थः।

अरिकुलम्=शत्रुवंशः, अनुशासनीयम् = दण्डनीयम्।

अश्वत्थामा इति। युक्तायुक्तविचारणया = उचितानुचितविवेचनया।

अन्वयः—अद्य, (त्वम्, पूर्णाम्), निशाम्, (तथा), शेषे, (यथा), स्तुतिभिः, प्रयत्नपरिबोधितः, (भविष्यसि), अद्य, भुवनम्, अकेशवम्, अपाण्डवम् निःसोमकम्, (भविष्यति), अद्य, दोःशालिनाम्, इयम्, रणकथा, परिसमाप्यते, अद्य, भुवः, नृपकाननातिगुरुः, भारः, अपैतु॥ ३४॥

व्याख्या—प्रयत्नपरिबोधित इति। अद्य=अस्मिन्नहनि, (त्वम् = दुर्योधनः, पूर्णाम्=निखिलाम्) निशाम् = रात्रिम्, (तथा=तेन प्रकारेण) शेषे=स्वप्स्यसि, (यथा = येन प्रकारेण), स्तुतिभिः = प्रभातकालिकैर्मागधकृतस्तवैः, प्रयत्नपरिबोधितः = प्रयासजागरितः, भविष्यतीति शेषः। अद्य=अस्मिन् दिवसे, भुवनम्= जगत्, अकेशवम् = श्रीकृष्णविहीनम्, अपाण्डवम् = पाण्डवरहितम्, निःसोमकम्= सोमवंशविमुक्तम्, भविष्यतीति शेषः। अद्य, दोःशालिनाम् = बलवद्बाहुवताम्, वीराणामिति तात्पर्यम्, इयम् = एषा, रणकथा = युद्ध—चर्चा, परिसमाप्यते =

अश्वत्थामा—राजन्, क्या आज भी उचित और अनुचित का विचार करना है? आज (तुम पूरी) रात भर (उस प्रकार) सोओगे (जिससे कि) स्तुतियों से प्रयासपूर्वक जागोगे। आज संसार श्रीकृष्णविहीन, पाण्डवरहित और सोमवंश से मुक्त हो जायेगा। आज बाहुपराक्रमवालों की यह रण-चर्चा समाप्त करदी जायेगी। आज पृथ्वी राजाओं रूपी जंगल का विशाल बोझ हल्का हो जायगा॥ ३४॥

कर्णः—(विहस्य) द्रौणायने, वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम् । बहवः कौरवबलेऽस्य कर्मणः शक्ताः ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, एवमिदम्, बहवः कौरवबलेऽत्र शक्ताः किंतु दुःखोपहतः शोकावेगशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजयाधिक्षेपेण ।

कर्णः—मूढ, दुःखितस्याश्रुपातः कुपितस्य चायुधद्वितीयस्य सङ्ग्रामावतरणमुचितं नैवंविधाः प्रलापाः ।

अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे राधागर्भभारभूत, सूतापसद, ममापि नामाश्वत्थाम्नो दुःखितस्याश्रुभिः प्रतिक्रियामुपदिशसि न शस्त्रेण । पश्य—

अवसीयते, अद्य, भुवः=पृथिव्याः, नृपकाननातिगुरुः = नृपाः = राजानः, एव काननम्=वनम्, तदेवातिगुरुः = श्रेष्ठभारः = गुरुता, अपैतु = दूरीभवतु । एतान् हत्वा पृथिव्याः भारं लघूकरिष्यामीत्याशयः ।। ३४ ।।

टिप्पणी—प्रयत्नपरिबोधित इति । प्रस्तुत पद्य के चतुर्थ चरण में रूपक अलङ्कार हैं । पृथ्वीछन्द है ।। ३४ ।।

कर्ण इति । सुकरम्=सरलमित्यर्थः, दुष्करम् = कठिनम्, अध्यवसितुमित्यत्रान्वयः ।

अश्वत्थामा इति । वीरजनाधिक्षेपेण = शूरपुरुषनिन्दया ।

कर्ण इति । आयुधद्वितीयस्य = आयुधम् = शस्त्रम्, द्वितीयम् = सहायः यस्य, तस्य, सङ्ग्रामावतरणम्=युद्धप्रवेशः, प्रलापाः = अनर्थकवचनानि ।

कर्ण—(हँसकर) द्रोणपुत्र, यह कहना सरल है पर पूरा करना बड़ा कठिन है । कौरवसेना में बहुत से लोग इस कार्य में समर्थ हैं ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, यह ठीक है । कौरवसेना में बहुत से लोग समर्थ हैं किन्तु दुःख से अभिभूत हुआ मैं शोकावेग के कारण (ऐसा) कह रहा हूं न कि वीर पुरुषों की निन्दा करने के लिए ।

कर्ण—मूर्ख ! दुःखी व्यक्ति को आँसू बहाना और क्रुद्ध व्यक्ति को शस्त्र लेकर युद्ध-भूमि में उतर जाना उचित होता है; इस प्रकार बड़बड़ाना उचित नहीं ।

अश्वत्थामा—(क्रोधपूर्वक) अरे रे राधा के गर्भ के भारभूत ! नीच

(१) निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्किं मे तवैवायुधं
सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा।
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले
क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्रेण नास्त्रेण यत्॥ ३५॥

अन्वयः—किम्, तव, इव, मे, आयुधम्, गुरुशापभाषितवशात्, निर्वीर्यम् किम्, ? त्वम्, यथा, (अहमपि) सम्प्रति, एव, भयात्, समरम्, विहाय, प्राप्तः, अस्मि किम्, ? अहम्, स्तुतिवंशकीर्त्तनविदाम्, सारथीनाम्, कुले, जातः ? यत्, क्षुद्रारातिकृताप्रियम्, अस्रेण, प्रतिकरोमि, न, अस्त्रेण ॥ ३५ ॥

व्याख्या—निर्वीर्यमिति। किमिति प्रश्ने, तव = भवतः, कर्णस्य, इव = यथा, मे = मम, आयुधम् = अस्त्रम्, गुरुशापभाषितवशात् = गुरोः=शिक्षकस्य, शापभाषितम् = शापवचनम्, तद्वशात् = तद्धेतोः, कर्णः स्वजातिं संगोप्य ब्राह्मणोऽहमिति विज्ञाप्य परशुरामाच्छस्त्रविद्यां प्राप्तवान् किन्तु पश्चात् "नायं ब्राह्मण" इति ज्ञात्वा परशुरामः शापं ददौ यत्तव शस्त्रं विफलं भविष्यतीति भावः। निर्वीर्यम् = निष्फलम्, किम्, ? त्वं यथा = त्वमिव, अहमपीति शेषः, सम्प्रति = इदानीम्, एव = हि, भयात् = भीतेः, समरम् = सङ्ग्रामम्, विहाय= परित्यज्य, प्राप्तः = पलाय्यात्रागत इत्यर्थः, अस्मि = वर्त्ते किम्, ? अहम् = ब्राह्मणपुत्रोऽश्वत्थामा, स्तुतिवंशकीर्त्तनविदाम् = स्तुतिश्च = प्रार्थना च, वंशकीर्त्तनञ्च = कुलगानञ्च, तयोर्विदाम् = ज्ञातॄणाम्, सारथीनाम् = सूतानाम्, कुले = वंशे, जातः = उत्पन्नः ? यत् = यस्मात्, क्षुद्रारातिकृताप्रियम् = नीच-

सूत ! मुझ अश्वत्थामा को भी दुःखित हुए को आँसुओं द्वारा प्रतिकार का उपदेश देता है न कि शस्त्र से। देख—

क्या तुम्हारी ही तरह मेरे भी शस्त्र गुरु द्वारा शाप दिये जाने के कारण बलहीन हो गये हैं ? क्या तुम्हारे समान ही मैं भी अभी भय से रण-भूमि को छोड़कर यहाँ भाग आया हूँ ? क्या मैं स्तुति और वंशकीर्त्तन करना जानने वाले सूतों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ ? जो, नीच शत्रुओं द्वारा किये गये अपकार का आँसुओं से प्रतिकार करूँ न कि अस्त्र से ॥ ३५ ॥

कर्णः—(सक्रोधम् ।) अरे रे वाचाट, वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विदग्ध बटो,

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ।
यथा पाञ्चालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना ॥ ३६ ॥

शत्रुकृतापकारम्, अस्रेण = अश्रुणा, प्रतिकरोमि = प्रतिक्रियां सम्पादयामि, न अस्त्रेण = नायुधेन । अस्त्रेणैव प्रतिक्रिया करोमीति भावः ॥ ३५ ॥

टिप्पणी—निर्वीर्यमिति । गुरुशापेति—कर्ण युवावस्था में परशुराम से शस्त्रविद्या सीखने गया था । परशुराम ने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वह ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी को शस्त्र-विद्या का ज्ञान नहीं देगा । कर्ण को यह बात मालूम थी इसलिए उसने अपनी जाति को छिपाकर परशुराम से शस्त्रविद्या प्राप्त कर ली किन्तु बाद में परशुराम को जब पता चला कि यह ब्राह्मण नहीं है तो उसने उसे शाप दे दिया कि तुम्हारे शस्त्र निष्फल हो जायेंगे । इसलिए अश्वत्थामा ने "निर्वीर्यम्" का प्रयोग किया है । पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ ३५ ॥

कर्ण इति । वाचाट = वाचाल, बहुभाषिन्नित्यर्थः,

अन्वयः—निर्वीर्यम्, वा, सवीर्यम्, वा, आयुधम्, मया, न, उत्सृष्टम्, यथा, पाञ्चालभीतेन, बाहुशालिना, ते, पित्रा, (उत्सृष्टम्) ॥ ३६ ॥

नाहं त्वत्पितृवद्भीरुरित्याह—निर्वीर्यमिति ।

व्याख्या—मच्छस्त्रमित्यध्याहार्यम्, निर्वीर्यम् = पराक्रमरहितम्, वा = अथवा, सवीर्यम् = पराक्रमसहितम्; वा स्यादिति शेषः । आयुधम् = अस्त्रम्; मया = कर्णेन, न = नहि, उत्सृष्टम् = त्यक्तम्, यथा = येन प्रकारेण, पाञ्चालभीतेन = धृष्टद्युम्नत्रस्तेन, बाहुशालिना = पराक्रमिणा, ते = तव, पित्रा = जनकेन, द्रोणेनेत्यर्थः, (उत्सृष्टम् = त्यक्तम्, इति शेषः) ॥ ३६ ॥

टिप्पणी—निर्वीर्यं वेति । प्रस्तुत पद्य में उपमालङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ ३६ ॥

कर्ण—(क्रोधपूर्वक) अरे रे वाचल ! व्यर्थ ही शस्त्र ग्रहण करने के अभिमानी, ब्राह्मण के लड़के,

(मेरा यह अस्त्र) चाहे पराक्रमरहित हो या पराक्रमी हो; मैंने पाञ्चाल (धृष्टद्युम्न) से डरे हुए तेरे बाहुशाली पिता के समान अस्त्र का त्याग नहीं किया ॥ ३६ ॥

अपि च।

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्॥ ३७॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधम्।) अरे अरे रथकारकुलकलङ्क अरे राधागर्भभारभूत, आयुधानभिज्ञ, तातमप्यधिक्षिपसि। अथवा।

स भीरुः शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने
कृतं यत्तेनाजौ प्रतिदिनमियं वेत्ति वसुधा।

अन्वयः—सूतः, वा, सूतपुत्रः, वा, यः, वा, कः, वा, अहम्, भवामि; कुले, जन्म, दैवायत्तम्, तु, पौरुषम्, मदायत्तम्॥ ३७॥

व्याख्या—सूतो वेति। सूतः = सारथिः, वा = अथवा, सूतपुत्रः=सारथिपुत्रः, वा, यो वा को वा = यः कश्चनापि वा, अहम् = कर्णः, भवामि = अस्मि, कुले = वंशे, उत्तमकुले इति तात्पर्यम्, जन्म = उत्पत्तिः, दैवायत्तम् = भाग्याधीनम्, तु = किन्तु, पौरुषम् = पुरुषकारः, पराक्रम इत्यर्थः, मदायत्तम् = ममाधीनम्। जात्यायुर्भोगाः कर्मफलानि किन्तु पुरुषार्थः पुरुषाधीनो भवतीत्याशयः॥ ३७॥

टिप्पणी—सूतो वेति। इस पद्य में भी पथ्यावक्त्र छन्द है॥ ३७॥

अन्वयः—त्रिभुवने, प्रथितभुजसारः, सः, शूरः, वा, भीरुः, (आसीत् किन्तु), प्रतिदिनम्, तेन, आजौ, यत्, कृतम्, (तत्सर्वम्), इयम्, वसुधा, वेत्ति,

---

और भी,

मैं चाहे सारथि होऊँ या सारथि-पुत्र होऊँ या चाहे अन्य जो कोई भी होऊँ। किसी कुल में जन्म तो भाग्य के अधीन है किन्तु पुरुषार्थ मेरे अधीन है॥३७॥

अश्वत्थामा—(क्रोध से) अरे रे रथकार के कुल के कलङ्क! अरे राधा के गर्भ के भारभूत, शस्त्रों से अपरिचित! (तूं) पिताजी पर भी आक्षेप कर रहा है? अथवा—

वह डरपोक था या शूर था लेकिन तीनों लोकों में विख्यात बाहुबल वाला था। प्रतिदिन युद्ध में उसके द्वारा जो किया गया (वह सब) यह पृथ्वी

परित्यक्तं शस्त्रं कथमिति स सत्यव्रतधरः
पृथासूनुः साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ॥ ३८ ॥

कर्णः—(विहस्य ।) एवं भीरुरहम् । त्वं पुनर्विक्रमैकरसं तव पितरमनुस्मृत्य न जाने किं करिष्यसीति महान्मे संशयो जातः । अपि च रे मूढ ?

शस्त्रम्, कथम्, परित्यक्तम्, इति, सत्यव्रतधरः, सः, पृथासूनुः, साक्षी, (वर्तते), हे रणभीरो, त्वम्, तदा, क्व, नु, असि ? ॥ ३८ ॥

व्याख्या—स भीरुरिति । त्रिभुवने = त्रिलोक्याम्, प्रथितभुजसारः = प्रथितः = प्रसिद्धः, भुजसारः = बाहुबलम्, यस्य सः, सः = तादृशः, शूरः = वीरः, वा = अथवा, भीरुः = भययुक्तः, (आसीत् किन्तु) प्रतिदिनम् = प्रत्यहम्, दिनेदिने इति भावः; तेन = द्रोणेन, अजौ = सङ्ग्रामे, यत् = यादृशं कर्म, कृतम् = विहितम्, तत्सर्वम् = तदखिलम्) इयम् = एषा, वसुधा = पृथ्वी, वेत्ति = जानाति, शस्त्रम् = आयुधम्, कथम् = कस्माद्धेतोः, परित्यक्तम् = उज्झितम्, इति = एतत्, सत्यव्रतधरः = सत्यव्रतधारी, सः=प्रसिद्धः, पृथासूनुः = पृथापुत्रः युधिष्ठिर इति भावः, साक्षी = प्रत्यक्षद्रष्टा, वर्तते इति शेषः । हे रणभीरो = हे युद्धभीरो ! त्वम् = कर्णः, तदा = तस्मिन्समये, क्वनु = कुत्रनु, असि = आसीः ? ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—स भीरुरिति । प्रस्तुत पद्य में शिखरिणी छन्द है ॥ ३८ ॥

कर्ण इति । भीरुः = भयशीलः, विक्रमैकरसम्=विक्रमे = पराक्रमे, एकः= अद्वितीयः, रसः=आनन्दः, यस्य तम्; पराक्रमप्रियमिति यावत् ।

जानती है । (उसके द्वारा) शस्त्र का परित्याग क्यों किया गया इसमें सत्यव्रतधारी वह पृथा-पुत्र (युधिष्ठिर) साक्षी है लेकिन हे युद्ध से डरनेवाले ! तू उस समय कहाँ था ? ॥ ३८ ॥

कर्ण—(हँसकर) हाँ, मैं ऐसा डरपोक हूँ । लेकिन तू एकमात्र पराक्रम में आनन्द लेनेवाले अपने पिता का स्मरण करके क्या कर डालेगा, इसमें मुझे सन्देह है । और भी, अरे मूर्ख ।

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान् ।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासितं
सुचिरं स्त्रियेव नृपचक्रसन्निधौ ॥ ३९ ॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधं सकम्पं च ।) दुरात्मन्, राजवल्लभप्रगल्भ, सूतापसद, असम्बद्धप्रलापिन् ।

अन्वयः—यदि, शस्त्रम्, उज्झितम्, (ततः किम् ।) अशस्त्रपाणयः, उदायुधान्, अरीन्, किम्, न, निवारयन्ति ? यत्, नृप चक्रसन्निधौ, स्त्रिया, इव, अनेन, मौलिदलने, अपि, सुचिरम्, उदासितम् ॥ ३९ ॥

व्याख्या—यदि शस्त्रमिति । यदि=चेत्, शस्त्रम् = आयुधम्, उज्झितम् = त्यक्तम्, अनेन ततः किमिति शेषः । अशस्त्रपाणयः = अशस्त्रकराः, उदायुधान्= उद्यतशस्त्रान्, अरीन् = रिपून्, किम् न निवारयन्ति=किन्न प्रतिकुर्वन्ति ? निवारयन्त्यवश्यमेवेति तात्पर्यम् । यत् = यस्मात्, नृपचक्रसन्निधौ=राजसमूहसमीपे; स्त्रिया=नार्या, इव=यथा, अनेन = त्वज्जनकेनेति भावः, मौलिदलने = मस्तकखण्डने, अपि=च, सुचिरम्=दीर्घकालं यावत्, उदासितम्=औदासीन्यं प्रदर्शितम् ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—यदि शस्त्रमिति । प्रस्तुत पद्य में उपमालङ्कार है । छन्द मञ्जुभाषिणी है जिसका लक्षण है—"सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी" ॥ ३९ ॥

अश्वत्थामा इति । दुरात्मन् = दुष्ट, राजवल्लभ=नृपप्रिय, प्रगल्भ=अतिनिर्भीक, सूतापसद=सारथि–नीच ।

यदि शस्त्र भी छोड़ दिया था तो क्या शस्त्र-रहित हाथ वाले लोग शस्त्र उठाये हुए शत्रुओं को रोकते नहीं हैं, जो वह राज-समूह के समीप में दीर्घकाल तक स्त्री के समान मस्तक-खण्डन के प्रति उदासीन बना रहा ? ॥ ३९ ॥

अश्वत्थामा—(क्रोध से काँपते हुए) अरे दुष्ट, राजा का प्रियपात्र; चापलूस, नीच सारथि, उटपटांग बकनेवाले,

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाऽद्य ।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम् ॥ ४० ॥

(इति तथा कर्तुमुत्तिष्ठति ।)

कृप-दुर्योधनौ—वत्स, मर्षय मर्षय । (इति निवारयतः !)

अन्वयः—कथमपि, दुःखिना, वा, भीरुणा, तेन, मम, पित्रा, द्रुपदतनयपाणिः, न, निषिद्धः, अद्य, भुजवलदर्पाध्मायमानस्य, तव, शिरसि, एषः, वामः, चरणः, न्यस्यते, एनम्, वारय ॥ ४० ॥

व्याख्या—कथमपीति । कथमपि = येन केनापिरूपेण, दुःखिना = शोकसन्तप्तेन, वा = अथवा, भीरुणा = भययुक्तेन, तेन = दिवङ्गतेनेत्यर्थः, मम = अश्वत्थाम्नः, पित्रा = जनकेन, द्रुपदतनयपाणिः = धृष्टद्युम्नकरः, न = नहि, निषिद्धः = निवारितः, अद्य = इदानीम्, भुजवलदर्पाध्मायमानस्य = भुजवलदर्पेण = बाहुबलगर्वेण, आध्मायमानस्य = विकत्थमानस्य, तव = भवतः, कर्णस्येत्यर्थः, शिरसि = मूर्ध्नि, एषः = अयम्, वामः = सव्यः, चरणः = पादः, न्यस्यते = स्थाप्यते, एनम् = अमुम्, मूर्ध्नि स्थाप्यमानं वामचरणमिति भावः, वारय = निवारय । यदि समर्थस्त्वं तर्हि निवारयेति भावः ॥ ४० ॥

टिप्पणी—कथमपीति । प्रस्तुत पद्य मालिनी छन्द में निबद्ध है जिसका लक्षण है—"न-न-म-य-य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।" ॥ ४० ॥

कृप—दुर्योधनाविति । मर्षय=क्षमस्व, मा द्वेषं कार्षीरित्यर्थः । संभ्रमे द्विरुक्तिः ।

जिस किसी तरह—दुःखी अथवा डरपोक—उन मेरे पिता ने द्रुपद-पुत्र (धृष्टद्युम्न) के हाथ को नहीं रोका । आज बाहुबल के गर्व से फूले हुए तेरे मस्तक पर यह (मेरा) बायाँ पैर रखा जा रहा है; (यदि समर्थ है तो) इसे रोक ले ॥ ४० ॥

(यह कहकर वैसा करने के लिए उठता है ।)

कृप एवं दुर्योधन—वत्स, क्षमा करो, क्षमा करो । (दोनों रोकते हैं ।)

(अश्वत्थामा चरणप्रहारं नाटयति ।)

कर्णः—(सक्रोधमुत्थाय, खड्गमाकृष्य ।) अरे दुरात्मन्, ब्रह्मबन्धो, आत्मश्लाघ,

जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विदमुद्धृतम् ।
अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ ॥ ४१ ॥

अश्वत्थामा—अरे मूढ, जात्या काममवध्योऽहम् । इयं सा जातिः परित्यक्ता ।

(इति यज्ञोपवीतं छिनत्ति । पुनश्च सक्रोधम् ।)

अन्वयः—जात्या, कामम्, (त्वम्), अवध्यः, असि, तु उद्धृतम्, इदम्, चरणम्, अनेन, खड्गेन, लूनम्, क्षितौ, पतितम्, द्रक्ष्यसि ॥ ४१ ॥

व्याख्या—जात्येति । जात्या = ब्राह्मणजात्युत्पन्नत्वेनेत्यर्थः, कामम् = यद्यपि, त्वमिति शेषः, अवध्यः=अहन्तव्यः, असि=वर्त्तसे, तु = किन्तु, उद्धृतम्= उत्थापितम्, इदम् = एतत्, (तव) चरणम् = पादः, अनेन = एतेन, मत्कर-स्थेनेत्यर्थः, खड्गेन = असिना, लूनम् = छिन्नम् सत्, क्षितौ = पृथिव्याम्, पतितम्, द्रक्ष्यसि = विलोकयिष्यसि ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—जात्येति । प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ ४१ ॥

(अश्वत्थामा पैर से प्रहार करने का अभिनय करता है ।)

कर्ण—(क्रोधपूर्वक उठकर तथा तलवार खींचकर) अरे दुष्ट, नीच ब्राह्मण, आत्म-प्रशंसक,

यद्यपि (तू ब्राह्मण) जाति के कारण वध्य नहीं है लेकिन तू उठे हुए (अपने) इस पैर को (मेरी) इस तलवार से कटा हुआ (अतः) पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखेगा ॥ ४१ ॥

अश्वत्थामा—अरे मूर्ख, यदि मैं जाति से अवध्य हूँ तो (लो) इस जाति को मैंने छोड़ दिया ।

(ऐसा कहकर जनेऊ तोड़ता है । और फिर क्रोध से)

अत्र मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया ।
शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयाञ्जलिम् ॥ ४२ ॥

(उभावपि खड्गमाकृष्यान्योन्यं प्रहर्तुमुद्यतौ । कृपदुर्योधनौ निवारयतः)

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

कृपः—वत्स, सूतपुत्र शस्त्रग्रहणेनालम् ।

अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, किं निवारयसि । अयमपि तातनिन्दा-प्रगल्भः सूतापसदो धृष्टद्युम्नपक्षपात्येव ।

अन्वयः—अद्य, मया, असौ, किरीटी, मिथ्याप्रतिज्ञः, क्रियते; शस्त्रम्, गृहाण, वा, त्यक्त्वा, मौलौ, अञ्जलिम्, रचय ॥ ४२ ॥

व्याख्या—अद्य मिथ्येति । अद्य=साम्प्रतम्; मया = अश्वत्थाम्ना, असौ = सः, किरीटी = अर्जुनः, मिथ्याप्रतिज्ञः = मिथ्या = मृषा, प्रतिज्ञा = प्रणः यस्य सः, तादृशः, क्रियते = विधीयते, शस्त्रम् = आयुधम्, गृहाण = धारय, वा = अथवा, त्यक्त्वा = विहाय, शस्त्रमिति भावः, मौलौ = मस्तके, अञ्जलिम् = करसम्पुटम्, रचय = विधेहि, वा । युद्धार्थं प्रवृत्तं वा शरणे आगतं वेति काम‌पि दशाम्प्रपन्नस्त्वां हनिष्याम्येवेत्याशयः ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—अद्य मिथ्येति । मिथ्याप्रतिज्ञः—अर्जुन ने कर्ण के वध की प्रतिज्ञा कर रखी थी किन्तु अश्वत्थामा के द्वारा यदि कर्ण का वध हो जाता है तो अर्जुन की प्रतिज्ञा झूठी हो जायेगी इसलिए "मिथ्याप्रतिज्ञः" कहा गया है । इस पद्य में भी पथ्यावक्त्र छन्द ही है ॥ ४२ ॥

आज मेरे द्वारा (तुझे मारकर) वह अर्जुन झूठी प्रतिज्ञा वाला किया जा रहा है । या तो शस्त्र उठा या (शस्त्र) छोड़कर हाथ जोड़कर मस्तक पर रख ॥४२॥

(दोनों तलवार खींचकर एक-दूसरे पर प्रहार करने को उद्यत होते हैं । कृप और दुर्योधन रोकते हैं ।)

दुर्योधन—आचार्यपुत्र, शस्त्र ग्रहण रहने दीजिये ।

कृप—वत्स, सूतपुत्र, शस्त्रग्रहण रहने दीजिये ।

अश्वत्थामा—मामा, मामा, क्यों रोक रहे हो ? यह भी पिताजी की निन्दा करने में ढीठ, नीच-सूत, धृष्टद्युम्न का पक्षपाती ही है ।

कर्णः—राजन्, न खल्वहं निवारयितव्यः ।

अपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया ।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥ ४३ ॥

अश्वत्थामा—राजन्, मुञ्च मुञ्चैनम् । आसादयतु मद्भुजान्तरनिष्पेष-सुलभमसूनामवसादनम् । अन्यच्च राजन्, स्नेहेन वा कार्येण वा यत्त्वमेनं ताताधिक्षेपकारिणं दुरात्मानं मत्तः परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि वृथैव ते । पश्य—

अन्वयः—धीरसत्त्वैः, अवज्ञया, उपेक्षितानाम्, क्रोधान्धैः, अत्रासितानाम्, मन्दानाम्, एषा, विकत्थना, भवति ॥ ४३ ॥

व्याख्या—उपेक्षितानामिति । धीरसत्त्वैः = गम्भीरभावैः, अवज्ञया = अनादरेण, उपेक्षितानाम् = औदासीन्यं प्रापितानाम्, क्रोधान्धैः = कोपेन विवेकहीनैः, अत्रासितानाम् = भयमप्रापितानाम्, मन्दानाम् = हीनबलानाम्; एषा = एतादृशी, शूरोऽहमित्याकारिकेत्यर्थः, विकत्थना = आत्मश्लाघारूपिणी प्रलापशीलतेत्यर्थः, भवति = जायते । अतोऽयं दण्डनीय इति भावः ॥ ४३ ॥

टिप्पणी—उपेक्षितानामिति । पद्य में अनुष्टुप छन्द है ॥ ४३ ॥

अश्वत्थामा इति । मुञ्च = त्यज, मद्भुजान्तरनिष्पेषसुलभम् = मदीयौ यौ भुजौ = बाहू, तयोः अन्तरे = मध्ये, यः निष्पेषः = मर्दनम्, तेन सुलभम् = सुखेन-लभ्यम्, असूनाम् = प्राणानाम्, अवसादनम् = विनाशम्, आसादयतु = प्राप्नोतु । ताताधिक्षेपकारिणम् = पितृनिन्दकम् ।

कर्ण—राजन्, मुझे मत रोकें ।

गम्भीरहृदयवाले पुरुषों के द्वारा अनादर-भाव से उपेक्षित, क्रोध से अन्धे व्यक्तियों के द्वारा भयभीत न किये गये मूर्खों की ऐसी ही आत्म-प्रशंसा (डींग) हुआ करती है ॥ ४३ ॥

अश्वत्थामा—राजन्, छोड़ दो, छोड़ दो इसे । यह मेरी भुजाओं के मध्य कुचले जाने से सुलभ प्राण-नाश को प्राप्त कर ले । और राजन्, स्नेह के कारण या प्रयोजन के कारण जो तुम पिता के निन्दक इस दुष्ट की मुझसे रक्षा करना चाहते हो, वह दोनों ही व्यर्थ ही है । देखो—

पापप्रियस्तव कथं गुणिनः सखायं
सूतान्वयः शशधरान्वयसम्भवस्य।
हन्ता किरीटिनमहं नृप मुञ्च कुर्यां
क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥ ४४ ॥

(इति प्रहर्तुमिच्छति ।)

कर्णः—(खड्गमुद्यम्य ।) अरे वाचाट, ब्राह्मणाधम, अयं न भवति। राजन्, मुञ्च मुञ्च। न खल्वहं वारयितव्यः। (हन्तुमिच्छति ।)

अन्वयः—हे नृप, गुणिनः, शशधरान्वयसंभवस्य, तव, पापप्रियः, सूतान्वयः, अयम्, कथम्, सखा ? अहम्, किरीटिनम्, हन्ता, (अतः माम्) मुञ्च, अद्य, क्रोधात्, लोकम्, अकर्णम्, अपृथात्मजम्, कुर्याम् ॥ ४४ ॥

व्याख्या—पापप्रिय इति। हे नृप = हे राजन् ! गुणिनः = गुणवतः, ऐश्वर्यादिगुणोपेतस्येति भावः, शशधरान्वयसंभवस्य = चन्द्रवंशसमुत्पन्नस्य, तव = भवतः, दुर्योधनस्येत्यर्थः, पापप्रियः = पापी, नीचाशय इत्यर्थः, सूतान्वयः = सारथिकुलोत्पन्नः, अयम् = एषः, कर्णं इत्यर्थः, कथम् = केन प्रकारेण, सखा = मित्रम् ? त्वमुत्तमकुलोत्पन्न ऐश्वर्यादिगुणोपेत अतस्त्वया च सारथिवंशोत्पन्नेन एतादृशेन पापवता कर्णेन मैत्री न कार्या, यतो हि गुणिनो मैत्री गुणिनैव सह युज्यत इति भावः। अहम् = अश्वत्थामा, किरीटिनम् = अर्जुनम्, हन्ता = हनिष्यामि, (अतः मामिति शेषः) मुञ्च = त्यज, अद्य = अस्मिन्नेव दिने, क्रोधात् = कोपात्, लोकम् = जगत्, अकर्णम् = कर्णविहीनम्, अपृथात्मजम् = पृथापुत्ररहितम्, अर्जुनरहितमित्यर्थः, कुर्याम् = सम्पादयेयम् ॥ ४४ ॥

टिप्पणी—पापप्रिय इति। इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ॥ ४४ ॥

गुणी और चन्द्रवंश में उत्पन्न हुए आपका, पाप से प्रेम करनेवाला और सारथि कुल में उत्पन्न यह कैसे मित्र हो सकता है ? अर्जुन को मैं मार डालूगा, हे राजन्, छोड़ दो। क्रोध के कारण मैं आज संसार को कर्ण-विहीन तथा पृथापुत्र (अर्जुन) से रहित कर डालूंगा ॥ ४४ ॥

(ऐसा कहकर प्रहार करना चाहता है।)

कर्ण—(तलवार उठाकर) अरे वाचाल, नीच ब्राह्मण ! अब यह नहीं रहेगा। राजन्, छोड़ो, छोड़ो, मुझे न रोका जाय। (मारना चाहता है।)

(दुर्योधनकृपौ निवारयतः ।)

दुर्योधनः—कर्ण, गुरुपुत्र, कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोहः ।

कृपः—वत्स, अन्यदेव प्रस्तुतमन्यत्रावेग इति कोयं व्यामोहः । स्वबलव्यसनं चेदमस्मिन्काले राजकुलस्यास्य युष्मत्त एव भवतीति वामः पन्थाः ।

अश्वत्थामा— मातुल, न लभ्यतेऽस्य कटुप्रलापिनो रथकारकुलकलङ्कस्य दर्पः शातयितुम् ।

कृपः—वत्स, अकालः खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य ।

अश्वत्थामा—मातुल, यद्येवम् ।

दुर्योधन इति । युवयोः = कर्णाश्वत्थाम्नोः, व्यामोहः = विवेकहीनता, विचित्ततेत्यर्थः ।

कृप इति । प्रस्तुतम् = प्रस्तावविषयः, कर्त्तव्यमित्यर्थः, आवेगः=क्रोधावेशः, स्वबलव्यसनम् = स्वसैन्यविद्वेषः, वामपन्थाः = विपरीतमार्गः ।

कृप इति । स्वबलप्रधानविरोधस्य=स्वसैन्यमुख्ययोर्विद्वेषस्य, अकालः=असमयः ।

(दुर्योधन और कृप रोकते हैं ।)

दुर्योधन—कर्ण ! गुरुपुत्र ! तुम दोनों को आज यह क्या पागलपन (सवार) हो गया है ?

कृप—वत्स, प्रस्तुत कुछ अन्य था और यह आवेश किसी अन्य पर है, यह कैसा पागलपन है ? ऐसे समय में इस राजकुल की अपनी शक्ति का क्षय तुम से ही हो रहा है; यह तो विपरीत मार्ग है ।

अश्वत्थामा—मामा, कटु प्रलाप करनेवाले इस सारथिकुलकलङ्क के गर्व को चूर-चूर करने का अवसर न प्राप्त होगा ।

कृप—वत्स, अपनी सेना के प्रधान के साथ विरोध करने का यह अवसर नहीं है ।

अश्वत्थामा—मामा, यदि ऐसा है तो—

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः
परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयाऽस्त्रं रणमुखे।
बलानां नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये
समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु समरे ॥ ४५ ॥

(इति खड्गमुत्सृजति ।)

कर्णः—(विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद्भवादृशां यदस्त्रपरित्यागो नाम ।

अन्वयः—यावत, अरिशरैः, अयम्, पापः, निधनम्, न, उपेयात्, तावत्, मया, रणमुखे, प्रियम्, अपि, अस्त्रम्, परित्यक्तम्, अस्मिन्, बलानाम्, नाथे, (सति), समरे, परिकुपितभीमार्जुनभये, समुत्पन्ने, राजा, प्रियसख-बलम्, वेत्तु ॥ ४५ ॥

व्याख्या—अयमिति । यावत् = यावत्कालम्, अरिशरैः = शत्रुबाणैः, अयम् = एषः, पापः = पापवान्, निधनम् = मरणम्, न = नहि, उपेयात् = प्राप्नुयात्, तावत् = तावत्कालम्, मया = अश्वत्थाम्ना, रणमुखे = युद्धमध्ये, प्रियम् = प्रेमास्पदम्, अपि, अस्त्रम् = प्रहरणम्, परित्यक्तम् = उज्झितम्, अस्मिन् = एतस्मिन्, कर्णे इत्यर्थः, बलानाम् = सेनानाम्, नाथे = अधिपतौ, सति, समरे = युद्धे, परिकुपितभीमार्जुनभये=परिकुपितौ = क्रुद्धौ, यौ भीमार्जुनौ= वृकोदरकिरीटिनौ, ताभ्यां भये = भीतौ, समुत्पन्ने = जाते, सति, राजा = नृपतिः, दुर्योधन इत्यर्थः, प्रियसखबलम्=प्रियमित्रशक्तिम्, वेत्तु=जानातु ॥४५॥

टिप्पणी—अयमिति । पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ४५ ॥

जब तक यह पापी (कर्ण) शत्रु के बाणों से मृत्यु को प्राप्त न हो जायगा तब तक (समझिये कि) मेरे द्वारा युद्ध-भूमि में प्रिय होते हुए भी अस्त्र का परित्याग कर दिया गया । इसके सेनापति हो जाने पर क्रुद्ध हुए भीम और अर्जुन से भय उत्पन्न होने पर राजा (दुर्योधन) अपने प्रिय मित्र की शक्ति को जान ले ॥ ४५ ॥

(यह कहकर तलवार फेंक देता है ।)

कर्ण—(हँसकर) अस्त्र-परित्याग तो आप जैसे के लिए वंश-परम्परा से ही प्राप्त है ॥

अश्वत्थामा—ननु रे अपरित्यक्तमपि भवादृशैरायुधं चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात्।

कर्णः—अरे मूढ,

धृतायुधो यावदहं तावदन्यः किमायुधैः।
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति ॥ ४६ ॥

(नेपथ्ये)

आः दुरात्मन्, द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद, चिरस्य खलु कालस्य मत्सम्मुखीनमागतोऽसि, क्षुद्रपशो ! क्वेदानीं गम्यते। अपि च। भो भो राधेयदुर्योधनसौबलप्रभृतयः पाण्डवविद्वेषिणश्चापत्राणयो मानधनाः, शृण्वन्तु भवन्तः।

अन्वयः—यावत्, अहम्, धृतायुधः, (अस्मि), तावत्, अन्यैः, आयुधैः, किम् ? वा, मम, अस्त्रेण, यत्, न, सिद्धम्, तत्, केन, सेत्स्यति ? ॥ ४६ ॥

व्याख्या—धृतायुध इति। यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, अहम् = कर्णः, धृतायुधः = गृहीतशस्त्रः, अस्मीति शेषः, तावत् = तावत्कालपर्यन्तम्, अन्यैः=इतरैः, अन्यधृतैरित्यर्थः, आयुधैः=शस्त्रैः, किम्=न किमपि प्रयोजनमित्याशयः। वा= अथवा, मम = कर्णस्य, अस्त्रेण=आयुधेन, यत्=यत्कार्यम्, न = नहि, सिद्धम् = सम्पन्नम्, तत्=तत्कार्यम्, केन=केन वीरेणेत्यर्थः, सेत्स्यति = सिद्धं भविष्यति ? मां विना न केनापि सिद्धं भविष्यतीति भावः ॥ ४६ ॥

टिप्पणी—धृतायुध इति। पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ४६ ॥

आः दुरात्मन्निति। द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन् = द्रौपदीकेशाम्बरा-

अश्वत्थामा—अरे, आप जैसों के द्वारा न छोड़ने पर भी निष्फल होने के कारण अस्त्र छोड़ा हुआ ही है।

कर्ण—अरे मूर्ख,

जब तक मैंने शस्त्र धारण किया हुआ है तब तक दूसरे (दूसरों के द्वारा धारण किये गये) शस्त्रों से क्या (प्रयोजन) ? अथवा मेरे शस्त्र से जो (कार्य) सम्पन्न न हुआ वह और किससे सम्पन्न होगा ? ॥ ४६ ॥

(नेपथ्य में)

ओ दुष्ट, द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचने का महापाप करने वाले, नीच,

कृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा
येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः।
यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातु प्रतिज्ञातवान्
सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥ ४७ ॥

कर्षणे=पाञ्चालिकचवस्त्राकर्षणे, महापातकिन्=महान् पापशीलः, तत्सम्बोधने। पाण्डवविद्वेषिणः=पाण्डवविरोधिनः, चापपाणयः=धनुर्हस्ताः, धनुर्धरा इत्यर्थः। मानधनाः=मानम्=स्वाभिमानम् एव धनम्=वित्तम् येषां ते।

अन्वयः—येन, नृपशुना, शिरोरुहे, पाञ्चालराजात्मजा, कृष्टा, राज्ञाम्, गुरूणाम्, (च) पुरः, अस्याः, परिधानम्, अपि, येन, अपहृतम्, यस्य, उरः-स्थलशोणितासवम्, पातुम्, अहम्, प्रतिज्ञातवान्, सः, अयम्, मद्भुजपञ्जरे, (इदानीम्) निपतितः, हे कौरवाः, (युष्माभिः), संरक्ष्यताम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—कृष्टा येनेति। येन=दुःशासनेनेत्यर्थः, नृपशुना = नरपशुना, पशुरूपमनुष्येणेत्यर्थः, शिरोरुहे=केशावच्छेदने, केशं गृहीत्वेत्यर्थः, पाञ्चालराजात्मजा=पाञ्चालनरेशसुता, द्रौपदीत्यर्थः, कृष्टा=आकृष्टा। राज्ञाम् = नृपतीनाम्, गुरूणाम् = द्रोणादीनाम्, पूज्यवृद्धानाम्, पुरः = समक्षम्, अस्याः = द्रौपद्याः, परिधानम्=वस्त्रम्, शाटिकारूपमित्यर्थः, अपि = च, येन अपहृतम्=आकृष्टम्। यस्य = दुःशासनस्येतिभावः, उरःस्थलशोणितासवम् = उरःस्थलशोणितम् = वक्षःस्थलरुधिरम् एव आसवः=मद्यम्, तम्, पातुम् = पानं कर्त्तुम्, अहम्=भीमः, प्रतिज्ञातवान् = प्रणं कृतवान्, सः = पूर्वोक्तः, अयम्=एषः, दुःशासन इत्यर्थः,

धृतराष्ट्रपुत्र ! आज बहुत समय बाद मेरें सम्मुख आया है। ऐ नीच पशु ! अब कहाँ जारहा है ? और भी, हे राधा-पुत्र (कर्ण), दुर्योधन के सौबल (शकुनि), आदि मानी, धनुर्धारी पाण्डव के शत्रुओ ! आप सब लोग सुनें—

जिस नरपशु के द्वारा पाञ्चाल राजपुत्री (द्रौपदी) के केश खींचे गये थे, जिसके द्वारा इस (द्रौपदी) के वस्त्र भी राजाओं एव गुरुओं के समक्ष खीचा गया था, जिसके वक्षःस्थल के रक्तरूपी मद्य को पीने की प्रतिज्ञा मैंने की थी, वही यह (दुःशासन) मेरी भुजाओं के पिंजड़े में आ गया है; हे कौरवो ! (यदि सामर्थ्य हो तो) इसे बचाया जाय ॥ ४७ ॥

(सर्वे आकर्णयन्ति ।)

अश्वत्थामा-(सोत्प्रासम् ।) अङ्गराज, सेनापते, जामदग्न्यशिष्य, द्रोणोपहासिन् भुजबलपरिरक्षितसकललोक, (धृतायुध: (३।४६) इति पठित्वा ।) इदं तदासन्नतरमेव संवृत्तम् । रक्षैनं साम्प्रतं भीमाद् दुःशासनम् ।

कृपः—आः, का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दुःशासनस्य छायामप्याक्रमितुम् । युवराज, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहमागतोऽस्मि ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

मद्भुजपञ्जरे=मद्भुजौ=मद्बाहू एव पञ्जरः = लोहजालकम्, तस्मिन्, इदानीम् निपतितः=आगतः । हे कौरवाः=हे कुरुपुत्राः ! दुर्योधनादय इत्यर्थः, (युष्माभिः= भवद्भिः,) (यदि सामर्थ्यं वर्तते तर्हि) संरक्ष्यताम् = परित्रायताम् ।। ४७ ।।

टिप्पणी—कृष्टा येनेति । अन्य संस्करण में "कृष्टा येन" के स्थान में "स्पृष्टा येन" पाठ मिलता है । भाव की दृष्टि से कृष्टा पाठ ही उपयुक्त है चूँकि दुःशासन ने द्रौपदी के केश को पकड़कर निर्ममतापूर्वक खींचा था न कि आहिस्ते से छुआ था । छूने और खींचने में भावात्मक दृष्टि से बहुत भेद होता है अतः "कृष्टा" पाठ ठीक उचित है । शिरोरुहे—यहाँ अवच्छेदार्थ में सप्तमी हुई है । नृपशुना—ना पशुरिव, तेन, (उपमित समास) । प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।। ४७ ।।

अश्वत्थामा इति । सोत्प्रासम्, रक्ष = परित्रायस्व, एनम् = दुःशासनम् ।

(सब सुनते हैं ।)

अश्वत्थामा—(व्यङ्ग्य के साथ) अङ्गराज, सेनापति, परशुराम के शिष्य, द्रोणाचार्य का उपहास करनेवाले, अपने बाहुबल से समस्त संसार की रक्षा करनेवाले, (धृतायुध इत्यादि ३।४६ श्लोक को पढ़कर) यह (समय) तो बहुत निकट आ गया है । अब भीमसेन से इस दुःशासन की रक्षा करो ।

कर्ण–आह, भीम में क्या सामर्थ्य है कि मेरे जीते जी (वह) दुःशासन की छाया का भी अतिक्रमण कर सके । युवराज, डरो नहीं, डरो नहीं । यह मैं आ गया हूँ ।

(यह कहकर निकल जाता है ।)

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, अभीष्मद्रोण सम्प्रति कौरवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवंविधेनान्येन वा न शक्यते निवारयितुम्। अतः स्वयमेव भ्रातुः प्रतीकारपरो भव।

दुर्योधनः—आः, शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम्। वत्स, न भेतव्यं न भेतव्यम्। कः कोऽत्र भोः रथमुपनय (इति निष्क्रान्तः।)

(नेपथ्ये कलकलः)

अश्वत्थामा—(ससम्भ्रमं) मातुल, कष्टं कष्टम्। एष भ्रातुः प्रतिज्ञाभङ्गभीरुः किरीटी समं दुर्योधनराधेयौ शरवर्षैरभिद्रवति। सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमसेनेन। न खलु विषये दुर्योधनानुजस्यैतां विपत्तिमवलोकयितुम्। अनृतमनुमतं नाम। मातुल, शस्त्रं शस्त्रम्।

अश्वत्थामा इति। कौरवबलम् = कौरवसेनाम्, आलोडयन्तौ, राधेयेन= राधासुतेन, कर्णेनेत्यर्थः, प्रतीकारतत्परः=उपायतत्परः।

अश्वत्थामा—राजन्, कौरवनाथ ! इस समय भीष्म एवं द्रोण से विहीन कौरव-सेना का मर्दन करते हुए भीम और अर्जुन राधापुत्र (कर्ण) या इसके सदृश अन्य किसी के द्वारा नहीं रोके जा सकते। इसलिए (तुम) स्वयं ही भाई की रक्षा के लिए तैयार हो जाओ।

दुर्योधन—आह, शस्त्र-धारण किये हुए मेरे जीते जी दुष्ट पवनपुत्र (भीम) या अन्य किसी की सामर्थ्य है जो वत्स (दुःशासन) की छाया का भी अतिक्रमण कर सके। वत्स, मत डरो, मत डरो। कौन, कौन है यहाँ, रथ लाओ। (यह कहकर निकल जाता है।)

(नेपथ्य में कोलाहल)

अश्वत्थामा—(घबराहट के साथ) मामा, कष्ट है, कष्ट है, भाई की प्रतिज्ञा के भङ्ग होने के डर से यह अर्जुन दुर्योधन एवं कर्ण को एक साथ ही बाणों की वर्षा से आक्रान्त कर रहा है। भीम ने दुःशासन का रुधिर बिल्कुल पी ही लिया है। (मैं) दुर्योधन के छोटे भाई की इस विपत्ति को नहीं देख सकता। मुझे झूठ भी स्वीकार है। मामा, शस्त्र शस्त्र

सत्यादप्यनृतं श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे।
भीमाद् दुःशासनं त्रातुं त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ॥ ४८ ॥

(इति खड्गं ग्रहीतुमिच्छति।)

(नेपथ्ये।)

महात्मन्, भरद्वाजसूनो, न खलु सत्यवचनमुल्लङ्घयितुमर्हसि।

कृपः—वत्स, अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति।

अन्वयः—सत्यात्, अपि, अनृतम्, श्रेयः, (अस्ति); स्वर्गम्, धिक्, नरकः, अस्तु, भीमात्, दुःशासनम्, त्रातुम्, त्यक्तम्, आयुधम्, अत्यक्तम् ॥ ४८ ॥

व्याख्या—सत्यादिति। सत्यात् = ऋतात्, अपि अनृतम् = असत्यम्; श्रेयः = श्रेष्ठम्, अस्तीति शेषः; स्वर्गम् = सुरलोकम्, धिक् = धिक्कारः, अस्तु; भीमात् = वृकोदरात्, दुःशासनम् = एतन्नामकं दुर्योधनानुजम्, त्रातुम् = रक्षितुम्, त्यक्तम् = उज्झितम्, आयुधम् = शस्त्रम्, अत्यक्तम् = अनुज्झितम्। दुःशासन-रक्षार्थं पुनरायुधग्रहणमावश्यकमिति भावः ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—सत्यादिति। पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ ४८ ॥

कृप इति। अशरीरिणी = देहरहिता, अदृश्येति भावः, भारती = वाणी।

सत्य से असत्य अधिक श्रेष्ठ है; स्वर्ग को धिक्कार है; (भले ही मुझे) नरक मिले (किन्तु) भीम से दुःशासन की रक्षा करने के लिए (मेरे द्वारा) छोड़ा गया अस्त्र भी नहीं छोड़ा गया है ॥ ४८ ॥

(यह कहकर तलवार लेना चाहता है।)

(नेपथ्य में)

महात्मा, भरद्वाजपुत्र, सत्यवचन का उल्लङ्घन करना तुम्हें उचित नहीं है।

कृप—वत्स, अशरीरी (अदृश्य) वाणी आपको असत्य से बचा रही है।

अश्वत्थामा —कथमप्रियममानुषी वाङ्नानुमनुते सङ्ग्रामावतरणं मम। सर्वथा पाण्डवपक्षपातिनो देवाः भोः कष्टं कष्टम्।

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम्।
दुर्योधनस्य कर्ताऽस्मि किमन्यत्प्रियमाहवे ॥ ४९ ॥

मातुल, राधेयक्रोधवशादनार्यमस्माभिराचरितम्। अतस्त्वमपि तावदस्य राज्ञः पार्श्ववर्ती भव।

अन्वयः—दुःशासनस्य, रुधिरे, पीयमाने, अपि, (यदि) मया, उदासितम्, (तर्हि) आहवे, दुर्योधनस्य, अन्यत्, किम्, प्रियम्, कर्त्ता, अस्मि ? ॥ ४९ ॥

व्याख्या—दुःशासनस्येति। दुःशासनस्य =दुर्योधनानुजस्य, रुधिरे = रक्ते, पीयमाने = पानसमये, अपि, यदीति शेषः, मया = अश्वत्थाम्ना, उदासितम् = औदासीन्यं प्रदर्शितम्, (तर्हि), आहवे = सङ्ग्रामे, दुर्योधनस्य = कुरुराजस्य, अन्यत् = इतरत्, किम् = कीदृशम्, प्रियम् = इष्टम्, कर्त्ता = सम्पादयिता, अस्मि = भविष्यामीत्यर्थः। यदीदानीम्मया दुर्योधनाय साहाय्यन्न प्रदत्तन्तदाऽग्रे किंविध उपकारो मया विधास्यत इति भावः ॥ ४९ ॥

टिप्पणी—दुःशासनस्येति। इस पद्य में अनुष्टुप छन्द है ॥ ४९ ॥

अनार्यम् = अनुचितम्, शस्त्रपरित्यागरूपमित्यर्थः, पार्श्ववर्ती = समीपवर्ती, सहायक इति भावः।

अश्वत्थामा—कैसे यह दैवी वाणी मुझे युद्ध में उतरने की अनुमति नहीं दे रही है ? देवता लोग भी सब तरह से पाण्डवों के पक्षपाती हैं। ओह ! कष्ट है, कष्ट है !

दुःशासन का रक्त पिये जाने के समय भी यदि मैं उदासीन रहा तो युद्ध में दुर्योधन का अन्य क्या प्रिय करूँगा ? ॥ ४९ ॥

मामा, राधापुत्र के प्रति क्रोध के आवेश में हमने अनुचित कर डाला। इसलिए तुम भी अब इस राजा के समीप में ही रहो।

कृपः—गच्छाम्यहमत्र प्रतिविधातुम्। भवानपि शिविरसन्निवेशमेव प्रतिष्ठताम्।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ ।)

इति तृतीयोऽङ्कः ।



कृप इति । प्रतिविधातुम् = प्रतिकर्त्तुम् । शिविरसन्निवेशम् = सैन्यावास-स्थानम्, प्रतिष्ठताम् = प्रस्थानं करोतु ।

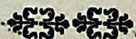
इति "कमलेश्वरी" संस्कृत-व्याख्यायां वेणीसंहारनाटकस्य तृतीयोऽङ्कः ।



कृप—मैं इसका प्रतिकार करने जाता हूँ। आप भी शिविर की ओर प्रस्थान कीजिए ।

(दोनों घूमकर निकल जाते हैं ।)

॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥



चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति प्रहारमूर्च्छितं रथस्थं दुर्योधनमपहरन्सूतः ।)

(सूतः ससम्भ्रमं परिक्रामति ।

(नेपथ्ये)

भो भोः, बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदाः कौरवपक्षपातपणीकृतप्राणद्रविणसंचया नरपतयः ! संस्तभ्यन्तां संस्तभ्यन्तां निहतदुःशासनपीतावशेषशोणितस्नपितबीभत्सवेषवृकोदरदर्शनभयपरिस्खलत्प्रहणानिरणात प्रद्रवन्ति बलानि ।

तत इति । अपहरन् = नयन्, ससम्भ्रमम् = सोद्वेगम् ।

भो भो इति । बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदाः = बाहुबलस्य = भुजशक्तेः, अवलेपेन = गर्वेण, प्रवर्तितः = प्रारब्धः, यो महासमरः=विपुलसङ्ग्रामः, तस्य दोहदम् = अभिलाषः येषाम् ते, तत्सम्बोधने; कौरवपक्षपातपणीकृतप्राणद्रविणसंचयाः = कौरवाणाम् = दुर्योधनादीनाम्, पक्षपातेन = पक्षाश्रयणेन, पणीकृताः = मूल्यीकृताः, प्राणाः = असवः, एव द्रविणसञ्चयः = वित्तराशिः । संस्तभ्यन्ताम् = अवरुध्यन्ताम्, निहितदुःशासनेत्यादिनिहितः = मारितः, यो

(तत्पश्चात् प्रहार से मूर्छित, रथ में पड़े हुए दुर्योधन को युद्ध-क्षेत्र से दूर ले जाता हुआ सारथि प्रवेश करता है ।)

(सारथि घबराहट के साथ घूमता है ।)

(नेपथ्य में)

अरे अरे बाहुबल के गर्व से प्रारब्ध महासङ्ग्राम की अभिलाषा करनेवाले, कौरवों के प्रति पक्षपात के कारण प्राणरूपी धन-राशि को दाँव पर लगानेवाले हे राजाओ ! मारे गये दुःशासन के पीने से बचे हुए रक्त में स्नान करने के कारण बीभत्स वेषवाले भीम को देखकर भय से जिनके अस्त्र गिर रहे हैं (ऐसी) रण से भागती हुई सेना को रोको, रोको ।

सूतः–(अवलोक्य ।) कथमेष धवलचपलचामरचुम्बितकनककमण्डलुना शिखरावबद्धवैजयन्तीसूचितेन हतराजवाजिनरकलेवरसहस्रसम्मर्दविषमोद्‌घातकृतकलकलकिङ्किणीजालमालिना रथेन शरवर्षैस्तम्भितपरचक्रपराक्रमप्रसरः प्रद्रुतमात्मबलमाश्वासयन्कृपः किरीटिनाभियुक्तमङ्गराजमनुसरति । हन्त, जातमस्मद्‌बलानामवलम्बनम् ।

दुःशासनः = दुर्योधनानुजः, तस्य पीतावशेषम्=पाने नावशिष्टम्, यत् शोणितम्= रुधिरम्, तेन स्नपितः = कृतस्नानः, अत एव बीभत्सवेषः = विकृताकृतिः, यो वृकोदरः = भीमसेनः, तस्य दर्शनात् = अवलोकनात्, यद् भयम् = त्रासः, तेन परिस्खलन्ति = पतन्ति, प्रहरणानि = आयुधानि, येषां तानि, रणात् = युद्धात्, प्रद्रवन्ति = पलायनङ्कुर्वन्ति, बलानि=सैन्यानि ।

टिप्पणी—भो भो इति । बाहुबलेति । अवलेपः—"अवलेपः स्मृतो गर्वः" इति विश्वः ।

दोहदम्—"अथ दोहदम् । इच्छा कांक्षा स्पृहेहा तृड्वाञ्छा लिप्सा मनोरथः । कामोऽभिलाषश्च ।" इत्यमरः ।

सूत इति । धवलचपलचामरचुम्बितकनककमण्डलुना = धवलानि= निर्मलानि, चपलानि = चञ्चलानि च तानि चामराणि = प्रकीर्णकानि, तैः चुम्बिताः = आमृष्टाः, कनककमण्डलवः = सुवर्णनिर्मितकलशाः, यत्र तेन; शिखरावबद्धवैजयन्तीसूचितेन = शिखरे=अग्रभागे, अवबद्धा = संलग्ना, या वैजयन्ती = पताका, तया सूचितेन = ज्ञातेन, हतगजेत्यादिः—हतानाम् =

सूत—(देखकर) कैसे, निर्मल-चञ्चल, चामर से चुम्बित स्वर्णकलशवाले, शिखर पर लगी पताका से पहचाने गये और मारे गये हाथियों, घोड़ों तथा मनुष्यों के हजारों शरीरों से ऊँची नीची भूमि पर प्रतिघात से कलकल (मधुर झन झन शब्द) करने वाले, छोटे-छोटे घुंघरुओं के समूह की मालावाले रथ में स्थित, बाण-वृष्टि से शत्रु-सेना के शौर्य की वृद्धि को रोक देनेवाले, अपनी भागती हुई सेना को ढाढ़स बँधाते हुए कृपाचार्य, अर्जुन द्वारा आक्रान्त किये गये कर्ण की ओर बढ़ रहे हैं। आह ! (अब) हमारी सेना को सहारा हो गया ।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम् ।)

भो भोः अस्मद्दर्शनभयस्खलितकार्मुककृपाणतोमरशक्तयः, कौरवचमूभटाः पाण्डवपक्षपातिनश्च योधाः, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहं निहतदुःशासनपीवरोरःस्थलक्षतजासवपानमदोद्धतो रभसगामी स्तोकाव-

व्यापादितानाम्, गजवाजिनराणाम् = हस्त्यश्वमानवानाम्, कलेवरसहस्रस्य= शरीरसहस्रस्य, समर्दन = समूहेन, विषमे = उन्नतावनतप्रदेशे, उत्खातेषु = उच्छ्वलनेषु, कृतकलम् = कृतः कलकलः = झणज्झणदित्याकारको मधुरो महाशब्दो, येन, किङ्किणीजालेन = क्षुद्रघण्टिकासमूहेन, तस्य माला = अवलिः यस्य तेन, शरवर्षस्तम्भितपरचक्रपराक्रमप्रसरः = शरवर्षेण = बाणवर्षणेन, स्तम्भितः = अवरुद्धः, परचक्रस्य = शत्रुसमूहस्य, पराक्रमप्रसरः = शौर्यवृद्धिः, येन सः, प्रद्रुतम् = धावितम्, आत्मबलम् = स्वसैन्यम्, आश्वासयन् = सन्तोषयन्, कृपः = कृपाचार्यः, किरीटिना = अर्जुनेन, अभियुक्तम् = आक्रान्तम्, अङ्गराजम् = कर्णम्, अनुसरति ।

टिप्पणी—सूत इति । चामरम्—"प्रकीर्णकन्तु चामरम्" इत्यमरः । वैजयन्ती—वैजयन्ती पताका या झण्डे को कहते हैं–"पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम्" स्तोकम्–स्तोक का अर्थ थोड़ा होता है—"स्तोकाल्पक्षुल्लकाः" इत्यमरः ।

भो भो इति । अस्मद्दर्शनभयस्खलितकार्मुककृपाणतोमरशक्तयः = अस्मद्दर्शनात् = मम विलोकनात्, यद् भयम् = त्रासः, तेन स्खलिताः = हस्तात्स्रस्ताः, कार्मुककृपाणतोमरशक्तयः = चापखड्गतोमरशक्तयः, येषां ते तत्सम्बुद्धौ, कौरवचमूभटाः = दुर्योधनसेनायोद्धारः, निहितदुःशासनेत्यादिः—निहितः=व्यापादितः,

(नेपथ्य में कोलाहल के बाद)

अरे, अरे, हमारे दिखलाई पड़ने से भय के कारण गिरे हुए धनुष, तलवार, तोमर तथा शक्ति वाले, कौरवसेना के वीरो तथा पाण्डवों के पक्षपाती योद्धाओ ! मत डरो, मत डरो । यह मैं, मारे गये दुःशासन के स्थूल वक्षःस्थल के फाड़ने से निकले हुए रक्तरूपी मद्य का पान करने के कारण मतवाला,

शिष्टप्रतिज्ञामहोत्सवः कौरवराजस्य द्यूतनिर्जितो दासः पार्थमध्यमो भीमसेनः सर्वान्भवतः साक्षीकरोमि । श्रूयताम्—

राज्ञो मानधनस्य कार्मुकभृतो दुर्योधनस्याग्रतः
प्रत्यक्षं कुरुबान्धवस्य मृषतः कर्णस्य शल्यस्य च ।
पातं तस्य मयाद्य पाण्डववधूकेशाम्बरामर्षिणः
कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजक्षुण्णादसृग्वक्षसः ॥ १ ॥

यो दुःशासनः तस्य पीवरम् = स्थूलम् यत् उरःस्थलम् = वक्षःस्थलम्, तस्य क्षतजम् = क्षताज्जातम्, रक्तमित्यर्थः, तदेवासवः = मद्यम्, तस्य पानेन यो मदः = मत्तता, तेन उद्धतः = उद्दण्डः, रभसगामी = शीघ्रगन्ता, स्तोकावशिष्टप्रतिज्ञा-महोत्सवः = स्तोकम् = अल्पम्, अवशिष्टः प्रतिज्ञामहोत्सवः = प्रणानन्दः, यस्य सः, तादृशः, द्युतनिर्जितः = द्युतक्रीडानिर्जितः, दासः = भृत्यः, पार्थमध्यमः = पार्थेषु = पृथापत्येषु मध्यमः ।

टिप्पणी—भो भो इति । कौरवचमूभटाः—चमू सेना का पर्यायवाची है—"ध्वजिनी वाहिनी सेना पृतनानीकिनी चमूः । वरुथिनी बलं सैन्यं चक्रं चानीक-मस्त्रियाम् । इत्यमरः ।

भट—भट योद्धा को कहा जाता है—"भटा योधाश्च योधारः ।"

अन्वयः—राज्ञः, मानधनस्य, कार्मुकभृतः, दुर्योधनस्य, अग्रतः, कुरुबान्ध-वस्य, मृषतः, कर्णस्य, च, शल्यस्य, प्रत्यक्षम्, पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः, जीवतः, एव, तस्य, तीक्ष्णकरजक्षुण्णात्, वक्षसः, कोष्णम्, असृक्, अद्य, मया, पीतम् ॥१॥

व्याख्या—राज्ञ इति राज्ञः = नृपतेः, कार्मुकभृतः = कोदण्डधारिणः,

शीघ्रगामी, थोड़ी ही शेष बची हुई प्रतिज्ञारूपी महोत्सववाला, कौरवराज (दुर्योधन) का जुआ में जीता गया दास, पृथा के पुत्रों में मँझला, भीमसेन आप सबको साक्षी करता हूँ । सुनिये—

मान को ही धन समझने वाले धनुर्धारी राजा दुर्योधन के सामने, कौरवों के मित्र, सहन करते हुए कर्ण एवं शल्य के समक्ष आज मैंने पाण्डवों की पत्नी (द्रौपदी) के केश एवं वस्त्रों को खींचने वाले उस जीवित ही (दुःशासन) के, तीखे नाखूनों से विदीर्ण वक्षःस्थल से गरम रक्त का पान किया है ॥ १ ॥

सूतः—(श्रुत्वा । सभयम् ।) कथमासन्न एव दुरात्मा कौरवराजपुत्र-महावनोत्पातमारुतो मारुतिः। अनुपलब्धसंज्ञश्च महाराजः। भवतु।

दुर्योधनस्य = कुरुराजस्य, एभिर्विशेषणैः क्रमशः, राज्ञः प्रभावराहित्यम्, कार्मुकभृतः--आयुधधारणवैयर्थ्यम्, दुर्योधनस्य च निरर्थकसंज्ञत्वं ध्वन्यते। अग्रतः=पुरतः, कुरुबान्धवस्य = कर्णपक्षे–कुरुमित्रस्य, शल्यपक्षे–कुरुबन्धोः, मातुलस्येत्यर्थः। मृषतः=सहिष्णोः, कर्णस्य = राधेयस्य, च = पुनः, शल्यस्य = दुर्योधनमातुलस्य, प्रत्यक्षम् = समक्षम्, पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः = द्रौपदीकचवस्त्राकर्षकस्य, जीवतः=प्राणान् धारयतः, एव=हि, तीक्ष्णकरजक्षुण्णात्=निशितनखविदारितात्, वक्षसः = उरस्तः, कोष्णम्=ईषदुष्णम्, असृक् = रक्तम्, अद्य = इदानीम्, मया= भीमेन, पीतम् = पानं कृतम्। ये कर्णशल्यप्रभृतयः कुरुबान्धवाः सहिष्णवश्च तेषां समक्षमेव (न तु परोक्षम्) मया दुःशासनवक्षःस्थलरक्तं पीत्वा स्वप्रतिज्ञा पूर्यंत अतो नाम्नैव ते तत्तद्विशेषणोपेता न तु कर्मणेति भावः ॥ १ ॥

टिप्पणी—राज्ञ इति। प्रस्तुत पद्य में भीम ने कौरवों तथा उनके मित्रों-सहायकों पर व्यङ्ग्य कसा है। "राज्ञः" विशेषण से भीम का आशय है कि राजा दुःखितों की रक्षा करे यह उसका कर्त्तव्य होता है किन्तु यहाँ स्वयं उसका छोटा भाई ही विपत्ति में फँसा हुआ है और जब कि वह राजा (कार्मुकभृतः) धनुर्धारी है अर्थात् हाथ में अस्त्र लिये हुए है, उसपर भी (दुर्योधनस्य) भीषणयुद्ध करनेवाला है; फिर भी उसके आगे ही मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूँ अर्थात् दुःशासन की छाती फाड़कर उसका रक्त पीरहा हूँ। कौरवों के कर्णशल्य प्रभृति तथाकथित मित्र तथा सर्वसमर्थ वीर भी केवल देखकर रह जाते हैं। प्रस्तुत पद्य के प्रथम चरण में परिकर अलङ्कार है। छन्द शार्दूलविक्रीडित है ॥ १ ॥

सूत इति। आसन्नः = निकटस्थः; कौरवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुतः = कौरवराजपुत्राः = धृतराष्ट्रसुताः, एव महावनम् = महदरण्यम्, तस्य उत्पातमारुतः = प्रलयवायुः, मारुतिः = मरुत्पुत्रः, भीम इत्यर्थः। अनुपलब्धसंज्ञः =

सूत—(सुनकर भयपूर्वक) कौरवराजकुमारोंरूपी महावन के लिए उत्पात-वायु के सदृश दुष्ट पवनपुत्र (भीम) समीप ही है और यहाँ अभी

दूरमपहरामि स्यन्दनम्। कदाचिद् दुःशासन इवास्मिन्नप्यनार्योऽनार्यमाचरिष्यति। (त्वरितं परिक्रम्यावलोक्य च।) अये! अयमसौ सरसीसरोजविलोलनसुरभिशीतलमातरिश्वसंवाहितसान्द्रकिसलयो न्यग्रोधपादपः। उचिता विश्रामभूरियं समरव्यापारखिन्नस्य वीरजनस्य। अत्र स्थितश्चायाचिततालवृन्तेन हरिचन्दनच्छटाशीतलेनाप्रयत्नसुरभिणा दशापरिणामयोग्येन सरसीसमीरणेनामुना गतक्लमो भविष्यति महाराजः। लूनके-

अप्राप्तचैतन्यः, महाराजः = दुर्योधन इत्यर्थः। अनार्यः = दुरात्मा, अनार्यम् = अनुचितम्। सरसीसरोजेत्यादिः = सरसीनाम् = तडागादिजलाशयानाम्, यानि सरोजानि = कमलानि, तेषां विलोलनेन = सञ्चालनेन, सुरभिः = सुगन्धिः, शीतलः = सुखस्पर्शश्च, यो मातरिश्वा = पवनः, तेन संवाहितानि = सञ्चालितानि, सान्द्राणि = घनानि, किसलयानि = नवपल्लवानि, यस्मिन् सः, न्यग्रोधपादपः = वटवृक्षः, अस्तीति शेषः। समरव्यापारखिन्नस्य = समरव्यापारेण = युद्धकार्येण, खिन्नस्य = श्रान्तस्य, विश्रामभूः = श्रान्तिनिवारणार्हं स्थानमित्यर्थः, इयम्, उचिता = योग्या। अयाचिततालवृन्तेन = अयाचितम् = स्वयमुपलब्धम्, यत् तालवृन्तम् = व्यजनम्, तेन, तत्सदृशेनेत्यर्थः, हरिचन्दनच्छटाशीतलेन = श्रीखण्डसमूहशीतलेन, अप्रयत्नसुरभिणा = अनायासोत्तमगन्धयुक्तेन, दशापरिणामयोग्येन = दशायाः = अवस्थायाः परिणामः = विपाकः, तद्योग्येन, मूर्च्छानिवारणार्हेणेत्यर्थः, सरसी-समीरेण = सरोवरस्थपवनेन, अमुना = अनेन,

महाराज की चेतना नहीं लौटी है। अच्छा, रथ को दूर ले जाता हूँ। कहीं वह दुष्ट दुःशासन की तरह ही इनके साथ भी अनुचित व्यवहार न कर डाले। (जल्दी से घूमकर और देखकर) अरे! यहाँ यह जलाशय के कमलों को छूने से सुगन्धित तथा शीतल वायु द्वारा हिलाये जाते हुए घने पल्लवों वाला वटवृक्ष है। यह युद्ध-कार्य से थके हुए वीर पुरुष के लिए उपयुक्त विश्राम-स्थल है। इस जलाशय की वायु से—जो विना मांगे (प्राप्त) पंखे के सदृश है; जो श्री खण्ड चन्दन समूह के सदृश ठण्डा है, जो विना प्रयास के ही सुगन्धित है और जो दशा-परिवर्त्तन (मूर्च्छा-निवारण) के योग्य है—यहाँ स्थित महाराज

तुश्चायं रथोऽनिवारित एव प्रवेक्ष्यति छायामिति। (प्रवेशं रूपयित्वा।) कः कोऽत्र भोः। (समन्तादवलोक्य।) कथं न कश्चिदत्र परिजनः। नूनं तथाविधस्य वृकोदरस्य दर्शनादेवंविधस्य च स्वामिनस्त्रासेन शिबिरसन्निवेशमेव प्रविष्टः। कष्टं भोः, कष्टम्।

दत्त्वा द्रोणेन पार्थादभयमपि न संरक्षितः सिन्धुराजः
क्रूरं दुःशासनेऽस्मिन्हरिण इव कृतं भीमसेनेन कर्म।
दुःसाध्यामप्यरीणां लघुमिव समरे पूरयित्वा प्रतिज्ञां
नाहं मन्ये सकामं कुरुकुलविमुखं दैवमेतावतापि ॥ २ ॥

गतक्लमः = विगतग्लानिः, श्रमरहित इति यावत्। लूनकेतुः = छिन्नपताकः अनिवारितः = अनवरुद्धः। परिजनः = सेवकः।

टिप्पणी—सरसी खोदवाये हुए कमलवाले तालाव को सरसी कहते हैं—"आसारः सरसीसरः" इत्यमरः। सुरभिः—"सुरभिर्घ्राणतर्पणः। इष्टगन्धः सुगन्धिः स्यादि"त्यमरः। मातरिश्वा—"श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागति" रित्यादि (अमरकोष)। सान्द्र—"घनं निरन्तरं सान्द्र"मित्यमरः। किसलय—नये पत्ते को किसलय कहते हैं—"पल्लवोऽस्त्री किसल—किसलय" मित्यमरः।

अन्वयः—द्रोणेन, पार्थात्, अभयम्, दत्त्वा, अपि, सिन्धुराजः, न, संरक्षितः, भीमसेनेन, अस्मिन्, दुःशासने, हरिणे, इव, क्रूरम्, कर्म, कृतम्, कुरुकुलविमुखम्, दैवम्, समरे, अरीणाम्, दुःसाध्याम्, प्रतिज्ञाम्, अपि, लघुम्, इव, पूरयित्वा, एतावता, अपि, सकामम्, न, (इति), अहम्, मन्ये ॥ २ ॥

श्रमरहित हो जायेंगे। कटी हुई पताका वाला यह रथ विना रुकावट के छाया में चला जायेगा। (प्रवेश का नाट्य करके) कौन, कौन है यहाँ? (चारों ओर देखकर) क्यों नहीं यहाँ कोई सेवक है! निश्चय ही, उस प्रकार (रक्त में सने हुए) भीम को और इस प्रकार (मूर्च्छित) महाराज को देखकर भय के कारण शिविर में ही (वे सब) चले गये हैं। ओह! कष्ट है, कष्ट है!

अर्जुन से अभय देकर भी द्रोण द्वारा जयद्रथ नहीं बचाया जा सका। भीमसेनने इस दुःशासन के प्रति हरिण जैसा क्रूर कर्म कर डाला। युद्ध में शत्रुओं की कठिन से कठिन प्रतिज्ञा को भी क्षुद्र के समान पूरी करा कर अभी इतने पर भी कुरुवंश से विमुख दैव सन्तुष्ट नहीं हो सका है; ऐसा मैं मानता हूँ ॥ २ ॥

(राजानमवलोक्य) कथमद्यापि चेतनतां न लभते महाराजः ! भोः, कष्टम् (निश्वस्य ।)

मदकलितकरेणुभज्यमाने विपिन इव प्रकटैकशालशेषे।
हतसकलकुमारके कुलेऽस्मिंस्त्वमपि विधेरवलोकितः कटाक्षैः ।। ३ ।।

व्याख्या—दत्त्वा द्रोणेनेति । द्रोणाचार्येण, पार्थात्=अर्जुनात्, अभयम्=अभीतिम्, रक्षणाश्वासनमिति यावत्, दत्त्वा = प्रदाय अपि, सिन्धुराजः=जयद्रथः, न=नहि, संरक्षितः = परित्रातः, अर्जुनादिति भावः, भीमसेनेन = वृकोदरेण, अस्मिन् = एतस्मिन् सद्यो व्यापादिते इत्यर्थः, दुःशासने = एतन्नामके दुर्योधनानुजे, हरिणे = मृगे, इव=यथा, क्रूरम् = निष्ठुरम्, कर्म=कृत्यम्, = कृतम् = सम्पादितम्, कुरुकुलविमुखम्=कुरवंशविपरीतम्, दैवम्=भाग्यम्, समरे=सङ्ग्रामे, अरीणाम् = शत्रूणाम्, दुःसाध्याम्, दुःखेन करणीयाम्, प्रतिज्ञाम्=प्रणम्, अपि लघुम्=क्षुद्रम्, इव पूरयित्वा=निष्पाद्य, एतावता = इदानीम् पर्यन्तं तत्कृते नापकारेणेत्यर्थः, अपि, सकामम्=पूर्णाभिलाषम, न = नहि, वर्तते इति शेषः, (इति=एवम्) अहम्=सूतः, मन्ये=स्वीकरोमि, विचिन्तयामीत्यर्थः । नैतावतैव भाग्यं सन्तुष्टमपि तु अतः परमपि किमप्यनिष्टं करिष्यतीति भावः ।। २ ।।

टिप्पणी–दत्त्वेति । प्रस्तुत पद्य में उपमालङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है ।।२।।

अन्वयः--मदकलितकरेणुभज्यमाने, प्रकटैकशालशेषे, विपिने, इव, हतसकलकुमारके, अस्मिन्, कुले, त्वम्, अपि, विधेः, कटाक्षैः, अवलोकितः, (असि) ।।३।।

व्याख्या—मदकलितेति । मदकलितकरेणुभज्यमाने, मदेन=दानेन, मत्ततयेत्यर्थः, कलिताः=व्याप्ताः, ये करेणवः=गजाः, तैः भज्यमाने=संमृद्यमाने"

(राजा को देख कर) कैसे अब भी महाराज होश में नहीं आ रहे हैं ? हाय, कष्ट है;

(गहरी साँस लेकर)

मदमत्त हाथियों के द्वारा उजाड़े गये (अतः) जिसमें एकमात्र साल का वृक्ष बचा हुआ है, ऐसे जङ्गल के समान, मार दिये गये हैं सभी राजकुमार जिसके ऐसे इस वंश में तुम भी विधाता के कटाक्षों से देख लिये गये हो ! (अर्थात् तुम्हारा भी अब कुशल नहीं है ।) ।। ३ ।।

(आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) ननु भो हतविधे, भरतकुलविमुख,
अक्षतस्य गदापाणेरनारूढस्य संशयम् ।
एषापि भीमसेनस्य प्रतिज्ञा पूर्यते त्वया ॥ ४ ॥

प्रकटैकशालशेषं=प्रकट=स्फुटः, एकशालः=एकमात्रशालवृक्षः, शेषः=अवशिष्टः, यत्र तादृशे, विपिने = वने इव = यथा, हतसकलकुमारके = मारितसकलराजकुमारे, अस्मिन्=एतस्मिन्, कुले=वंशे, त्वम्=भवान् महाराजदुर्योधन इति भावः, विधेः= दैवस्य, कटाक्षैः=भृकुटिभिः, अवलोकितः=दृष्टः, असीति शेषः ॥ ३ ॥

टिप्पणी—मदकलितेति । हाथी के मद के दो नाम हैं—"मदो दानमि" त्यमरः । करेणुः—हाथी या हथिनी, दोनों के लिए करेणु शब्द प्रयुक्त होता है—"करेणुरिभ्यां स्त्री नेभे" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य में पूर्णोपमालङ्कार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है ॥ ३ ॥

हतविधे = हतभाग्य, दुर्भाग्येत्यर्थः ।

अन्वयः—गदापाणेः, अक्षतस्य, संशयम्, अनारूढस्य, भीमसेनस्य, एषा, अपि, प्रतिज्ञा, त्वया, पूर्यते ॥ ४ ॥

व्याख्या—अक्षतस्येति । गदापाणेः = गदा = एतन्नामकमस्त्रम्, पाणौ= करे, यस्य सः, तस्य, गदाधारिण इत्यर्थः, अक्षतस्य = प्रहारानभिहतस्य, संशयम्= सन्देहम्, गदायुद्धे मम विजयो वा दुर्योधनस्य विजयो भविष्यतीत्येवंविधसंशयम् । अनारूढस्य=अप्राप्तस्य, भीमसेनस्य=वृकोदरस्य, एषा=इयम्, अपि प्रतिज्ञा=प्रणः, दुर्योधनोरुभङ्गजन्यवधरूपा प्रतिज्ञेति भावः । त्वया=हतभाग्येन, पूर्यते=पूर्णीक्रियते ॥ ४ ॥

टिप्पणी—अक्षतस्येति । भीमसेनस्य प्रतिज्ञा—भीम ने दुर्योधन की जाँघ-तोड़ कर उसके रक्त से द्रौपदी की वेणी को सँवारने की प्रतिज्ञा की थी । पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ४ ॥

(आकाश की ओर देखकर) हे भरतकुल से मुख मोड़े हुए अधम भाग्य ! विना घायल हुए और विना संदेह में पड़े हुए ही, गदाधारी भीमसेन की वह प्रतिज्ञा भी तुम्हारे द्वारा पूरी की जा रही है ॥ ४ ॥

दुर्योधनः—(शनैरुपलब्धसंज्ञः ।) आः, शक्तिरस्ति दुरात्मनो वृकोदरहतकस्य मयि जीवति दुर्योधने प्रतिज्ञां पूरयितुम्। वत्स दुःशासन, न भेतव्यं न भेतव्यम्। अयमहमागतोऽस्मि ननु। सूत, प्रापय रथं तमेवोद्देशं यत्र वत्सो मे दुःशासनः।

सूतः—आयुष्मन्, अक्षमाः सम्प्रति वाहास्ते रथमुद्वोढुम् (अपवार्य ।) मनोरथं च।

दुर्योधनः—(रथादवतीर्य सगर्वं साकूतं च ।) कृतं स्यन्दनगमनकालातिपातेन।

सूतः—(सवैलक्ष्यं सकरुणं च ।) मर्षयतु-मर्षयतु देव।

दुर्योधनः—धिक्सूत, किं रथेन। केवलमरातिविमर्दसंघट्टसञ्चारी दुर्योधनः खल्वहं तद्गदामात्रसहायः समरभुवमवतरामि।

सूत इति। अक्षमाः, वाहाः = घोटकाः, मनोरथम् = दुःशासनक्षणरूपम्।

दुर्योधन इति। स्यन्दनगमनकालातिपातेन = स्यन्देनेन = रथेन, गमनम् = व्रजनम्, तेन, कालस्य = समयस्य, योऽतिपातः = व्यर्थयापनम्, तेन।

सूत इति। मर्षयतु = क्षमताम्।

दुर्योधन—(धीरे-धीरे चेतना प्राप्त करके) आह, मुझ दुर्योधन के जीवित रहते दुष्ट भीमसेन में सामर्थ्य है जो वह प्रतिज्ञा पूरी कर सके ? वत्स दुःशासन, मत डरो, मत डरो। यह मैं आ गया हूँ। सूत ! रथ को उसी जगह ले चलो जहाँ मेरा वत्स दुःशासन है।

सूत—आयुष्मन्, सम्प्रति रथ को वहन करने में आपके घोड़े असमर्थ हैं। (दूसरी ओर मुँह करके) और मनोरथ को भी।

दुर्योधन—(रथ से उतरकर गर्व तथा व्यङ्ग के साथ) रथ से चलने के लिए समय बरबाद करना व्यर्थ है।

सूत—(लज्जा एवं करुणा के साथ) क्षमा करें ! क्षमा करें !

दुर्योधन—धिक्कार है सूत ! रथ से क्या होगा ? मैं केवल शत्रुओं की भीड़ से टकराकर चलने वाला दुर्योधन हूँ अतः केवल गदा साथ लेकर युद्ध भूमि में उतरता हूँ।

सूतः—देव, एवमेतत् ।

दुर्योधनः—यद्येवं किमेवं भाषसे । पश्य—

बालस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः
पापं व्यवस्यति समक्षमुदायुधोऽसौ ।
अस्मिन्निवारयसि किं व्यवसायिनं मां
क्रोधो न नाम करुणा न च तेऽस्ति लज्जा ॥ ५ ॥

दुर्योधन इति । अरातिविमर्दसंघट्टचारी = अरातिविमर्देन = शत्रुसमूहेन, यः संघट्टः = संघर्षणम्, तस्मिन् चरितुं शीलं यस्य तादृशः ।

अन्वयः—उदायुधः, असौ, पापः, मे, समक्षम्, प्रकृतिदुर्ललितस्य, बालस्य, पापम्, व्यवस्यति, अस्मिन्, व्यवसायिनम्, माम्, किम्, निवारयसि, नाम ? ते, क्रोधः, न, नापि, करुणा, च, न, लज्जा, अस्ति ? ॥ ५ ॥

व्याख्या—बालस्येति । उदायुधः = उद्यतशस्त्रः, असौ = सः, भीम इत्याशयः, पापः = पापी, मे = मम, दुर्योधनस्येत्यर्थः, समक्षम् = प्रत्यक्षम्, प्रकृतिदुर्ललितस्य = प्रकृत्या = स्वभावेन, दुर्ललितस्य=चपलस्य, प्रेम्णा पालितत्वादिति भावः, बालस्य=अल्पवयस्कस्य, पापम्=हननरूपं पापकर्म, व्यवस्यति = प्रयतते, अस्मिन् = एतस्मिन् विषये इत्यर्थः, व्यवसायिनम् = उद्योगिनम्, माम्= दुर्योधनम्, किम् = कथम्, निवारयसि = अवरुणत्सि, नामेति संभावनायाम्, ते=तव, क्रोधः=रोषः, न=नहि, अस्मिन् राजकुमारवधसमये त्वया क्रोधो विधेय इति भावः । नापि करुणा = दया, परविपत्तिसमये दया कार्येति भावः । च = पुनः, न लज्जा = व्रीडा, अस्ति = वर्तते, मत्समक्षमेव शत्रुणा ममानुजो हन्यत इति मत्कृते सर्वथा लज्जाजनकमिति भावः ॥ ५ ॥

टिप्पणी—बालस्येति । प्रस्तुत पद्य वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध है— "उक्ता वसन्ततिलकातभजा जगौ गः ।" ॥ ५ ॥

सूत—महाराज, ऐसा ही है ।

दुर्योधन—यदि ऐसा है तो फिर इस तरह क्यों कह रहे हो ? देखो—

शस्त्र उठाये वह पापी (भीमसेन) सामने, स्वभाव से चंचल, बालक पर अत्याचार करने का प्रयास कर रहा है । इस विषय में उद्योग करने वाले मुझे तुम क्यों रोक रहे हो ? तुम्हें क्रोध, दया और लज्जा नहीं आती ? ॥ ५ ॥

सूतः—(सकरुणं पादयोर्निपत्य ।) एतद्विज्ञापयामि । आयुष्मन्, सम्पूर्णप्रतिज्ञेन निवृत्तेन भवितव्यमिदानीं दुरात्मना वृकोदरहतकेन । अत एवं ब्रवीमि ।

दुर्योधनः—(सहसा भूमौ पतन् ।) हा वत्स दुश्शासन, हा मदाज्ञाविरोधितपाण्डव, हा विक्रमैकरस, हा मदङ्कदुर्ललित, हा अरातिकुलराजघटामृगेन्द्र, हा युवराज, क्वासि । प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् । (इति निःश्वस्य मोहमुपगतः ।)

सूतः—राजन्, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

दुर्योधनः—(संज्ञां लब्ध्वा । निःश्वस्य)

सूत इति । सम्पूर्णप्रतिज्ञेन = सम्पादितप्रणेन, वृकोदरहतकेन = दुष्टभीमेन ।

दुर्योधन इति । मदाज्ञाविरोधितपाण्डव=मदाज्ञया=ममादेशेन, विरोधिताः= विद्वेषिताः, पाण्डवाः = पाण्डुपुत्राः येन तत्सम्बुद्धौ । अरातिकुलगजघटामृगेन्द्र= अरातीनाम् = शत्रूणाम्, कुलम् = वंशः, तदेव गजघटा = गजानाम् = हस्तीनाम् घटा = समूहः, तत्र मृगेन्द्रः = सिंहः तत्सम्बोधने ।

सूत—(करुणापूर्वक पैरों पर गिरकर) यह निवेदन कर रहा हूँ—महाराज ! दुष्ट, नीच भीमसेन अब तक प्रतिज्ञा पूर्ण करके निवृत्त हो चुका होगा । इसलिए ऐसा कह रहा हूँ ।

दुर्योधन—(एकाएक पृथ्वी पर गिरते हुए) हा वत्स दुःशासन ! हा मेरी आज्ञा से पाण्डवों से वैर करनेवाले । हा शत्रुकुलरूपी हाथियों के झुण्ड के लिए सिंह सदृश ! हा युवराज ! कहाँ हो ? मुझे उत्तर दो । (यह कहकर लम्बी साँस लेकर मूच्छित हो जाता है ।)

सूत—राजन्, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ।

दुर्योधन—(चेतना पाकर गहरी साँस लेकर)

युक्तो यथेष्टमुपभोगसुखेषु नैव
त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन ।
अस्यास्तु वत्स तव हेतुरहं विपत्ते-
र्यत्कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽसि ॥ ६ ॥

(इति पतति ।)

सूतः—आयुष्मन् , समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

अन्वयः—(हे) वत्स, त्वम्, उपभोगसुखेषु, यथेष्टम्, न, एव, युक्तः, वृथाग्रजेन, मया, त्वम्, हि, न, लालितः, तव, अस्याः, विपत्तेः, हेतु अहम्, (अस्मि), यत्, अविनयम्, कारितः, असि, तु, न, रक्षितः, च, असि ॥ ६ ॥

व्याख्या—युक्त इति । हे वत्स = हे प्रियानुज दुःशासन ! त्वम्, उपभोगसुखेषु = ऐश्वर्यविलासादिसुखेषु, यथेष्टम् = यथेच्छम्, नैव, युक्तः = सम्मिलितः, वृथाग्रजेन = व्यर्थज्येष्ठेन, मया = दुर्योधनेन, त्वम्, हीति निश्चये, न = नहि, लालितः = विलासितः, तव = भवतः, अस्याः = एतस्याः, भीमद्वारा वक्षःस्थलविदारणरूपायाः, विपत्तेः = आपत्तेः, हेतुः = कारणम्, अहम् = दुर्योधनः, अस्मीति शेषः, यत् = यतो हि, अविनयम् = दुर्विनीतताम्, द्रौपदीकचवस्त्राकर्षणरूपामित्याशयः, कारितः = कर्त्तुं प्रेरितः, असि, तु = किन्तु, न रक्षितः = न त्रातः, असि, भीमादिति शेषः । मया त्वमविनययुक्तकर्मणि नियोजितः किन्तु तज्जन्यविपत्तावापतितायान्न रक्षित इति भावः ॥ ६ ॥

टिप्पणी—युक्त इति । इस पद्य के चतुर्थ चरण में विशेषोक्ति अलङ्कार है । वसन्ततिलका छन्द है ॥ ६ ॥

हे वत्स ! तुम उपभोग के सुखों में यथेच्छ नहीं लगाये गये, व्यर्थ ही बड़े भाई (बने हुए) मेरे द्वारा तुम निश्चय ही नहीं दुलराये गये हो, तुम्हारी इस विपत्ति का कारण मैं (ही हूँ) चूँकि दुर्विनीतता तो तुम कराये गये हो (अर्थात् मैंने तुमसे दुर्विनीत आचरण तो कराया) किन्तु बचाये नहीं गये हो॥६॥

(यह कहकर गिरता है ।)

सूत—आयुष्मन्, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ।

दुर्योधनः—धिक् सूत, किमनुष्ठितं भवता।

रक्षणीयेन सततं बलिनाज्ञानुवर्तिना।
दुःशासनेन भ्रात्राहमुपहारेण रक्षितः ॥ ७ ॥

सूतः—महाराज, मर्मभेदिभिरिषुतोमरशक्तिप्रासवर्षैर्महारथानामपहृत-चेतनत्वान्निश्चेतनः कृतो महाराज इत्यपहृतो मया रथः।

दुर्योधनः—सूत, विरूपं कृतवानसि।

अन्वयः—सततम्, आज्ञानुवर्तिना, बालेन, रक्षणीयेन, भ्रात्रा, दुःशासनेन, उपहारेण, अहम्, (त्वया), रक्षितः ॥ ७ ॥

व्याख्या—रक्षणीयेनेति। सततम्, आज्ञानुवर्तिना = आज्ञानुसारिणा, बालेन = बालकेन, अल्पवयस्केनेत्यर्थः, रक्षणीयेन = रक्षायोग्येन, भ्रात्रा = अनुजेन, दुःशासनेन = एतन्नामकेन, उपहारेण = बलिना; अहम् = दुर्योधनः; (त्वया = सूतेन) रक्षितः = रणक्षेत्राद्दूरमानीय त्रातः। दुःशासनो मदर्थं त्यक्तप्राणोऽहञ्च त्वया रक्षित इति नैतत्तव कार्यमुचितमिति भावः ॥ ७ ॥

टिप्पणी—रक्षणीयेनेति। प्रस्तुत पद्य में पदार्थगत काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। अनुष्टुप् छन्द है ॥ ७ ॥

सूत इति। मर्मभेदिभिः = मर्म = जीवनस्थानम्, भिन्दन्ति=विदारयन्तीति तैः; इषुतोमरशक्तिप्रासवर्षैः = बाणतोमरशक्तिनामकास्त्रकुन्तवर्षणैः, अपहृत-चेतनत्वात् = निश्चेतनत्वात्, निश्चेतनः = मूर्च्छितः।

दुर्योधन इति। विरूपं = विपरीतम्।

दुर्योधन—धिक्कार है ! सूत यह आपने क्या कर डाला ?

हमेशा आज्ञा का अनुसरण करनेवाले बालक, रक्षा करने के योग्य भाई दुःशासन की बलि से मैं (तुम्हारे द्वारा) बचाया गया हूँ ॥ ७ ॥

सूत—महाराज, महारथियों के मर्म-भेदी बाणों, तोमरों, शक्तियों तथा भालों की वर्षा से चेतना का अपहरण हो जाने से महाराज मूर्च्छित कर दिये गये थे इसलिए मैं रथ को दूर हटा ले आया।

दुर्योधन—सूत, तुमने उलटा कार्य किया है।

तस्यैव पाण्डवपशोरनुजद्विषो मे
क्षोभैर्गदाशनिकृतैर्न विबोधितोऽस्मि ।
तामेव नाधिशयितो रुधिरार्द्रशय्यां
दौःशासनीं यदहमाशु वृकोदरो वा ॥ ८ ॥

(निःश्वस्य नभो विलोक्य ।) ननु भो हतविधे, कृपाविरहित, भरत-कुलविमुख,

अन्वयः—मे, अनुजद्विषः, तस्य, पाण्डवपशोः, एव, गदाशनिकृतैः, क्षोभैः, न, विबोधितः, अस्मि, दौःशासनीम्, ताम्, एव, रुधिरार्द्रशय्याम्, अहम्, वा, वृकोदरः, आशु, न, अधिशयितः ॥ ८ ॥

व्याख्या—तस्यैवेति । मे = मम, अनुजद्विषः = लघुभ्रातृशत्रोः, तस्य= भीमस्येत्यर्थः, पाण्डवपशोः = पाण्डवः = प्राण्डुपुत्रः भीमः, पशुः = चतुष्पाद इव, तस्य, एव, गदाशनिकृतैः = गदा = एतन्नामकमस्त्रम्, अशनिः=वज्रम् इव, तेन, कृतैः = विहितैः, क्षोभैः = प्रहारजन्यपीडाभिः; न = नहि, विबोधितः = जागरितः, विगतमूर्च्छं इत्यर्थः, अस्मि, अथवेत्यध्याहार्यम्, अहम् = दुर्योधनः; वा = अथवा, वृकोदरः = भीमः, आशु = शीघ्रम्, न, अधिशयितः = स्वपितुं प्रेरितः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—तस्यैवेति । इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ॥ ८ ॥

मेरे छोटे भाई के शत्रु, उस पशु-तुल्य पाण्डव की गदारूपी वज्र द्वारा की गई प्रहारजन्यपीडा से नहीं जगाया गया (होश में लाया गया) हूँ । (अथवा) दुःशासन की उसी रक्त से गीली शय्या पर मैं या भीम शीघ्र ही नहीं सुला दिया गया हूँ ॥ ८ ॥

(लम्बी साँस लेकर तथा आकाश की ओर देखकर) अरे ओ निर्दय; भरत-वंश से पराङ्मुख दुर्भाग्य ।

अपि नाम भवेन्मृत्युर्न च हन्ता वृकोदरः ।

सूतः—शान्तं पापं शान्तं पापम् । महाराज, किमिदम् ।

दुर्योधनः—

घातिताशेषबन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा ॥ ९ ॥

(ततः प्रविशति शरप्रहारव्रणबद्धपट्टिकालङ्कृतकायः सुन्दरकः ।)

अन्वयः—अपि नाम, (मम), भवेत्, च, हन्ता, वृकोदरः, न, (भवेत्); हि, घातिताशेषबन्धोः, मे, राज्येन, किम्, वा, जयेन, किम् ? ॥ ९ ॥

व्याख्या—अपीति । अपीति प्रश्ने, नामेति संभावनायाम्, (मम = दुर्योधनस्य), मृत्युः = मरणम्, भवेत्=स्यात्, च = तथा, हन्ता=व्यापादयिता; वृकोदरः = भीमः, न = नहि, भवेदिति शेषः, हि = यतः, घातिताशेषबन्धोः = विनाशितसकलवान्धवस्य, मे = वन्धुविहीनस्य दुर्योधनस्येत्यर्थः, राज्येन = साम्राज्यप्रापणेन, वा = अथवा, जयेन = विजयेन, किम् = किं प्रयोजनम्, न किमपि प्रयोजनमित्याशयः ॥ ९ ॥

टिप्पणी—अपीति । प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ९ ॥

तत इति । शरप्रहारेत्यादि—शरप्रहारैः = बाणप्रहारैः, यद् व्रणम् तत्र वद्धा या पट्टलिका = व्रणाच्छादनवस्त्रविशेषः, तया अलङ्कृतः = भूषितः, कायः = शरीरम् यस्य ॥

क्या यह संभव है कि मेरी मृत्यु हो जाय (किन्तु मुझे) मारनेवाला भीम न हो ?

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो । महाराज, यह क्या ?

दुर्योधन—(क्योंकि अब) मार डाले गये सम्पूर्ण बान्धव वाले मुझे राज्य या विजय से क्या (लाभ) ? ॥ ९ ॥

(तत्पश्चात् बाणों के प्रहार से हुए घावों पर बँधी हुई पट्टियों से सुशोभित शरीर वाला सुन्दरक प्रवेश करता है ।)

सुन्दरकः—अज्जा, अवि णाम इमस्सि उद्देसे सारहिदुइओ दिट्ठो तुम्मेहिं महाराजदुज्जोहणो ण वेत्ति (निरूप्य ।) कहं ण कोपि मन्तेदि । होदु । एदाण बद्धपरिअराण पुरीसाण समूहो दीसइ । एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम् । (परिक्रम्य विलोक्य च ।) कहं एदे क्खु सामिणो गाढप्पहारहदस्स घणसण्णाहजालदुब्भेज्जमुहेहि कङ्कवत्तेहि हिअआदो सल्लाइं उद्धरन्ति । ता ण क्खु एदे जाणन्ति । होदु । अण्णदो विचिणइस्सम् । (अग्रतोऽवलोक्य किञ्चित्परिक्रम्य ।) इमे क्खु अवरे प्पहूददरा सङ्गदा वीरमणुस्सा दीसन्ति । ता एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम् (उपगम्य ।) हहा जाणह तुम्हे कस्सिं उद्देसे कुरुणाहो वट्टइत्ति । कहं एदे वि म पक्खिअं अहिअदरं रोअन्दि । (दृष्ट्वा ।) ता ण क्खु एदे वि जाणन्ति । हा अदिकरुण क्खु एत्थ वट्टइ । एसा वीलमादा समलविणिहदं पुत्तअं सुणिअ रत्तसुअणिवसणाए समग्गभूसणाए बहूए सह अणुमरदि । (सश्लाघम् ।) साहु वीरमादे, साहु, अण्णस्सिं वि जम्मन्तरे अणिहदमुत्तआ हुविस्ससि । होदु । अण्णदो पुच्छिस्सम् । (अन्यतो विलोक्य ।) अअं अवरो बहुप्पहारजिहदकाओ आकदव्वणबन्धो यव्व जोहसमूहो इमं सुण्णासणं तुलङ्गम उवालहिअ रोइदि । णूणं एदाणं एत्थ एव्व सामी वावादिदो ता ण क्खु एदे वि जाणन्दि । होदु । अण्णदो गदुअ पुच्छिस्सम । (सर्वतो विलोक्य ।) कहं सव्वो एव्व अवत्थाणुरूवं व्वसणं अणुभवन्तो भाअधेअविसमसीलदाए पज्जाउलो जणो । ता कं दाणीं एत्थ पुच्छिस्सम् । कं वा उवालहिस्सम् । होदु । अअं एव्व एत्थ विचिणइस्सम् । (परिक्रम्य) होदु । देव्वं दाणीं उवालहिस्सम् । हंहो देव्व, एआदसाणं अक्खोहिणीणं णाहो जेट्ठो भादुसदस्स भत्ता गङ्गअदोणअङ्गराअसल्लकिवकिदवम्मअस्सत्थामप्पमुहस्स राअचक्कस्स सअलप्पुहवीमण्डलेक्कणाहो महाराअ दुज्जोहणो वि अण्णेसीअदि । अण्णेसीअन्तो वि ण जाणीअदि कस्सिं उद्देसे वट्टइत्ति । (विचिन्त्य निःश्वस्य च ।) अहवा किं एत्थ देव उवालहामि । जदो

सुन्दरक—महानुभावो ! क्या आप लोगों ने इस जगह सारथि-सहित महाराज दुर्योधन को देखा है या नहीं ? (ध्यान से देखकर) क्यों नहीं कोई

तस्स क्खु एदं णिब्भच्छिअविउरवणवीअस्स अवधोरिदपिदामहहिदोवदेसङ्कुरस्स सउणिप्पोच्छाइणादिदिरूढमूलस्स जगुगेहजूदविससाहिणो संभूदचिरआलसंबद्धवेरालवालस्स पञ्चालीकेसग्गहणकुसुमस्स फलं परिणमदि । (अन्यतो विलोक्य) जहा एत्थ एसा विविहरदिणप्पहासंबलिदसुरकिरणप्पसूदसक्कचावसहस्सपूरिददसदिसामुहो लूणकेदुवसो रहो दीसइ, ता अहं तक्केमि अवस्सं एदिणा महाराअदुज्जोहणस्स विस्सामुद्देसेण होदव्वम् । याव निरूपेमि । (उपगम्य दृष्ट्वा निःश्वस्य च ।) कथं एआदह्राण अक्खोहिणीणं णाअको भविअ महारओ दुज्जोहणो पइदपुरिसाविज असलाइणीए भूमीए उवविठ्ठो चिट्ठदि । अध वा तस्स क्खु एवं पञ्चालीकेसग्गहकुसुमस्स फलं परिणमदि । (आर्याः, अपि नामस्मिन्नुद्देशे सारथिद्वितीयो दृष्टो युष्माभिर्महाराजदुर्योधनो न वेति । कथं न कोऽपि मन्त्रयते । भवतु । एतेषां बद्धपरिकराणां पुरुषाणां समूहो दृश्यते अत्र गत्वा प्रक्ष्यामि । कथमेते खलु स्वामिनो गाढप्रहाराहतस्य घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः कङ्कपत्रैर्हृदयाच्छल्यान्युद्धरन्ति । तन्न खल्वेते जानन्ति । भवतु । अन्यतो विचेष्यामि । इमे खल्वपरे प्रभूततराः सङ्गता वीरमनुष्या दृश्यन्ते । तदत्र गत्वा प्रक्ष्यामि । हंहो, जानीथ यूयं कस्मिन्नुद्देशे कुरुनाथो वर्तत इति । कथमेतेऽपि मां प्रेक्ष्या-

---

उद्देश इति । उद्देशे = स्थाने, सारथिद्वितीयः = सूतसहितः । निरूप्य = ध्यानेन दृष्ट्वा, मन्त्रयते = भाषते । गाढप्रहारहतस्य = तीव्रप्रहारताडितस्य, घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः = घनाः = निबिडाः ये सन्नाहाः = कवचानि, तस्य जालम् = समूहः, इव दुर्भेद्यानि मुखानि = अग्रभागाः येषां तैः, कङ्कपत्रैः = शल्यनिःसारकवस्तुविशेषैः, शल्यानि = बाणशङ्कून्, उद्धरन्ति = निःसारयन्ति ।

बोल रहा है ? अच्छा ! यह कमर कसे हुए पुरुषों का समूह दिखाई दे रहा है । यहाँ चलकर पूछूंगा । (घूमकर और देखकर) कैसे ! ये सब तीव्र प्रहारों से ताडित अपने स्वामी के वक्षःस्थल से दृढ-कवच-समूह के समान दुर्भेद्य अग्रभागवाले कङ्कपत्र से बाण के अग्रभाग को निकाल रहे हैं । तो निश्चय ही ये लोग नहीं जानते हैं । अच्छा । अन्यत्र खोजूंगा । (सामने की ओर देखकर तथा थोड़ा घूमकर) ये और भी बहुत से एकत्रित वीर-पुरुष दिखलाई पड़ रहे हैं । तो

धिकतरं रुदन्ति। तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। हा, अतिकरुणं खल्वत्र वर्तते। एषा वीरमाता समरविनिहतं पुत्रकं श्रुत्वा रक्तांशुकनिवसनया समग्रभूषणया वध्वा सहानुम्रियते। साधु वीरमातः, साधु। अन्यस्मिन्नपि जन्मान्तरेऽनिहतपुत्रका भविष्यसि। भवतु। अन्यतः प्रक्ष्यामि। अयमपरो बहुप्रहारनिहतकायोऽकृतव्रणबन्ध एव योधसमूह इमं शून्यासनं तुरङ्गममुपालभ्य रोदिति। नूनमेतेषामत्रैव स्वामी व्यापादितः तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। भवतु। अन्यतो गत्वा प्रक्ष्यामि।

विचेष्यामि = निश्चिनोमि। सङ्गताः = एकत्रिताः। समरविनिहतम् = युद्धे मारितम्, रक्तांशुकनिवसनया = धृतरक्तवस्त्रया, समग्रभूषणया = समग्रम् = सम्पूर्णाङ्गव्याप्तम्, भूषणम् = अलङ्कारः, यस्याः तया, वध्वा = सुतपत्न्या, अनुम्रियते=पश्चात् प्राणत्यागं कुरुते। अनिहतपुत्रका—अनिहताः=न व्यापादिताः पुत्राः = सुताः यस्याः सा, जीवत्पुत्रकेत्यर्थः।

बहुप्रहारनिहतकायः=बहुभिः=अधिकैः, प्रहारैः=आघातैः, निहतः=जर्जरितः, कायः = शरीरम् यस्य सः, अकृतव्रणबन्धः = अकृतपट्टिकः, अधृतव्रणाच्छादनवस्त्र इति यावत्, शून्यासनम्=शून्यम् = आरोहकहीनम्, आसनम् = पीठं यस्य तम्, तुरङ्गम् = घोटकम्। अवस्थानुरूपम् = दशायोग्यम्, व्यसनम् = विपत्ति भाग-

---

यहाँ चलकर पूछुंगा। (समीप जाकर) क्यों जी, तुमलोग जानते हो कि कुरुराज (दुर्योधन) किस जगह हैं? कैसे, ये भी मुझे देखकर और अधिक रोने लगे। (देखकर) तो ये भी नहीं जानते हैं। हा, यहाँ तो बड़ा ही करुणाजनक (दृश्य) है। यह वीर-पुरुष की माता युद्ध में मरे हुए अपने पुत्र के विषय में सुनकर लालवस्त्र को धारण की हुई तथा सम्पूर्ण आभूषणों से अलङ्कृत वधू के साथ मरने जा रही है। (प्रशंसा के साथ) धन्य हो वीरमाता, धन्य हो। दूसरे भी जन्म में न मारे गये पुत्रवाली होओगी। अच्छा। दूसरी ओर पूछुंगा।

(दूसरी ओर देखकर) यह योद्धाओं का दूसरा समूह है, जो अत्यधिक प्रहारों से शरीर के जर्जर होने पर विना पट्टी बाँधे ही इस आसन-रहित अश्व को उलाहना देकर रोरहा है। निश्चय ही इनका स्वामी (नायक) यहीं मारा गया है, तो ये भी नहीं जानते हैं। अच्छा! दूसरी ओर जाकर पूछुंगा।

कथं सर्व एवावस्थानुरूपं व्यसनमनुभवन्भागधेयविषमशीलतया पर्याकुलो जनः। तत्किमिदानीमत्र प्रक्ष्यामि। क नोपालप्स्ये! भवतु स्वयमेवात्र विचेष्यामि। भवतु। दैवमिदानीमुपालप्स्ये। हंहो दैव, एकादशानामक्षौहिणीनां नाथो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य भर्ता गाङ्गेयद्रोणाङ्गराजशल्यकृतवर्माश्वत्थामप्रमुखस्य राजचक्रस्य सकलपृथ्वीमण्डलैकनाथो महाराजदुर्योधनोऽप्यन्विष्यते। अन्विष्यमाणोऽपि न ज्ञायते कस्मिन्नुद्देशे वर्तत इति!! अथवा किमत्र दैवमुपालभे। यतस्तस्य खल्विदं निर्भर्त्सितविदुरवचनबीजस्यावधीरितपितामहहितोपदेशाङ्कुरस्य शकुनिप्रोत्साह-

धेयविषमशीलतया = भाग्यस्य प्रतिकूलतया, पर्याकुलः = व्याकुलः। उपलप्स्ये= सोपालम्भं कथयिष्यामि। सकलपृथ्वीमण्डलैकनाथः—सकलस्य=समस्तस्य, पृथ्वी-मण्डलस्य = भूवलयस्य, एकः = सर्वशक्तिसम्पन्नः, नाथः=स्वामी। निर्भर्त्सित-विदुरवयनबीजस्य—निर्भर्त्सितम्=तिरस्कृतम्, विदुरस्य=एतन्नामकस्य सत्पुरुषस्य, वचनम्=वचः, एव बीजम् = कारणम्, यस्य तादृशस्य, अवधीरितेत्यादिः—अव-धीरितः = अनादृतः, पितामहस्य=भीष्मस्य, हितोपदेशः = कल्याणकारकवचनम्, एव अङ्कुरः = प्ररोहः; यस्य तादृशस्य, शकुनिप्रोत्साहनेत्यादिः—शकुनिना प्रदत्तैः प्रोत्साहनादिभिः विरुढम् = सुदृढम्, मूलं यस्य तादृशस्य, जतुगृहद्यूतविषशाखिनः जतुगृहम=लाक्षागृहम् द्यूतम् = द्यूतक्रीडा, विषम् = गरलम् गरलदानमित्यर्थः;

(सब ओर देखकर) कैसे सभी लोग अवस्था के अनुरूप दुःख कर अनुभव करते हुए भाग्य के प्रतिकूल होने के कारण व्याकूल हो रहे हैं! अतः यहाँ किससे पूछूँ या किसे उलाहना दूं? अच्छा! यहाँ मैं स्वयं ही पता लगाऊँगा। (घूमकर) अच्छा! अब दैव को ही उलाहना दूँगा। वाहरे भाग्य! ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी, सौ भाइयों में सबसे बड़े, भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, शल्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा-प्रधान राज-समूह तथा सम्पूर्ण भूमण्डल के एकमात्र स्वामी महाराज दुर्योधन भी (आज) ढूँढे जा रहे हैं! ढूँढे जाने पर भी पता नहीं चलता कि किस जगह (वे) हैं। (सोचकर तथा लम्बी साँस लेकर) अथवा इसमें भाग्य को क्यों उलाहना दूं? क्यों कि विदुर के वचनों की अवहेलना जिसका बीज है, भीष्मपितामह के हितकारक उपदेश की अवमानना जिसका अङ्कुर है, शकुनि द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहनादि (बढ़ावा)

नादिविरूढमूलस्य जतुगृहद्यूतविषशाखिनः सम्भूतचिरकालसम्बद्धवैरालवालस्य पाञ्चालीकेशग्रहणकुसुमस्य फलं परिणमति । यथात्रैष विविधरत्नप्रभासंवलितसूर्यकिरणप्रसूतशक्रचापसहस्रसंपूरितदशदिशामुखो लूनकेतुवंशो रथो दृश्यते तदहं तर्कयाम्यवश्यमेतेन महाराजदुर्योधनस्य विश्रामोद्देशेन भवितव्यम् । यावन्निरूपयामि । कथमेकादशानामक्षोहिणीनां नायको भूत्वा महाराजो दुर्योधनः प्राकृतपुरुष इवाश्लाघनीयायां भूमावुपविष्टस्तिष्ठति । अथ वा तस्य खल्विदं पाञ्चालीकेशग्रहकुसुमस्य फलं परिणमति ।)

तान्येव शाखाः, ताः सन्त्यस्मिन्, वृक्ष इत्यर्थः तस्य, संभूतचिरकालसंवद्धवैरालवालस्य = संभूतम्=सञ्जातम् चिरकालात्=दीर्घसमयात्, यद्वैरम् = यो विरोधः, तदेव आलवालः = आवापः, यस्य तादृशस्य, पाञ्चालीकेशग्रहणकुसुमस्य—पाञ्चाल्याः = द्रौपद्याः; केशग्रहणम् = कचाकर्षणम् एव कुसुमम् = पुष्पम्, यस्य तादृशस्य, विविधापराधवृक्षस्येत्यर्थः, परिणमति = परिणतो भवति ।

विविधरत्नप्रभेत्यादिः—विविधानि = नानाविधानि, रत्नानि = मणयः, तेषां प्रभाभिः = कान्तिभिः, संवलिताः = विमिश्रिताः, ये सूर्यकिरणाः = रविरश्मयः, तेभ्यः, प्रसूताः = उत्पन्नाः, ये, चक्रचापाः = इन्द्रधनूंषि, तेषां सहस्रम्, तेन; पूरितानि = व्याप्तानि, दशदिशामुखानि = दशाशाग्रभागाः,

---

जिसकी मजबूत जड़ है, उत्पन्न हुआ तथा दीर्घकाल तक बँधा हुआ विरोध जिसका स्तंभ है तथा द्रौपदी के केशों का खींचा जाना ही जिसका फूल है; ऐसा लाक्षागृह-द्यूतक्रीडाविषदान-रूपी वृक्ष का यह फल है। (दूसरी ओर देखकर) जैसे कि यहाँ पर यह—अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति से विमिश्रित सूर्यकिरणों से उत्पन्न हजारों इन्द्रधनुषों के द्वारा दसों दिशाओं के अग्रभागों को भर देनेवाला, कटा हुआ ध्वजदण्ड वाला रथ दिखलाई पड़ रहा है—इससे मैं अनुमान करता हूँ कि यह महाराज दुर्योधन का विश्रामस्थल होगा। जब तक ध्यान से देखता हूँ। (समीप जाकर देखकर तथा लम्बी साँस लेकर) कैसे ग्यारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी होकर भी महाराज दुर्योधन साधारण-पुरुष की तरह यहाँ अप्रशस्त भूमि पर बैठा हुआ है। अथवा यह द्रौपदी के केशग्रहणरूपी फूल का फल पक रहा है।

(उपसृत्य सूतं सञ्ज्ञया पृच्छति ।)

सूतः—(दृष्ट्वा) अये, कथं सङ्ग्रामात्सुन्दरकः प्राप्तः ।

सुन्दरकः—(उपगम्य ।) जअदु जअदु महाराओ । (जयतु जयतु महाराजः ।)

दुर्योधनः—(विलोक्य ।) अये सुन्दरक, कच्चित्कुशलमङ्गराजस्य ।

सुन्दरकः—देव, कुशलं सरीरमेत्तकेण (देव, कुशलं शरीरमात्रकेण ।)

दुर्योधनः—किं किरीटिनास्य निहता धौरेया हतः सारथिर्भग्नो वा रथः ।

सुन्दरकः—देव, ण भग्गो रहो । से मणोरहो । (देव, न भग्नो रथः । अस्य मनोरथः ।)

येन सः, लूनकेतुवंशः = छिन्नध्वजदण्डः, प्राकृतपुरुषः = साधारणजनः, अश्लाघनीयायाम् = अप्रशस्तायाम् ।

टिप्पणी—सुन्दरक इति । कङ्कपत्रैः–सफेद चील को कङ्क कहते हैं—

"लोहपृष्ठस्तु कङ्कः स्यात्" अमरकोष ।

अक्षौहिणी सेना–अक्षौहिणी सेना में २१८७० हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े तथा १०९३५० पैदल सैनिक होते हैं। दस अनीकिनी मिल कर एक अक्षौहिणी होती हैं—"दशानीकिन्यक्षौहिणी" त्यमरः ।

आलवाल—पौधे की जड़ के चारो ओर पानी के लिए बनाये गये खंदक को आलवाल कहते हैं–"स्यादालवालमावालमावापः ।" इत्यमरः ।

संज्ञया = सङ्केतेन ।

(समीप जाकर सारथि से सङ्केत द्वारा पूछता है ।)

सूत—(देखकर) अरे, क्या सङ्ग्राम-क्षेत्र से सुन्दरक आया है ?

सुन्दरक—(समीप जाकर) महाराज की जय हो, जय हो ।

दुर्योधन—(देखकर) अरे सुन्दरक ! अङ्गराज कुशल से तो हैं ?

सुन्दरक—महाराज ! केवल शरीरमात्र से सकुशल हैं ।

दुर्योधन—(घबराहट के साथ) क्या अर्जुन के द्वारा इनके (कर्ण के) घोड़े मार डाले गये, या सारथि मार डाला गया या रथ तोड़ डाला गया ?

सुन्दरक–महाराज, न केवल रथ ही तोड़ डाला गया बल्कि मनोरथ भी ।

दुर्योधनः—किमविस्पष्टकथितैराकुलमपि पर्याकुलयसि मे हृदयम्। तदलं संभ्रमेण। अशेषतो विस्पष्टं कथ्यताम्।

सुन्दरकः—जं देवो आणवेदि। देवस्स मउडमणिप्पहावेण अवणीदा मे रणप्पहारवेअणा (इति साटोपं परिक्रम्य।) सुणादु देव। अत्थिदाणीं कुमालदुस्सासणवह—(इत्यर्धोक्ते मुखमाच्छाद्य शङ्कां नाटयति)। (यद्देव आज्ञापयति। देवस्य मुकुटमणिप्रभावेणापनीता मे रणप्रहारवेदना। शृणोतु देवः। अस्तीदानीं कुमारदुःशासनवध—)

सूतः—सुन्दरक, कथय। कथितमेव दैवेन।

दुर्योधनः—कथ्यताम्। श्रुतमस्माभिः।

सुन्दरकः—(स्वगतम्।) कथं दुस्सासणवहो सुदो देवेण। (प्रकाशम्।) सुणादुदेवो। अज्ज दाव कुमालदुस्साणवहामरिसिदेण सामिणा अङ्गराएण किदचुडिलभिउडीभङ्गभोसणललाढवट्टेण अविण्णादसंघाणतीक्खमोक्खणिक्खित्तसरधारावरिसिणा अभिजुत्तो सो दुराआरा दुस्सासणवेरिओ मज्झमपण्डवा। (कथं दुःशासनवधः श्रुतो देवेन। शृणोतु देवः। अद्य तावत्कुमारदुःशासनवधामर्षितेन स्वामिनाङ्गराजेन कृतकुटिलभ्रुकुटीभङ्गभीषण-

सुन्दरक इति। कुमारदुःशासनवधामर्षितेन-कुमारदुःशासनस्यवधेन=हननेन, आमर्षितः = कुपितः यः तेन, अङ्गराजेन = कर्णेन, कृतकुटिलेत्यादिः—कृतः =

दुर्योधन—(क्रोधपूर्वक) क्यों (इस प्रकार के) अस्पष्ट वचनो से (पहले से ही) आकुल मेरे हृदय को और अधिक व्याकुल कर रहे हो? घबराओ मत सारी बातें स्पष्ट कहो।

सुन्दरक—महाराज जैसी आज्ञा दें। महाराज के मुकुट-रत्न के प्रभाव से युद्ध में हुए प्रहार से उत्पन्न मेरी पीडा दूर हो गई। (ऐसा कहकर गर्व से घूमकर) सुनें महाराज! "आज कुमार दुःशासन के वध"……(ऐसा आधा कहकर मुख ढँककर भय का नाट्य करता है।)

सूत—सुन्दरक! कहो। दुर्भाग्य ने कह ही दिया है।

दुर्योधन—कहो। हमने सुन लिया है।

सुन्दरक—(मन ही मन) कैसे महाराज ने दुःशासन-वध (के विषय में)

ललाटपट्टेनाविज्ञातसंधानतीक्ष्णमोक्षनिक्षिप्तशरधारावर्षिणाभियुक्तः स दुराचारो दुःशासनवैरी मध्यमपाण्डवः ।)

उभौ—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, उहअबलमिलन्तदीप्पन्तकरितुरअपदादिसमुद्धूद-धूलिणिअरेण पल्लत्थगअघढासंघादेण अ वित्थरन्तेण अन्धआरेण अन्धीकिदं उहअबलम् । ण हु गअणतलं अक्खीअदि । (ततो देव, उभयबलमिलद्दीप्यमानकरितुरगपदातिसमुद्धूतधूलिनिकरेण पर्यस्तगजघटासंघातेन च विस्तीर्यमाणेनान्धकारेणान्धीकृतमुभयबलम् । न खलु गगनतलं लक्ष्यते ।)

विहितः, कुटिलः = वक्रः, यः भ्रुकुटिभङ्गः = भृकुटिवक्रता, तेन भीषणम् = भयङ्करम्, ललाटपट्टम् = मस्तकस्योष्णीषम् यस्य तेन, अविज्ञातेत्यादि—अविज्ञातम् अलक्षितम्, सन्धानम् = प्रत्यञ्चायामारोपणम्, तीक्ष्णमोक्षश्च = तीव्रविमोचनञ्च येन स चासौ विक्षिप्तशरधारवर्षी = प्रक्षिप्तबाणसमूहवर्षणकारकः तेन, अभियुक्तः = लक्ष्मीकृतः, आक्रान्त इत्यर्थः, दुराचारः = दुष्टः, मध्यमपाण्डवः = भीमः ।

सुन्दरक इति । उभमबलेत्यादिः—उभयबलयोः = उभयसैन्ययोः, कौरवपाण्डवसेनयोरित्यर्थः, मिलद्भिः=युद्धं कुर्वद्भिः, दीप्यमानैः = कुपितैः, करितुरगपदातिभिः = गजघोटकपदातिभिः, समुद्धूतः = उत्थापितः, यो धूलिनिकरः =

सुन लिया ? (प्रकट रूप से) सुनें महाराज ! आज कुमार दुःशासन के वध से क्रुद्ध हुए, चढ़ाई गई भौहों की वक्रता से भयङ्कर मस्तक-पटलवाले, स्वामी अङ्गराज (कर्ण) ने, जिनके चढ़ाने और तीव्ररूप से छोड़े जाने का पता नहीं चलता था ऐसे बाणों के समूह की वर्षा करते हुए उस दुष्ट दुःशासन-विरोधी मँझले पाण्डव (भीम) पर आक्रमण कर दिया ।

दोनों—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज ! दोनों सेनाओं के परस्पर भिड़े हुए और क्रुद्ध हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकों द्वारा उठाई गई धूल-राशि से और इधर-उधर बिखरे हुए हाथियों के झुण्ड द्वारा फैलाये गये अन्धकार से दोनों पक्षों की सेना अन्धी सी कर दी गई । आकाश-तल दिखलाई न देता था ।

उभौ—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, दूराकट्ठिअधणुग्गुणाच्छोडणटङ्कारेण गम्भीरभीं-सणेण जाणाअदि गज्जिदं पलअजलहरेण त्ति । (ततो देव, दुराकृष्टधनुर्गुणा-च्छोटनटङ्कारेण गम्भीरभीषणेन ज्ञायते गर्जितं प्रलयजलधारेणेति ।)

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, दोह्णिं वि ताणं अण्णोण्णसिंहणादगज्जिदपिसुणं विविहपरिमुक्कप्पहरणाहदकवअसंगलिदजलणविउजच्छडाभासुरं गम्भीर-त्थणिअचापजलहर प्पसरन्तसरधारासहस्सवरिसं जाद समरदुद्दिणं । (ततो देव, द्वयोरपि तयोरन्योन्यसिंहनादगर्जितपिशुनं विविधपरिमुक्तप्रहरणाहत-

---

रेणुसमूहः, तेन, पर्यस्तगजघटासंघातेन = पर्यस्ता = इतस्ततो विकीर्णा या गजघटा = हस्तिसमूहा तस्याः सङ्घातेन = समूहेन, च विस्तीर्यमाणेन = विततेन, गगनतलम् = नभोमण्डलम् ।

सुन्दरक इति । दूराकृष्टेत्यादिः—दूरम् = कर्णान्तम्, आकृष्टः = आकृष्यानीतः, यो धनुर्गुणः = चापप्रत्यञ्चा, तस्य आच्छोटनेन = आस्फालनेन, यः टङ्कारः = चापरवः, तेन, गम्भीरभीषणेन = धीरभयानकेन, प्रलयजलधरेण = प्रलय-कालिकपयोदेन, गर्जितम् = स्तनितम्, इति ज्ञायते ॥

सुन्दरक इति । तयोः = भीमकर्णयोः, अन्योन्यसिंहनादगर्जितपिशुनम्—अन्योन्यम् = परस्परम्, सिंहनादः = सिंहगर्जनम् इव गर्जितम् = गर्जनं तस्य, पिशुनम् = सूचकम्, विविधेत्यादिः—विविधानि = नानाविधानि, परिमुक्तानि =

दोनों—उसके वाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, उसके वाद दूरतक (कान तक) खींची गई धनुष की डोरी के छोड़ने की गम्भीर और भयङ्कर टङ्कार से प्रतीत होता था कि मानो प्रलयकाल का मेघ गरज रहा हो ।

दुर्योधन—उसके वाद, उसके वाद ?

सुन्दरक—महाराज, उसके वाद उन दोनों (सेनाओं) के परस्पर सिंहनादरूपी गर्जन से सूचित होने वाला, विभिन्न प्रकार के छोड़े गये अस्त्रों से टकराये कवचों से निकली हुई आगरूपी बिजली की चमक से चमकने वाला,

कवचसङ्कलितज्वलनविद्यु च्छटाभासुरं गम्भीरस्तनितचापजलधरं प्रसरच्छरधारा-सहस्रवर्षि जातं समरदुर्दिनम्)

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, एदस्सिं अन्तरे जेट्ठस्स भादुणो परिभअसङ्किणा धणं जएण बज्जक्किग्घादणिग्घोसविसमरसिदधअअग्गट्ठिदमहावाणरो तुरङ्गमसवाहणवापिदवासुदेवसंखचक्कासिगदालच्छिदचउब्बाहुदण्डो आपूरिअपञ्चजण्णदेअत्ततार रसिदप्पडिरवभरिददसदिसामुहकुहरो धाविदो तं उद्देसं रहवरो । (ततो देव, एतस्मिन्नन्तरे ज्येष्ठस्य भ्रातुः परिभवशङ्किना धनञ्जयेन वज्रनिर्घातनिर्घोषविषमरसितध्वजाग्रस्थितमहावानरस्तुरङ्गकसंवाहन-

प्रक्षिप्तानि, यानि प्रहरणानि = अस्त्राणि, तैः आहतम् = ताडितम् यत् कवचम् = वर्म, तस्मात् सङ्कलितः = निःसृतः यो ज्वलनः=अग्निः, एव विधुच्छटा= तडित्कान्तिः, तया भासुरम् = दीप्यमानम्, गम्भीरस्तनितचापजलधरम् = गम्भीरम् = धीरम्, स्तनितम् = गर्जितम्, टङ्कारशब्द इत्यर्थः, यस्य तादृशः चापः = धनुः एव जलधरः = मेधः, यस्मिन् यस्य वा तादृशम्, प्रसरच्छरधारा-सहस्रवर्षि—प्रसरन्तः = इतस्ततो गच्छन्तः, शराः = बाणाः एव धारासहस्राणि, तद्वर्षितुं शीलं यस्य तत् तादृशम् । समरदुर्दिनम् = समरः = सङ्ग्रामः दुर्दिनमिव तत् ।

सुन्दरक इति । ज्येष्ठस्य=अग्रजस्य, भ्रातुः=भीमस्येत्यर्थः, परिभवशङ्किना= परिभवम् = पराजयम्, शङ्कते = आशङ्कते इति तेन, धनञ्जयेन = अर्जुनेन, वज्रनिर्घातेत्यादिः—वज्रस्य = कुलिशस्य, निर्घातः = पतनम्, वज्रपात

गम्भीरगर्जन (टङ्कार शब्द) करने वाले धनुषरूपी बादलों वाला, इधर–उधर फैले हुए बाणों की हजार धाराओं की वर्षा करनेवाला, संग्रामरूपी दुर्दिन प्रारम्भ हुआ ।

दुर्योधन—उसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज, उसके बाद, इसी बीच, बड़े भाई की पराजय की आशङ्का से युक्त अर्जुन ने अपना उत्तम रथ, जिसकी पता का के अग्रभाग पर वज्र की कड़क के शब्द के सदृश भयङ्कर शब्द करनेवाला महाकपि (हनुमान)

व्यापृतवासुदेवशङ्खचक्रासिगदालाञ्छितचतुर्बाहुदण्ड आपूरितपाञ्चजन्यदेवदत्ततार-रसितप्रतिरवभरितदशदिशामुखकुहरो धावितस्तमुद्देशं रथवरः ।)

इत्यर्थः, तस्य निर्घोषः = ध्वनिः, तद्वत् विषमम् = भयानकम्, रसितम् = स्तनितम् यस्य तादृशः, ध्वजाग्रे = पताकाऽग्रभागे, स्थितः = वर्त्तमानः महावानरः = विशालकपिः, हनुमानित्यर्थः, यस्य तादृशः, तुरङ्गमाणाम् = घोटकानाम्, संवाहने = सञ्चालने, व्यापृताः = संलग्नाः, वासुदेवस्य = वसुदेवापत्यस्य, श्रीकृष्णस्येत्यर्थः, शङ्खचक्रगदासिभिः लाञ्छिताः = चिह्निताः, चत्वारः बाहुदण्डाः = भुजदण्डाः यत्र सः तादृशः, आपूरितेत्यादिः—आपूरितौ = मुखवायुना भरितौ, यौ पाञ्चजन्य-देवदत्तौ = तत्तन्नामकौ शङ्खौ, तयोः ताररसितस्य = उच्चैर्ध्वनेः, प्रतिरवः = प्रतिध्वनिः; तेन भरितानि = पूरितानि, दशदिशामुखानि = दशाशाग्रभागाः, एव कुहराणि = विवराणि, येन तादृशः, रथवरः = श्रेष्ठो रथः, तमुद्देशम् = तत्स्थानम्, धावितः = वेगेन गन्तुं प्रेरितः ॥

टिप्पणी—"वज्रह्लादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविरि"त्यादिः (अमर कोष)। रसित—मेघ के गर्जन को कहते हैं—" स्तनितं गर्जितं मेघनिर्घोषो रसितादि च" त्यमरः। कुहर—विल या छिद्र को कुहर कहते हैं"—अथ कुहरं विवरं बिलमित्यादि—अमरकोष। विद्युत्—बिजली का पर्याय वाची है"—शम्पाशतह्रदा ⋯ विद्युच्चञ्चला चपला अपी"त्यमरः। ध्वजाग्रस्थितमहावानरः—महाभारत युद्ध में अर्जुन के रथ की पताका पर हनुमान् जी सदा विराजमान रहा करते थे।

पाञ्चजन्य—देवदत्त—श्रीकृष्ण के शङ्ख का नाम पाञ्चजन्य है—"शङ्खो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यः" इत्यमरः। अर्जुन के शङ्ख का नाम देवदत्त था—"पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।" गीता = १। १५ ॥

स्थित था, जो घोड़ों को हाँकने में संलग्न श्रीकृष्णकी शङ्ख, चक्र, गदा और करवाल से चिह्नित चारों बाहुदण्डों से युक्त था; जिसने फूँके गये (कृष्ण के) "पाञ्चजन्य" तथा (अर्जुन के) "देवदत्त" नामक शङ्खों के तीव्र शब्द की प्रतिध्वनि से दसो दिशाओं के मुखरूपी विवरों को भर दिया था, उसी स्थान की ओर दौड़ाया।

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो भीमसेणधणजएहिं अभिजुत्तं पिदरं पेक्खिअ ससंभम विअलिअं अवधूणिअ अणसीसअं आकण्णाकट्ठिदकठिणकोदण्डजीओ दाहिणहत्तुक्खित्तसरपुंखविघट्टणतुवराइदसारहीओ त देसं उवगदो कुलालविसलेणो । (ततो भीमसेनधनञ्जयाभ्यामभियुक्तं पितरं प्रेक्ष्य ससम्भ्रमं विगलितमवधूय रत्नशीर्षकमाकर्णाकृष्टकठिनकोदण्डजीवो दक्षिणहस्तोत्क्षिप्तशर-पुङ्खविघट्टनत्वरायितसारथिकस्तं देशमुपगतः कुमारवृषसेनः ।)

सुन्दरक इति । भीमसेनधनञ्जयाभ्याम् = वृकोदरार्जुनाभ्याम्, अभियुक्तम् = अधिगृहीतम्, प्रेक्ष्य = विलोक्य, ससंभ्रमम् = सोद्वेगम्, विगलितम् = यथास्थानम-प्राप्तम्, किञ्चित्पतितमित्यर्थः, रत्नशीर्षकम् = मणिखचितमुकुटम्, अवधूय = तिरस्कृत्य, अविगणय्येत्यर्थः, आकर्णेत्यादि–आकर्णम् = कर्णपर्यन्तम्, आकृष्टा = आकृष्य नीता, कठिनस्य = कठोरस्य, कोदण्डस्य = चापस्य, जीवा = गुणः येन सः, दक्षिणहस्तेत्यादिः—दक्षिणहस्तेन = दक्षिणकरेण, उत्क्षिप्तः = स्थापितः, यः शरः = बाणः, तस्य पुङ्खेन = पुच्छेन, मूलभागेनेत्यर्थः, यत्, विघट्टनम् = प्रेरणम्, तेन त्वरायितः = शीघ्रतां कारितः, सारथिः = सूतः येन सः तादृशः ॥

टिप्पणी—दक्षिणहस्त—यहाँ का पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि जब वृषसेन दायें हाथ से धनुष की डोरी को कान तक खींचें हैं तो उसी हाथ से वह सारथि को भी कैसे उसका रहा है ? स्निग्ध—"चिक्कणं मसृणं स्निग्धमि"त्यमरः । शाण–शिला—शान के पत्थर (कसौटी) को शाणशिला कहते हैं । इस पर घिसे जाने से हथियारों की धार तेज होती है–"शाणस्तु निकषः कषः" इत्यमरः ।

शिलीमुख—"अलिबाणौ शिलीमुखौ" (अमर कोष) ।

दुर्योधन—फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—उसके बाद भीमसेन तथा अर्जुन द्वारा आक्रान्त पिता को देखकर घबराहट के साथ, खिसके हुए रत्न-जटित मुकुट की अवहेलना करके कठोर धनुष की प्रत्यञ्चा को कान तक खींचता हुआ और दायें हाथ से निकाले गये वाण के निचले भाग से सारथि को उकसाता हुआ कुमार वृषसेव वहाँ पहुँच गया ।

दुर्योधनः—(सावष्टम्भम् ।) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो अ देव, तेण आअच्छन्तेण एव्व कुमालविससेणेण विदलिदासिलदासामलसिणिद्धपुङ्खेहि कठिणकङ्कवत्तेहिं किसणवण्णेहि साणसिलणिसिदसामलसल्लबीन्धेहिं कुसुमिदो विअ तरू मुहुत्तएण सिलीमुहेहिं पच्छादिदो धणजअस्स रहवरो । (ततश्च देव, तेनागच्छतैव कुमारवृषसेनेन विदलितासिलताश्यामलस्निग्धपुंखैः कठिनकङ्कपत्रैः कृष्णवर्णैः शालशिलानिशितश्यामलशल्यबन्धैः कुसुमित इव तरुर्मुहूर्तेन शिलीमुखैः प्रच्छादितो धनञ्जयस्य रथवरः ।

उभौ—(सहर्षम् ।) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, तीक्खविक्खित्तणिसिदभल्लबाणवरिसिणा वणंजएण ईसि विहसिअ भणिदम्—'अरे रे विससेण, पिदुणो वि दाव दे ण जुत्तं मह कुविदस्स अभिमुहं ठादुम् । किं उण भवदो बालस्स । ता

सुन्दरक इति । विदलितासिलताश्यामलस्निग्धपुङ्खैः—विदलिता=सञ्चूर्णिता असिलता = खड्गलता, तद्वत् श्यामलाः = ईषत्कृष्णवर्णाः, स्निग्धाः=मसृणाः, पुङ्खाः = वाणमूलप्रदेशाः येषां तैः, शाणशिलेत्यादिः—शाणशिलायाम् = निकषप्रस्तरे, निशिताः = तीक्ष्णतां नीता, अतः श्यामलाः=श्यामवर्णाः, शल्यवन्धाः=फलकबन्धाः, येषु तैः, शिलीमुखैः = बाणैः, मुहूर्तेन, कुसुमितः=पुष्पितः, तरुरिव=वृक्ष इव, धनञ्जयस्य रथवरः प्रच्छादित इत्यन्वयः ॥

दुर्योधन—(संभलकर) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज ! कुमार वृषसेन ने आते ही टूटी हुई तलवार के सदृश नीले तथा चिकनी पूँछवाले, कठोर कङ्क-पक्षवाले, काले वर्णवाले और शान के पत्थर पर पैने किये हुए श्यामल फलक (धार) वाले बाणों से क्षण-भर में (इस प्रकार) ढँक दिया मानों फूलों से लदा हुआ वृक्ष हो ।

दोनों—(हर्षपूर्वक) तब क्या हुआ ?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज ! वेग के साथ छोड़े गये तीखे भाले के

गच्छ। अवरेहिं कुमारेहिं सह गदुअ आआधेहि।' एव्वं वाअं णिसमिअ गुरुअणाहिक्खेवेण उद्दीविअकोवोवरत्तमुहमण्डलविअम्भिअभिउडिभङ्ग-भीसणेण चावधारिणा कुमालविससेणेण सम्मभेदएहिं परुसविसमेहिं सुदिवहक्किदप्पणएहि णिब्भच्छिदो गण्डीवी बाणेहिं ण उण दुट्ठवअणहि।

(ततो देव, तीक्ष्णविक्षिप्तनिशितभल्लवाणवर्षिणा धनञ्जयेनेषद्विहस्य भणितम्—'अरे रे वृषसेन, पितुरपि, तावत्ते न युक्तं मम कुपितस्याभिमुख स्थातुं किं पुनर्भवतो बालस्य। तद्गच्छ। अपरैः कुमारैः सह गत्वा युद्धस्व।" एवं निशम्य गुरुजनाधिक्षेपेणोद्दीपितकोपोपरक्त मुखमण्डलविजृम्भितभृकुटीभङ्गभीषणेन चापधारिणा कुमारवृषसेनेन मर्मभेदकैः परुषविषमैः श्रुतिपथकृतप्रणयैर्निर्भर्त्सितो गाण्डीवी वाणैर्न पुनर्दुष्टवचनैः।)

ततो देव इति। तीक्ष्णविक्षिप्तभल्लवाणवर्षिणा—तीक्ष्णम् = त्वरितं यथा-स्यात्तथा, विक्षिप्ताः = प्रेरिताः, निशितभल्लकाः = तीक्ष्णकुन्ताः, ये बाणाः = इषवः, तान् वर्षितुं शीलं यस्य तेन, धनञ्जयेन = अर्जुनेन, ईषत् = अल्पम्, विहस्य = हसित्वा, भणितम्=उक्तम्। गुरुजनाधिक्षेपेण—गुरुजनस्य = श्रेष्ठजनस्य, अधिक्षेपेण = निन्दया, पितृनिन्दयेति भावः, उद्दीपितकोपेत्यादिः—उद्दीपितः = वर्द्धितः, यः कोपः = क्रोधः, तेन उपरक्तम् = रक्तम्, यत् मुखमण्डलम् = आनन-मण्डलम्, तेन विजृम्भितः = विस्फारितः, यो भृकुटिभङ्गः = भ्रूवक्रता, तेन भीषणः = भयावहः, तेन; चापधारिणा = धनुर्धरेण, कुमारवृषसेनेन = कर्णसुतेन, मर्मभेदकैः=अन्तःकरणविदारकैः, परुषविषमैः—परुषाः = कठोराः च विषमाः= तीक्ष्णाः, तैः, श्रुतिपथकृतप्रणयैः = कर्णमार्गपर्यन्ताकृष्टैरित्यर्थः, बाणैः=इषुभिः, गाण्डीवी = अर्जुनः, निर्भर्त्सितः = तिरस्कृतः, न पुनः दुष्टवचनैः=कटुवचनैः।

सदृश बाणों की वर्षा करते हुए अर्जुन ने थोड़ा हँसकर कहा—"अरे रे वृषसेन! तुम्हारे पिता भी क्रुद्ध हुए मेरे सम्मुख ठहर नहीं सकते फिर तो तुझ बालक का क्या कहना? इसलिए जाओ। जाकर दूसरे बच्चों के साथ युद्ध करो।" इस प्रकार की बात को सुनकर गुरुजन की निन्दा से बढ़े हुए क्रोध के कारण लाल-मुखमण्डल से फैलाई हुई भौहों की वक्रता से भयङ्कर, धनुर्धारी कुमार वृषसेन ने भी मर्म-भेदी, कठोर, तीखे एवं कर्णमार्ग तक खींचे गये (अर्थात् कान तक खींचकर छोड़े गये) बाणों से अर्जुन को तिरस्कृत किया न कि कटुवचनों से।

दुर्योधनः—साधु वृषसेन, साधु ! सुन्दरक, ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, णिसिदसराभिघादवेअणोपजादमण्णुणा किरीटिणा चण्डगण्डीवजीआसद्दणिज्जिदवज्जणिग्घादघोसेण बाणणिपडणपडिसिद्धदंसणप्पसरेण पत्थुद सिक्खाबलाणुरूवं किं वि अच्चरिअम् । (ततो निशितशराभिघातवेदनोपजातमन्युना किरीटिना चण्डगाण्डीवजीवाशब्दनिर्जितवज्रनिर्घातघोषेण बाणनिपतनप्रतिषिद्धदर्शनप्रसरेण प्रस्तुतं शिक्षाबलानुरूपं किमप्याश्चर्यम् ।)

दुर्योधनः—(साकूतम् ।) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, तं तारिसं पेक्खिअ सत्तुणो समरव्वावारचउरत्तणं । अविभाविअतूणीरमुहधणुग्गुणगमणागमणंसरसंधाणमोक्खचदुलकरअलेण कुमालविससेणेण वि सविसेसं पत्थुदं समलकम्म । (ततो देव, तत्तादृशं प्रेक्ष्य शत्रोः, समरव्यापारचतुरत्वमविभातवितूणीरमुखधनुर्गुणगमनागमनशरसधानमोक्षचटुलकरतलेन कुमारवृषसेनेनापि सविशेषं प्रस्तुतं समरकर्म ।)

सुन्दरक इति । निशितशरेत्यादिः—निशिताः=तीक्ष्णाः ये शराः = बाणाः, तेषाम् अभिघातेन = प्रहारेण, या वेदना=पीडा, तया जातः = उत्पन्नः, मन्युः = क्रोधः यस्य तेन, चण्डगाण्डीवेत्यादिः–चण्डः=प्रचण्डः, यो गाण्डीवः=अर्जुनचापः, तस्य जीवाशब्दः = प्रत्यञ्चाध्वनिः, तेन निर्जितः = पराभूतः; वज्रनिर्घातघोषः= कुलिशपातध्वनिः येन तादृशेन, बाणेत्यादिः—बाणनिपतनेन = शरवर्षणेन,

---

दुर्योधन—वाह, वृषसेन, वाह ! सुन्दरक । उसके बाद (क्या हुआ) ?

सुन्दरक—महाराज ! उसके बाद तीखे बाणों के प्रहार से उत्पन्न पीडा से क्रुद्ध हुए, प्रचण्ड गाण्डीव की प्रत्यञ्चा के शब्द से वज्रपात की ध्वनि को जीतने वाले, बाणों की वर्षा से दृष्टि-चाञ्चल्य को अवरुद्ध कर देने वाले अर्जुन ने शिक्षा और पराक्रम के अनुरूप अद्भुत (कार्य) प्रस्तुत किया ।

दुर्योधन—(उत्कण्ठा पूर्वक) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज ! उसके बाद युद्ध-कार्य में शत्रु की उस प्रकार की निपुणता को देखकर कुमार वृषसेन ने भी, जिनका हाथ तरकश के मुख और धनुष की डोर पर आने-जाने, बाण चढ़ाने और छोड़ने में इतना चञ्चल था कि दिखलाई नहीं पड़ता था, विशिष्ट युद्ध-कर्म प्रस्तुत किया ।

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, एत्थन्तरे, विमुक्कसमरव्वावारो मुहुत्तविस्सामिद वेराणुबन्धो दोणं वि कुरुराअपण्डवबलाणं 'साहु कुमालविससेण, साहु' त्ति किदकलअलो वीरलोओ अवलोइदु पउत्तो। (ततो देव, अत्रान्तरे विमुक्तसमरव्यापारो मुहूर्तविश्रामितवरानुबन्धो द्वयोरपि कुरुराजपाण्डवबलयोः 'साधु कुमारवृषसेन, साधु' इति कृतकलकलो वीरलोकोऽवलोकयितुं प्रवृत्तः ।)

दुर्योधनः—(सविस्मयम् ।) ततस्ततः ।

प्रतिषिद्धः = अवरुद्धः, दर्शनप्रसरः = दृष्टिचाञ्चल्यं येन तादृशेन, किरीटिना = अर्जुनेन, शिक्षाबलानुरूपम् = शिक्षापराक्रमयोग्यम्, किमपि, आश्चर्यम्=अद्भुतम्, प्रस्तुतम्=आरब्धम् ।

सुन्दरक इति । समरव्यापारचतुरत्वम् = युद्धकार्यनैपुण्यम्, अविभावितेत्यादिः-अविभावितम् = अविज्ञातम्, तूणीरमुखधनुर्गुणयोः = निषङ्गमुखचापप्रत्यञ्चयोः, गमनागमनेषु, शरसन्धानमोक्षेषु = बाणग्रहणप्रक्षेपणेषु, चटुलम् = चपलम्, करतलम् = हस्ततलम्, यस्य तेन, एतेन बाणसञ्चालननैपुण्यं ध्वन्यते । सविशेषम् = विशिष्टम्, समरकर्म = युद्धव्यापारः, प्रस्तुतम् = प्रारब्धम् ।

सुन्दरक इति । अत्रान्तरे = तत्पश्चात्, विमुक्तसमरव्यापारः = परित्यक्तयुद्धक्रियः, मुहूर्तविश्रामितवैरानुबन्धः—मुहूर्त्तम् = क्षणं यावत्, विश्रामितः विरमितः, वैरानुबन्धः = शत्रुभावप्रक्रिया येन सः, द्वयोरपि = उभयोरपि कृतकलकलः = कृतकोलाहलः, वीरलोकः = शूरजनः, अवलोकयितुम् = द्रष्टुम् प्रवृत्तः = प्रस्तुतः ।

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज ! तब इसी बीच युद्ध-कार्य को छोड़कर क्षण-भरके लिए वैर-भाव की प्रक्रिया का परित्याग कर कुरुराज एवं पाण्डव—दोनों की ही सेनाओं के वीर-पुरुष "वाह, कुमार वृषसेन, वाह !" इस प्रकार कोलाहल करते हुए (उन दोनों के युद्ध को) देखने में प्रवृत्त हो गये ।

दुर्योधन—(आश्चर्य पूर्वक) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरकः—तदो अ देव, अवहीरिदसअलराअधाणुक्कचक्कपरावक्कमसालिणो सुदस्स तहाविहेण समलकम्मालम्भेण हरिसरोसकरुणासङ्कडे वट्टमाणस्स सामिणो अङ्गराअस्य णिवडिआ सरपद्धइ भीमसेणे बाप्पपज्जाउला दिट्ठी कुमालविससेणे। (ततश्च देव, अवधीरितसकलराजधानुष्कचक्रपराक्रमशालिनः सुतस्य तथाविधन संभरकर्मारम्भेण हर्षरोषकरुणासंकटे वर्तमानस्य स्वामिनोऽङ्गराजस्य निपतिता शरपद्धतिर्भीमसेने वाष्पपर्याकुला दृष्टिः कुमारवृषसेने ।)

दुर्योधनः—(सभयम् ।) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो अ देव, उभअबलप्पउत्तसाहुक्कारामरिसिदेण गण्डीविणा तुरगेसु सारहिं पि रहवरे धणु पि जीआइ पि णलिन्दलञ्छणे सिदादवत्त अ व्वावारिदो सम सिलीमुहासारो । (ततश्च देव, उभयवलप्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन गाण्डीविना तुरगेषु सारथावपि रथवरे धनुष्यपि जीवायामपि नरेन्द्रलाञ्छने सितातपत्रे च व्यापारितः समं शिलीमुखासारः ।)

सुन्दरक इति । अवधीरितेत्यादिः—अवधीरितम् = शौर्येण तिरस्कृतम्, सकलम् = निखिलम्, राजधानुष्कचक्रम् = नृपधनुर्धरसमूहः, येन स चासौ पराक्रमशाली तस्य, सुतस्य = पुत्रस्य, तथाविधेन = तादृशेन, समरकर्मारम्भेण=युद्धकार्यारम्भेण, शरपद्धतिः=बाण-वृष्टिः, बाष्पपर्याकुला=अश्रुव्याप्ता ।।

सुन्दरक इति । उभयबलप्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन—उभयबलाभ्याम् = कौरवपाण्डवसेनाभ्याम्, प्रवृत्तः = प्रदत्तः, यः साधुकारस्तेन अमर्षितः = कुपितः

सुन्दरक—महाराज ! तब सभी धनुर्धर राजाओं के समूह को तिरस्कृत करनेवाले पराक्रमशाली पुत्र के वैसे युद्ध-कार्य से प्रसन्नता, क्रोध और दया की विपत्ति में उपस्थित स्वामी अङ्गराज के बाणों की वर्षा भीमसेन पर तथा आँसुओं से भरी दृष्टि कुमार वृषसेन पर पड़ी ।

दुर्योधन—(भयपूर्वक) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज ! तब दोनों सेनाओं द्वारा दिये गये साधुवाद से क्रुद्ध अर्जुन ने घोड़ों पर, सारथि पर, श्रेष्ठ रथ पर, धनुष पर, प्रत्यञ्चा पर, राजचिह्न-श्वेत छत्र पर, एक साथ बाणों की वृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया ।

दुर्योधनः—(सभयम् ।) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, विरहो लूणगुणकोदण्डो परिब्भमणमेत्तव्वावारो मण्डलग्गेण विअरिदुं पउत्तो कुमालविससेणो । (ततो देव, विरथो लूनगुणकोदण्डः परिभ्रमणमात्रव्यापारो मण्डलाग्रेण विचरितुं प्रवृत्तः कुमारवृषसेनः ।)

दुर्योधनः—(शासङ्कम् ।) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, सुदरहविद्धसणामरिसिदेण सामिणा अङ्गराएण अगणिअभीमसेणाभिजोएण पडिमुक्को धणंजअस्स उवरि सिलीमुहासारो कुमालो वि परिजणोवणीदं अण्णं रहं आरुहिअ पुणो वि पउत्तो धणंजएण सह आआधेदुम् । (ततो देव, सुतरथविध्वंसनामर्षितेन स्वामिनाङ्गराजेनागणितभीमसेनाभियोगेन परिमुक्तो धनञ्जयस्योपरि शिलीमुखासारः । कुमारोऽपि परिजनोपनीतमन्यं रथमारुह्य पुनरपि प्रवृत्तो धनञ्जयेन सहायोधितुम् ।)

तेन, गाण्डीविना = अर्जुनेन, तुरगेषु = अश्वेषु, जीवायाम् = प्रत्यञ्चायाम्, नरेन्द्रलाञ्छने = राजचिह्ने, सितातपत्रे = शुक्लच्छत्रे, शिलीमुखासारः = बाणधारासम्पातः, व्यापारितः=प्रक्षेपित इत्यर्थः ॥

सुन्दरक इति । विरथः = विगतो रथो यस्य सः, विनष्टरथ इत्यर्थः । लूनगुणकोदण्डः—लूनौ = छिन्नौ, गुणकोदण्डौ = मौर्वीचापौ यस्य सः, परिभ्रमणमात्रव्यापारः—परिभ्रमणमेव परिभ्रमणमात्रम्, तदेव व्यापारः = क्रिया यस्य सः, मण्डलाग्रेण=खड्गेन ॥

टिप्पणी—मण्डलाग्रेण—मण्डलाग्र तलवार को कहते हैं—"खड्गे तु निस्त्रिंशचन्द्रहासासिरिष्टयः । कौक्षेपको मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवदि"त्यमरः ॥

सुन्दरक इति । सुतरथविध्वंसनामर्षितेन=पुत्रस्यन्दनविनाशकुपितेन, अगणित-

---

दुर्योधन—(भयपूर्वक) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तब महाराज ! रथ-हीन होकर तथा प्रत्यञ्चा एवं धनुष के कट जाने पर हाथ में तलवार लेकर केवल पैंतरा बदलते हुए कुमार वृषसेन इधर-उधर घूमने लगे ।

दुर्योधन—(आशङ्का के साथ) तब क्या हुआ ?

सुन्दरक—तब महाराज ! पुत्र के रथ को विनष्ट किये जाने से क्रुद्ध

उभौ—साधु वृषसेन, साधु। ततस्ततः।

सुन्दरकः—तदो देव, भणिदं स कुमालेन—'रे रे तादाहिक्खेवमुहल-मज्झमपण्डव, मह सरा तुह सरीरं उज्झिअ अण्णस्सिं ण णिवडन्ति' त्ति भणिअ सरसहस्सेहिं पण्डवसरीरं पच्छादिअ सिंहणादेण गज्जिदुं पउत्तो। (ततो देव, भणितं स कुमारेण—'रे रे ताताधिक्षेपमुखर मध्यमपाण्डव, मम शरास्तव शरीरानुज्झित्वान्यस्मिन्न निपतन्ति' इति भणित्वा शरसहस्रैः पाण्डवशरीरं प्रच्छाद्य सिंहनादेन गर्जितुं प्रवृत्तः।)

दुर्योधनः—(सविस्मयम्।) अहो, बालस्य पराक्रमो मुग्धस्वभावेऽपि। ततस्ततः।

भीमसेनाभियोगेन—अगणितः=उपेक्षितः, भीमसेनेन=वृकोदरेण, योऽभियोगः=अभिग्रहः, आक्रमणमिति यावत्, येन सः, शिलीमुखासारः=शरवृष्टिः॥

सुन्दरक इति। ताताधिक्षेपमुखर-तातस्य=पितुः, अधिक्षेपे=निन्दायाम्, मुखरः=दुर्मुखः, वाचाल इत्यर्थः, तत्सम्बोधने, मध्यमपाण्डव=अर्जुन! उज्झित्वा=त्यक्त्वा, अन्यस्मिन्=अन्यत्र।

टिप्पणी—मुखरः-"दुर्मुखे मुखराबद्धमुखौ शक्लः प्रियंवदे"त्यमरः।

हुए स्वामी अङ्गराज ने भीमसेन के आक्रमण की परवाह न कर अर्जुन के ऊपर बाणों की झड़ी लगा दी। कुमार (वृषसेन) भी सेवकों के द्वारा लाये गये दूसरे रथ पर चढ़कर अर्जुन के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हो गये।

दोनों—वाह, वृषसेन, वाह! उसके बाद, उसके बाद?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज! कुमार (वृषसेन) ने कहा—"अरे रे पिताजी की निन्दा करने में वाचाल मँझले पाण्डव! मेरे बाण तुम्हारे शरीर को छोड़कर कहीं दूसरी जगह नहीं पड़ रहे हैं।" इस प्रकार कहकर हजारों बाणों से पाण्डव (अर्जुन) के शरीर को ढँककर सिंहनाद-से गरजने लगे।

दुर्योधन—(आश्चर्य के साथ) अहो! बालक का पराक्रम और भोलापन भी आश्चर्यजनक है। उसके बाद क्या हुआ?

सुन्दरकः—तदो अ देव, तं सरसंपादं समवधूणिअ णिसिदसराभिघादजातमण्णुणा किरीटिणा गहिदा रहुच्छङ्गादो क्कणन्तकणअकिङ्किणीजालझङ्कारविराइणी मेहोवरोहविमुक्कणहत्थलणिम्मला णिसिदसामलसिणिद्धमुही विविहरअणप्पहाभासुरभीसणरमणिज्जदंसणा सत्ती विमुक्का कुमालाहिमुही। (ततश्च देव, तं शरसम्पातं समवधूय निशितशराभिघातजातमन्युना किरीटिना गृहीता रथोत्सङ्गात्क्वणत्कनककिङ्किणीजालझङ्कारविराविणी मेघोपरोधविमुक्तनभस्तलनिर्मला निशितश्यामलस्निग्धमुखी विविधरत्नप्रभाभासुरभीषणरमणीयदर्शना शक्तिर्विमुक्ता कुमाराभिमुखी।)

सुन्दरक इति। शरसम्पातम् = वाणवर्षणम्, अवधूय = तिरस्कृत्य, निशितशराभिघातजातमन्युना = तीक्ष्णवाणप्रहारजन्यकोपेन, किरीटिना = अर्जुनेन, गृहीता = आत्ता, रथोत्सङ्गात् = स्यन्दनक्रोडात्, रथमध्यादिति यावत्, क्वणत्कनकेत्यादिः—क्वणन्ति = शब्दायमानानि, यानि कनककिङ्किणीजालानि = सुवर्णक्षुद्रघण्टिकासमूहाः, तेषां झङ्कारेण = झङ्कृत्या, झणज्झणदितिशब्देन, विराविणी = शब्दायित्री, मेघोपरोधविमुक्तनभस्तलनिर्मला—मेघैः = जलधरैः, यः उपरोधः = आवरणम्, तस्माद् विमुक्तम् = विरहितम्, यत्, नभस्तलम् = आकाशतलम्, तद्वत्, निर्मला = स्वच्छा, निशितश्यामलस्निग्धमुखी—निशितम् = तेजितम्, श्यामलम् = श्यामवर्णम्, स्निग्धम् = मसृणम्, च मुखम् = अग्रभागः यस्याः सा, विविधरत्नेत्यादिः—विविधानाम् = नानाविधानाम्, रत्नानाम् = मणीनाम्, प्रभाभिः = द्युतिभिः, भासुरा = दीप्यमाना, सा चासौ भीषणम् = भयानकम्, रमणीयम् = मनोहरम्, दर्शनं यस्याः सा तादृशी, शक्तिः = आयुधविशेषः, कुमाराभिमुखी = वृषसेनमुद्दिश्येत्यर्थः; विमुक्ता।

सुन्दरक—इसके अनन्तर महाराज! उस बाण-वर्षण को रोककर तीखे वाणों के प्रहार से क्रुद्ध हुए अर्जुन के द्वारा रथ के बीच से बजती हुई सुवर्णनिर्मित घण्टियों के समूह की झङ्कार से शब्दायमान, मेघों के आवरण से रहित आकाशतल के समान स्वच्छ; तीक्ष्ण, श्यामवर्ण तथा चिकने मुखवाली, अनेक प्रकार के रत्नों की छवि से चमचमाती हुई और भयङ्कर तथा सुन्दर दिखलाई पड़ने वाली शक्ति उठाई गई तथा कुमार (वृषसेन) की ओर छोड़ दी गई।

दुर्योधनः (सविषादम्)—अहह । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, पज्जलन्तीं सत्तिं पेक्खिअ विअलिअं अङ्गराअस्स हत्थादो ससरं धणु हअआदो वीरसुलहो उच्छाहो णअणादो वाप्पसलिलं पि । रसिदं अ सिहणादं विओदलेण । दुक्कलं दुक्कलं त्ति आक्कन्दिदं कुरुबलेण । (ततो देव, प्रज्वलन्तीं शक्तिं प्रेक्ष्य विगलितमङ्गराजस्य हस्तात्सशरं धनुर्हृदयाद्वीरसुलभ उत्साहो नयनाद्वाष्पसलिलमपि । रसितं च सिंहनादं वृकोदरेण । दुष्करं दुष्करमित्याक्रन्दितं कुरुबलेन ।)

दुर्योधनः—(सविषादम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, कुमालविससेणेण आकण्णपूरिदेहिं णिसिदक्खुरप्पवाणेहिं चिरं णिज्झाइअ अद्धपहे एव्व भाईरही विअ आअच्छन्ती जधा भअवदा विसमलोअणेण तधा तिधा किदा सत्ती । (ततो देव, कुमारवृषसेनेनाकर्णपूरितैर्निशितक्षुरप्रवाणैश्चिरं निर्धार्यार्धपथ एव भागीरथीवागच्छन्ती यथा भगवता विषमलोचनेन तथा त्रिधा कृता शक्तिः ।)

सुन्दरक इति । प्रज्वलन्तीम् = प्रकाशमानाम्, शक्तिम्, प्रेक्ष्य = विलोक्य, सशरम् = वाणसहितम्, विगलितम् = पतितम् । रसितम् = शब्दितम् ।

सुन्दरक इति । आकर्णपूरितैः = कर्णपर्यन्ताकृष्टैः, क्षुरप्रवाणैः = क्षुरप्रनामकवाणविशेषैः, निर्धार्य = निश्चित्य, सम्यक् सन्धानं कृत्वेति भावः । अर्धपथे =

दुर्योधन—(विषाद के साथ) अहह ? उसके वाद, उसके वाद ?

सुन्दरक—उसके वाद महाराज ! प्रज्वलित शक्ति को देखकर अङ्गराज (कर्ण) के हाथ से वाणसहित धनुष, हृदय से वीरपुरुषोचित उत्साह तथा आँखों से आँसू गिर पड़े । भीमसेन ने सिंहगर्जन किया । कौरवसेना ने "अनर्थ हुआ, अनर्थ हुआ" ऐसा कहकर करुण-क्रन्दन किया ।

दुर्योधन—(विषादपूर्वक) तो फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—तो फिर महाराज ! कुमार वृषसेन ने कान तक खींचकर तेज धारवाले क्षुरप्र नामक बाणों से देर तक लक्ष्य साधकर आधेमार्ग में ही उस शक्ति के (उसी प्रकार) तीन टुकड़े कर दिये जिस प्रकार (स्वर्ग से) आती हुई गङ्गा को विषम नेत्रवाले भगवान् शङ्कर ने तीन भागों में विभक्त कर दिया था ।

दुर्योधनः—साधु वृषसेन, साधु। ततस्ततः।

सुन्दरकः—तदो अ देव एदस्सि अन्तले कलमुहलेण वीरलोअसाहुवादेण अन्तरिदो समरतूर्राणग्घोसो। सिद्धचालणगणविमुक्ककुसुमप्पअरेण पच्चादिद समलाङ्गणम्। भणिअं अ सामिणा अङ्गराएण—'भो वीर विकोदल, असमत्तो तुह मह वि समलव्वावारो। ता आणुमण्ण म मुहुत्तअम्। पेक्खामहे दाव वस्सस्स तुह भादुणो अ धणुव्वेदसिक्खाचउरत्तणम्। तुह वि एदं पेक्खणिज्जम्' त्ति। (ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे कलमुखरेण वीरलोकसाधुवादेनान्तरितः समरतूर्यनिर्घोषः। सिद्धचारणगणविमुक्तकुसुमप्रकरेण प्रच्छादितं समराङ्गणम्। भणितं च स्वामिनाङ्गराजेन—'भो वीर वृकोदर, असमाप्तस्तव ममापि समरव्यापारः। तदनुमन्यस्व मां मुहूर्तम्। प्रेक्षावहे तावद्वत्सस्य तव भ्रातुश्च धनुर्वेदशिक्षाचतुरत्वम्'। तवाप्येतत्प्रेक्षणीयम् इति।)

अर्धमार्गे, भागीरथी = गङ्गा, विषमविलोचनेन = विषमनेत्रेण, त्रिनेत्रेण भगवता शङ्करेणेति भावः। यथा भगवता शङ्करेण त्रिधा कृता भागीरथी "त्रिपथगा गङ्गा" इत्युच्यते तथैव शक्तिरपि अर्धमार्ग एव त्रिधा कृतेति भावः।

टिप्पणी—भागीरथीव—स्वर्ग से तीव्र वेग से आती हुई गङ्गा को भगवान् शङ्कर ने रोककर उसे तीन भागों में विभक्त कर दिया था। उनमें से प्रथम भाग भू-तल की गङ्गा भागीरथी है, दूसरी आकाशगङ्गा मन्दाकिनी है तथा तीसरी भगवान् शङ्कर की जटा में विराजमान है। सिद्ध—"पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः" इत्यमरः। चारण—वन्दीजनों को चारण कहते हैं—"चारणास्तु कुशीलवाः" इत्यमरः।

सुन्दरक इति। कलमुखरेण = शब्दकरणे तत्परमुखेन, वीरलोकसाधुवादेन =

दुर्योधन—शाबास, वृषसेन, शाबास ! उसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दकर—उसके बाद महाराज ! इसी बीच वीर पुरुषों द्वारा 'धन्य-धन्य' शब्द करने के कोलाहल से रण—भेरी का शब्द छिप गया। सिद्धों एवं चारणों के समूह द्वारा बरसाये गये पुष्प-समूह से युद्ध-स्थल ढँक गया। स्वामी अङ्गराजने कहा—" हे वीर भीमसेन ! मेरे साथ तुम्हारा युद्धव्यापार समाप्त नहीं

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, विस्समिदाओधणव्वावारा मुहुत्तविस्समिदणिअवेराणुवन्धा दुवे वि पेक्खआ जादा भीमसेणङ्गराआ । (ततो देव, विश्रमितायोधनव्यापारौ मुहूर्तविश्रमितनिजवैरानुवन्धौ द्वावपि प्रेक्षकौ जातौ भीमसेनाङ्गराजौ ।)

दुर्योधनः—(साभिप्रायम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, सत्तिखण्डणामरिसिदेण गण्डीविणा भणिअम्—अरे रे दुज्जोहणप्पमुहा-(इत्यर्धोक्तौ लज्जां नाटयति ।) (ततश्च देव ! शक्तिखण्डनामर्षितेन गाण्डीविना भणितम्—अरे रे दुर्योधनप्रमुखाः—)

वीरलोकैः = शूरजनैः, कृतो यः साधुवादः, तेन अन्तरितः = आच्छादितः, समरतूर्यनिर्घोषः = रण-भेरीशब्दः, सिद्धचारणगणविमुक्तकुसुमप्रकरेण—सिद्धाः = देवयोनिविशेषाः, चारणाः = कुशीलवाः, तेषां गणः = समूहः, तेन विमुक्तः = अर्पितः, यः कुसुमप्रकरः = पुष्पसमूहः, तेन, समराङ्गणम् = युद्धक्षेत्रम् । वत्सस्य=पुत्रस्य, कुमारवृषसेनस्येत्यर्थः, तव भ्रातुः=अर्जुनस्य, च, धनुर्वेदशिक्षाचतुरत्वम् = धनुर्विद्याभ्यासनिपुणत्वम् ॥

सुन्दरक इति । विश्रमितायोधनव्यापारौ–विश्रमितः=विरमितः, शिथिलीकृत इत्यर्थः, आयोधनस्य = युद्धस्य, व्यापारः = क्रिया, याभ्यां तौ, मुहूर्तविश्रमितनिजवैरानुबन्धौ–मुहूर्त्तम्=क्षणम्, विश्रमितः=उपशमितः, निजवैरस्य=स्वशत्रुभावस्य, अनुबन्धः = आवेगः याभ्यां तौ, प्रेक्षकौ = दर्शकौ ।।

हुआ है । तो क्षण-भर के लिए मुझे विश्राम लेने दो जिससे हम दोनों वत्स (वृषसेन) और तुम्हारे भाई (अर्जुन) की धनुर्विद्याभ्यासनिपुणता को देख लें । तुम्हें भी यह देखना चाहिए ।

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज ! युद्ध-क्रिया को रोके हुए तथा क्षण-भर के लिए अपने वैर-भाव को शान्त किये हुए भीमसेन और अङ्गराज—दोनों ही दर्शक बन गये ।

दुर्योधन—(अभिप्राय के साथ) उसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज ! शक्ति के खण्डित हो जाने से क्रुद्ध हुए

दुर्योधनः— सुन्दरक, कथ्यताम् । परवचनमेतत् ।

सुन्दरकः—सुणादु देवो । 'अरे दुज्जोहणप्पमुहा कुरुबलसेणापहुणो अविणअणोकण्णधार कण्ण, तुह्मेहिं मह परोक्खं बहुहिं महारहेहि पडिवारिअ एआई कम पुत्तओ अहिमण्णु व्वावादिदो अह उण तुह्माण पेक्खन्ताणं एव्व एदं कुमालविससेण सुमरिदव्वसेस करोमि त्ति भणिअ सगव्वं आप्फालिदं णेण वज्जणिग्घादभीसणजीआरवं गण्डीवम् । सामिणा विसज्जकिदं कालपुट्ठम् । (शृणोतु देवः । अरे, दुर्योधनप्रमुखाः कुरुबलसेनाप्रभवः अविनयनौकर्णधारकर्ण, युष्माभिर्मम परोक्षं बहुभिर्महारथैः परिवृत्यैकाकी मम पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादितः अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेवैतं कुमारवृषसेनं स्मर्तव्यशेषं करोमि' इति भणित्वा सगर्वमास्फालितमनेन वज्रनिर्घातघोषभीषणजीवारवं गाण्डीवम् । स्वामिनापि सज्जीकृतं कालपृष्ठम् ।)

सुन्दरक इति । शक्तिखण्डनामर्षितेन—शक्तेः = आयुधविशेषस्य, खण्डनेन= भञ्जनेन, अमर्षितः = क्रुद्धः, तेन ॥

दुर्योधन इति । परवचनम् = शत्रुकथनमित्यर्थः ।

सुन्दरक इति । दुर्योधनप्रमुखाः—दुर्योधनः = कुरुराजः, प्रमुखः = प्रधानः येषु ते, कुरुबलसेनाप्रभवः—कुरुबलानाम् = कौरवशक्तीनाम्, सेनानाम् = सैन्यानाम्, प्रभवः = स्वामिनः, अविनयनौकर्णधारकर्ण—अविनयः = औद्धत्यम् एव नौः =

अर्जुन ने कहा—"अरे रे दुर्योधन प्रमुख······ (ऐसा आधा ही कहने पर लज्जा का नाट्य करता है ।)

दुर्योधन—कहो सुन्दरक ! यह तो शत्रु का कथन है ।

सुन्दरक—सुनिये महाराज ! "अरे दुर्योधन प्रमुख कौरवसेना के नायको और विनय—हीनता रूपी नाव के कर्णधार कर्ण ! मेरे परोक्ष में तुम सब बहुत से महारथियों ने मिलकर अकेले मेरे पुत्र अभिमन्यु को मार डाला था । लेकिन मैं तुम लोगों के देखते ही इस कुमार वृषसेन को स्मृति—शेष कर रहा हूँ (अर्थात् मौत के घाट उतार रहा हूँ) । ऐसा कहकर इसने गर्व के साथ वज्रपात की ध्वनि के सदृश भयङ्कर प्रत्यञ्चा की ध्वनिवाले गाण्डीव धनुष को चढ़ाया । स्वामी (कर्ण) ने भी कालपृष्ठ नामक धनुष को संभाला ।

दुर्योधनः—(सावहित्थम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो अ देव, पडिसिद्धभीमसेणसमलकम्मालम्भेण गण्डीविणा विरइदा अङ्गराअविससेणरहकूलंकसाओ दुवे बाणणदीओ । तेहिं वि दुवेहिं अण्णोण्णदंसिदसिक्खाविसेसेहिं आभजुतो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो (ततश्च देव, प्रतिषिद्धभीमसेनसमरकर्मारम्भेण गाण्डीविना विरचिते अङ्गराजवृषसेनरथकूलंकषे द्वे बाणनद्यौ । ताभ्यामपि द्वाभ्यामन्योन्यदर्शितशिक्षाविशेषाभ्यामभियुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवः ।)

तरणिः, तस्याः कर्णधारः = सञ्चालकः, स चासौ कर्णः तत्सम्बोधने, परिवृत्य = मिलित्वा; व्यापादितः = हतः, स्मर्त्तव्यशेषम्—स्मर्त्तव्यम् = स्मरणम् शेषः यस्य सः; तादृशम्, करोमि = हन्मीत्यर्थः । वज्रनिर्घातघोषणभीषणजीवारवम्—वज्रनिर्घातः = कुलिशपातः, तस्य निर्घोषः = शब्दः, तद्वत् भीषणः = भयानकः, जीवायाः = मौर्व्याः, रवः = ध्वनिः यस्य तत् तादृशम्, गाण्डीवम् = एतन्नामकः अर्जुनचापः, कालपृष्ठम् = कर्णस्य धनुः ।

टिप्पणी—अविनयनौ—नाव या नौका को नौ कहते हैं—"स्त्रियां नौस्तरणिस्तरि" रित्यमरः । गाण्डीव एवं कालपृष्ठ—अर्जुन के धनुष का नाम गाण्डीव तथा कर्णके धनुषका नाम कालपृष्ठ था—"अथ कर्णस्य कालपृष्ठं शरासनम् । कपिध्वजस्य गाण्डीवगाण्डिवौ पुंनपुंसकावि''त्यमरः । कूलङ्कषे—यहाँ पर कूल उपपद पूर्वक कष् धातु से "सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः" सूत्र से खच् प्रत्यय तथा" अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" से मुम् का आगम हुआ है ।

सुन्दरक इति । प्रतिषिद्धभीमसेनसमरकर्मारम्भेण—प्रतिषिद्धः = अवरुद्धः, भीमसेनस्य = वृकोदरस्य, समरकर्मारम्भः = युद्धव्यापारप्रसरः येन तादृशेन,

दुर्योधन—(मुख के भाव को छिपाकर) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज ! भीमसेन के युद्ध-व्यापार को रोककर अर्जुन ने कर्ण और वृषसेन के रथरूपी तट को काटकर गिरानेवाली बाणों की दो नदियों का निर्माण कर दिया । परस्पर धनुर्विद्या की निपुणता को प्रदर्शित करनेवाले उन दोनों (कर्ण और वृषसेन) के भी द्वारा वह दुष्ट मंझला पाण्डव (अर्जुन) आक्रान्त किया गया ।

दुर्योधन.—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो अ देव, गण्डीविणा ताररसिदजीआणिग्घोसमेत्तविण्णादबाणवरिसेण तह आअरिद पत्तिहिं जह ण णहत्तलं ण सामी ण रहो ण धरणी ण कुमालो ण केदुवंसो ण बलाइं ण सारही ण तुलङ्गमा ण दिसाओ ण वीरलोओ अ लक्खीअदि । (ततश्च देव, गाण्डीविना ताररसितज्यानिर्घोषमात्रविज्ञातबाणवर्षेण तथा चरितं पत्रिभिर्यथा न नभस्तलं न स्वामी न रथो न धरणी न कुमारो न केतुवंशो न बलानि न सारथिनं तुरङ्गमा न दिशो न वीरलोकश्च लक्ष्यते ।)

गाण्डीविना = अर्जुनेन, अङ्गराजवृषसेनरथकूलङ्कषे–अङ्गराजवृषसेनयोः = कर्णतत्पुत्रयोः, रथौ = स्यन्दने एव कूले = तटे, ते कषतः = विदार्य प्रवहतः इति, बाणनद्यौ–बाणाः = इषवः एव नद्यौ, इति बाणनद्यौ, अन्योन्येत्यादिः–अन्योन्यम् = परस्परम्, = दर्शितः = प्रदर्शितः, प्रकटीकृत इत्यर्थः, शिक्षाविशेषः = धनुर्वेदनैपुण्यम् याभ्याम् ताभ्याम्, सः = असौ, दुराचारी = दुष्टः, मध्यमपाण्डवः = अर्जुनः, अभियुक्तः = आक्रान्तः ।।

सुन्दरक इति । ताररसितेत्यादिः—तारम् = उच्चैः, रसितम् = गर्जनम् यस्याः तादृशी या ज्या = मौर्वी, तस्याः निर्घोषमात्रेण, = टङ्कारमात्रेणेत्यर्थः, विज्ञातः = विदितः, बाणवर्षः=शरवर्षणम्, यस्य तादृशेन, गाण्डीविना=अर्जुनेन, पत्रिभिः = शरैः, नभस्तलम् = गगनमण्डलम्, स्वामी = कर्णः, धरिणी = पृथ्वी, केतुवंशः = ध्वजदण्डः, तुरङ्गमाः = अश्वाः । सर्वाणि बाणैराच्छादितत्वान्न दृष्टानीति भावः ॥

टिप्पणी–पत्रिभिः–"पत्रिन्" बाण का पर्याय वाची है–"पृषत्कबाणविशिखा अजिह्मगखगाशुकाः । कलम्बमार्गणशराः पत्री रोप इषुर्द्वयोरि"त्यमरः ।।

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज ! प्रचण्डशब्द करनेवाली प्रत्यञ्चा के गर्जनमात्र से सूचित हो रही थी बाण–वृष्टि जिसकी ऐसे गाण्डीव धारी अर्जुन ने बाणों से ऐसा कौशल प्रदर्शित किया जिससे कि न आकाशमण्डल, न स्वामी कर्ण, न सारथि, न घोड़े, न दिशायें और न वीर पुरुष ही दिखलाई पड़ते थे ।

दुर्योधनः—(सविस्मयम् ।)

सुन्दरकः—तदो अ देव, अदिक्कन्ते सरवरिसे क्खणमेत्तं सिंहणादे पण्डवबले विमुक्काक्कन्दे कौरवबले उत्थिदो महन्तो कलअलो हा हदो कुमालविससेणो हा हदो त्ति । (ततश्च देव, अतिक्रान्ते शरवर्षे क्षणमात्रं ससिंहनादे पाण्डवबले विमुक्ताक्रन्दे कौरवबल उत्थितो महान् कलकलो हा हतः कुमारवृषसेनो हा हत इति !)

दुर्योधनः—(सबाष्पावरोधम् ।) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, महन्तीए वेलाए पेक्खिअ हदसारहितुलङ्गं लूणादवत्तकेदुवंसं सग्गप्पब्भट्टं विअ सुलकुमालं एक्केण ज्जेव मम्मभेदिणा सिलीमुहेण भिण्णदेहं रहमज्झे परिट्ठिदं कुमालं आअदो । (ततो देव, महत्या वेलया प्रेक्ष्य हतसारथितुरङ्गं लूनातपत्रकेतुवंशं स्वर्गप्रभ्रष्टमिव सुरकुमारमेकेनैव मर्मभेदिना शिलीमुखेन भिन्नदेहं रथमध्ये परिस्थितं कुमारमागतः ।)

सुन्दरक इति । अतिक्रान्ते = व्यतीते, ससिंहनादे = सिंहगर्जनङ्कुर्वति सति, पाण्डवबले=पाण्डवसैन्ये, विमुक्ताक्रन्दे=कृतकरुणविलापे सति, उत्थितः=आरब्धः ॥

सुन्दरक इति । वेलया = समयेन, हतसारथितुरङ्गमम्—हताः = व्यापादिताः, सारथितुरङ्गमाः = सूताश्वाः यस्य तम्, लूनातपत्रकेतुवंशम्—लूनौ = छिन्नौ, आतपत्रकेतुवंशौ = छत्रध्वजदण्डौ यस्य तम्, स्वर्गप्रभ्रष्टमिव—स्वर्गात् = सुरलोकात्,

---

दुर्योधन—(आश्चर्यपूर्वक) फ़िर क्या हुआ ?

सुन्दरक—फिर महाराज ! बाण-वर्षा के बीत जाने पर क्षण-भर में ही सिंह-गर्जन करती हुई पाण्डव-सेना में तथा रोती-बिलखती हुई कौरव-सेना में "हाय ! कुमार वृषसेन मारा गया, हाय, मारा गया" इस प्रकार का महान् कोलाहल प्रारम्भ हुआ ।

दुर्योधन—(आँसुओं को रोकते हुए) फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—तो फिर महाराज ! मारे गये सारथि तथा घोड़े वाले, कटे हुए छत्र तथा ध्वज-दण्डवाले, स्वर्ग-च्युत देव-पुत्र के सदृश, एक ही मर्मभेदी बाण से जर्जरित शरीरवाले, रथ में पड़े हुए कुमार को बहुत देर तक देखकर मैं चला आया ।

दुर्योधनः—(सास्रम् ।) अहह कुमारवृषसेन, अलमतः परं श्रुत्वा । हा वत्स वृषसेन, हा मदङ्कदुर्ललित, हा गदायुद्धप्रिय, हा राधेयकुलप्ररोह, हा प्रियदर्शन, हा दुःशासननिर्विशेष, हा सर्वगुरुवत्सल, प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

पर्याप्तनेत्रमचिरोदितचन्द्रकान्त-
मुद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम् ।
प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि दृष्टं
कर्णेन तत्कथमिवाननपङ्कजं ते ॥ १० ॥

प्रभ्रष्टम् = प्रच्युतम् इव, सुरकुमारम् = देवपुत्रम्, मर्मभेदिना = हृदयविदारकेण, शिलीमुखेन = वाणेन, भिन्नदेहम्—भिन्नः = विदीर्णः, देहः = कायः यस्य तम् ॥

अन्वयः—कर्णेन, ते, पर्याप्तनेत्रम्, अचिरोदितचन्द्रकान्तम्, उद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम्, प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि, तत्, आननपङ्कजम्, कथमिव, दृष्टम् ? ॥ १० ॥

व्याख्या—पर्याप्तनेत्रमिति । कर्णेन = त्वज्जनकेन, ते = तव, वृषसेनस्येत्यर्थः, पर्याप्तनेत्रम्—पर्याप्तम् = दीर्घम्, नेत्रम् = नयनम् यस्मिन् तत; अचिरोदितचन्द्रकान्तम्—अचिरात्=तत्क्षणमित्यर्थः, उदितः=निर्गतः, चन्द्रः = इन्दुः इव कान्तम् = सुन्दरम्, उद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम्—उद्भिद्यमानम्= प्रादुर्भूयमानम्, यत् नवम् = नूतनम् यौवनम्=तारुण्यम्, तेन रम्या=मनोहारिणी, शोभा = छविः यस्य तत्, प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि—प्राणानाम् = असूनाम्,

दुर्योधन—(आँसू भरकर) अहह कुमार वृषसेन ! इसके बाद सुनने की आवश्यकता नहीं । हाय वत्स वृषसेन । हाय मेरी गोद के लिए आग्रही ! हाय गदा-युद्ध के प्रेमी ! हाय कर्ण वंश के अङ्कुर ! हाय देखने में प्रिय लगने वाले ! हाय दुःशासन के समान प्रिय ! हाय सभी गुरुजनों के प्यारे ! मुझे उत्तर दो ।

बड़ी-बड़ी आँखों वाले, तत्क्षण उदित चन्द्रमा के समान रम्य, उमड़ते हुए नये यौवन के कारण मनोहर छवि से सम्पन्न, प्राणों के निकल जाने से पलटी हुई दृष्टि वाले तुम्हारे कमल-सदृश मुख को कर्ण ने किस प्रकार देखा होगा ? ॥ १० ॥

सूतः—आयुष्मन्, अलमत्यन्तदुःखावेगेन।

दुर्योधनः—सूत, पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति। अस्माकं पुनः—

प्रत्यक्षं हतबन्धूनामेतत्परिभवाग्निना।
हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं कुतो दुःखं कुतो व्यथा ॥ ११ ॥

यः अपहारः = विनाशः, तेन परिवर्तिता = विपरीता, दृष्टिः = दर्शनम् यत्र तत्, तत् = तादृशम्, अतिशोभायमानमितिभावः, आननपङ्कजम् = मुखकमलम्, कथमिव = केन प्रकारेण, दृष्टम्=विलोकितम् ॥ १० ॥

टिप्पणी—पर्याप्तनेत्रमिति। आननपङ्कजम्—"आननम् पङ्कजमिव" इस अर्थ में उपमित समास हुआ है। पद्य के चतुर्थ चरण में लुप्तोपमा अलङ्कार है। वसन्ततिलका छन्द है ॥ १० ॥

अन्वयः—प्रत्यक्षम्, हतबन्धूनाम्, (अस्माकम्), हृदयम्, परिभवाग्निना, अत्यर्थम्, दह्यते, (अतोऽस्माकम्) कुतः, दुःखम्, कुतः, व्यथा ? ॥ ११ ॥

व्याख्या—प्रत्यक्षमिति। प्रत्यक्षम्=समक्षम्, न तु परोक्षम्, हतबन्धूनाम्—हताः = व्यापादिताः, बन्धवः = स्वजनाः येषां तेषाम्, अस्माकमिति शेषः, हृदयम् = चित्तम्, परिभवाग्निना—परिभवः = तिरस्कारः एव अग्निः = अनलः, तेन, अत्यर्थम् = अत्यन्तम्, दह्यते = भस्मसात्क्रियते, (अतोऽस्माकम्), कुतः = कस्मात्, दुःखम्=कष्टम्, कुतः=कस्मात्, व्यथा=पीडा ? ॥११॥

टिप्पणी—प्रत्यक्षमिति। कुतः दुखम्—वेदान्तियों के अनुसार अन्तःकरण दुःख का समवायि कारण है। दुःख का आधार वस्तुतःअन्तःकरण ही होता है अतः यदि अन्तःकरण ही नष्ट हो जाय जो आधार स्वरूप है तो फिर दुःखरूप आधेय की सत्ता कैसे रह सकती है। इसलिए दुर्योधन ने "कुतो दुःखम्, कुतो व्यथा" ऐसा कहा है। पद्य के द्वितीयचरण में रूपक अलङ्कार है। पथ्या-वक्त्र छन्द है ॥ ११ ॥

सूत—महाराज ! अधिक दुःखावेश में न पड़ें।

दुर्योधन—सूत ! पुण्यवान् लोग ही दुःख के भागी होते हैं। हमलोगों को तो—सामने ही मार डाले गये हैं बान्धववाले (हमलोगों) का हृदय अपमान-रूपी अग्नि से अत्यन्त जल रहा है (इसलिए हमें) कहाँ से दुःख और कहाँ से पीड़ा ? ॥ ११ ॥

(इति मोहमुपगतः ।)

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः । (इति पटान्तेन वीजयति ।)

दुर्योधनः—(लब्धसंज्ञः) भद्र सुन्दरक, ततो वयस्येन किं प्रतिपन्न-मङ्गराजेन ।

सुन्दरकः—तदो अ देव, तधाविधस्स पुत्तस्सदंसणेण संगलिदं अस्सु-जादं उज्झिअ अणवेक्खिदपरप्पहोणालोएण सामिणा अभिजुत्तो धणंजओ । तं अ सुतवहामरसुरिद्दरविदपक्कम्म तह परिक्कमन्त पेक्खिअ णउलसहदेवपञ्चालप्पमुहेहिं अन्तरिदो धणंजअस्स रहवरो । (ततश्च देव, तथाविधस्य पुत्रस्य दर्शनेन संगलितमश्रुजातमुज्झित्वाऽनपेक्षितपरप्रहरणेन स्वामिनाभियुक्तो धनञ्जयः । तं च सुतवधामर्षोद्दीपितपराक्रमं तथा परिक्रामन्तं प्रेक्ष्य नकुलसहदेवपाञ्चालप्रमुखैरन्तरितो धनञ्जयस्य रथवरः ।)

सूत इति । पटान्तेन = वस्त्रान्तेन, वीजयति = व्यजनक्रियां करोति ।

दुर्योधन इति । वयस्येन=मित्रेण, कर्णेनेत्यर्थः, किम्, प्रतिपन्नम्=कृतम् ।

सुन्दरक इति । तथाविधस्य = तादृशस्य, मृतस्येत्यर्थः, सङ्गलितम् = प्रस्रवितम्; अश्रुजातम् = नेत्राम्बु, उज्झित्वा=त्यक्त्वा, अवरुध्येत्यर्थः, अनपेक्षित-परप्रहरणेन—अनपेक्षितम् = उपेक्षितम्, परेषाम् = शत्रूणाम्, प्रहरणम्=प्रहारो येन सः; तेन, स्वामिना = अङ्गराजेन कर्णेन, अभियुक्तः = आक्रान्तः । सुत-

सूत—धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें महाराज ! (यह कहकर वस्त्र के छोर से हवा करता है ।) ।

दुर्योधन—(चेतना पाकर) भद्र सुन्दरक ! तब मित्र (अङ्गराजकर्ण) ने क्या किया ?

सुन्दरक—महाराज ! उसके बाद उस प्रकार (मृत) पुत्र को देखकर, बहते हुए आँसुओं को त्यागकर शत्रुओं के प्रहार की उपेक्षा करते हुए स्वामी (कर्ण) के द्वारा अर्जुन पर आक्रमण कर दिया गया । पुत्र-वध के क्रोध से बढ़े हुए पराक्रमवाले उसे (कर्ण को) उस प्रकार पराक्रम करते हुए देखकर नकुल, सहदेव तथा पाञ्चाल आदि के द्वारा अर्जुन का श्रेष्ठ रथ ओट में कर दिया गया ।

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—तदो देव, सल्लेण भणिदम्—'अङ्गराअ, हदतुलङ्गमो भग्ग-कूब्बरो दे रहो ण जोग्गो भीमाज्जुणेहिं सह आजुज्झिदुम्' त्ति पडिवट्टिदो रहो ओदारिदो सामी सन्दणादो बहुप्पआरं अ समस्सासिदो । तदो अ सामिणा सुइरं विलपिअ परिअणावणीदं अण्णं रहं पेक्खिअ दीहं निससिअ मइ दिट्ठी विणिक्खिविदा । सुन्दरअ एहि त्ति भणिदं अ । तदो अहं उवगदो सामिसमीवम् । तदो अवणिअ सीसट्ठाणादो पट्टिअं सरीरसंगलिदेहिं सोणिअहिं लित्तमुहं बाणं कडुअ आहिलिहिअ प्पेसिदो देवस्स सन्देसो । (इति पट्टिकामर्पयति ।) (ततो देव, शल्येन भणितम्—'अङ्गराज, हततुरङ्गमो भग्नकूबरस्ते रथो न योग्यो भीमार्जुनाभ्यां सहायोद्धुम्'—इति परिवर्तितो रथोऽवतारितः स्वामी स्यंदनाद्बहुप्रकारं च समाश्वासितः । ततश्च स्वामिना सुचिरं विलप्य परिजनोपनीतमन्यं रथं प्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वस्य मयि दृष्टिर्विनिक्षिप्ता । सुन्दरक, एहीति भणितं च । ततोऽहमुपगतः स्वामिसमीपम् ।

वधामर्षोद्दीपितपराक्रमम्—सुतस्य = पुत्रस्य यो वधः=हननम्, तेन यः अमर्षः= क्रोधः, तेन उद्दीपितः = वर्द्धितः, पराक्रमः = शौर्यम् यस्य सः, तम् ॥

सुन्दरक इति । हततुरङ्गमः—हताः = व्यापादिताः, तुरङ्गमाः=घोटकाः यस्य सः, भग्नकूबरः—भग्नः=ध्वस्तः, कूबरः=युगन्धरः, रथस्य युगकाष्ठवन्धनम् यस्य सः । अवतारितः = उत्तारितः । परिजनोपनीतम् = सेवकजनानीतम्, प्रेक्ष्य = विलोक्य; दीर्घं निःश्वस्य = उच्चैः श्वासं गृहीत्वा, मयि = सुन्दरके,

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—उसके बाद महाराज ! शल्य ने कहा—"अङ्गराज ! तुम्हारा रथ, जिसके घोड़े मार डाले गये हैं तथा जिसका कूबर टूट चुका है, भीम और अर्जुन के साथ युद्ध करने के योग्य नहीं रह गया ।" ऐसा कहकर रथ घुमा लिया गया, स्वामी (कर्ण) रथ से उतार लिये गये और बहुत प्रकार से धैर्य बँधाये गये । उसके बाद स्वामी ने अधिक देर तक विलाप करके सेवकों द्वारा लाये गये दूसरे रंथ को देखकर, लम्बी साँस लेकर मुझ सुन्दरक पर दृष्टि डाली ।" सुन्दरक ! यहाँ आओ" ऐसा उन्होंने कहा भी । उसके बाद

ततोऽपनीय शीर्षस्थानात्पट्टिकां शरीरसंगलितैः शोणितबिन्दुभिर्लिप्तमुखं बाणं कृत्वाऽभिलिख्य प्रेषितो देवस्य संदेशः।)

(दुर्योधनो गृहीत्वा वाचयति ।)

यथा—स्वस्तिमहाराजदुर्योधन समराङ्गणात्कर्ण एतदन्तं कण्ठे गाढमालिङ्ग्य विज्ञापयति—

अस्त्रग्रामविधौ कृतौ न समरेष्वस्यास्ति तुल्यं पुमान्
भ्रातृभ्योऽपि ममाधिकोऽयममुना जेयाः पृथासूनवः ।
यत्संभावित इत्यहं न च हतो दुःशासनारिर्मया ।
तं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयोर्वीर्येण बाष्पेण वा ॥ १२ ॥

दृष्टिः = नेत्रम्, विनिक्षिप्ता=निपातिता, दत्तेत्यर्थः । शीर्षस्थानात् = मस्तकात्, पट्टीकाम् = मस्तकवेष्टनवस्त्रम्, अपनीय = अधोनिपात्य, शरीरसंगलितैः = वपुश्च्युतैः, शोणितबिन्दुभिः, बाणम् = शरम्, लिप्तमुखम् = लिप्तं मुखं यस्य तादृशं कृत्वेत्यर्थः, पट्टिकायामभिलिख्येति शेषः ।

टिप्पणी—भग्नकूवरः—जुए के काठ को कूवर कहा जाता है—"कूवरस्तु युगन्धर" इत्यमरः ।

अन्वयः—अयम्, अस्त्रग्रामविधौ, कृती, (विद्यते, कश्चिदपि), पुमान्, समरेषु, अस्य, तुल्यः, न, अस्ति, (अयम्), मम, भ्रातृभ्यः, अपि, अधिकः, (अस्ति), अमुना, पृथासूनवः, जेयाः, इति, अहम्, यत्, सम्भावितः, च, मया, दुशासनादिः, न, हतः, (अतः, इदानीम्), त्वम्, भुजयोः, वीर्येण, वा, बाष्पेण, दुःखप्रतिकारम्, एहि ॥ १२ ॥

मैं स्वामी के नजदीक गया । उसके बाद मस्तक से पट्टी खोलकर शरीर से टपकते हुए रक्त की बूँदों से बाण के मुख को भिगो कर संदेश लिखा और महाराज के पास भेज दिया । (ऐसा कहकर पत्रिका देता है और दुर्योधन उसे लेकर बाँचता है ।)

स्वस्ति, कर्ण युद्धस्थल से महाराज दुर्योधन का यह अन्तिम कण्ठालिङ्गन करके निवेदन करता है—

"यह शस्त्र-समूह के सञ्चालन में निपुण (है; कोई भी) पुरुष युद्ध में इसके सदृश नहीं है; (यह) मेरे भाइयों से भी अधिक है; इसके द्वारा पृथा के

दुर्योधनः—वयस्य कर्ण, किमिदं भ्रातृशतवधदुःखितं मामपरेण वाक्शल्येन घट्टयसि। भद्र सुन्दरक, अथेदानीं किमारम्भोऽङ्गराजः।

व्याख्या—अस्त्रग्रामविधाविति। अयम् = एषः, कर्ण इत्यर्थं, अस्त्रग्रामविधौ = शस्त्रसमूहसञ्चालनक्रियायाम्, कृती = निपुणः, विद्यते, कश्चिदपीति शेषः, पुमान् = पुरुषः, समरेषु = सङ्ग्रामेषु, अस्य = एतस्य, एतादृशस्य शस्त्रसञ्चालननिपुणस्येत्यर्थः, तुल्यः = सदृशः, न = नहि, अस्ति = वर्तते, (अयम्), मम = दुर्योधनस्य, भ्रातृभ्यः = अनुजेभ्यः, अपि, अधिकः = विशिष्टः अस्तीति शेषः, अमुना = अनेन, कर्णेनेत्यर्थः, पृथासूनवः=पृथापुत्राः, जेयाः = जेतुं योग्याः, अनेन पाण्डवोपरि विजयो भवेदिति भावः। इति = एवं प्रकारेण, अहम् = कर्णः, यत् सम्भावितः = सत्कृतः, त्वया आशाविषयः कृत इति भावः, च = किन्तु, मया = कर्णेन, दुःशासनारिः = दुःशासनशत्रुः, भीम इत्यर्थः, न = नहि, हतः = व्यापादितः, (अत इदानीम्) त्वम् = दुर्योधन इत्यर्थः, भुजयोः = बाह्वोः, वीर्येण = बलेन, वा = अथवा, वाष्पेण = अश्रुणा, दुःखप्रतिकारम् = कष्टविनाशोपायम्, एहि = प्राप्नुहि। यदि बलं तर्हि युद्ध्वा अन्यथा रुदित्वा दुःखं स्वल्पं कुर्वित्यर्थः। अहं तव शत्रु-संहारेऽक्षमो मरणायोद्यत इति गूढाशयः॥ १२॥

टिप्पणी—अस्त्रग्रामविधाविति। प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥ १२॥

दुर्योधन इति। भ्रातृशतवधदुःखितम् = भ्रातृशतस्य, वधेन = विनाशेन दुःखितम् = पीडितम्, माम्, अपरेण = अन्येन, वाक्शल्येन—वाक् = वाणी, शल्यम् = शङ्कुः इव तेन, घट्टयसि = पीडयसि॥

टिप्पणी—वाक्शल्येन—वर्छी को शल्य कहते हैं—"वा पुंसिशल्यं शङ्कुर्ना"त्यमरः।

पुत्र (पाण्डव) जीत लिये जायेंगे"; इस विचार से मैं आप के द्वारा सम्मानित किया गया (अर्थात् आशा का केन्द्र बनाया गया) किन्तु मैं दुःशासन के शत्रु (भीम) को न मार सका; (इसलिए अब) आप स्वयं (अपनी) भुजाओं के बल से अथवा आँसुओं से (अपने) दुःख का प्रतिकार करें॥ १२॥

दुर्योधन—मित्र कर्ण! सौ भाइयों के वध से दुःखी मुझको यह दूसरी वचनरूपी बर्छी से क्यों बींध रहे हो? भद्र सुन्दरक! तो अब अङ्गराज क्या कार्य कर रहे हैं?

सुन्दरक—देव, अज्ज वि आरम्भो पुच्छीअदि। अवणीदसरीरावरणो-अप्पवहक्किदणिच्चओ पुणोवि पत्थेण सह समलं मग्गदि। (देव, अद्या-प्यारम्भः पृच्छयते। अपनीतशरीरावरण आत्मवधकृतनिश्चयः पुनरपि पार्थेन सह समरं मार्गयते।)

दुर्योधनः—(आवेगादासनादुत्तिष्ठन्।) सूत, रथमुपनय। सुन्दरक, त्वमपि मद्वचनात्त्वरिततरं गत्वा वयस्यमङ्गराजं प्रतिबोधय। अलमति-साहसेन। अभिन्न एवायमावयोः संकल्पः न खलु भवानेको जीवितपरि-त्यागाकाङ्क्षी, किंतु—

हत्वा पार्थान्सलिलमशिवं बन्धुवर्गाय दत्त्वा
मुक्त्वा बाष्पं सह कतिपयैर्मन्त्रिभिश्चारिभिश्च।
मुक्त्वाऽन्योन्यं सुचिरमपुनर्भावि गाढोपगूढं
संत्यक्ष्यावो हततनुमिमां दुःखितौ निर्वृतौ च॥ १३॥

सुन्दरक इति। अपनीतशरीरावरणः—अपनीतम् = परित्यक्तम्, शरीरस्य= देहस्य, आवरणम् = आच्छादनम्, कवचमित्यर्थः, येन सः, (अतः) आत्म-वधकृतनिश्चयः—आत्मनः = स्वस्य, वधाय=विनाशाय, कृतः, निश्चयः=निर्णयः, येन सः, मार्गयते = अन्वेषयति, इच्छतीत्यर्थः।

दुर्योधन इति। अभिन्नः = समानः, एवास्माकम्, संकल्पः = निर्णयः, जीवितपरित्यागाकांक्षी=प्राणपरित्यागाभिलाषी।

अन्वयः—पार्थान्, हत्वा, बन्धुवर्गाय, अशिवम्, सलिलम्, दत्त्वा, कतिपयैः, मन्त्रिभिः, च, अरिभिः, सह, बाष्पम्, मुक्त्वा, परस्परम्, सुचिरम्, अपुनर्भावि, गाढोपगूढम्, कृत्वा, दुःखितौ, च, निर्वृतौ, इमाम्, हततनुम्, सन्त्यक्षावः॥१३॥

सुन्दरक—महाराज! अब भी कार्य पूछ रहे हैं! कवच को उतार कर अपने वध का निश्चय करके फिर भी अर्जुन के साथ युद्ध का अवसर ढूंढ़ रहे हैं।

दुर्योधन—(वेग के साथ आसन से उठते हुए) सूत! रथ लाओ। सुन्दरक! तुम भी मेरी आज्ञा से अतिशीघ्र जाकर मित्र अङ्गराज को सूचित करो कि—अधिक साहस की आवश्यकता नहीं। हम दोनों का निश्चय एक ही है। आप अकेले ही प्राणत्याग की इच्छा नहीं कर रहे; बल्कि—

पृथा के पुत्रों (पाण्डवों) को मारकर, बन्धुवर्ग को अमङ्गल जल

अथवा शोकं प्रति मया न किंचित्सन्देष्टव्यम् ।

वृषसेनो न ते पुत्रो न मे दुःशासनोऽनुजः ।
त्वां बोधयामि किमहं त्वं मां संस्थापयिष्यसि ॥ १४ ॥

व्याख्या—हत्वेति । पार्थान् = पृथासुतान्, पाण्डवानित्यर्थः, हत्वा=व्यापाद्य, बन्धुवर्गाय = बान्धवसमूहाय, ये बन्धवो युद्धे हतास्तेभ्य इति भावः । अशिवम् = अमङ्गलम्, सलिलम् = जलम्, तिलाञ्जलिमित्यर्थः, दत्त्वा = समर्प्य, कतिपयैः = कियद्भिः, अवशिष्टैरित्यर्थः, मन्त्रिभिः = अमात्यैः, च = तथा, अरिभिः=शत्रुभिः, सह = साकम्, बाष्पम् = अश्रु, मुक्त्वा = त्यक्त्वा, परस्परम् = अन्योन्यम्, सुचिरम्, सुदीर्घकालं यावत्, अपुनर्भावि = पुनर्भवितु शीलमस्येति पुनर्भावि, न पुनर्भावीत्यपुनर्भावि, गाढोपगूढम् = प्रगाढालिङ्गनम्, कृत्वा = विधाय, दुःखितौ= पीडितौ, बन्धुवर्गविनाशेनेति भावः, च = पुनः, निर्वृतौ = सन्तुष्टौ, पाण्डववधेन कृतकृत्यत्वादिति भावः । इमाम् = एताम्, हततनुम् = अधमशरीरम्, सन्त्यक्ष्यावः = हास्यावः, आवामिति शेषः ॥ १३ ॥

टिप्पणी—हत्वेति पद्य में मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ १३ ॥

अन्वयः—वृषसेनः, ते, पुत्रः, न, दुःशासनः, न, मे, अनुजः (अत्र), अहम्, त्वाम्, किम्, बोधयामि ? (वा,) त्वम्, माम्, (किम्) संस्थापयिस्यसि ? ।१४।

व्याख्या—वृषसेन इति । वृषसेनः = वृषसेनः, ते = तव, पुत्रः = सुतः, न = न आसीत्, दुःशासनः, न मे = मम, अनुजः = लघुभ्राता, (अत्र=अस्मिन् विषये), अहम् = दुर्योधनः, त्वाम् = कर्णम्, किम् बोधयामि = आश्वासयामि, (वा = अथवा) त्वम् = भवान्, कर्णः, माम् = दुर्योधनम् (किम्), संस्थापयिस्यसि = बोधयिष्यसि ? ॥ १४ ॥

(तिलाञ्जलि) देकर (शेष बचे हुए) कुछ मन्त्रियों एवं शत्रुओं के साथ आँसू बहाकर और परस्पर पुनः न होनेवाला (अर्थात् अन्तिम) गाढ आलिङ्गन करके दुःखी और सन्तुष्ट हुए हमदोनों इस अधम शरीर को त्याग देंगे ॥ १३ ॥

अथवा शोकाकुल के प्रति मुझे कुछ भी सन्देश नहीं भेजना चाहिए । वृषसेन तुम्हारा पुत्र नहीं था और न ही दुःशासन मेरा भाई था (अन्यथा इस मुसीबत में वे हमारा साथ छोड़कर न चल देते) । (इस विषय में) मैं तुझे क्या सान्त्वाना दूँ ? (अथवा) तुम ही मुझे (क्या) सान्त्वना दोगे ? (इस संसार में तो ऐसा ही होता आया है) ॥ १४ ॥

सुन्दरकः—जं देवो आणवेदि [इति निष्क्रान्तः] (यद्देव आज्ञापयति ।)

दुर्योधनः—तूर्णमेव रथमुपस्थापय ।

सूतः—(कर्णं दत्त्वा ।) देव, ह्रेषासंवलितो नेमिध्वनिः श्रूयते । तथा तर्कयामि नूनं परिजनोपनीतो रथः ।

दुर्योधनः—सूत, गच्छ त्वं सज्जीकुरु ।

सूतः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति ।)

दुर्योधनः—(विलोक्य) किमिति नारूढोऽसि ।

सूतः—एष खलु तातोऽम्बा च सञ्जयाधिष्ठितं रथमारुह्य देवस्य समीपमुपगतौ ।

टिप्पणी—वृषसेन इति । यह पद्य अनुष्टुप् छन्द में है ।। १४ ।।

दुर्योधन इति । तूर्णमेव = शीघ्रमेव ।

सूत इति । ह्रेषासंवलितः = अश्वशब्दयुक्तः, नेमिध्वनिः, चक्रप्रान्तशब्दः, तर्कयामि = अनुमिनोमि, नूनम् = निश्चयम्, परिजनोपनीतः = स्वजनानीतः ।

टिप्पणी—सूत इति । ह्रेषा—घोड़े की हिनहिनाहट को 'ह्रेषा' कहा जाता है । नूनम्—निश्चय या अनुमान के अर्थ में 'नूनम्' का प्रयोग किया जाता है—"नूनं तर्केऽर्थनिश्चये" इत्यमरः । सज्जीकुरु—'असज्ज सज्जं कुरु" इस अर्थ में "कृभ्वस्तियोगे" सूत्र से 'च्वि' प्रत्यय तथा "अस्य च्वौ" से ईत्व करके 'सज्जीकुरु' सिद्ध हुआ ।

सुन्दरक—महाराज की जो आज्ञा (यह कहकर निकल जाता है) ।

दुर्योधन—शीघ्र ही रथ उपस्थित करो ।

सूत—(कान लगाकर) महाराज ! हिनहिनाहट से मिश्रित पहिये की नेमि (परिधि, घेरे) की आवाज सुनाई पड़ रही है । अतः अनुमान करता हूँ कि निश्चय ही (यह) सेवकों द्वारा लाया हुआ रथ है ।

दुर्योधन—सूत ! जाओ । तुम तैयार करो ।

सूत—महाराजकी जो आज्ञा । (यह कहकर बाहर जाकर पुनः प्रवेश करता है) ।

दुर्योधन—(देखकर) (तुम रथ पर) चढ़े क्यों नहीं हो ?

सूत—यह माताजी एवं पिताजी सञ्जय के द्वारा अधिष्ठित रथ पर बैठकर महाराज के समीप आये हैं ।

दुर्योधनः—किं नाम ताताऽम्बा च संप्राप्तौ । कष्टमतिबीभत्समाचरितं दैवेन सूत, गच्छ त्वं स्यन्दनं तूर्णमुपहरः । अहमपि तातदर्शनं परिहरन्नेकान्ते तिष्ठामि ।

सूतः—देव, त्वदेकशेषबान्धवावेतौ कथमिव न समाश्वासयसि ।

दुर्योधनः—सूत, कथमिव सामाश्वासयामि विमुखभागधेयः, पश्य—

अद्यैवावां रणमुपगतौ तातमम्बां च दृष्ट्वा
घ्रातस्ताभ्यां शिरसि विनतोऽहं च दुःशासनश्च ।
तस्मिन्बाले प्रसभमरिणा प्रापिते तामवस्थां
पार्श्वं पित्रोरपगतघृणः किन्नु वक्ष्यामि गत्वा ॥ १५ ॥

सूत इति । तातः = धृतराष्ट्रः, अम्बा = माता, गान्धारीत्याशयः ।

दुर्योधन इति । अतिबीभत्सम् = अत्यनुचितम्, दैवेन = भाग्येन, समरप्रयाणकाले पित्रोरागमनं विघ्नकरमित्याशयः ।

सूत इति । त्वदेकशेषबान्धवौ—त्वम् = भवान्, एकः, शेषः = अवशिष्टः, जीवित इत्यर्थः, बान्धवः = स्वजनः ययोस्तौ, एतौ = मातापितरौ, समाश्वासयिष्यसि = सान्त्वयिष्यसि ।

दुर्योधन इति । विमुखभागधेयः—विमुखम् = पराङ्मुखम्, भागधेयम् = भाग्यम् यस्य सः ।

अन्वयः—आवाम्, अद्य, एव, तातम्, च, अम्बाम्, दृष्ट्वा, रणम्, उपगतौ, विनतः, अहम्, च, दुःशासनः, च, शिरसि, ताभ्याम्, घ्रातः, तस्मिन्, बाले, अरिणा, प्रसभम्, ताम्, अवस्थाम्, प्रापिते, अपगतघृणः, (अहम्), पित्रोः, पार्श्वम्, गत्वा, किन्नु, वक्ष्यामि ? ॥ १५ ॥

दुर्योधन—क्या माताजी एवं पिताजी आये हैं ? भाग्य ने यह कैसा अनर्थ किया है ? सूत ! तुम जाओ, शीघ्र ही रथ लाओ । मैं भी पिता की दृष्टि बचाकर एकान्त में खड़ा रहता हूँ ।

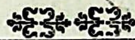
सूत—महाराज ! आप इन्हें, जिनके आप ही एकमात्र सम्बन्धी बच रहे हैं, क्यों नहीं सान्त्वना देते ?

दुर्योधन—सूत ! प्रतिकूल भाग्यवाला मैं किस प्रकार सान्त्वना दूँ ? देखो—

आज ही हम दोनों (दुर्योधन और दुःशासन) पिताजी तथा माताजी को देखकर युद्धभूमि में गये थे और उन दोनों के द्वारा (प्रणाम करने के लिए)

तथाप्यवश्यं वन्दनीयौ गुरू। (इति निष्क्रान्तौ)

इति चतुर्थोऽङ्कः।



व्याख्या—अद्यैवेति। आवाम् = दुर्योधनदुःशासनाविति भावः। अद्य = अस्मिन्नहनि, एव, तातम् = पितरम्, धृतराष्ट्रमित्यर्थः, च = तथा, अम्बाम् = मातरम्, गान्धारीमित्यर्थः, दृष्ट्वा = विलोक्य, रणम् = सङ्ग्राम-भूमिम्, उपगतौ = उपयातौ; विनतः = प्रणामार्थं नम्रः, अहम् = दुर्योधनः, च = तथा; दुःशासनः, शिरसि = मस्तके, मस्तकावच्छेदेनेत्यर्थः, ताभ्याम् = मातापितृभ्याम्, घ्रातः = घ्राणविषयीकृतः, तस्मिन् = तादृशे, बाले = बालके, अरिणा = शत्रुणा; भीमेनेत्यर्थः, प्रसभम् = बलात्, ताम् = तादृशीम्, अवस्थाम् = दशाम्, प्रापिते = योजिते सति, अपगतघृणः = निष्करुणः, (अहम् = दुर्योधनः), पित्रोः = मातापित्रोः, पार्श्वम् = समीपम्, गत्वा = यात्वा, किन्नु = किम्, वक्ष्यामि = कथयिष्यामि ? कथन्तौ सान्त्वयिष्यामीति भावः ॥ १५ ॥

टिप्पणी—अद्यैवेति। अपगतघृणः—अपगता घृणा यस्य सः (बहुव्रीहि समास) घृणाशब्द करुणा के पर्यायवाची के रूप में भी प्रयुक्त होता है—"जुगुप्सा करुणा घृणे"त्यमरः। शिरसि घ्रातः—प्राचीन समय में कहीं जाने के समय या कहीं से आने पर बड़े-बूढ़ों द्वारा छोटे व्यक्ति के सिर को सूँघकर स्नेह प्रदर्शित करने की प्रथा प्रचलित थी। आज भी यह रिवाज यत्र-तत्र है ही। इस पद्य में मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ १५ ॥

इति "कमलेश्वरी" संस्कृतव्याख्यायां वेणीसंहारनाटकस्य चतुर्थोऽङ्कः।



झुके हुए मेरे तथा दुःशासन के सिर सूँघे गये थे। उस बालक के शत्रु (भीम) द्वारा उस दशा (मृत्यु) को प्राप्त करा देने पर मैं निर्दय माता-पिता के पास जाकर क्या कहूँगा ? ॥ १५ ॥

तो भी गुरुजनों की वन्दना अवश्य करनी चाहिए।

(दोनों बाहर निकल जाते हैं।)

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥



पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति रथयानेन गान्धारी संजयः धृतराष्ट्रश्च ।)

धृतराष्ट्रः—वत्स संजय, कथय कथय कस्मिन्नुद्देशे कुरुकुलकाननैकशेषप्रवालो वत्सो मे दुर्योधनस्तिष्ठति । कच्चिज्जीवति वा न वा ।

गान्धारी—जाद, जइ सच्चं जीवदि मे वच्छो ता कधेहि कस्सिं देसे वट्टदि । (जात, यदि सत्यं जीवति मे वत्सस्तत्कथय कस्मिन्देशे वर्तते ।)

संजयः—नन्वेष महाराज एक एव न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति ।

गान्धारी—(सकरुणम् ।) जाद, एआइ त्ति भणासि । किं णु क्खु सम्पदं भादुसदं से पास्से भविस्सदि । (जात, एकाकीति भणसि किं नु खलु साम्प्रतं भ्रातृशतमस्य पार्श्वे भविष्यति ।)

धृतराष्ट्र इति । कुरुकुलकाननैकशेषप्रवालः—कुरुकुलम् = कुरुवंशः, एव काननम् = वनम्, तस्मिन् एकशेषः = एकमात्रावशिष्टः, प्रवालः, = अङ्कुरः सः तादृशः, कच्चिदिति प्रश्ने ।

सञ्जय इति । अवतरतम्=अवतीर्णौ भवतम् युवाभिति भावः । स्वैरम्=शनैः ।

(तत्पश्चात् रथ पर बैठकर गान्धारी, संजय एवं धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं ।)

धृतराष्ट्र—वत्स सञ्जय ! बतलाओ, बतलाओ, कुरुकुलरूपी वन का एकमात्र बचा हुआ अङ्कुर, मेरा पुत्र दुर्योधन किस जगह है ? जीवित है अथवा नहीं ?

गान्धारी—बेटा ! यदि सचमुच मेरा बेटा जीवित है तो बतलाओ किस जगह है ?

सञ्जय—यह महाराज अकेले ही वट-वृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं ।

गान्धारी—(करुणा के साथ) बेटा ! 'अकेले हैं'—ऐसा कह रहे हो ? संभवतः इस समय इसके पास तो सौ भाई होंगे ।

संजयः— तात, अम्ब, अवतरतं स्वैरं रथात् ।

(उभाववतरणं नाटयतः ।)

(ततः प्रविशति सव्रीडमुपविष्टो दुर्योधनः ।)

संजयः—(उपसृत्य ।) विजयतां महाराजः । नन्वेष तातोऽम्बया सह प्राप्तः । किं न पश्यति महाराजः ।

(दुर्योधनो वैलक्ष्यं नाटयति ।)

धृतराष्ट्रः—

शल्यानि व्यपनीय कङ्कवदनैरुन्मोचिते कङ्कटे
बद्धेषु व्रणपट्टकेषु शनकैः कर्णे कृतापाश्रयः ।
दूरान्निर्जितशात्रवान्नरपतीनालोकयँल्लीलया
सह्या पुत्रक वेदनेति न मया पापेन पृष्टो भवान् ॥ १ ॥

तत इति । सव्रीडम् = सलज्जम् ।

वैलक्ष्यम् = लज्जाम् ।

अन्वयः—कङ्कटे, उन्मोचिते, कङ्कवदनैः, शल्यानि, व्यपनीय, व्रणपट्टकेषु, शनकैः, बद्धेषु, कर्णे, कृतापाश्रयः, निर्जितशात्रवान्, नरपतीन्, लीलया, दूरात्, आलोकयन्, भवान्, पापेन, मया, (हे) पुत्रक, (त्वया), वेदना, सह्या, इति, न, पृष्टः ॥ १ ॥

सञ्जय—पिताजी, माताजी, रथ से धीरे-धीरे उतरिये ।

(दोनों उतरने का अभिनय करते हैं ।)

(तत्पश्चात् बैठा हुआ लज्जित दुर्योधन प्रवेश करता है ।)

सञ्जय—(समीप जाकर) महाराज की जय हो । यह पिताजी माताजी के साथ आये हैं । क्या महाराज नहीं देख रहे हैं ?

(दुर्योधन लज्जा का नाट्य करता है ।)

धृतराष्ट्र—कवच उतार देने पर, कङ्कपक्षी के मुख के सदृश मुखवाले यन्त्र से बाणों के अग्रभाग को निकाल कर, घावों पर सावधानी से पट्टियाँ बाँध देने पर, कर्ण का आश्रय लिये हुए, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाले राजाओं को दूर से ही परिहास पूर्वक देखनेवाले आप मुझ पापी के द्वारा—"हे प्रिय पुत्र ! पीडा सहन करने योग्य तो है ?"—ऐसा नहीं पूछे गये हैं ॥१॥

(धृतराष्ट्रः गान्धारी च स्पर्शेनोपेत्यालिङ्गतः ।)

गान्धारी—वच्छ, अदिगाढप्पहारवेअणापज्जा उलस्य अम्हेसु सण्णिहिदेसु वि ण प्पसरदि दे वाणी । (वत्स, अतिगाढप्रहारवेदनापर्याकुलस्यास्मासु संनिहितेष्वपि न प्रसरति ते वाणी ।)

व्याख्या—शल्यानीति । कङ्कटे = कवचे, उन्मोचिते = शरीरान्निःसारिते सति, कङ्कवदनैः—कङ्कस्य = लोहपृष्ठनामकपक्षिविशेषस्य, वदनम् = मुखम् इव मुखम् येषां तैः, शल्यनिःसारकयन्त्रविशेषैरित्यर्थः, शल्यानि = वाणशङ्कून्, व्यपनीय = निःसार्य, व्रणपट्टकेषु = औषधिसंलिप्तव्रणवस्त्रेषु, शनकैः = स्थिरेण, बद्धेषु = संयोजितेषु सत्सु, कर्णे = राधापुत्रे, कृतापाश्रयः—कृतः विहितः, अपाश्रयः = अवलम्बनम् येन सः, अपशब्देनाश्रयस्य दुष्टत्वं सूच्यते । निर्जितशात्रवान्—निर्जिताः = विजिताः, शात्रवाः = रिपवः यैस्तान्, नरपतीन् = भूपतीन्, लीलया = परीहासेन, दूरात् = विप्रकृष्टात्, आलोकयन् = पश्यन्, भवान् = त्वम्, दुर्योधन इत्यर्थः, पापेन = पापशीलेन, मया = धृतराष्ट्रेण, (हे) पुत्रक = हे प्रियपुत्र ! (त्वया) वेदना = पीडा, सह्यासहनयोग्या ? इति = इत्थम्, न पृष्टः ।। १ ।।

टिप्पणी—शल्यानीति । शनकैः—यहाँ पर अव्यय होने के कारण "अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः" सूत्र से "शनैः" इस अव्यय-शब्द से अकच् प्रत्यय आया है । निर्जितशात्रवान्—यहाँ पर शत्रुशब्द से "शत्रुरेव शात्रवः" इस अर्थ में स्वार्थ में अण् प्रत्यय आया है । लीलया—"द्रव—केलि—परीहासाः क्रीडा लीला च नर्म चे"त्यमरः । प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।। १ ।।

गान्धारीति । अतिगाढप्रहारवेदनापर्याकुलस्य—अतिगाढः = अत्यधिकः यः प्रहारः = आघातः, तस्य वेदना = पीडा, तया पर्याकुलस्य = पीडितस्य, ते = तव, दुर्योधनस्येत्यर्थः, अस्मासु सन्निहितेषु = निकटस्थेषु, अपि, वाणी = वाक्, न प्रसरति = वहिरागच्छति, वक्तुमुपक्रमत इत्यर्थः ।।

(गान्धारी और धृतराष्ट्र टटोलते हुए पास आकर (दुर्योधन का) आलिङ्गन करते हैं ।)

गान्धारी—वेटा ! अत्यधिक प्रहार की पीडा से व्याकुल तुम्हारी वाणी हमलोगों के निकटस्थ होने पर भी नहीं निकल रही है ?

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन, किमकृतपूर्वः संप्रति मय्यप्ययमव्याहारः।

गान्धारी—वच्छ जइ तुमं वि अम्हे णालवसि ता किं सपदं वच्छो दुस्सासणो आलवदि अध दुम्मरिसणो वा अण्णो वा। (इति रोदिति।) (वत्स, यदि त्वमप्यस्मान्नालपसि तत्किं सांप्रतं वत्सो दुःशासन आलपत्यथ दुर्मर्षणो वान्यो वा।)

दुर्योधनः—

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी
तातस्य बाष्पपयसां तव चाम्ब हेतुः।

टिप्पणी—स्पर्शेनोपेत्य—गान्धारी तथा धृतराष्ट्र क्रमशः दुर्योधन के माता-पिता थे। धृतराष्ट्र जन्म से ही अन्धे थे। अपने अन्धे पति को देखकर परिपरायणा गान्धारी ने निश्चय किया कि मैं भी सर्वदा आँखों पर पट्टी बाँधकर अपने पति की तरह ही रहा करूँगी। गान्धारी की आँखों पर पट्टी बँधी होने के कारण तथा धृतराष्ट्र के अन्धे होने के कारण ही वे दोनों टटोलकर दुर्योधन के समीप जा रहे हैं। वाणी—"ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणीसरस्वती"त्यमरः।

धृतराष्ट्र इति। अकृतपूर्वः—पूर्वम्=प्राक्, न कृतः=विहितः इति अकृतपूर्वः, सर्वथा नूतन इत्यर्थः, अव्याहारः=अभाषितम्, मौनावलम्बनमित्यर्थः।

टिप्पणी—अव्याहारः—न व्यवहारः, अव्याहारः। भाषण या कथन को व्याहार कहते हैं—"व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः" इत्यमरः।

गान्धारीति। आलपसि = भाषसे, दुर्मर्षणः = दुःशासनानुजः।

अन्वयः—(हे) अम्ब! अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी, पापः, अहम्, तातस्य, च, तव, बाष्पपयसाम्, हेतुः, (अस्मि), विमले, अत्र, भरतान्वये, दुर्जातम्,

---

धृतराष्ट्र—बेटा दुर्योधन! पहले कभी नहीं किया गया मेरे प्रति तुम्हारा यह मौन क्यों?

गान्धारी—बेटा! यदि तुम भी हमलोगों से न बोलोगे तो क्या अब दुःशासन बोलेगा? या दुर्मर्षण अथवा कोई अन्य (बेटा) बोलेगा? (यह कहकर रोती है।)

दुर्योधन—हे माता! बिना प्रतिकार किये (बदला लिये) छोटे भाइयों का विनाश देखने वाला मैं पापी पिताजी एवं तुम्हारे आँसुओं का कारण हूँ।

दुर्जातमत्र विमले भरतान्वये वः
किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषि ॥ २ ॥

गान्धारी—जाद, अलं परिदेविदेण। तुमं वि दाव एक्का इमस्स अन्धजुअलस्स मग्गोवदेसणो। ता चिरं जीव। किं मे रज्जेण जएण वा। (जात, अलं परिदेवितेन। त्वमपि तावदेकोऽस्यान्धयुगलस्य मार्गोपदेशकः तच्चिरं जीव। किं मे राज्येन जयेन वा।)

दुर्योधनः—
मातः! किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते
सुक्षत्रिया क्व भवती क्व च दीनतैषा।

वः, सुतक्षयकरम्, माम्, सुतः, इति, किम्, अवैषि? ॥ २ ॥

व्याख्या—पापोऽहमिति। (हे) अम्ब = हे मातः! अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी—अप्रतिकृतम् = प्रतिकारशून्यम्, अनुजनाशम् = लघुभ्रातृक्षयम्, द्रष्टुं शीलमस्य, सः, पापः पापशीलः, अहम्=दुर्योधनः, तातस्य = पितुः; च = तथा, तव= भवत्याः, वाष्पपयसाम्=अश्रुजलानाम्, हेतुः=कारणम् अस्मीति शेषः। विमले= निर्मले, अत्र = अस्मिन्, भरतान्वये = भरतकुले, दुर्जातम् = कुपुत्ररूपेणोत्पन्नम्, वः=युष्माकम्, सुतक्षयकरम्=पुत्रविनाशकारकम्, माम् = दुर्योधनम्, सुत इति = पुत्र इति, किम् = कथम्, अवैषि = जानासि, अहन्न पुत्रयोग्य इत्याशयः ॥ २ ॥

टिप्पणी—पापोऽहमिति। पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ॥ २ ॥

गान्धारीति। परिदेवितेन = विलपितेन, अन्धयुगलस्य = अन्धद्वयस्य, गान्धारीधृतराष्ट्रयोरित्यर्थ, मार्गोपदेशकः = पथप्रदर्शकः, सहायक इत्यर्थः।

टिप्पणी—परिदेवितेन—"विलापः परिदेवनमि"त्यमरः। भाव में क्त।

अन्वयः—(हे) मातः, (एतत्), ते, किमपि, असदृशम्, कृपणम्, वचः,

इस निर्मल भरतवंश में कुपुत्ररूप से उत्पन्न और आपके पुत्रों का नाश करने वाले मुझे "पुत्र"—ऐसा क्यों समझती हो? ॥ २ ॥

गान्धारी—बेटा! विलाप करना बेकार है। अब तुम अकेले ही अन्धों की इस जोड़ी के पथप्रदर्शक हो। अतः दीर्घजीवी होओ! मुझे राज्य से या विजय से क्या (प्रयोजन)?

दुर्योधन—हे माँ! यह तुम्हारा कुछ अजीब ही अयोग्य और दीनतापूर्ण

निर्वत्सले ! सुतशतस्य विपत्तिमेतां
त्वं नानुचिन्तयसि रक्षसि मामयोग्यम् ।। ३ ।।

नूनं विचेष्टितमिदं सुतशोकस्य ।

संजयः—महाराज, किं वाऽयं लोकवादो वितथः 'न घटस्य कूपपतने रज्जुस्तत्रैव प्रक्षेप्तव्या' इति ।

(अस्ति) सुक्षत्रिया, भवती, क्व ? च, एषा, दीनता, क्व ? (हे) निर्वत्सले, त्वम्, सुतशतस्य, एताम्, विपत्तिम्, न, अनुचिन्तयसि, माम्, अयोग्यम्, रक्षसि ।। ३ ।।

व्याख्या—मातरिति । (हे) मातः = हे अम्ब ! एतदिति शेषः, ते = तव, किमपि = अनिर्वचनीयम्, विलक्षणमिति यावत्, असदृशम् = अयोग्यम्, तदानुरूपन्नैवेति भावः । कृपणम् = कातरम्, वचः = वचनम्, त्वया भाषितमित्यर्थः, अस्तीति शेषः । सुक्षत्रिया = उत्तमक्षत्रियवंशोत्पन्ना, भवती = माता, क्व = कुत्र ? च = तथा, एषा = त्वयाऽभिव्यक्तेयम्, दीनता = कातरता, क्व = कुत्र ? उभयमन्योन्यविरुद्धमिति भावः । (हे) निर्वत्सले = हे वात्सल्यविरहिते ! हे पुत्रस्नेहशून्ये इत्यर्थः, त्वम् = भवती, सुतशतस्य = पुत्रशतस्य, एताम् = इमाम्, मृत्युरूपामित्यर्थः, विपत्तिम् = आपदम्, न = नहि, अनुचिन्तयसि = शोचसि, माम् = दुर्योधनम्, एकोनशतपुत्रविनाशे निमित्तभूतं मामिति भावः, अतः अयोग्यम् = अपात्रम्, पुत्रकर्त्तव्यरहितमिति भावः, रक्षसि = त्रायसे ।। ३ ।।

टिप्पणी—मातरिति । निर्वत्सले—यहाँ पर वत्सल शब्द में भावप्रधान निर्देश है अर्थात् वात्सल्य अर्थ में वत्सल शब्द प्रयुक्त हुआ है । अतः—"निर्गतः वत्सलः अर्थात् वात्सल्यं यस्याः सा निर्गतवत्सला, तत्सम्बोधने निर्गतवत्सले—" ऐसी व्युत्पत्ति होगी । पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ।। ३ ।।

सञ्जय इति । लोकवादः = लौकिकोक्तिः, आभाणकमित्यर्थः । वितथः =

वचन है । कहाँ आप कुलीन क्षत्रिय वीराङ्गना ? और कहाँ यह दीनता ? हे पुत्रस्नेहशून्य ! आप सौ पुत्रों की इस विपत्ति को अनुस्मरण नहीं कर रही हो, मुझ अयोग्य को बचा रही हो ।। ३ ।।

अवश्य ही यह पुत्रशोक का कार्य है ।

सञ्जय—महाराज ! क्या यह लोकोक्ति झूठी है कि" घड़े के कूएँ में गिर जाने पर रस्सी वहीं "फेंक देनी चाहिए ।"

दुर्योधनः—अपुष्कलमिदम् । उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन । (इति रोदिति ।)

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य ।) वत्स समाश्वसिहि । समाश्वासय चास्मानिमामतिदीनां मातरं च ।

दुर्योधनः—तात, दुर्लभः समाश्वास इदानीं युष्माकम् । किंतु—

कुन्त्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया ।
विराजमानो शोकेऽपि तनयाननुशोचतम् ॥ ४ ॥

मिथ्या । न घटस्येति—अधिकस्य विनाशे सति विनाशावशिष्टस्यापि विनाशकरणमयुक्तमिति भावः ।

दुर्योधन इति । अपुष्कलम्=अपर्याप्तम्, अश्रेष्ठमित्यर्थः, उपक्रियमाणाभावे= उपकार्याभावे, साध्याभावे, इत्यर्थः, उपकरणेन = साधनेन, किम् = किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः ।

टिप्पणी—दुर्योधन इति । अपुष्कलम्—न पुष्कलम्, अपुष्कलम् (नञ् समास) । पुष्कल शब्द 'श्रेष्ठ' अर्थ में प्रयुक्त होता है—"श्रेयान् श्रेष्ठः पुष्कलः स्यादि" त्यमरः ।

धृतराष्ट्र इति । परिष्वज्य = आलिङ्ग्य ॥

अन्वयः—अद्य, मया, निहतपुत्रया, कुन्त्या, सह, शोके, अपि, विराजमानो, युवाम्, तनयान्, अनुशोचतम् ॥ ४ ॥

दुर्योधन—यह श्रेष्ठ (पूर्णरूप से सत्य) नहीं है । उपकार्य (उपयोग में लानेवाले) के अभाव में उपकरण (उपयोगी वस्तुओं) से क्या (प्रयोजन) ? (यह कहकर रोने लगता है) ।

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन करके) बेटा ! धैर्य धारण करो । हमें और अपनी इस अतिदुःखित माता को भी धैर्य बँधाओ ।

दुर्योधन—पिताजी ! अब आप लोगों को धैर्य बँधाना कठिन है । किन्तु- आज मेरे द्वारा मारे गये पुत्रोंवाली कुन्ती के साथ दुःख में भी वर्तमान तुमदोनों (हम) पुत्रों की चिन्ता करना (अर्थात् मैं कुन्ती के पुत्रों को मारकर स्वयं भी प्राण-त्याग करदूँगा तब कुन्ती के साथ बैठकर आपलोग भी पुत्र-शोक मनायेंगे ।) ॥ ४ ॥

गान्धारी—जाद एदं एव्व सम्पदं प्पभूदं जं तुमं वि दाव एक्को णाणुसोचइदव्वो। ता जाद, प्पसीद। एसो दे सीसञ्जली। निवट्टीअदु समरव्वावारादो। अपच्छिमं करेहि पिदुणो वअणम्। (जात, एतदेव सांप्रतं प्रभूतं यत्त्वमपि तावदेको नानुशोचितव्यः। तज्जात, प्रसीद। एष ते शीर्षाञ्जलिः। निवर्त्यतां समरव्यापारात्। अपश्चिमं कुरु पितुर्वचनम्।)

धृतराष्ट्रः—वत्स, शृणु वचनं तवाम्बाया मम च निहताशेषबन्धुवर्गस्य। पश्य—

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत्फाल्गुनात्।

व्याख्या—कुन्त्येति। अद्य = अस्मिन्नेव दिवसे, मया = दुर्योधनेन, निहतपुत्रया-निहताः = मारिताः, पुत्राः = सुताः, यस्याः सा, तया, कुन्त्या = पृथया, युधिष्ठिरमात्रेत्यर्थः, सह = साकम्, शोके = दुःखे, अपि = च, विराजमानौ = वर्त्तमानौ, युवाम् = मातापितरौ, तनयान् = पुत्रान्, अनुशोचतम् = चिन्तयतम्। अद्य कुन्तीपुत्रान् व्यापाद्य स्वयं प्राणान् सन्त्यक्ष्यामीत्याशयः॥ ४॥

टिप्पणी—कुन्त्येति। इस पद्य में सहोक्ति अलङ्कार तथा अनुष्टुप छन्द है॥४॥

गान्धारीति। प्रभूतम् = प्रचुरम्, पर्याप्तमित्यर्थः। शीर्षाञ्जलिः = प्रणामः, प्रार्थनेति भावः। अपश्चिमम् = अनुल्लङ्घनीयम्॥

धृतराष्ट्र इति। निहिताशेषबन्धुवर्गस्य—निहितानाम् = विनाशितानाम्, अशेषाणाम् = समस्तानाम्, बन्धूनाम् = स्वजनानाम् वर्गः = समूहः यस्य सः, तादृशस्य॥

अन्वयः—ययोः, बलेन, दायादाः, न, गणिताः, तौ, द्रोणभीष्मौ, हतौ, कर्णस्य, आत्मजम्, (तस्य), अग्रतः, शमयतः, फाल्गुनात्, जगत्, भीतम्, मे

गान्धारी—बेटा, इस समय यही बहुत है जो कि तुम्हारे एक के विषय में अनुताप नहीं करना है। इसलिए बेटा, प्रसन्न होओ। यह तुझे हाथ जोड़ती हूँ (अर्थात् तुझसे प्रार्थना करती हूँ)। युद्ध-कार्य से विमुख हो जाओ। पिता के वचन का पालन करो।

धृतराष्ट्र—बेटा! अपनी माँ की तथा मेरी, जिनके समस्त सम्बन्धी मार डाले गये, बात सुनो (अर्थात् मानो)। देखो—

जिन दोनों (भीष्म और द्रोण) के बलसे दायाद (हिस्सेदार, पाण्डव)

वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुञ्च तात पितरावन्धाविमौ पालय ॥ ५ ॥

वत्सानाम्, निधनेन, अधुना, रिपुः, त्वयि, शेषप्रतिज्ञः, (अस्ति, अतः) (हे) तात, वैरिषु, मानम्, मुञ्च, इमौ, अन्धौ, पितरौ, पालय ॥ ५ ॥

व्याख्या—दायादा इति । ययोः=द्रोणभीष्मयोः, बलेन = शक्त्या, दायादाः= बान्धवाः, पाण्डवा इत्यर्थः, न गणिताः = न महत्त्वं प्रापिताः, अनादृता इत्यर्थः, तौ = तादृशौ द्रोण-भीष्मौ = आचार्यपितामहौ, हतौ = व्यापादितौ, कर्णस्य = राधेयस्य, आत्मजम् = पुत्रम्, वृषसेनमित्यर्थः, तस्येति शेषः, अग्रतः = समक्षम्, शमयतः=विनाशयतः, फाल्गुनात् = अर्जुनात्, जगत्=विश्वम्, भीतम् = त्रस्तम्, अतस्तस्मिन्नपि नैव विश्वासो विधेय इति भावः, मे=मम, वत्सानाम् = सुतानाम्, एकोनशतसंख्याकपुत्राणामिति भावः, निधनेन = हननेन, अधुना = सम्प्रति, रिपुः = शत्रुः, भीम इत्यर्थः, त्वयि = दुर्योधने, त्वद्विषये इत्यर्थः, शेषप्रतिज्ञः = अवशिष्टप्रणः, अस्तीति शेषः, अतः (हे) तात = हे पुत्र, वैरिषु = रिपुषु, मानम् = अभिमानम्, मुञ्च = त्यज, इमौ = एतौ, अन्धौ = नेत्रविहीनौ, पितरौ= मातापितरौ, पालय = सेवस्व ॥ ५ ॥

टिप्पणी—दायादा इति । "दायादौ सुतबान्धवौ" इत्यमरः । दायम् अत्तीति दायादः । दायका अर्थभाग या हिस्सा होता है अतः हिस्सेदार को दायाद कहते है । पुत्र और बान्धव लोग इस कोटि में आते हैं । शेषप्रतिज्ञः—भीमने धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों को मारने की प्रतिज्ञा की थी । ९९ पुत्रों को मार डालने के बाद अब केवल दुर्योधन को मारना शेष रह गया है इसलिए भीम के लिए "शेष-प्रतिज्ञः" कहा गया है ॥ ५ ॥

लोग नहीं गिने गये (नहीं कुछ समझे गये), वे द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह मार डाले गये, कर्ण के पुत्र को (उसके) सामने ही मारते हुए अर्जुन के द्वारा संसार भयाक्रान्त कर दिया गया; मेरे पुत्रों को मार देने के कारण इस समय शत्रु (भीम) केवल तुम्हारे विषय में ही अवशिष्ट प्रतिज्ञा वाला है । इसलिए हे बेटा ! शत्रुओं के प्रति अभिमान को त्याग दो और इन अन्धे माता-पिता का पालन करो ॥ ५ ॥

दुर्योधनः—समरात्प्रतिनिवृत्य किं मया कर्तव्यम् ।

गान्धारी—जाद, जं पिदा दे विउरो वा भणदि । (जात, यत्पिता ते विदुरो वा भणति ।)

संजयः—देव, एवमिदम् ।

दुर्योधनः—संजय, अद्याप्युपदेष्टव्यमस्ति ।

संजयः—देव, यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम् ।

दुर्योधनः—(सक्रोधम्) शृणुमस्तावद्भवत एव प्रज्ञावतोऽस्मान्प्रति प्रतिरूपमुपदेशम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स युक्तवादिनि संजये किमत्र क्रोधेन । यदि प्रकृतिमापद्यसे तदहमेव भवन्तं ब्रवीमि । श्रूयताम् ।

दुर्योधन इति । प्रतिनिवृत्य = परावृत्य, युद्धं विहायेति भावः ।

सञ्जय इति । प्राणिति = जीवति, उपदेष्टव्यभूमिः = उपदेशपात्रम्; विजगीषुः = विजयाभिलाषी, प्रज्ञावताम् = धीमताम् ॥

दुर्योधन इति । प्रतिरूपम् = अनुकूलम् ।

धृतराष्ट्र इति । युक्तवादिनि = उचितवक्तरि, प्रकृतिमापद्यसे = शान्तभावमवलम्बसे । धृतराष्ट्र इति । सन्धत्ताम् = सन्धिं विधत्ताम्, ईप्सितपणबन्धेन— ईप्सितस्य = इच्छितस्य, पणस्य = मूल्यस्य, बन्धेन = बन्धनेन, युधिष्ठिराभिलषितपञ्चग्रामदानेन सन्धिर्विधीयतामिति भावः ।

दुर्योधन—युद्धसे पराङ्मुख होकर मैं क्या करूँगा ?

गान्धारी—बेटा ! तुम्हारे पिता अथवा विदुर जो कुछ कहें ।

सञ्जय—महाराज, यह ऐसा ही (अर्थात् ठीक ही) है ।

दुर्योधन—सञ्जय ! क्या अब भी उपदेश का अवसर है ?

सञ्जय—महाराज ! विजय की इच्छा रखने वाला व्यक्ति जब तक जीवित रहता है तब तक बुद्धिमानों का उपदेश-पात्र होता है ।

दुर्योधन—(क्रोधपूर्वक) अच्छा तो आप जैसे बुद्धिमान का अपने लिए अनुकूल उपदेश हम सुनें ।

धृतराष्ट्र—बेटा ! उचित कहने वाले सञ्जय पर इस सम्बन्ध में क्रोध करने से क्या (लाभ) ? यदि तुम शान्त हो जाओ तो मैं ही तुमसे कहूँगा । सुनो ।

दुर्योधनः—कथयतु तातः

धृतराष्ट्रः—वत्स, किं विस्तरेण। संधत्तां भवानीदानीमपि युधिष्ठिरमीप्सितपणबन्धेन।

दुर्योधनः—तात, तनयस्नेहवैक्लव्यादम्बा बालिशत्वेन संजयश्च काममेवं ब्रवीतु। युष्माकमप्येवं व्यामोहः। अथ वा प्रभवति पुत्रनाशजन्मा हृदयज्वरः। अन्यच्च। तात, अस्खलितभ्रातृशतोऽहं यदा तदाऽनवधारितवासुदेवसामोपन्यासः, संप्रति हि दृष्टपितामहाचार्यानुजराजचक्रविपत्तिः स्वशरीरमात्रस्नेहादुदात्तपुरुषव्रीडावहमसुखावसानं च कथमिव करिष्यति दुर्योधनः सह पाण्डवैः सन्धिम्। अन्यच्च। नयवेदिन्संजय,

---

दुर्योधन इति। तनयस्नेहवैक्लव्यात् = पुत्रवात्सल्यव्याकुलत्वात्, अम्वा = माता, गान्धारीति भावः, बालिशत्वेन = मूर्खत्वेन। व्यामोहः = चित्तविभ्रमः। हृदयज्वरः = हार्दिकः। सन्ताप इत्यर्थः। अस्खलितभ्रातृशतः—अस्खलितम् = अच्युतम्, अविनष्टमित्यर्थः, भ्रातृशतम् = शतसंख्याकसोदराणां समुदायः, यस्य सः तादृशः, अवधीरितवासुदेवसामोपन्यासः—अवधीरितः = अनादृतः, वासुदेवस्य= वसुदेवापत्यस्य श्रीकृष्णस्य, सामोपन्यासः = शान्तिप्रस्तावः, येन तादृशः, दृष्टपितेत्यादिः—दृष्टा = वीक्षिता, पितामहस्य = भीष्मस्य, आचार्यस्य=गुरो-

---

दुर्योधन—पिताजी कहें।

धृतराष्ट्र—बेटा! विस्तार से क्या लाभ? आप अब भी युधिष्ठिर के साथ अभीष्ट शर्त्त पर सन्धि कर लें।

दुर्योधन—पिताजी! पुत्र के प्रति वात्सल्यभाव के कारण माताजी तथा मूर्खता के कारण सञ्जय ऐसा कह सकते हैं। (किन्तु) आपको भी ऐसा बुद्धिविभ्रम? अथवा पुत्रों के नाश से उत्पन्न हृदय के सन्ताप का ही यह प्रभाव है। और भी, पिता जी! जब मैं सौ भाइयों के साथ था तब मैंने कृष्ण के शान्तिप्रस्ताव का अनादर किया था। अभी पितामह (भीष्म), आचार्य (द्रोण), छोटे भाइयों एवं राजसमूह की (मृत्युरूपी) विपत्ति को देखकर भी दुर्योधन पाण्डवों के साथ केवल अपने शरीर के प्रति मोह के कारण श्रेष्ठ पुरुषों के लिए लज्जाजनक तथा दुःखान्त सन्धि कैसे करेगा? और भी, नीतिवेत्ता सञ्जय!

हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान्।
दुःशासने हतेऽहीनाः सानुजाः पाण्डवाः कथम् ।। ६ ।।

धृतराष्ट्रः—वत्स एवं गतेऽपि मत्प्रार्थनया न किंचिन्न करोति युधिष्ठिरः। अन्यच्च सर्वमेवापकृतं नानुमन्यते।

दुर्योधनः—कथमिव।

द्रोणस्य, अनुजानाम् = लघुभ्रातृणाम्, राजचक्रस्य = नृपसमूहस्य, च विपत्तिः = विनाशरूपापत्तिः, येन तादृशः, उदात्तपुरुषव्रीडावहम् = श्रेष्ठजनलज्जास्पदम्, असुखावसानम् = दुःखान्तम्। नयवेदिन् = नीतिवेत्तः!

टिप्पणी—दुर्योधन इति। बालिशत्वेन—बच्चे एवं मूर्ख के लिए बालिश शब्द का प्रयोग किया जाता है—"बालिशस्तु शिशौ मूर्खे" इति मेदिनी।

अन्वयः—रिपोः, हीयमानाः, नृपाः, परान्, संदधते, किल, दुःशासने, हते, अहीनाः, सानुजाः, पाण्डवाः, कथम्, (सन्धिं करिष्यन्ति) ।। ६ ।।

व्याख्या—हीयमाना इति। रिपोः = शत्रोः, हीयमानाः = क्षीयमाणाः, नृपाः = राजानः, परान् = रिपून्, सन्दधते = सन्धिं कुर्वन्ति, किलेति सामान्ये, दुःशासने = एतन्नामके मदीयानुजे, हते = व्यापादिते सति, अहीनाः = अक्षीणाः, सबला इत्यर्थः, सानुजाः = लघुभ्रातृसहिताः, पाण्डवाः = पाण्डुपुत्राः, युधिष्ठिरादयः कथम् = कस्माद्धेतोः, सन्धिं करिष्यन्तीति शेषः। मम निर्बलत्वात्पाण्डवानाञ्च सबलत्वान्नीतिविरुद्धः सन्धिः कथं सम्भवेदिति भावः ।। ६ ।।

टिप्पणी—हीयमाना इति। प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है तथा छन्द अनुष्टुप् है ।। ६ ।।

शत्रु की अपेक्षा न्यूनबल वाले राजा लोग ही शत्रुओं से सन्धि किया करते हैं तो फिर दुःशासन के मारे जाने पर अनुज समेत अक्षीण बलवाले पाण्डव लोग भला क्यों (सन्धि करेंगे) ? ।। ६ ।।

धृतराष्ट्र—बेटा ? ऐसा होने पर भी मेरी प्रार्थना से युधिष्ठिर कुछ नहीं करेगा ऐसा नहीं है। दूसरी बात यह है कि युधिष्ठिर किये गये अपकारों पर ध्यान नहीं देता।

दुर्योधन—कैसे ?

धृतराष्ट्रः—वत्स, श्रूयतां प्रतिज्ञां युधिष्ठिरस्य। नाहमेकस्यापि भ्रातुर्विपत्तौ प्राणान् धारयामीति। बहुच्छलत्वात्सङ्ग्रामस्यानुजनाशमाशङ्कमानो यदैव भवते रोचते तदैवासौ सज्जः संधातुम्।

संजयः—एवमिदम्।

गान्धारी—जाद, उपपत्तिजुत्तं पडिवज्जस्स पिदुणो वअणम्। (जात, उपपत्तियुक्तं प्रतिपद्यस्व पितुर्वचनम्।)

दुर्योधनः—तात, अम्ब, संजय,

एकेनापि विनाऽनुजेन मरणं पार्थः प्रतिज्ञातवान्
भ्रातॄणां निहते शते विषहते दुर्योधनो जीवितुम्।
तं दुःशासनशोणिताशनमरिं भिन्नं गदाकोटिना
भीमं दिक्षु न विक्षिपामि कृपणः सन्धिं विदध्यामहम्॥ ७॥

धृतराष्ट्र इति। विपत्तौ=विनाशे, सज्जः=तत्परः, सन्धातुम्=सन्धिं कर्त्तुम्। गान्धारीति। उपपत्तियुक्तम्=युक्तियुक्तम्, पितुः वचनम् प्रतिपद्यस्व=मन्यस्व।

अन्वयः—पार्थः, एकेन, अपि, अनुजेन, विना, मरणम्, प्रतिज्ञातवान्; दुर्योधनः, भ्रातॄणाम्, शते, निहते, (अपि), जीवितुम्, विषहते, अहम्, दुःशासनशोणिताशनम्, तम्, अरिम्, भीमम्, गदाकोटिना, भिन्नम् (विधाय), दिक्षु, न, विक्षिपामि? कृपणः, (भूत्वा), सन्धिम् विदध्याम्?॥ ७॥

धृतराष्ट्र—बेटा! सुनो, युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा है कि—"मैं एक भी भाई की विपत्ति (मृत्यु) में प्राणों को नहीं धारण करूँगा (अर्थात् एक भी भाई के मारे जाने पर आत्मघात कर लूँगा)।" सङ्ग्राम के अनेक छलों से पूर्णहोने के कारण, भाईयों के नाश की आशङ्का से युक्त वह (युधिष्ठिर), जब भी तुम्हें अच्छा लगे, तब ही सन्धि करने के लिए उद्यत है।

सञ्जय—यह ऐसा ही है (अर्थात् यह सही है)।

गान्धारी—बेटा! पिता के युक्तियुक्त वचन को मान लो।

दुर्योधन—पिता जी, माता जी, और सञ्जय!

पृथापुत्र (युधिष्ठिर) ने एक भी भाई के बिना मरने का प्रण किया है और दुर्योधन सौ भाइयों के मारे जाने पर भी जीवन को झेल सकता है। मैं

गान्धारी—हा जाद दुस्सासण, हा मदङ्कदुल्ललिद, हा जुअराअ अस्सुदपुव्व क्खु कस्स वि लोए ईदिसी विपत्ती। हा वीरसदप्पसविणी हंद गन्धारी, दुक्खसदं प्पसूदा ण उण सुदसदम्। (हा जात दुःशासन, हा युवराज, अश्रुतपूर्वा खलु कस्यापि लोक ईदृशी विपत्तिः। हा वीरशतप्रसविनि हन्त गान्धारि दुःखशतं प्रसूतासि न पुनः सुतशतम्।)

(सर्वे रुदन्ति।)

व्याख्या—एकेनापीति। पार्थः=पृथापुत्रः, युधिष्ठिर इति भावः, एकेन= अद्वितीयेन, अपि, अनुजेन=लघुभ्रात्रा, विना = पृथक्, मरणम्=स्वमृत्युम्, प्रतिज्ञातवान्=निश्चितं कृतवान्, एकस्याप्यनुजस्य मरणेऽहं प्राणान् न धारयिष्यामीति प्रणं कृतवानिति भावः। दुर्योधनः = धृतराष्ट्रसुतोऽहम्, भ्रातृणाम् = अनुजानाम्, शते=शतावयवसमुदाये, निहते=व्यापादिते, अपीति शेषः, जीवितुम्= प्राणान् धारयितुम्, विषहते=शक्नोति, क्षमोऽस्तीत्यर्थः। मदीयेयं भ्रातृभावना गर्हितेति भावः। अहम् = दुर्योधनः दुःशासनशोणिताशनम् = दुःशासनरक्तपायिनम्, तम्=अतिक्रूरम्, अरिम्=शत्रुम्, भीमम् = वृकोदरम्, गदाकोटिना= गदाग्रेण, भिन्नम् = विदीर्णम् (विधाय) दिक्षु = दिशासु, न, विक्षिपामि = निक्षिपामि ? किन्तु विक्षिपाम्येवेति भावः। कृपणः = कदर्यः (भूत्वा) सन्धिम्= सन्धानम्, विदध्याम् = कुर्याम् ? न कुर्यामित्याशयः। भीमहननमेव श्रेयो न तु सन्धिरिति तात्पर्यम् ॥ ७ ॥

टिप्पणी—एकेनापीति। प्रस्तुत पद्य में यमकालङ्कार तथा शार्दूल विक्रीडित छन्द है ॥ ७ ॥

दुःशासन के रक्त को पीनेवाले उस शत्रु भीम को गदा के अग्रभाग से विदीर्ण कर दिशाओं में न फेंक दूँ ? मैं दीन बनकर सन्धि करूँ ? ॥ ७ ॥

गान्धारी—हा पुत्र दुःशासन ! हा मेरी गोद के आग्रही ! हा युवराज ! संसार में किसी पर भी ऐसी विपत्ति नहीं सुनी गई। हा सौ वीरों को जन्म देनेवाली अभागिन गान्धारी ! तूने सौ दुःख पैदा किये हैं, न कि सौ पुत्र।

(सभी रोते हैं।)

संजयः—(वाष्पमुत्सृज्य ।) तात, अम्ब, प्रतिबोधयितुं महाराजमिमां भूमिं युवामागतौ । तदात्मापि तावत्संस्तभ्यताम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन, एवं विमुखेषु भागधेयेषु त्वयि चामुञ्चति सहजं मानवन्धमरिषु त्वदेकशेषजीवितालम्बनेयं तपस्विनी गान्धारी कमवलम्बतां शरणमहं च ।

दुर्योधनः—श्रूयतां यत्प्रतिपत्तुमिदानीं प्राप्तकालम् ।

सञ्जय इति । महाराजम् = दुर्योधनम्, प्रतिबोधयितुम् = सान्त्वयितुम्, इमाम् भूमिम् = सङ्ग्रामक्षेत्रम्, युवाम् = गान्धारीधृतराष्ट्रौ, आगतौ = उपेतौ । संस्तभ्यताम् = स्थिरीक्रियताम् ।

धृतराष्ट्र इति । विमुखेषु = पराङ्मुखेषु, प्रतिकूलेष्वित्यर्थः, भागधेयेषु = भाग्येषु; अरिषु = शत्रुषु, सहजम् = स्वाभाविकम्, मानवन्धम् = अभिमानग्रन्थिम्, अमुञ्चति = अत्यजति सति, त्वदेकशेषजीवितालम्बना = त्वमेव एकः = केवलः; शेषः = अवशिष्टः, जीवितस्य = जीवनस्य, आलम्बनम् = आश्रयः यस्याः सा, तपस्विनी = वराकी, कम् = त्वदतिरिक्तं कमिति भावः, अवलम्बताम् = आश्रयताम्, शरणम् = रक्षकम् ॥

टिप्पणी—धृतराष्ट्र इति । दया के योग्य स्त्री के लिए 'तपस्विनी' शब्द का प्रयोग किया जाता है—"तपस्वी तापसे चानुकम्पार्हे च तपस्विनी"ति विश्वः । शरणम् = घर एवं रक्षक के अर्थ में यह प्रयुक्त होता है—"शरणं गृहरक्षित्रो" रित्यमरः ।

सञ्जय—(आँसू बहाकर) पिताजी ! माताजी ! महाराज (दुर्योधन) को सान्त्वना देनें के लिए आप दोनों इस स्थान में आये हैं इसलिए (पहले) अपने आपको संभालिए ।

धृतराष्ट्र—बेटा दुर्योधन ! इस प्रकार भाग्य के प्रतिकूल होने पर तथा शत्रु के प्रति अपने स्वाभाविक अभिमान को तुम्हारे द्वारा न छोड़ने पर, बेचारी गान्धारी, जिसके एकमात्र तुम्हीं जीवनाधार बच रहे हो, (तुम्हारे अतिरिक्त अन्य) किसका आश्रय लेगी और मैं किस रक्षक का सहारा लूँगा ?

दुर्योधन—सुनिये, जो करने का यह अवसर है—

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यास्तिरस्कृतविद्विषः
प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृतार्चना।
अभिमुखमरीन्संख्ये घ्नन्तो हताः शतमात्मजा
वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया ॥ ८ ॥

अन्वयः—कलितभुवनाः, भुक्तैश्वर्याः, तिरस्कृतविद्विषः, प्रणतशिरसाम्, राज्ञाम्, चूडासहस्रकृतार्चनाः, अरीन्, अभिमुखम्, घ्नन्तः, सङ्ख्ये, शतम्, आत्मजाः, हताः, (अत इदानीम्), अम्बया, सहितः, तातः, सगरेण, ऊढाम्, धुरम्, वहतु ॥ ८ ॥

व्याख्या—कलितभुवना इति। कलितभुवनाः—कलितम्=स्वाधीनीकृतम्; भुवनम्=लोकः यैस्ते, भुक्तैश्वर्याः—भुक्तम्=उपभुक्तम्, ऐश्वर्यम्=सम्पत्तिः प्रभुत्वं वा यैस्ते, तिरस्कृतविद्विषः-तिरस्कृताः=अवमानिताः, विद्विषः=रिपवः यैस्ते, प्रणतशिरसाम्=नतमस्तकानाम्, राज्ञाम्=भूपतीनाम्, चूडासहस्र-कृतार्चनाः—चूडानाम्=शिखानाम्, सहस्रैः=सहस्रावयवसमुदायैः, कृताम्=विहितम्, अर्चनम्=पूजनम् येषां ते, अरीन्=शत्रून्, अभिमुखम्=सम्मुखम्, घ्नन्तः=हिंसन्तः, सङ्ख्ये=सङ्ग्रामे, शतमात्मजाः=शतं सुताः, हताः=मारिताः, अत इदानीमिति शेषः, अम्बया=जनन्या, सहितः=संयुक्तः, तातः=पिता, सगरेण=सगरनामकसूर्यकुलोत्पन्नेन राज्ञा, ऊढाम्=धृताम्, धुरम्=पृथिव्याः भारम्, वहतु=धारयतु। यथा सगरनामको राजा कपिलमुनि-रोषवशाद्विनष्टेषु षष्टिसहस्रपुत्रेषु सत्स्वपि धैर्यमाश्रित्य राज्यं कृतवान् तथैव पिता धृतराष्ट्रोऽपि राज्यं करोत्वित्याशयः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—कलितभुवना इति। शतमात्मजा—धृतराष्ट्र के दुर्योधन सहित सौ पुत्र थे। ९९ पुत्र मारे जा चुके हैं एवं सम्प्रति दुर्योधन चूंकि मरने के लिए

संसार को अपने अधीन करनेवाले, सम्पत्ति (या स्वामित्व) का उपभोग करनेवाले, शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाले, नतमस्तक राजाओं की हजारों शिखाओं द्वारा पूजित, सामने आये हुए शत्रुओं को मारते हुए युद्ध में (आपके) सौ बेटे मारे जा चुके हैं। (इसलिए अब) पिताजी माताजी के साथ सगर द्वारा वहन किये गये (पृथ्वी) के भार को वहन करें ॥ ८ ॥

विपर्यये त्वस्याधिपतेरुल्लङ्घितः क्षात्रधर्मः स्यात् ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः ।)

गान्धारी—(आकर्ण्य । सभयम् !) जाद, कहिं एदं हाहाकारमिस्सं तूररसिदं सुणोअदि । (जात, कुत्रैतद् हाहाकारमिश्रं तूर्यरसितं श्रूयते ।)

संजयः—अम्ब, भूमिरियमेवंविधानां भीरुजनत्रासजननी महानिनादानाम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स संजय, ज्ञायतामतिभैरवः खलु विस्तारी हाहारवः । कारणेनास्य महता भवितव्यम् ।

कृतसङ्कल्प है इसीलिए वह अपनी भी गिनती धृतराष्ट्र के मरे हुए पुत्रों में ही कर रहा है इसलिए उसने "शतमात्मजाः" कहा है । सगरेणोढाम्—कपिल मुनि के क्रोधवश राजा सगर के जब साठ हजार पुत्र जल मरे थे तो राजा सगर ने बुढ़ापे में भी पृथ्वी के शासन को संभाला था । इसीलिए यह दृष्टान्त देते हुए दुर्योधन कहता है कि आपके भी सौ पुत्र मारे जा चुके हैं और आप भी इस वृद्धावस्था में पृथ्वी का शासन संभालें । प्रस्तुत पद्य में निदर्शना अलङ्कार तथा हरिणी छन्द है । छन्द का लक्षण है—"नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता" ॥८॥

विपर्यये = वैपरीत्ये ।

गान्धारीति । तूर्यरसितम् = रणभेरीशब्दः ।

सञ्जय इति । एवंविधानाम् = हाहाकारादिमिश्राणाम्, महानिनादानाम् = विपुलशब्दानाम्, भीरुजनत्रासजननी = भीतजनसम्भ्रमोत्पादिका, इयं भूमिरित्यन्वयः ।

इसके विपरीत करने से राजा के क्षत्रिय-धर्म का अतिक्रमण होगा ।

(नेपथ्य में महान् कोलाहल होता है ।)

गान्धारी—(सुनकर भयपूर्वक) बेटा ! हाहाकार से मिश्रित रण-भेरी का यह शब्द कहाँ सुनाई पड़ रहा है ?

सञ्जय—माताजी यह तो भीरु लोगों के भय को पैदा करनेवाली, इस प्रकार के भीषण शब्दों की भूमि ही है ।

धृतराष्ट्र—बेटा सञ्जय ! पता लगाओ । यह हाहाकार का शब्द तो बड़ा भयङ्कर एवं प्रचण्ड है । अवश्य ही इसका कोई महान् कारण होगा ।

दुर्योधनः---तात प्रसीद। पराङ्मुखं खलु दैवमस्माकम्। यावदपरमपि किञ्चिदत्याहितं न श्रावयति तावदेवाज्ञापय मां सङ्ग्रामावतरणाय।

गान्धारी---जाद, मुहुत्तअं पाव मं मन्दभाइणीं समस्ससिहि। (जात, मुहूर्तकं तावन्मां मन्दभाग्यां समाश्वासय।)

धृतराष्ट्रः---वत्स, यद्यपि भवान्समराय कृतनिश्चयस्तथापि रहः परप्रतीघातोपायश्चिन्त्यताम्।

दुर्योधनः---प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः
किं वा तेन कृतेन तैरिह कृतं यन्न प्रकाश्यं रणे।

गान्धारी---जाद, एआइ तमम्। को दे सहाअत्तणं करिस्सदि। (जात, एकाकी त्वम्। कस्ते साहाय्यं करिष्यति।)

धृतराष्ट्र इति। अतिभैरवः = अतिभीषणः, विस्तारी = विस्तारयुक्तः, हाहारवः=हाहाकारशब्दः।

दुर्योधन इति। पराङ्मुखम् = प्रतिकूलम्, अशुभकरमित्यर्थः, दैवम् = भाग्यम्। अत्याहितम् = महाभीतिः, सङ्ग्रामावतरणाय = रणक्षेत्रे गमनाय।

टिप्पणी---दुर्योधन इति। अत्याहितम्--"अत्याहितं महाभीति"रित्यमरः।

धृतराष्ट्र इति। रहः = एकान्ते, परप्रतिघातोपायः = शत्रुविनाशोपायः।

अन्वयः---मम, प्रत्यक्षम्, हतबान्धवाः, परे, रहः, हन्तुम्, योग्याः, न, इह, रणे, यत्, कृतम्, (कर्म), तैः, प्रकाश्यम्, न, (भवति), तेन, कृतेन,

---

दुर्योधन---पिताजी; क्षमा कीजिए। भाग्य हम लोगों के प्रतिकूल है। जब तक कुछ दूसरा अनिष्ट नहीं सुनाता है तब तक मुझे युद्ध-भूमि में उतरने की आज्ञा दीजिए।

गान्धारी---बेटा! क्षण-भर के लिए मुझ अभागी को सान्त्वना दो।

धृतराष्ट्र---बेटा! यद्यपि तुमने युद्ध के लिए ही निश्चय कर लिया है तथापि गुप्तरूप से शत्रु के विनाश का उपाय सोचो।

दुर्योधन---मेरे समक्ष बान्धवों को मारनेवाले शत्रु गुप्तरूप से मारने योग्य नहीं हैं। यहाँ युद्ध में किया गया जो कर्म शत्रुओं द्वारा विज्ञात न हो उस कर्म को करने से क्या (प्रयोजन)?

गान्धारी---बेटा! तुम अकले हो। कौन तुम्हारी सहायता करेगा?

एकोऽहं भवतीसुतक्षयकरो मातः कियन्तोऽरयः।
साम्यं केवलमेतु दैवमधना निष्पाण्डवा मेदिनी ॥ ९ ॥

(नेपथ्ये । कलकलानन्तरम् ।)

भो भो योधाः, निवेदयन्तु भवन्तः कौरवेश्वराय, इदं महत्कदनं प्रवृत्तम् । अलमप्रियश्रवणपराङ्मुखतया । यतः कालानुरूपं प्रतिविधातव्य-

किं वा, (हे) मातः, अहम्, भवतीसुतक्षयकरः, एकः, अरयः, कियन्तः, केवलम्, दैवम्, साम्यम्, एतु, अधुना, मेदिनी, निष्पाण्डवा, (भविष्यति) ॥ ९ ॥

व्याख्या—प्रत्यक्षमिति । मम = दुर्योधनस्येति भावः, प्रत्यक्षम् = समक्षम्, हतबान्धवाः = हताः = विनाशिताः, बान्धवाः = मम लघुभ्रातरः यैस्ते, परे = रिपवः, रहः = एकान्ते, हन्तुम् = घातयितुम्, योग्याः = अर्हाः, न=नहि सन्तीत्यर्थः । प्रत्यक्षमहितकारिणः प्रत्यक्षमेवाहितं विधेयमिति नीतिः । इह = अत्र, रणे=सङ्ग्रामे, यत्कृतम् = यद्विहितम्, (कर्म), तैः = रिपुभिः, प्रकाम्यम्= सर्वजनवेद्यम्, न, भवतीति शेषः । तेन = तादृशेन, गुप्तरूपेण, कृतेन = सम्पादितेन (कार्येण) किं वा = किं प्रयोजनम् ? यथा शत्रुभिः प्रकटरूपेण ममानुजवधरूपं क्रूरकर्माचरितं तथैव मयाप्याचरणीयमिति भावः । (हे) मातः = हे जननि ! अहम् = तव सुतो दुर्योधनः, भवतीसुतक्षयकरः = भवत्याः = तव, सुतानाम् = पुत्राणाम्, क्षयकरः=विनाशकारकः, एकः=एकाकी, असहाय इत्यर्थः, अरयः = रिपवः, कियन्तः = कति, केवलं पञ्चसंख्यकाः सन्तीति भावः, दैवम् = भाग्यम्, साम्यम्=समताम्, अनुकूलतामित्यर्थः, एतु = प्राप्नोतु, अधुना=सम्प्रति, मेदिनी = पृथ्वी, निष्पाण्डवा = पाण्डवविहीना, भविष्यतीति क्रियाशेषः ॥ ९ ॥

टिप्पणी—प्रत्यक्षमिति । प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥९॥

भो भो योधा इति । कदनम् = भीषणम्, पापं वा, महाननर्थ इत्यर्थः ।

दुर्योधन—मैं अकेला ही आपके पुत्रों का विनाशकर्ता हूँ (फिर) हे, माताजी ! शत्रु हैं ही कितने ? (केवल पाँच ही तो हैं)। अब केवल भाग्य समान हो जाय तो पृथ्वी पाण्डवों से विहीन हो जायेगी ॥ ९ ॥

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि के बाद)

हे हे वीरपुरुषो ! आप लोग कौरवपति (दुर्योधन) से इस महान् अनर्थ के

मिदानीम्। तथा हि—

त्यक्तप्राजनरश्मिरङ्किततनुः पार्थाङ्कितैर्मार्गणै-
र्वाहैः स्यन्दनवर्त्मनां परिचयादाकृष्यमाणः शनैः।
वार्तामङ्गपतेर्विलोचनजलैरावेदयन्पृच्छतां
शून्येनैव रथेन याति शिविरं शल्यः कुरूञ्छल्ययन्॥ १०॥

अप्रियश्रवणपराङ्मुखतया = अनीप्सिताकर्णनविमुखतया, अलम् = व्यर्थम्। कालानुरूपम् = समयानुकूलम्, प्रतिविधातव्यम् = प्रतिकर्त्तव्यम्।

अन्वयः—त्यक्तप्राजनरश्मिः, पार्थाङ्कितैः, मार्गणैः, अङ्कितततनुः, स्यन्दनवर्त्मनाम्, परिचयात्, वाहैः, शनैः, आकृष्यमाणः, पृच्छताम्, विलोचनजलैः, अङ्गपतेः, वार्ताम्, आवेदयन्, कुरून्, शल्ययन्, शल्यः, शून्येन, एवं, रथेन शिविरम्, याति॥ १०॥

व्याख्या—त्यक्तप्राजनरश्मिरिति। त्यक्तप्राजनरश्मिः—त्यक्तौ = उज्झितौ, प्राजनरश्मी = तोदनप्रग्रहौ येन सः, पार्थाङ्कितैः = अर्जुननामचिह्नितैः, मार्गणैः= बाणैः, अङ्कितततनुः = चिह्नितशरीरः, स्यन्दनवर्त्मनाम् = रथमार्गाणाम्, परिचयात्=संस्तवात्, वाहैः=अश्वैः, शनैः=मन्दगत्येत्यर्थः, आकृष्यमाणः = नीयमानः, पृच्छताम् = जिज्ञासमानानाम्, विलोचनजलैः = नेत्रसलिलैः, अश्रुभिरित्यर्थः, अङ्गपतेः = अङ्गराजस्य कर्णस्येत्यर्थः, वार्ताम् = वृत्तान्तम्, आवेदयन् = विज्ञापयन्, कुरून् = दुर्योधनादीन् कौरवान्, शल्ययन् = शङ्कुजन्यपीडामिव पीडां प्रापयन्, शल्यः = कर्णस्य रथसञ्चालको नृपतिः, शून्येन = कर्णविहीनेन, एव = हि, रथेन = स्यन्दनेन, शिविरम् = सैन्यनिवासस्थानम्, याति=गच्छति॥१०॥

बारे में निवेदन करें। अप्रिय सुनने से विमुख होना व्यर्थ है। क्योंकि समय के अनुसार इस समय प्रतिकार करना चाहिए। क्योंकि—

चाबुक और लगाम को छोड़े हुए, अर्जुननामाङ्कित बाणों से चिह्नितशरीर वाला, रथ के मार्गों से परिचित होने के कारण घोड़ों द्वारा धीरे-धीरे खींचकर ले जाया जाता हुआ, पूछनेवालों को नेत्रजलों (आँसुओं) से अङ्गराज (कर्ण) का वृत्तान्त बतलाता हुआ, कौरव लोगों को काँटे के समान बींधता हुआ (यह राजा) शल्य खाली ही रथ से सैन्य-शिविर की ओर जा रहा है॥१०॥

दुर्योधनः—(श्रुत्वा। साशङ्कम्।) आः, केनेदमविस्पष्टमशनिपातदारुण-मुद्घोषितम्। कः कोऽत्र भोः! (प्रविश्य संभ्रान्तः।)

सूतः—हा, हताः स्मः (इत्यात्मानं पातयति।)

दुर्योधनः—अयि, कथय।

धृतराष्ट्रसंजयौ—कथ्यतां कथ्यताम्।

सूतः—आयुष्मन्, किमन्यत्।

शल्येन यथा शल्येन मूर्च्छितः प्रविशता जनौघोऽयम्।
शून्यं कर्णस्य रथं मनोरथमिवाधिरूढेन॥ ११॥

टिप्पणी—त्यक्तप्राजनरश्मिरिति। पार्थाङ्कितैर्मार्गणैः—शल्य के शरीर में अर्जुन के जो बाण घुसे थे उन पर अर्जुन का नाम अङ्कित था। पहले योद्धाओं द्वारा प्रयुक्त बाणों पर उनके नाम अङ्कित रहा करते थे ताकि बाणों को देखकर यह पता लगाया जा सके कि ये बाण किसके हैं। मार्गण शब्द बाण का पर्याय वाची है—"कलम्बमार्गणशराः" इत्यमरः। प्राजनम्—घोड़े को हाँकने के लिए जिस घड़ी या चाबुक का उपयोग किया जाता है उसे प्राजन कहते हैं—"प्राजनं तोदनं तोत्रम्" इत्यमरः। परिचयात्—संस्तवात्, "संस्तवः स्यात्परिचयः" इत्यमरः। प्रस्तुत पद्य में यमकालङ्कार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥ १०॥

दुर्योधन इति। अविस्पष्टम् = सन्दिग्धम्, अशनिपातदारुणम् = वज्रपात-वद्भयङ्करम्, उद्घोषितम् = शब्दितम्।

अन्वयः—मनोरथम्, इव, कर्णस्य, शून्यम्, रथम्, अधिरूढेन, प्रविशता, शल्येन, यथा, शल्येन, अयम्, जनौघः, मूर्च्छितः॥ ११॥

दुर्योधन—(सुनकर शङ्का के साथ) अरे! यह वज्रपात के समान भयङ्कर उद्घोष अस्पष्टरूप से किसने किया है? कौन है, कौन यहाँ पर है?

(प्रवेश करके घबड़ाया हुआ)

सूत—हाय! हम मारे गये। (यह कहकर अपने आपको गिराता है।)

दुर्योधन—अरे, कहो, कहो।

धृतराष्ट्र एवं सञ्जय—कहो, कहो।

सूत—चिरञ्जीविन्! और क्या?

(सूने अर्थात् अपूर्ण) मनोरथ के समान कर्ण के सूने रथ पर बैठे हुए

दुर्योधनः—हा वयस्य कर्ण (इति मोहमुपगतः ।)

गान्धारी—जाद, समस्सस समस्सस । (जात, समाश्वसिहि । समाश्वसिहि ।)

संजयः—समाश्वसितु देवः ।

धृतराष्ट्रः—भो कष्टं कष्टम्—

भीष्मे द्रोणे च निहते य आसीदवलम्बनम् ।
वत्सस्य च सुहृच्छूरो राधेयः सोऽप्ययं गतः ॥ १२ ॥

व्याख्या—शल्येनेति । मनोरथम् = मनोभिलाषम्, इव = यथा, कर्णस्य = राधापुत्रस्य, शून्यम्=रिक्तम्, रथम्=स्यन्दनम्, अधिरूढेन=आरूढेन, प्रविशता= प्रवेशं कुर्वता, शल्येन = शङ्कुनामकायुधविशेषेण लोके "बर्छी" इति नाम्ना प्रसिद्धेन, यथा=इव, शल्येन=शल्यनामकनृपेण कर्णस्य सारथिनेति भावः, अयम्= एषः, जनौघः = जनसमूहः, मूर्च्छितः = विगतचैतन्यः कृतः ॥ ११ ॥

टिप्पणी—शल्येनेति । शल्य शङ्कु अर्थात् बर्छी को कहते हैं । पहले जमाने में योद्धा लोग बर्छी की नोक को विष में बुझा कर प्रयोग करते थे जिससे कि जिस पर प्रहार किया जाता था वह तुरन्त या तो मर जाता था या मूर्छित हो जाता था । आज भी आदिवासी लोग ऐसे अस्त्रों का प्रयोग करते हैं प्रस्तुत पद्य में यमक एवं पूर्णोपमा अलङ्कार है । आर्या छन्द है ॥ ११ ॥

अन्वयः—भीष्मे, च, द्रोणे, निहते, यः, (अस्माकम्), अवलम्बनम्, आसीत्, सः, मे, वत्सस्य, सुहृत्, शूरः, अयम्, राधेयः, अपि, गतः ॥ १२ ॥

(राजा) शल्य ने प्रवेश करते हुए शल्य (बर्छी) नामक अस्त्र के समान इस जनसमूह को मूर्च्छित कर दिया है ॥ ११ ॥

दुर्योधन—हा मित्र कर्ण ! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है ।)

गान्धारी—बेटा ! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो !

सञ्जय—धैर्य धारण करें महाराज !

धृतराष्ट्र—ओह ! विपत्ति है ! विपत्ति है !

भीष्म पितामह एवं द्रोणाचार्य के विनष्ट हो जाने पर हमलोगों का अवलम्बन था वही मेरे पुत्र का मित्र यह कर्ण भी चला गया (अर्थात् समाप्त हो गया) ॥ १२ ॥

वत्स, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । ननु भा हतविधे,

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः
शोच्यां दशामुपगतः सह भार्ययाऽहम् ।
अस्मिन्नशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे
दुर्योधनेऽपि कृतो भवता निराशः ॥ १३ ॥

व्याख्या--भीष्म इति । भीष्मे = पितामहे, च = तथा, द्रोणे=द्रोणाचार्ये, निहते = व्यापादिते, यः = कर्णः, अस्माकमिति शेषः, अवलम्बनम् = आश्रयः, आसीत् = अभूत्, सः = पूर्वोक्तः, मे = मम, वत्सस्य = पुत्रस्य, सुहृत्=मित्रम्, शूरः = वीरः, अयम् = एषः, राधेयः = राधासुतः, कर्ण इत्यर्थः, अपि = च, गतः = विनाशं प्राप्त इत्यर्थः ॥ १२ ॥

टिप्पणी--भीष्म इति । प्रस्तुत पद्य अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है ॥ १२ ॥

अन्वयः--अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः, अन्धः, अहम्, भार्यया, सह, (इमाम्) शोच्याम्, दशाम्, उपगतः, (एवञ्च), अशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे, अस्मिन्, दुर्योधने, अपि, भवता, हि, निराशः, कृतः ॥ १३ ॥

व्याख्या—अन्ध इति । अनुभूतिशतपुत्रविपत्तिदुःखः—अनुभूतम्=अनुभवविषयीकृतम्, शतपुत्राणाम्=शतसङ्ख्याकारमजानाम्, विपत्तेः=आपदः, विनाशरूपविपत्तेरित्यर्थः, दुःखम्=कष्टम्, येन सः, अन्धः = नेत्रविहीनः, अहम्=धृतराष्ट्रः, भार्यया = पत्न्या, गान्धार्येति भावः, सह = साकम्, (इमाम् = एनाम्), शोच्याम् = शोचनीयाम्, दशाम् = अवस्थाम्, उपगतः = प्राप्तः, (एवञ्च), अशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे—अशेषितः = विनष्टः इत्यर्थः, सुहृद्गुरुबन्धूनाम् = मित्राचार्यबान्धवानाम्, वर्गः = समुदायः यस्य तस्मिन्, अस्मिन् = पुरोवर्त्तमाने, दुर्योधने = सुयोधने, जीविताश्रयभूते दुर्योधन इत्यर्थः; अपि, भवता = त्वया,

---

बेटा ! धैर्य धारण करो ! धैर्य धारण करो !

सौ पुत्रों के विनाशजन्य शोक को अनुभव किया हुआ अन्धा मैं पत्नी के साथ (इस) सोचनीय दशा को प्राप्त हुआ हूँ (और अब) जिसके गुरु, मित्र एवं बन्धुवर्ग विनष्ट हो गये हैं ऐसे इस दुर्योधन के विषय में भी तुम्हारे द्वारा निराश कर दिया गया हूँ ॥ १३ ॥

वत्स दुर्योधन, समाश्वसिहि। समाश्वासय तपस्विनीं मातरं च।

दुर्योधनः—(लब्धसंज्ञः।)

अयि कर्ण कर्णसुखदां प्रयच्छ मे
गिरमुद्गिरन्निव मुदं मयि स्थिराम्।
सतताऽवियुक्तमकृताऽप्रियं प्रिय
वृषसेनवत्सल! विहाय यासि माम्॥ १४॥

हतभाग्येनेति भावः, हि = निश्चयेन, निराशः = आशाविहीनः, निराश्रय इत्यर्थः, कृतः = सम्पादितः॥ १३॥

टिप्पणी—अन्ध इति। प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा वसन्त-तिलका छन्द है॥ १३॥

अन्वयः—अयि, कर्ण, मयि, स्थिराम्, मुदम्, उद्गिरन्, इव, (त्वम्) कर्णसुखदाम्, गिरम्, मे, प्रयच्छ, (हे) प्रिय, वृषसेनवत्सल, सतताऽवियुक्तम्, माम्, विहाय, यासि॥ १४॥

व्याख्या—अयि कर्ण इति। अयि कर्ण = हे राधापुत्र! मयि = दुर्योधने, स्थिराम् = स्थायिनीम्, मुदम् = प्रीतिम्, उद्गिरन् = उद्वमन्, इव = यथा, त्वमिति शेषः, कर्णसुखदाम् = श्रोत्रप्रीतिजनिकाम्, गिरम् = वाचम्, मे = मह्यम्, प्रयच्छ = देहि, हे प्रिय = हे प्रेमपात्रम्! वृषसेनवत्सल = वृषसेने = स्वपुत्रे वत्सलः = स्नेहयुक्तः तत्संबोधने, सतताऽवियुक्तम् = सततम् = सर्वदा, अवियुक्तः = अपृथग्भूतः, तम्, निरन्तरमेकत्रस्थितमित्यर्थः, अकृताप्रियम्—न कृतमिति अकृतम् = असम्पादितम्, अप्रियम् = अनिष्टम् येन तम्, माम् = स्वमित्रं दुर्योधनम्, विहाय = परित्यज्य, यासि = गच्छसि? तव गमनं नोचितमिति भावः॥ १४॥

बेटा दुर्योधन! धैर्य धारण करो तथा अपनी दुखिया माँ को धैर्य बँधाओ।

दुर्योधन—(चेतना को प्राप्त कर)

हे कर्ण! मुझमें मानो स्थायी आनन्द उड़ेलते हुए तुम मुझे कानों को सुख देने वाली वाणी प्रदान करो। हे प्रिय! हे वृषसेन से स्नेह करने वाले। हमेशा एक साथ रहने वाले तथा कभी भी अप्रिय न करनेवाले मुझको छोड़कर जा रहे हो?॥ १४॥

(पुनर्मोहमुपगतः । सर्वे समाश्वासयन्ति ।)

दुर्योधनः—मम प्राणाधिके तस्मिन्नङ्गानामधिपे हते ।
उच्छ्वसन्नपि लज्जेऽहमाश्वासे तात ! का कथा ? ।। १५ ।।

अपि च ।

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्सं
दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम् ।

टिप्पणी—अयि कर्ण इति । प्रस्तुत पद्य के प्रथम चरण में यमक, द्वितीय चरण में उपमा तथा चतुर्थ चरण में पदार्थगत काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । मञ्जुभाषिणी छन्द है ।। १४ ।।

अन्वयः—(हे) तात, अङ्गानाम्, अधिपे, मम, प्राणाधिके, तस्मिन्, हते; (सति), उच्छ्वसन्, अपि, अहम्, लज्जे, आश्वासे, का, कथा ? ।। १५ ।।

व्याख्या—ममेति । हे तात = हे पितः ! अङ्गानाम् = अङ्गदेशप्रजानाम्, अधिपे = शासके, मम = दुर्योधनस्य, प्राणाधिके = प्राणेभ्योऽपि श्रेष्ठे, तस्मिन् = तादृशे, कर्णे इत्यर्थः, हते = विनाशिते सति, उच्छ्वसन् = श्वासं गृह्णन्, अपि, अहम् = दुर्योधनः, लज्जे = लज्जामनुभवामि, आश्वासे = धैर्यधारणे, का कथा = कीदृशी चर्चा ? कर्णसदृशे मित्रे हते सति प्राणधारणेऽप्यहं लज्जे तदा धैर्यधारणस्य का चर्चेति भावः ।। १५ ।।

टिप्पणी—ममेति । अङ्गानाम्—यहाँ पर अङ्गशब्द देशवाची है—"अङ्गं गात्रे प्रतीकोपाययोः पुंभूम्नि नीवृति" इति मेदिनी । नीवृत् देश को कहते हैं—" नीवृज्जनपदो देशः" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ।। १५ ।।

अन्वयः—अधुना, शत्रुहतम्, शोच्यम्, अपि, वत्सम्, दुःशासनम्, च, तम्;

(फिर मूर्च्छित हो जाता है । सभी सान्त्वना देते हैं ।)

दुर्योधन—हे पिताजी ! अङ्गदेश के राजा, मेरे प्राणों से भी श्रेष्ठ उस (कर्ण) के मारे जाने पर साँस लेते हुए भी मुझे लज्जा आती है फिर धैर्य धारण का तो कहना ही क्या ? ।। १५ ।।

और भी,

अब मैं शत्रु द्वारा मारे गये तथा शोक के योग्य होते हुए भी वत्स दुःशासन

येनातिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे
कर्त्ताऽस्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य ॥ १६ ॥

गान्धारी—जाद, सिढिलेहि दाव क्खणमेत्तं बाष्पमोक्खम्। (जात, शिथिलय तावत्क्षणमात्रं बाष्पमोक्षम्।)

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमात्रं परिमार्जयाश्रूणि।

दुर्योधनः—मामुद्दिश्य त्यजन्प्राणान् केनचिन्न निवारितः।
तत्कृते त्यजतो बाष्पं किं मे दीनस्य वार्यते ॥ १७ ॥

वन्धुवर्गम्, न, शोचामि, (किन्तु), येन, कर्णे, अतिदुःश्रवम्, असाधु, कृतम्, समरे, तस्य, कुलस्य, निधनम्, कर्त्ता, अस्मि (अहम्) ॥ १६ ॥

व्याख्या—शोचामीति। अधुना = सम्प्रति, शत्रुहतम्–शत्रुणा = रिपुणा; हतः = व्यापादितः, तम्, शोच्यम् = शोचनीयम् अपि, वत्सम् = वत्ससदृशम्, दुःशासनम् = स्वानुजम्, च=तथा, तम् = तादृशम्, वन्धुवर्गम् = बान्धव-समूहम्, न=नहि, शोचामि=विचिन्तयामि, न हार्दिकं कष्टमनुभवामीति भावः; किन्तु येन=येन क्रूरकर्मणा शत्रुणेत्यर्थः, कर्णे = राधेये, अतिदुःश्रवम्=अत्यन्तम-श्रवणार्हम्, असाधु = अशोभनम्, हननमित्यर्थः, कृतम् = सम्पादितम्, समरे= सङ्ग्रामे, तस्य = पूर्वोक्तस्य शत्रोरित्यर्थः, कुलस्य = वंशस्य, निधनम्=विनाशम्; कर्त्ता = विधायकः, अस्मि, अहमिति शेषः। सम्प्रति पाण्डवविनाशमन्तरा न किमपि करिष्यामीति भावः ॥ १६ ॥

टिप्पणी—शोचामीति। इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द है जिसका लक्षण है—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।" ॥ १६ ॥

गान्धारीति। शिथिलय = निवारय, वाष्पमोक्षम् = अश्रुत्यागम्।

अन्वयः—माम्, उद्दिश्य, प्राणान्, त्यजन्, (यः), केनचित्, न, निवारितः, तत्कृते, बाष्पम्, त्यजतः, दीनस्य, मे, किम्, वार्यते ॥ १७ ॥

तथा वन्धुवर्ग के लिए शोक नहीं करता किन्तु जिसके द्वारा कर्ण के प्रति अत्यन्त दुःश्रवणीय अशोभन कार्य किया गया है; युद्ध में उसके कुल का विनाश करदूँगा ॥ १६ ॥

गान्धारी—बेटा! क्षण-भर के लिए तब तक आँसू बहाना बन्द करो!

धृतराष्ट्र—वत्स! क्षण-भर के लिए आंसुओं को पोंछ लो।

दुर्योधन—मेरे लिए प्राणों का त्याग करते हुए कर्ण को किसी ने नहीं

सूत, केनैतदसम्भावनीयमस्मत्कुलान्तरं कर्म कृतं स्यात् ।

सूतः—आयुष्मन् , एवं किल जनः कथयति ।

भूमौ निमग्नचक्रश्चक्रायुधसारथेः शरैस्तस्य ।
निहतः किलेन्द्रसूनोरस्मत्सेनाकृतान्तस्य ॥ १८ ॥

व्याख्या—मामिति । माम् = दुर्योधनम्, उद्दिश्य = अभिलक्ष्यीकृत्य, प्राणान् = असून्, त्यजन् = मुञ्चन्, (यः = कर्णः), केनचित् = केनापि पुरुषेण, न निवारितः = नाऽवरोधितः, तत्कृते = तस्य = कर्णस्य कृते = हेतौ, बाष्पम् = अश्रु, त्यजतः = मुञ्चतः, दीनस्य = कातरस्य, दुरवस्थां प्राप्तस्येत्यर्थः, मे = दुर्योधनस्य, किम् = कथम्, वार्यते = निवार्यते, भवतेति शेषः ॥ १७ ॥

टिप्पणी—मामुद्दिश्येति । इस पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ १७ ॥

अन्वयः—चक्रायुधसारथेः, अस्मत्सेनाकृतान्तस्य, तस्य, इन्द्रसूनोः, शरैः, भूमौ, निमग्नचक्रः, (कर्णः), निहतः, किल ॥ १८ ॥

व्याख्या—भूमाविति । चक्रायुधसारथेः—चक्रम् = सुदर्शनाख्यं चक्रम्, आयुधम् = अस्त्रम्, यस्य सः श्रीकृष्णः, सारथिः = स्यन्दनसञ्चालको यस्य सः, तस्य, अस्मत्सेनाकृतान्तस्य—अस्माकं सैन्यस्य कृतान्तः = यमराजः, तस्य, तस्य = तादृशस्य, प्रख्यातस्येत्यर्थः, इन्द्रसूनोः = शक्रसुतस्य, अर्जुनस्येत्यर्थः, शरैः = बाणैः, भूमौ = पृथिव्याम्, निमग्नचक्रः—निमग्नम् = त्रुडितम्, चक्रम् = रथाङ्गम् यस्य सः, कर्ण इति शेषः, निहतः = व्यापादितः, किलेति प्रसिद्धौ ॥ १८ ॥

टिप्पणी—भूमाविति । इन्द्रसूनोः—इन्द्र के द्वारा कुन्ती के गर्भ से अर्जुन का जन्म हुआ था इसीलिए अर्जुन को इन्द्रपुत्र कहा गया है । निमग्नचक्रः—

रोका । उसके लिए आँसू बहाते हुए मुझ दीन को क्यों (आप के द्वारा) रोका जा रहा है ? ॥ १७ ॥

सूत ! किसके द्वारा हमारे कुल का नाश करने वाला यह असम्भव कार्य किया गया होगा ?

सूत—आयुष्मन् ! ऐसा लोग कहते हैं—

चक्रायुध (श्रीकृष्ण) जिसका सारथि है तथा हमारी सेना के लिए यमराज के समान उस इन्द्रपुत्र (अर्जुन) के बाणों से, पृथ्वी में जिसके रथ का पहिया धँस गया था, (ऐसा कर्ण) मारा गया ॥ १८ ॥

दुर्योधनः—

कर्णाननेन्दुस्मरणात्क्षुभितः शोकसागरः ।
वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ॥ १९ ॥

तात, अम्ब प्रसीदतम् ।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः ।
समानायां विपत्तौ मे वरं संशयितो रणः ॥ २० ॥

कर्ण को शाप दिया गया था कि मृत्यु के निकट आने पर तुम्हारे रथ का चक्का पृथ्वी में धँस जायेगा। पृथ्वी में धँसे रथ के चक्के को निकालने के लिए कर्ण जब प्रयास कर रहा था तभी अर्जुन ने उसे मार डाला था। पद्य में आर्या छन्द है ॥ १८ ॥

अन्वयः—कर्णाननेन्दुस्मरणात, क्षुभितः, शोकसागरः, वाडवेन, इव, मे, क्रोधजेन, शिखिना, पीयते ॥ १९ ॥

व्याख्या—कर्णेति । कर्णाननेन्दुस्मरणात् = राधेयमुखचन्द्रस्मृतेः, क्षुभितः= उद्वेलितः, शोकसागरः = सन्तापसमुद्रः, वाडवेन = वडवानलेन, इव = यथा, क्रोधजेन = रोषजातेन, शिखिना = अग्निना, पीयते=शोष्यते ॥ १९ ॥

टिप्पणी-कर्णेति । इस पद्य में उपमालङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥१९॥

अन्वयः—दुःसहः, शोकजन्मा, अयम्, ज्वलनः, माम्, दहति, (एवम्), समानायाम्, विपत्तौ, मे, संशयितः, रणः, वरम् ॥ २० ॥

व्याख्या—ज्वलन इति । दुःसहः=दुःखेन सोढुं योग्यः, शोकजन्मा—शोकात् =सन्तापात्, जन्म = उत्पत्तिर्यस्य सः, अयम्=एषः, ज्वलनः = अग्निः, माम् = दुर्योधनम्, दहति = भस्मीकरोति, (एवं सति) समानायाम् = तुल्यायाम्, विपत्तौ = दाहमृत्युविपदि सत्याम्, मे = मम, संशयितः = सन्दिग्धः,

---

दुर्योधन—कर्ण के मुखरूपी चन्द्रमा के स्मरण से उद्वेलित शोक-समुद्र वडवानल के समान मेरे क्रोध से उत्पन्न अग्नि के द्वारा पिया जा रहा है ॥१९॥

पिताजी ! माताजी ! आप दोनों प्रसन्न हों ।

शोक से उत्पन्न यह अग्नि मुझे जला रही है । (इस प्रकार) मृत्यु के समान (रूप से सम्भव) होने पर संशययुक्त सङ्ग्राम ही मेरे लिए श्रेष्ठ है॥२०॥

घृतराष्ट्रः— दुर्योधनं परिष्वज्य रुदन् ।)

भवति तनय लक्ष्मीः साहसेष्वीदृशेषु
द्रवति हृदयमेतद्भीममुत्प्रेक्ष्य भीमम् ।
अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशौण्ड
छलबहुलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ॥ २१ ॥

रणः = समरः, वरम् = श्रेष्ठः । सङ्ग्रामं परित्यज्यापि शोकवह्निना मृत्युरवश्यम्भावी तर्हि सङ्ग्राममेव कथं न कुर्यामित्याशयः ॥ २० ॥

टिप्पणी—ज्वलन इति । प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप छन्द है ॥ २० ॥

अन्वयः—(हे) तनय, ईदृशेषु, साहसेषु, लक्ष्मीः, भवति, (किन्तु), भीमम्, भीमम्, उत्प्रेक्ष्य, एतद्, हृदयम्, द्रवति, (हे) मानशौण्ड, ते, चेष्टितम्, अनिकृतिनिपुणम्, (विद्यते), अरीणाम्, सङ्गरम्, छलबहुलम्, (अस्ति); (अतः), हा, हतः, अस्मि ॥ २१ ॥

व्याख्या—भवतीति । (हे) तनय = हे पुत्र ! ईदृशेषु = एतादृशेषु, सहायकाभावेऽपि सङ्ग्रामावतरणरूपेष्विति भावः, साहसेषु = साहसपूर्णकार्येषु, लक्ष्मीः = श्रीः, भवति = प्रतिवसति, (किन्तु), भीमम् = भयानकम्, भीमम् = वृकोदरम्, उत्प्रेक्ष्य = विज्ञाय, एतत = इदम्, हृदयम् = चित्तम्, द्रवति = संशयेन भीत्या वा तरलायितं भवति । (हे) मानशौण्ड = हे मानमत्त ! ते = तव, चेष्टितम् = कार्यम्, अनिकृतनिपुणम्—विकृतौ = क्षेपे शत्रुवञ्चने इत्यर्थः, निपुणम् = कुशलम् इति निकृतिनिपुणम्, न निकृतिनिपुणम्, अनिकृतिनिपुणम् = शत्रुवञ्चनारहितमित्यर्थः, विद्यत इति शेषः, अरीणाम् = शत्रूणाम्, सङ्गरम् = सङ्ग्रामः, छलबहुलम् = कपटैर्युक्तम्, अस्ति अतः, हा इति खेदे, हतः = विनष्टः, अस्मि = भवामि ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन को आलिङ्गन कर रोते हुए)

हे पुत्र ! इस प्रकार के साहसपूर्ण कार्यों में ही लक्ष्मी निवास करती है (किन्तु) भयङ्कर भीम का विचार कर यह हृदय पिगल रहा है । हे स्वाभिमानिन् ! तुम्हारा कार्य (युद्धकर्म) कपट-कुशल नहीं है, जब कि शत्रुओं का सङ्ग्रामकर्म अनेक छलों से पूर्ण है । हाय ! मैं मारा गया ! ॥ २१ ॥

गान्धारी—जाद, तेण एव सुदसदकदन्तेण विओदलेण समं समलं मग्गसि । (जात, तेनैव सुतशतकृतान्तेन वृकोदरेण समं समरं मार्गयसे ।)

दुर्योधनः—तिष्ठतु तावद् वृकोदरः ।

पापेन येन हृदयस्य मनोरथो मे
सर्वाङ्गचन्दनरसो नयनामलेन्दुः ।
पुत्रस्तवाम्ब तव तात नयैकशिष्यः
कर्णो हतः सपदि तत्र शराः पतन्तु ॥ २२ ॥

टिप्पणी—भवतीति । मानशौण्ड—"शौण्डो मत्ते च विख्याते" इति विश्वः । हा—"हा विषादे च शोके च कुत्सादुःखार्थयोरपि" इति मेदिनी । इस पद्य में मालिनी छन्द है ॥ २१ ॥

गान्धारीति । सुतशतकृतान्तेन—सुतशतस्य = पुत्रशतस्य कृते कृतान्तः = यमः तेन, वृकोदरेण = भीमसेनेन, समम् = सह, समरम् = युद्धम्, मार्गयसे = अन्वेषयसि ।

अन्वयः—येन, पापेन, हि, मे, हृदयस्य, मनोरथः, सर्वाङ्गचन्दनरसः, नयनामलेन्दुः, (हे) अम्ब, तव, पुत्रः, (हे) तात, तव, नयैकशिष्यः, कर्णः, हतः, तत्र, शराः, सपदि, पतन्तु ॥ २२ ॥

व्याख्या—पापेनेति । येन पापेन = येन पापशीलेन, मे = मम, हृदयस्य = चित्तस्य, मनोरथः = मनोभिलाषः, सर्वाङ्गचन्दनरसः—सर्वाङ्गेषु = निखिलावयवेषु, चन्दनरसः = मलयजरसः, नयनामलेन्दुः—नयनयोः = नेत्रयोः, अमलः = निष्कलङ्कः, इन्दुः = चन्द्रमाः, (हे) अम्ब = हे मातः ! तव = भवत्याः,

गान्धारी—बेटा ! क्या उसी भीम के साथ युद्ध का अवसर ढूँढ़ रहे हो जो (मेरे) सौ पुत्रों के लिए यमराज के समान है ?

दुर्योधन—भीम तब तक रहे ।

जिस पापी ने, मेरे हृदय के मनोरथ, सभी अङ्गों के चन्दनरस और मेरे नेत्रों के निष्कलङ्क चन्द्र, हे माताजी ! आपके पुत्र और हे पिताजी ! नीति शास्त्र में आपके प्रधान शिष्य, कर्ण को मारा है, उस पर (मेरे ये) बाण शीघ्र ही पड़ें ॥ २२ ॥

सूत ! अलमिदानीं कालातिपातेन। सज्जं मे रथमुपाहर। भयं चेत्पाण्डवेभ्यस्तिष्ठ। गदामात्रसहाय एव समरभुवमवतरामि।

सूतः—अलमन्यथा संभावितेन। अयमहमागत एव। (इति निष्क्रान्तः।)

धृतराष्ट्रः—वत्स, दुर्योधन, यदि स्थिर एवास्मान्दग्धुमयं ते व्यवसायस्तत्सन्निहितेषु वीरेषु सेनापतिः कश्चिदभिषिच्यताम्।

दुर्योधनः—नन्वभिषिक्त एव।

गान्धारी—जाद, कदरो उण सो जस्सिं आसं ओलम्बिस्सम्। (जात, कतरः पुनः स यस्मिन्नाशामवलम्बिष्ये।)

पुत्रः = सुतः; (हे) तात = हे पितः ! तव = भवतः, नयैकशिष्यः—नये = नीतौ, एकः = प्रधानः, शिष्यः = छात्रः, कर्णः = राधेयः, हतः = मारितः, तत्र = तस्मिन् अर्जुने इति भावः, शराः = बाणाः, सपदि = शीघ्रम्, पतन्तु=निपतन्तु। इदानीं भीमं विहायार्जुनमेव हनिष्यामीति भावः ॥ २२ ॥

टिप्पणी—पापेनेति। प्रस्तुत पद्य में रूपकालङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है ॥ २२ ॥

कालातिपातेन=समयविनाशेन उपाहर=आनय। गदामात्रसहायः—गदामात्रं सहायः= सहायको यस्य सः।

धृतराष्ट्र इति। स्थिरः = निश्चितः, दग्धुम् = भस्मीकर्त्तुम्, व्यवसायः = उद्यमः; सन्निहितेषु = समीपस्थेषु, अभिषिच्यताम् = नियुज्यताम्।

सूत ! अब समय बर्बाद करना व्यर्थ है। मेरा रथ तैयार करके लाओ। यदि पाण्डवों से तुम्हें भय हो तो ठहरो। मैं केवल गदा को सहायक बनाकर युद्ध-भूमि में उतरता हूँ।

सूत—अन्यथा मत समझिए। यह मैं आ ही गया। (कहकर निकल जाता है।)

धृतराष्ट्र—बेटा दुर्योधन ! यदि हमें जलाने के लिए ही तुम्हारा निश्चय दृढ हो गया है तो निकटस्थ वीरों में से किसी को सेनापति के रूप में अभिषिक्त करो।

दुर्योधन—अभिषिक्त है ही।

गान्धारी—बेटा ! कौन है वह जिस पर अपनी आशा को अवलम्बित करूँ ?

धृतराष्ट्रः—किं वा शल्य उत वाऽऽश्वत्थामा ।

संजयः—हा कष्टम् ।

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते ।
आशा बलवती राजञ्छल्यो जेष्यति पाण्डवान् ॥ २३ ॥

दुर्योधनः—किं वा शल्येनोत वाऽश्वत्थाम्ना ।

कर्णालिङ्गनदायी वा पार्थप्राणहरोऽपि वा ।
अनिवारितसम्पातैरयमात्माऽश्रुवारिभिः ॥ २४ ॥

अन्वयः—भीष्मे, गते, द्रोणे, हते, च, कर्णे, विनिपातिते, (हे) राजन्; आशा, बलवती, (भवति, यत्), शल्यः, पाण्डवान्, जेष्यति ॥ २३ ॥

व्याख्या—गत इति । भीष्मे = भीष्मपितामहे, गते = याते, विनष्टे इत्यर्थः, द्रोणे = द्रोणाचार्ये, हते = मृते सति, च तथा, कर्णे = राधेये, विनिपातिते = व्यापादिते सति, (हे) राजन्=हे भूपते ! आशा=तृष्णा, बलवती= बलीयसी, भवतीति शेषः, (यत्) शल्यः = मद्रपतिः, साधारणो वीर इति भावः, पाण्डवान् = पाण्डुपुत्रान् युधिष्ठिरादीनित्यर्थः, जेष्यति = विजितान् विधास्यति । शल्यद्वारा पाण्डवोपरि विजयो दुराशामात्रमेवेति भावः ॥ २३ ॥

टिप्पणी—गत इति । पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ २३ ॥

अन्वयः—कर्णालिङ्गनदायी, वा, पार्थप्राणहरः, अपि, वा, अयम्, आत्मा, अनिवारितसम्पातैः, अश्रुवारिभिः, (अभिषिक्तः) ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्र—क्या वह शल्य है अथवा अश्वत्थामा ?

सञ्जय—हाय ! दुःख है !

भीष्म के चले जाने पर, द्रोण के मर जाने पर, तथा कर्ण के गिरादिये (मारे) जाने पर हे राजन् ! आशा बलवती है कि शल्य पाण्डवों को जीत लेगा । (अर्थात् शल्य जैसे साधारण वीर द्वारा पाण्डवों पर विजय प्राप्त करना दुराशामात्र ही है ।) ॥ २३ ॥

दुर्योधन—शल्य से अथवा अश्वत्थामा से क्या ?

कर्ण को आलिङ्गन प्रदान करनेवाला या अर्जुन के प्राणों को हरने वाला यह मैं स्वयं विना रुकावट के बहने वाले अश्रुजलों से (अभिषिक्त हो गया हूँ) ॥ २४ ॥

(नेपथ्ये कलकलं कृत्वा ।)

भो भोः कौरवबलप्रधानयोधाः, अलमस्मानवलोक्य भयादितो गन्तुम् । कथयन्तु भवन्तः कस्मिन्नुद्देशे सुयोधनस्तिष्ठतीति ।

(सर्वे ससंभ्रममाकर्णयन्ति ।)

(प्रविश्य संभ्रान्तः ।)

सूतः—आयुष्मन्,

प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः ।

सर्वे—कश्च कश्च ।

व्याख्या—कर्णेति । कर्णालिङ्गनदायी-कर्णस्य = राधेयस्य, आलिङ्गनम्= परिष्वजम्, दातु शीलमस्येति तादृशः, वा = अथवा, पार्थप्राणहरः-पार्थस्य = अर्जुनस्य, प्राणान् = असून् हरति = अपहरतीति तादृशः, अर्जुनसंहारक इत्यर्थः, अपिवेति पादपूरणे, अयम् = एषः, आत्मा=स्वयमहमित्यर्थः, अनिवारितसम्पातैः= अनवरुद्धधाराभिः, अश्रुवारिभिः = अश्रुजलैः, अभिषिक्त इति शेषः । यथा जलेनाभिषेको भवति तथैवाश्रुभिः सेनानायकत्वेन ममाभिषेको जात इति भावः ॥२४॥

टिप्पणी—कर्णेति । इसमे रूपकालङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥ २४ ॥

कौरवबलप्रधानयोधाः = कौरवसैन्यप्रमुखभटाः । उद्देशे=स्थाने, सुयोधनः= दुर्योधनः ।

अन्वयः—इतस्ततः, त्वाम्, पृच्छन्तौ, एकरथारूढौ, प्राप्तौ, सः,

(नेपथ्य में कोलाहल करके)

हे हे कौरव सेना के प्रधान वीरो ! हमें देखकर भय के कारण यहाँ से भागने की आवश्यकता नहीं । आपलोग बतलावें कि दुर्योधन किस स्थान पर वर्त्तमान है ?

(सभी घबराहट के साथ सुनते हैं ।)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

सूत—आयुष्मन् !

एक रथ पर बैठे हुए तथा आपके बारे में इधर-उधर पूछते हुए दो आये हैं ।

सब—कौन कौन ?

सूतः—स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ॥ २५ ॥

गान्धारी—(सभयम् ।) जाद किं एत्थ पडिपज्जिदव्वं ? (जात, किमत्र प्रतिकर्तव्यम् ।)

दुर्योधनः—ननु सन्निहितैवेयं गदा ।

गान्धारी—हा हदम्हि मन्दभाइणो । (हा हतास्मि मन्दभागिनी ।)

दुर्योधनः—अम्ब, अलमिदानीं कार्पण्येन । संजय, रथमारोप्य पितरौ शिबिरं प्रतिष्ठस्व । समागतोऽस्माकं शोकापनोदी जनः ।

कर्णारिः, च, वृककर्मा, सः, क्रूरः, वृकोदरः ॥ २५ ॥

व्याख्या—प्राप्ताविति । इतस्ततः = यत्र तत्र, सर्वत्रेत्यर्थः, त्वाम् = भवन्तम्, दुर्योधनमित्यर्थः, पृच्छन्तौ = कुत्र दुर्योधनो वर्तत इत्येवं जिज्ञासमानौ, एकरथारूढौ = एकरथोपविष्टौ, प्राप्तौ = आगतौ । तौ द्वौ कावित्येवं पृच्छत्सु सर्वेषु सारथिरुत्तरयति—सः = सुविदितः, कर्णारिः = राधेयशत्रुः, अर्जुन इत्यर्थः, च = तथा, वृककर्मा—वृकः = पशुविशेषः लोके "भेड़िया" इति नाम्ना प्रसिद्धः, तद्वत् कर्म = हननादिरूपं कार्यं यस्य सः, (अत एव) क्रूरः = निर्दयः, वृकोदरः = भीमसेनः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—प्राप्ताविति । प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ २५ ॥

दुर्योधन इति । कार्पण्येन = कदर्यतया, दीनतयेति भावः । शोकापनोदी = शोकापहारकः ।

टिप्पणी—दुर्योधन इति । शोकापनोदी—यदि भीम और अर्जुन को मैं मार देता हूँ तो अपने मारे गये भाइयों तथा कर्ण का बदला लेकर अपने शोक

सूत—वह, कर्ण का शत्रु (अर्जुन) और वह भेड़िया की तरह कार्य करने वाला नृशंस भीम ॥ २५ ॥

गान्धारी—(भयपूर्वक) बेटा ! इसका क्या प्रतिकार करना चाहिए ?

दुर्योधन—यह गदा तो पास में है ही ।

गान्धारी—हाय ! मैं अभागिन मारी गई ।

दुर्योधन—माताजी ! अब दीनता से बस करो ! सञ्जय ! माता-पिता को रथ में बिठाकर शिविर को प्रस्थान करो । हमारे शोक का निवारण करने वाला व्यक्ति आ गया है ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमेकं प्रतीक्षस्व यावदनयोर्भावमुपलभे।

दुर्योधनः—तात, किमनेनोपलब्धेन।

(ततः प्रविशति भीमार्जुनौ।)

भीमः–भो भो सुयोधनानुजीविनः, किमिति सम्भ्रमादयथायथं चरन्ति भवन्तः। कथयत तावदिदमावयोरागमनं स्वामिनस्तस्य कुरुपतेः। अलमावयोः शङ्कया।

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्पाण्डवा यस्य दासाः।
राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रं
क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः॥२६॥

का निवारण करूँगा अन्यथा इनके हाथों यदि मारा जाता हूँ तो शोक भी सर्वदा के लिए समाप्त हो जायेगा इसीलिए दुर्योधन ने भीम आदि के लिए "शोकापनोदी" कहा है।

धृतराष्ट्र इति। भावम् = अभिप्रायम्, उपलभे=जानामि।

भीम इति। सुयोधनानुजीविनः = दुर्योधनाश्रिताः जनाः, सम्भ्रमात् = भयात्, अयथायथम् = इतस्ततः। शङ्कया = सन्देहेन, मृत्युभीत्येति भावः।

अन्वयः—द्यूतच्छलानाम्, कर्त्ता, जतुमयशरणोद्दीपनः, कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयमरुत्, सः, अभिमानी, पाण्डवाः, यस्य, दासाः, दुःशासनादेः, अनुजशतस्य, गुरुः, अङ्गराजस्य, मित्रम्, राजा, असौ, दुर्योधनः, क्व, आस्ते, (यूयम्) कथयत, रुषा, न, (अपि तु) द्रष्टुम्, अभ्यागतौ, स्वः॥ २६॥

धृतराष्ट्र—बेटा! क्षण भर के लिए प्रतीक्षा करो जब तक मैं इसके मनोभाव को जान लूँ।

दुर्योधन—इसके जानने से क्या होगा!

(उसके बाद भीम और अर्जुन प्रवेश करते हैं।)

भीम—अरे रे दुर्योधन के आश्रितो! क्यों घबराहट के कारण इधर-उधर भाग रहे हो? अपने उस स्वामी कुरुराज से हम दोनों के आगमन विषय में निवेदन करो। हम दोनों के विषय में किसी प्रकार का सन्देह मत करो।

जुआ के खेल में कपटों को करने वाला, लाक्षागृह को जलाने वाला,

धृतराष्ट्रः—संजय, दारुणः खलूपक्षेपः पापस्य ।

संजयः—तात, कर्मणा कृतनिःशेषविप्रियाः सम्प्रति वाचा व्यवस्यन्ति ।

व्याख्या—कर्त्तेति । द्यूतच्छलानाम् = अक्षक्रीडाकपटानाम्, कर्त्ता = विधायकः, जतुमयशरणोद्दीपनः—जतुमयम् = लाक्षाविनिर्मितम्, शरणम् = गृहम्, तस्य उद्दीपनः = प्रज्वालनहेतुः, कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्—कृष्णायाः = द्रौपद्याः, केशोत्तरीययोः = कचोर्ध्ववस्त्रयोः, व्यपनयने = पृथक्करणे, मरुत् = पवनः, तत्सदृश इत्यर्थः, सः = प्रसिद्धः, अभिमानी=अहङ्कारी, पाण्डवाः=पाण्डु-पुत्राः युधिष्ठिरादय इत्यर्थः, यस्य दासाः = परिचारकाः, दुःशासनादेः=दुःशासन-प्रधानस्य, अनुजशतस्य = लघुभ्रातृशतस्य, गुरुः = श्रेष्ठः, अङ्गराजस्य = कर्णस्य, मित्रम् = सुहृद्, राजा = नृपाभिमानी, असौ = सः, दुर्योधनः, क्व = कुत्र, आस्ते = वर्तते ? कथयत = ब्रूत, यूयमिति शेषः, रुषा = कोपेन, न = नहि, अपित्विति शेषः, द्रष्टुम् = दर्शनं कर्त्तुम्, अभ्यागतौ = आयातौ, स्वः आवामिति शेषः । स्वामिनोपकृतैर्दासैः स्वामिनो दर्शनमवश्यं विधेयमिति विचार्यावां तं स्वामिनं द्रष्टुमिहागताविति व्यङ्ग्योक्तिः ॥ २६ ॥

टिप्पणी—कर्त्तेति । जतुमयशरण०—यहाँ शरण शब्द गृह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—"शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः। लाक्षागृह में रहते हुए पाण्डवों को जलाकर मार डालने के लिए दुर्योधन ने पुरोचन द्वारा उसमें आग लगवाई थी। प्रस्तुत पद्य के प्रत्येक शब्द से व्यङ्ग्य टपकता है। यहाँ पर छल नामक नाटकाङ्ग है जैसा कि साहित्यदर्पणकार ने कहा है—"प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैर्विलोभ्य छलनाच्छलम्" स्रग्धरा छन्द है ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र इति । दारुणः = भीषणः, उपक्षेपः = दोषारोपः

सञ्जय इति । कर्मणा = कार्येण हननादिकार्येणेत्याशयः, कृतनिःशेषवि-

द्रौपदी के केश एवं आंचल को दूर हटाने में पवन के समान वह अभिमानी, पाण्डव जिसके दास हैं, दुशासन प्रभृति सौ भाइयों में सबसे बड़ा, कर्ण का मित्र, वह राजा (अपने को राजा समझने वाला) दुर्योधन कहाँ है ? (तुम लोग) बतलाओ (हम दोनों यहाँ) क्रोध से नहीं (बल्कि उसे) देखने आये हैं ॥२६॥

धृतराष्ट्र—सञ्जय ! इस पापी का दोषारोप तो भीषण है ।

सञ्जय—तात ! कार्य से सब अनिष्ट करके अब वचन से करना चाहते हैं ।

दुर्योधनः—सूत, कथय गत्वोभयो 'रयं तिष्ठती'ति ।

सूतः—यथाऽऽज्ञापयति देवः (तावुपसृत्य) ननु भो वृकोदराऽर्जुनौ, एष महाराजस्तातेनाऽम्बया च सह न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति ।

अर्जुनः—आर्य, प्रसीद । न युक्तं पुत्रशोकोपपीडितौ पितरौ पुनरस्मद्दर्शनेन भृशमुद्वेलयितुम् । तद्गच्छावः ।

भीमः—मूढ, अनुल्लङ्घनीयः सदाचारः । न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम् (उपसृत्य ।) संजय, पित्रोर्नमस्कृतिं श्रावय । अथवा तिष्ठ स्वयं विश्राव्य नामकर्मणी वन्दनीया गुरवः ।

प्रियाः–कृतानि = विहितानि, अशेषाणि = अखिलानि, विप्रियाणि=अनिष्टानि यैस्ते, वाचा = वचनेन ।

सूत इति । न्यग्रोधच्छायायाम् = वटच्छायायाम् ।

अर्जुन इति । पुत्रशोकोपपीडितौ = सुतशोकसन्तप्तौ, पितरौ = गान्धारी-धृतराष्ट्रौ ।

भीम इति । सदाचारः = शिष्टव्यवहारः । न युक्तम् = नोचितम्, अनभिवाद्य = अप्रणम्य, गुरून् = श्रेष्ठजनान् ।

दुर्योधन—सूत ! जाकर दोनों से कहो कि यहाँ पर हैं ।

सूत—महाराज की जो आज्ञा (उन दोनों के समीप जाकर) हे भीम और अर्जुन ! ये महाराज, पिताजी एवं माता जी के साथ वट—वृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं ।

अर्जुन—आर्य ! कृपा करो । पुत्रशोक से व्यथित माता–पिता को अपने दर्शन से अत्यधिक व्याकुल करना उचित नहीं है । इसलिए हम दोनों (यहाँ से) चल दें ।

भीम—मूर्ख ! शिष्टाचार का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए । श्रेष्टजनों को बिना अभिवादन किये ही चल देना उचित नहीं है । (पास जाकर) सञ्जय ! माता-पिता को हमारा नमस्कार सुना दो । अथवा ठहरो । अपने नाम एवं कार्य को स्वयं ही सुनाकर श्रेष्ठजनों की वन्दना करनी चाहिए ।

(इति रथादवतरतः)

अर्जुनः—(उपगम्य ।) तात ! अम्ब,

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते
तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।
रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य
प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—यत्र; ते, सुतैः, सकलरिपुजयाशा, बद्धा, यस्य, गर्वेण, लोकः, तृणम्, इव, परिभूतः; तस्य, राधासुतस्य, रणशिरसि, निहन्ता, अयम्, मध्यमः, पाण्डवः, वाम्, पितरौ, प्रणमति ॥ २७ ॥

व्याख्या—सकलेति । यत्र = यस्मिन् कर्णे, ते = तव, सुतैः = पुत्रैः, सकलरिपुजयाशा—सकलेषु = निखिलेषु, रिपुषु = शत्रुषु, जयस्य = विजयस्य, आशा = तृष्णा; बद्धा = स्थापिता, यस्य = कर्णस्य, गर्वेण = अहङ्कारेण, लोकः = जगत्, तृणमिव = घासमिव अतिक्षुद्रतयेति भावः, परिभूतः = अवहेलितः, तस्य = तादृशस्य, राधासुतस्य = राधापुत्रस्य कर्णस्य, रणशिरसि–रणः = युद्धम्, शिरः = मस्तकम् इव तस्मिन्, निहन्ता = विनाशकः, अयम् = एषः, मध्यमः पाण्डवः = अर्जुन इत्यर्थः, वाम् = युवाम्, पितरौ = मातापितरौ, मातृपितृतुल्यावित्यर्थः; प्रणमति = नमस्करोति ॥ २७ ॥

टिप्पणी—सकलेति । प्रस्तुत पद्य में वीररस का गहरा पुट है । छन्द मालिनी है ॥ २७ ॥

(यह कहकर दोनों रथ से उतरते हैं ।)

अर्जुन—(पास जाकर) पिताजी ! माताजी !

जिस पर तुम्हारे पुत्रों के द्वारा सम्पूर्ण शत्रुओं को जीत लेने की आशा बाँधी गई थी, जिसके अहङ्कार से संसार तिनके के समान तिरस्कृत था, उस राधापुत्र को संग्राम में मारने वाला यह मझला पाण्डव आप माता-पिता को प्रणाम करता है ॥ २७ ॥

भीमः—

चूर्णिताशेषकौरव्यः क्षीबो दुःशासनाऽसृजा।
भङ्क्त्वा सुयोधनस्योर्वोर्भीमोऽयं शिरसाऽञ्चति ॥ २८ ॥

घृतराष्ट्रः—दुरात्मन्वृकोदर, न खल्विदं भवतैव केवलं सपत्नानामपकृतम्, यावत्क्षत्रं तावत्समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः। तत्किमेवं विकत्थनाभिरस्मानुद्वेजयसि।

भीमः—तात, अलं मन्युना।

अन्वयः—चूर्णिताशेषकौरव्यः, दुःशासनाऽसृजा, क्षीबः, सुयोधनस्य, ऊर्वोः, भङ्क्त्वा, अयम्, भीमः, शिरसा, अञ्चति ॥ २८ ॥

व्याख्या—चूर्णितेति। चूर्णिताशेषकौरव्यः—चूर्णिताः=मृदिताः, अशेषाः=सम्पूर्णाः, कौरव्याः=कौरवाः, येन सः, दुःशासनाऽसृजा=दुःशासनरुधिरेण, क्षीबः=मत्तः, सुयोधनस्य=दुर्योधनस्य, ऊर्वोः=सक्थ्नोः, भङ्क्त्वा=भञ्जकः, अयम्=एषः, भीमः=वृकोदरः, शिरसा=मूर्ध्ना, अञ्चति=पूजयति, नमस्करोतीत्यर्थः। "अञ्चूपूजायामिति" धातोर्लटि "अञ्चतीति रूपम् ॥ २८ ॥

टिप्पणी—चूर्णितेति। इस पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ २८ ॥

घृतराष्ट्र इति। सपत्नानाम्=रिपूणाम्, विकत्थनाभिः=आत्मश्लाघाभिः।

टिप्पणी—सपत्नानाम्—"रिपौवैरिसपत्नारिद्विषद् दुर्हृदः" इत्यमरः।

भीम इति। मन्युना=क्रोधेन।

भीम—सम्पूर्ण कौरवों को मसलने वाला, दुःशासन के रक्त से मतवाला, तथा दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़नेवाला यह भीम मस्तक झुकाकर प्रणाम करता है ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र—दुष्ट भीम ! यह शत्रुओं का अपकार केवल तूने ही नहीं किया है; जब से क्षत्रिय हैं तब से कितने ही वीर युद्ध में विजय पाये हैं, पराजित हुए हैं तथा मारे गये हैं। तो फिर क्यों इस प्रकार आत्म-प्रशंसा से हमें उद्विग्न कर रहा है ?

भीम—तात ! क्रोध मत करें।

कृष्णा केशेषु कृष्टा तव सदसि पुरः पाण्डवानां नृपैयैः
सर्वे ते क्रोधवह्नौ कृशशलभकुलावज्ञया येन दग्धाः।
एतस्माच्छ्रावयेऽहं न खलु भुजबलश्लाघया नापि दर्पा-
त्पुत्रैः पौत्रैश्च कर्मण्यतिगुरुणि कृते तात साक्षी त्वमेव ॥ २९ ॥

अन्वयः—पाण्डवानाम्, पुरः, तव, सदसि, यैः, नृपैः, केशेषु, कृष्णा, कृष्टा, ते, सर्वे, येन, क्रोधवह्नौ, कृशशलभकुलावज्ञया, दग्धाः, खलु, एतस्मात्, अहम्, श्रावये, भुजबलश्लाघया, न, नापि, दर्पात्, (श्रावये), तात, पुत्रैः, पौत्रैः, कृते, अतिगुरुणि, कर्मणि, त्वम्, एव, साक्षी ॥ २९ ॥

व्याख्या—कृष्णेति । पाण्डवानाम् = पाण्डुपुत्राणामस्माकम्, पुरः=समक्षम्, तव = भवतः, सदसि = सभायाम्, यैः नृपैः = यैः राजभिः, केशेषु = केशावच्छेदेन, कृष्णा = द्रौपदी, कृष्टा = आकृष्टा, ते = तादृशाः, सर्वे = अखिलाः; राजान इति भावः, येन = येन हेतुना, क्रोधवह्नौ = कोपानले, कृशशलभकुलावज्ञया = दुर्बलपतङ्गसमूहतुल्यावमाननया, दग्धाः = भस्मीकृताः, खलु=निश्चयेन, एतस्मात् = अस्मात्कारणात्, अहम् = भीमः, श्रावये = भवन्तं कथयामि, भुजबलश्लाघया = बाहुबलप्रशंसया, न = नहि, नापि = न तु, दर्पात्=गर्वात् श्रावये इति भावः, तात = पितः, पुत्रैः = सुतैः, च = तथा, पौत्रैः = तत्सुतैः, कृते = विहिते, अतिगुरुणि = महति भीषणे इत्यर्थः, कर्मणि = कृत्ये, त्वम्= भवान्, एव = हि, साक्षी = साक्षाद् द्रष्टा । न स्वकल्पितं किमपि अपितु वस्तुतत्त्वं कथयामीति भावः ॥ २९ ॥

टिप्पणी—कृष्णेति । यैः नृपैः—राजाओं ने द्रौपदी के केश एवं वस्त्र यद्यपि नहीं खीचे थे किन्तु जब दुःशासन यह कुकृत्य कर रहा था तो सभा में

आपकी सभा में पाण्डवों के समक्ष जिन राजाओं द्वारा केश पकड़ कर द्रौपदी खींची गई थी वे सभी जिस कारण से दुर्बल पतङ्ग समूह के समान की गई अवमानना के साथ क्रोधाग्नि में जला डाले गये थे उसी कारण से मैं आपको सुना रहा हूँ; अपने बाहुबल की प्रशंसा के कारण या अभिमान के कारण नहीं । पिताजी ! बेटों और पोतों द्वारा किये गये महान् कृत्य के आप ही साक्षी हैं ॥ २९ ॥

दुर्योधनः—अरे रे मरुत्तनय, किमेवं वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दितव्य-मात्मकर्म श्लाघसे ? अपि च।

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।
अस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा
बाह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः ॥ ३० ॥

उपस्थित सभी राजे उस दृश्य को चुपचाप देख रहे थे। किसी ने भी दुःशासन या कौरवों के इस गर्हित कर्म का विरोध नहीं किया था जिससे भीम को लगा कि इसमें उन राजाओं का भी मौन समर्थन हैं। यही कारण है कि भीम उन्हें भी दोषी बतला रहा है। प्रस्तुत पद्य में स्रग्धरा छन्द है ॥ २९ ॥

दुर्योधन इति। मरुत्तनय=पवनपुत्र; निन्दितव्यम् = गर्हितव्यम्, आत्मकर्म = स्वकृत्यम्, श्लाघसे = प्रशंससि।

टिप्पणी—मरुत्तनय—वायु के द्वारा कुन्ती के गर्भ से भीम का जन्म हुआ था इसीलिए उसे मरुत्तनय कहा गया है।

अन्वयः—मम, भुवनपतेः, आज्ञया, भूपतीनाम्, प्रत्यक्षम्, द्यूतदासी, तव, पशोः, तव, च, तस्य, राज्ञः, वा, तयोः, भार्या, केशेषु, कृष्टा, अस्मिन्, वैरानुबन्धे; ये, नरेन्द्राः, हताः, वद, तैः, किम्, अपकृतम्, बाह्वोः, वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदम्, माम्, अजित्वा, एव, दर्पः ? ॥ ३० ॥

व्याख्या—कृष्टेति। मम = दुर्योधनस्य, भुवनपतेः = जगत्स्वामिनः; आज्ञया = आदेशेन, भूपतीनाम् = राज्ञाम्, प्रत्यक्षम् = समक्षम्, द्यूतदासी =

दुर्योधन—अरे रे वायुपुत्र ! बूढ़े महाराज के समक्ष इस प्रकार अपने निन्दनीय कर्म की प्रशंसा कर रहे हो ? और भी,

मुझ जगत्स्वामी की आज्ञा से राजाओं के समक्ष जुए के खेल में जीती गई दासी, पशुतुल्य तेरी (भीम की) या तेरी (अर्जुन की), उस राजा (युधिष्ठिर) की अथवा उन दोनों (नकुल एवं सहदेव) की पत्नी, केश पकड़कर खींची गई थी। इस वैर के प्रकरण में जो राजा (तुम्हारे द्वारा) मारे गये उन्होंने क्या अनिष्ट किया था ? भुजाओं के बलाधिक्यरूपी धन के महान् मद से युक्त मुझ (दुर्योधन) को बिना जीते ही अभिमान (प्रकट कर रहे हो) ? ॥३०॥

(भीमः क्रोधं नाटयति ।)

अर्जुनः—आर्य, प्रसीद । किमत्र क्रोधेन ।

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा ।
हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥ ३१ ॥

द्यूते=अक्षक्रीडायाम् निर्मितत्वात् दासी=परिचारिका, तत्तुल्येत्यर्थः, तव पशोः= पशुसदृशस्य तव भीमस्य, अथवा, तव = अर्जुनस्य, च = तथा, तस्य राज्ञः = युधिष्ठिरस्य, वा = अथवा, तयोः = नकुलसहदेवयोः, भार्या = पत्नी, केशेषु = कचेषु, केशावच्छेदेनेत्यर्थः, कृष्टा = आकृष्टा, अस्मिन् = एतादृशे, वैरानुबन्धे= शत्रुताप्रसङ्गे, ये नरेन्द्राः = ये राजानः, हताः = मारिताः, तैः = तैः राजभिः, किमपकृतम् = किमप्रियं सम्पादितम्, बाह्वोः = भुजयोः, वीर्यातिरेकद्रविण-गुरुमदम्—वीर्यस्य = पराक्रमस्य, अतिरेकः = आधिक्यम्, एव द्रविणम् = धनम् तेन गुरुः = महान् मदः = अहङ्कारः यस्य तम्, माम् = दुर्योधनम्, अजित्वैव = पराजितमकृत्वैव, दर्पः = अहङ्कारः, व्यज्यते त्वयेति योज्यम् । अतिपराक्रमिणं मामजित्वा तवायमहङ्कारो न तावद्युक्त इति भावः ॥ ३० ॥

टिप्पणी—कृष्टेति । द्यूतदासी—दुर्योधन के कथन का आशय यह है कि द्रौपदी जुए के खेल में जीती गई थी अतः मेरी दासी के समान थी और दासी पर स्वामी को पूरा अधिकार होता है । उसके साथ वह कैसा भी व्यवहार करने में स्वतन्त्र होता है अतः द्रौपदी को यदि नंगी करने का ही आदेश उसने दिया तो इसमें पाण्डवों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए । तव तव पशोरित्यादि—द्रौपदी के पाँच पति होने की ओर इशारा करते हुए दुर्योधन के कथन का आशय यह है कि—ऐसी स्त्री, जिसके पाँच-पाँच पति हों, एक वेश्या से अधिक मूल्य नहीं रखती अतः यदि वेश्या-तुल्य स्त्री को सभा में नंगी करने का प्रयास किया गया तो इसमें पाण्डवों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए । पद्य में स्रग्धरा छन्द है ॥३०॥

अन्वयः—हतभ्रातृशतः, दुःखी, एषः, (यतः), कर्मणा, न, शक्तः, (अतः), वाचा, अप्रियाणि, करोति, (अतः), अस्य, प्रलापैः, का, व्यथा ॥ ३१ ॥

(भीम क्रोध का नाट्य करता है ।)

अर्जुन—आर्य ! प्रसन्न होइए । इस पर क्रोध करने से क्या ?

सौ भाइयों के मारे जाने से दुःखी यह (चूंकि) कार्य (शक्ति) से असमर्थ

भीमः—अरे रे भरतकुलकलङ्क,

अत्रैव किं न विशसेयमहं भवन्तं
दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन् ! ।
विघ्नं गुरुर्न कुरुते यदि मद्गदाग्र-
निर्भिद्यमानरणितास्थिनि ते शरीरे ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अप्रियाणीति । हतभ्रातृशतः—हताः = व्यापादिताः, भ्रातृशतम्= अनुजशतम्, यस्य सः, अतः, दुःखी = व्यथितः, एषः=अयम्, यतो हि, कर्मणा= कार्येण, पराक्रमयुक्तेन कर्मणेति भावः, न = नहि, शक्तः=समर्थः, अतः, वाचा = वचनेन, अप्रियाणि=अनिष्टानि, करोति=सम्पादयति, कर्कशवचांसि ब्रवीतीत्यर्थः, (अतः = एतस्माद्धेतोः) अस्य = वचनमात्रैकशौर्यस्येत्यर्थः, प्रलापैः = असम्बद्धभाषणैः, का = कीदृशी, व्यथा = पीडा ? प्रलापिनो वचनान्न दुःखं कर्त्तव्यमथ च तज्जन्यः क्रोधोऽपि न विधेय इति भावः ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—अप्रियाणीति । पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ३१ ॥

अन्वयः—(हे) कटुप्रलापिन्, मद्गदाग्रनिर्भिद्यमानरणितास्थिनि, ते, शरीरे, यदि, गुरुः, विघ्नम्, न, कुरुते, तदा, दुःशासनानुगमनाय, अहम्, भवन्तम्, अत्र, एव, किम्, न, विशसेयम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अत्रैवेति । (हे) कटुप्रलापिन् = हे परुषाऽनर्थकभाषिन्, मद्गदेत्यादिः—मम गदायाः अग्रेण = अग्रभागेन निर्भिद्यमानानि अत एव रणितानि = शब्दितानि, अस्थीनि यस्मिन् तस्मिन्, ते = तव, शरीरे = वपुषि शरीरविषये इत्यर्थः, यदि = चेत्, गुरुः = श्रेष्ठजनः, तातः अम्बा च, विघ्नम् = प्रत्यूहम्,

है (इसलिए) वाणी से अप्रिय कर रहा है (इसलिए) इसके निरर्थक वचनों से पीडा कैसी ? ॥ ३१ ॥

भीम—अरे रे भरत कुल के कलङ्क !

अरे क्रूरभाषिन् ! मेरी गदा के अग्रभाग से विदीर्ण होते हुए अतः शब्द करती हुई हड्डियों वाले तेरे शरीर के विषय में यदि गुरुजन (माता, पिता) विघ्न न डालें तो क्या दुःशासन का अनुसरण करने के लिए मैं तुझे यहीं पर समाप्त न कर दूं ? ॥ ३२ ॥

अन्यच्च मूढ,

शोकं स्त्रीवन्नयनसलिलैर्यत्परित्याजितोऽसि
भ्रातुर्वक्षःस्थलविघटने यच्च साक्षीकृतोऽसि।
आसीदेतत्तव कुनृपतेः कारणा जीवितस्य
क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ॥ ३३ ॥

न = नहि, कुरुते = विदधाति, यदि मां गुरुर्नाविरुन्ध्यादिति भावः, तदा = तर्हि, दुःशासनानुगमनाय = दुःशासनानुसरणाय, अहम् = भीमः, भवन्तम् = त्वां दुर्योधनम्, अत्रैव = इहैव, किम् न = कथन्न, विशसेयम् = हन्याम्, हन्यामेवेति भावः ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—अत्रैवेति। विघ्नम् = "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः" इत्यमरः। इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ॥ ३२ ॥

अन्वयः—स्त्रीवत्, नयनसलिलैः, शोकम्, यत्, परित्याजितः, असि, च, भ्रातुः, वक्षःस्थलविघटने, यत्, साक्षीकृतः, एतत्, (उभयम्), युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे, भीमसेने, क्रुद्धे (सति), तव, कुनृपतेः, जीवितस्य, कारणा, आसीत् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—शोकमिति। स्त्रीवत् = अबलावत्, नयनसलिलैः = अश्रुभिः, शोकम् = अनुजमृत्युजन्यदुःखम्, यत् परित्याजितः = मोचितः, असि, च = तथा, भ्रातुः = दुःशासनस्येत्यर्थः, वक्षःस्थलविघटने = उरःस्थलविदारणे, यत् साक्षीकृतः = प्रत्यक्षदर्शकः कृतः, असि, एतत् = इदम् उभयमिति शेषः, युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे—युष्माकम् = भवताम्, कुलम् = वंशः एव कमलिनी = कमललतिका तत्र कुञ्जरः = हस्ती इव तस्मिन्, यथा हस्ती कमललतिकां विनाशयति

और भी मूर्ख,

स्त्री के समान आँसू जो बहवाये गये हो तथा भाई के वक्षःस्थल के विदीर्ण करने में जो प्रत्यक्षदर्शी बनाये गये हो, यह (दोनों ही) तुम्हारे कुलरूपी-कमलिनी के लिए हाथी के सदृश भीमसेन के क्रुद्ध होने पर तुम्हारे जैसे कुत्सित राजा के जीवन की यातना ही थी। (अर्थात् तुम जैसे व्यक्ति को पहले यातना देनी चाहिए तब मारना चाहिए।) ॥ ३३ ॥

दुर्योधनः—दुरात्मन्, भरतकुलापसद, पाण्डवपशो, नाहं भवानिव विकत्थनाप्रगल्भः। किन्तु—

द्रक्ष्यन्ति नचिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे।
मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणाम् ॥ ३४ ॥

तथैवाहं तव कुलस्य नाशक इति भावः। भीमसेने = मयि वृकोदरे, क्रुद्धे=कुपिते सति, तव, कुनृपतेः=कुत्सितराज्ञः, जीवितस्य = जीवनस्य, कारणा = यातना, आसीत् = अभूत्। युष्मत्कुलविनाशकेन मया त्वं प्राप्तयातनः सम्प्रतिवध्य इति भावः ।। ३३ ।।

टिप्पणी - शोकमिति। कारणा—"कारणा तु यातना तीव्रवेदना" इत्यमरः। कारणा शब्द से दो प्रकार के अर्थ लिये जा सकते हैं—यातना एवं कारण। पहले अर्थ के अनुसार भीम का तात्पर्य है कि दुष्ट शत्रु को पहले यातना देनी चाहिए तब उसे मारना चाहिए। दुर्योधन को स्त्री के समान रुलाना एवं दुःशासन के विदीर्ण होते हुए वक्षस्थल का प्रत्यक्षद्रष्टा बनाना ही उसको दी गई यातना थी। दूसरे अर्थ के अनुसार भीम का तात्पर्य है कि तुम अब तक जीवित रहे उसके पीछे ये दोनों बातें ही कारण थीं। दोनों ही प्रकार से अर्थ करने पर समान भाव ही प्रकट होता है। पद्य में मन्द्राक्रान्ता छन्द है ।। ३३ ।।

दुर्योधन इति। विकत्थनाप्रगल्भः = आत्मश्लाघायां धृष्टः।

अन्वयः—(तव) बान्धवाः, रणाङ्गणे, मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिका-भीमभूषणम्, सुप्तम्, त्वाम्, न चिरात्, द्रक्ष्यन्ति ।। ३४।.

व्याख्या—द्रक्ष्यन्तीति। तव, बान्धवाः = तव स्वजनाः, रणाङ्गणे = सङ्ग्रामभूमौ, मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम्—मम गदया, भिन्नं, वक्षः = उरः, तस्य यानि अस्थीनि तेषां या वेणिका = मालिका, सा एव भीमम्= भयङ्करम्, भूषणम् = अलङ्कारः, यस्य तम्, सुप्तम्=भूमौ निपतितम्,

दुर्योधन—दुष्ट, भरत वंश में नीच, पशुतुल्य पाण्डव! मैं तुम्हारी तरह अपनी प्रशंसा करने में धृष्ट नहीं हूँ। किन्तु—

(तुम्हारे) बान्धव युद्ध-क्षेत्र में मेरी गदा से टूटी हुई छाती की हड्डियों की मालारूप भयङ्कर आभूषण से युक्त, सोये हुए तुझे शीघ्र ही देखेंगे ॥ ३४॥

भीमः—(विहस्य ।) यद्येवं नाश्रद्धेयो भवान् । तथापि प्रत्यासन्नमेव कथयामि ।

पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसञ्चूर्णितोरोः
क्रूरस्याधाय पादं तव शिरसि नृणां पश्यतां श्वः प्रभाते ।
त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेनाऽऽनखाग्रं
स्त्यानेनाद्रेंण चाक्तः स्वयमनुभविता भूषणं भीममस्मि ॥ ३५ ॥

मृतमित्यर्थः, त्वाम् = दुर्योधनम्, न चिरात् = शीघ्रम्, द्रक्ष्यन्ति = अवलोकयिष्यन्ति ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—द्रक्ष्यन्तीति । न चिरात्—यहाँ पर "सुप्सुपा" के द्वारा निषेधार्थक "न" शब्द के साथ 'चिरात्' का समास हुआ है । पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ३४ ॥

भीम इति । प्रत्यासन्नम् = निकटस्थम्, शीघ्रं भावीति भावः ।

अन्वयः—श्वः, प्रभाते, पश्यताम्, नृणाम्, (समक्षम्), पीनाभ्याम्, मद्भुजाभ्याम्, भ्रमितगुरुगदाघातसञ्चूर्णितोरोः, क्रूरस्य, तव, शिरसि, पादम्, आधाय, स्त्यानेन, च, आर्द्रेण, त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेन, आनखाग्रम्, अक्तः, स्वयम्, (अहम्), भीमम्, भूषणम्, अनुभविता, अस्मि ॥ ३५ ॥

व्याख्या—पीनाभ्यामिति । श्वः = आगामिदिने, प्रभाते = प्रातः काले, पश्यताम् = विलोकयताम्, नृणाम् = राज्ञाम् समक्षमिति शेषः, पीनाभ्याम् = स्थूलाभ्याम्, परिपुष्टाभ्यामित्यर्थः, मद्भुजाभ्याम् = मद्बाहुभ्याम्, भ्रमितगुरु-

भीम—(हँसकर) यदि ऐसा है तो आप पर अविश्वास नहीं किया जा सकता । फिर भी जो बिल्कुल समीप में होनेवाला है उसे कहता हूँ—

कल प्रातःकाल, देखते हुए राजाओं के समक्ष ही (अपनी) स्थूल भुजाओं से घुमाई गई भारी गदा के प्रहार से तोड़ी गई जङ्घाओं वाले तुझ दुष्ट के मस्तक पर पाँव रखकर, तुम जिसमें ज्येष्ठ हो इसे तुम्हारे भाइयों के समूह को कुचलने से बहते हुए रुधिररूपी गाढ़े और गीले चन्दन से नख के अग्रभाग तक लिप्त होकर स्वयं (मैं) भयङ्कर आभूषण को अनुभव करनेवाला (धारण करने वाला) होऊँगा ॥ ३५ ॥

(नेपथ्ये)

भो भो भीमार्जुनौ, एष खलु निहताशेषारातिचक्राक्रान्तपरशुरामाभिरामयशाः, प्रतापतापितदिङ्मण्डलः स्थापितस्वजनः श्रीमानजातशत्रुर्देवो युधिष्ठिरः समाज्ञापयति ।

गदाघातसञ्चूर्णितोरोः—भ्रमिता = सञ्चालिता, गुर्वी = महती या गदा = अस्त्रविशेषः, तस्याः आघातेन = प्रहारेण, सञ्चूर्णितौ = त्रुटितौ ऊरू = जघने यस्य तस्य, क्रूरस्य = दुरात्मनः, तव = भवतः, दुर्योधनस्येत्यर्थः, शिरसि = मस्तके, पादम् = चरणम्, आधाय = धृत्वा, स्त्यानेन = घनीभूतेन, च = तथा, आर्द्रेण = क्लिन्नेन, त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेन—त्वम् = दुर्योधनः, मुख्यः = प्रधानः यस्य तादृशं यद् भ्रातॄणाम् = सोदराणाम् चक्रम् = समूहः, तस्य उद्दलनेन = खण्डनेन, गलत् = स्रवत् यत् असृक् = रुधिरम्, तदेव चन्दनम् = मलयजः तेन, आनखाग्रम् = नखाग्रभागपर्यन्तम्, अक्तः = व्याप्तः, स्वयम् = अहमिति शेषः, भीमम् = भीषणम्, भूषणम् = अलङ्कारम्, अनुभविता = अनुभवकर्त्ता, अस्मि = भविष्यामीत्यर्थः ।। ३५ ।।

टिप्पणी –पीनाभ्यामिति । प्रस्तुत पद्य में स्रग्धरा छन्द है ।। ३५ ।।

भो भो इति । निहिताशेषारातिचक्रेत्यादिः—निहितम् = विनाशितम्, अशेषम् = सकलम्, अरातीनाम् = रिपूणाम्, चक्रम् = समूहः, तेन आक्रान्तम् = अतिक्रान्तम्, परशुरामस्य = जामदग्न्यस्य, अभिरामम् = मनोहरम्, यशः = कीर्तिः येन सः, प्रतापितदिङ्मण्डलः—प्रतापेन = तेजसा, तापितेषु = सन्तप्तेषु, दिङ्मण्डलेषु = दिक्चक्रेषु, स्थापिताः = नियुक्ताः, स्वजनाः = स्वपक्षावलम्बिनः पुरुषाः येन सः, अजातशत्रुः = अनुत्पन्नरिपुः ।

(नेपथ्य में)

हे हे भीम और अर्जुन ! जिन्होंने सम्पूर्ण शत्रु–समूह को नष्ट करके परशुराम के मनोरम यश को पार कर लिया है और जिसने (अपने) तेज से सन्तापित दिशाओं में अपने लोगों को नियुक्त किया है वैसे ये देवतारूप श्रीमान् अजातशत्रु युधिष्ठिर आज्ञा दे रहे हैं ।

उभौ—किमाज्ञापयत्यार्यः ।

(पुनर्नेपथ्ये ।)

कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसि जना वह्निसाद्देहभारा-
नश्रून्मिश्रं कथंचिद्ददतु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्यः ।
मार्गन्तां ज्ञातिदेहान् हतनरगहने खण्डितान्गृध्रकङ्कै-
रस्तं भास्वान्प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रियन्तां बलानि ।। ३६ ।।

अन्वयः—आप्ता, जनाः, रणशिरसि, हतानाम्, देहभारान्, वह्निसात्, कुर्वन्तु; अमी, बान्धवाः, बान्धवेभ्यः, कथञ्चित्, अश्रून्मिश्रम्, जलम्, ददतु, हतनरगहने, गृध्रकङ्कैः, खण्डितान्, ज्ञातिदेहान्, मार्गन्ताम्, अयम्, भास्वान्, रिपुभिः, सह, अस्तम्, प्रयातः, (अतः), बलानि, संह्रियन्ताम् ।। ३६ ।।

व्याख्या—कुर्वन्त्वाप्ता इति । आप्ताः = आत्मीयाः, जनाः = पुरुषाः; रणशिरसि = सङ्ग्रामक्षेत्रे, हतानाम्=मारितानाम्, देहभारान् = शरीरसमूहान्, शवसमूहानित्यर्थः, वह्निसात् = अग्निसात्, कार्त्स्न्येनाग्निदेयानित्यर्थः, कुर्वन्तु = सम्पादयन्तु, अमी = एते, बान्धवाः = स्वजनाः, बान्धवेभ्यः = स्वजनेभ्यः, मृतेभ्य इति भावः, कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण, अश्रून्मिश्रम् = अश्रुभिः = नयनसलिलैः, उन्मिश्रम् = संयुक्तम्, जलम् = तर्पणवारि, ददतु = समर्पयन्तु, हतनरगहने—हताः = व्यापादिताः, नराः=पुरुषाः, एव गहनम् = वनम् तस्मिन्, गृध्रकङ्कैः = मांसभक्षकपक्षिविशेषैः, खण्डितान् = खण्डशः कृतान्, ज्ञातिदेहान्= स्वजनशरीराणि, मार्गन्ताम् = गवेषन्ताम्, अयम् = एषः, भास्वान् = सूर्यः, रिपुभिः = शत्रुभिः, सह = सार्द्धम्, अस्तम् = अस्ताचलम्, प्रयातः = प्राप्तः, अतः, बलानि = सैन्यानि, संह्रियन्ताम् = संहृतानि क्रियन्ताम् ।। ३६ ।।

दोनों—आर्य क्या आज्ञा दे रहे हैं ?

(फिर नेपथ्य में)

सम्बन्धी लोग युद्ध में मारे गये (योद्धाओं) के शव-समूह का अग्नि दाह-करें; ये सम्बन्धी लोग अपने सम्बन्धियों को किसी प्रकार अश्रुमिश्रित जल दें; मारे गये लोगों के (इस) जंगल में गीधों द्वारा टुकड़े-टुकड़े किये गये अपने सम्बन्धियों के शरीरों को (लोग) खोजें; यह सूर्य अस्ताचल को प्राप्त हो गया है (अतः) सेनायें वापस लौटा ली जायें ।। ३६ ।।

उभौ—यदाज्ञापयत्यार्यः। (इति निष्क्रान्तौ।)

(नेपथ्ये।)

अरे रे गाण्डीवाकर्षणबाहुशालिन्, अर्जुन, अर्जुन, क्वेदानीं गम्यते ?

कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयि धनुरिदं त्यक्तमेतान्यहानि
प्रौढं विक्रान्तमासीद्वन इव भवता शूरशून्ये रणेऽस्मिन्।
स्पर्शं स्मृत्वोत्तमाङ्गे पितुरनवजितन्यस्तहेतेरुपेतः
कल्पाग्निः पाण्डवानां द्रुपदसुतचमूघस्मरो द्रौणिरस्मि ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—कुर्वन्त्वाप्तामिति। वह्निसात्—यहाँ पर "विभाषा साति कार्त्स्न्ये" से साति प्रत्यय आया है। प्रस्तुत पद्य में सहोक्ति अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है ॥ ३६ ॥

गाण्डीवाकर्षणबाहुशालिन्—गाण्डीवस्य = एतन्नामकस्य पार्थधनुषः, आकर्षणे = आस्फालने यौ बाहू = भुजौ ताभ्यां शालते, तत्सम्बुद्धौ।

अन्वयः—एतानि, अहानि, युष्मद्विजयि, इदम्, धनुः, कर्णक्रोधेन, त्यक्तम् (अत एव), शूरशून्ये, वने, इव, अस्मिन्, रणे, भवताम्, विक्रान्तम्, प्रौढम्, आसीत्, अनवजितन्यस्तहेतेः, पितुः, उत्तमाङ्गे, स्पर्शम्, स्मृत्वा, पाण्डवानाम्, कल्पाग्निः, द्रुपदसुतचमूघस्मरः, द्रौणिः, उपेतः, अस्मि ॥ ३७ ॥

दोनों—महाराज की जो आज्ञा। (यह कहकर निकल जाते हैं।)

(नेपथ्य में)

अरे रे गाण्डीव को खींचने वाली भुजाओं वाले अर्जुन, अर्जुन ! अब कहाँ जा रहा है ?

इतने दिनों तक तुमलोगों को जीतने वाला यह धनुष कर्ण के प्रति क्रोध के कारण (मेरे द्वारा) छोड़ दिया गया था (इसलिए) वीर-विहीन जङ्गल की भाँति इस युद्ध में तुम्हारा पराक्रम प्रबल रहा। कभी पराजित न हुए तथा शस्त्रत्याग किये हुए पिता के मस्तक पर किये गये स्पर्श को स्मरण कर (तुझ) पाण्डवों के लिए प्रलयकालिक अग्नि के समान, धृष्टद्युम्न की सेना का भक्षक मैं द्रोण-पुत्र (अश्वत्थामा) आ गया हूँ ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्रः—(आकर्ण्य सहर्षम् ।) वत्स दुर्योधन, द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावकः पितुरपि समधिकबलः शिक्षावानमरोपमश्चायमश्वत्थामा प्राप्तः। तत्प्रत्युपगमनेन तावदयं सम्भाव्यतां वीरः।

गान्धारी—जाद, पच्चुग्गच्छ एदं महाभाअम्। (जात, प्रत्युद्गच्छ महाभागम्।)

व्याख्या—कर्णक्रोधेनेति। एतानि = इमानि, मत्पितृमरणानन्तरं कर्णमरणपर्यन्तमिति भावः, अहानि = दिनानि, युष्मद्विजयि = युष्मान् विजेतुं शीलमस्येति तादृशम्, इदम् = एतत्, धनुः = चापः, कर्णक्रोधेन = कर्णे = राधेये क्रोधः = कोपः तेन, त्यक्तम् = उज्झितम्, (अत एव), शूरशून्ये = वीरविरहिते, वने = विपिने, इव = यथा, अस्मिन् = एतस्मिन्, रणे = युद्धे, भवताम् = युष्माकम्, विक्रान्तम् = विक्रमः, प्रौढम् = प्रबलम्, आसीत् = अभूत्, अनवजितन्यस्तहेतेः—अनवजिता = अपराजिता, न्यस्ता = शोकेन पराजिता हेतिः=अस्त्रम् येन तस्य, पितुः=जनकस्य, द्रोणाचार्यस्येति भावः, उत्तमाङ्गे=मस्तके, स्पर्शम्=रिपुकृतमामर्शनम्, स्मृत्वा=बुद्धावानीय, पाण्डवानाम् = पाण्डुपुत्रादीनाम्, युधिष्ठिरादीनाम्, कल्पाग्निः=प्रलयवह्निः, प्रलयकालिकाग्निसदृश इत्यर्थः, द्रुपदसुतचमूघस्मरः=धृष्टद्युम्नसैन्यभक्षकः, द्रौणिः = द्रोणपुत्रः अश्वत्थामा, उपेतः = आगतः, अस्मि ॥३७॥

टिप्पणी—कर्णक्रोधेनेति। विक्रान्तम्—यहाँ पर भाव में क्तप्रत्यय आया है। घस्मरः—घस् धातु से "घृस्यदः क्मरच्" से क्मरच् प्रत्यय आया है। पद्य में स्रग्धरा छन्द है॥ ३७॥

धृतराष्ट्र इति। द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावकः—द्रोणस्य= द्रोणाचार्यस्य; वधः = हत्या एव परिभवः = अपमानम् तेन उद्दीपितः = वृद्धिङ्गतः, क्रोधः = कोपः एव पावकः = अग्निः यस्य सः। अमरोपमः = देवसदृशः। प्रत्युपगमनेन=प्रत्युत्थानादिना, सम्भाव्यताम्=विशिष्यताम्, सत्क्रियतामित्यर्थः।

धृतराष्ट्र—(सुनकर हर्षपूर्वक) बेटा दुर्योधन ! द्रोण की हत्या के अपमान से बढ़ाई गई क्रोधाग्नि से युक्त, पिता से भी अत्यधिक बलवान्, सुशिक्षित और देवतुल्य यह अश्वत्थामा आया है। इसलिए आप अब उठकर इस वीर का सत्कार करें।

गान्धारी—बेटा ! इस महानुभाव का उठकर सम्मान करो।

दुर्योधनः—तात, अम्ब, किमनेनाङ्गराजवधाशंसिना वृथायौवनशस्त्रबलभरेण ?

धृतराष्ट्रः—वत्स, न खल्वस्मिन्काले पराक्रमवतामेवंविधानां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुमर्हसि ।

(प्रविश्य)

अश्वत्थामा—विजयतां कौरवाधिपतिः ।

दुर्योधनः—(उत्थाय) गुरुपुत्र, इत आस्यताम् । (इत्युपवेशयति ।)

अश्वत्थामा—राजन्दुर्योधन,

कर्णेन कर्णसुभगं बहु यत्तदुक्त्वा
यत्सङ्गरेषु विहितं विदितं त्वया तत् ।
द्रौणिस्त्वधिज्यधनुरापतिताऽभ्यमित्र-
मेषोऽधुना त्यज नृप ! प्रतिकारचिन्ताम् ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र इति । वाङ्मात्रेण = वचनमात्रेण, विरागम् = विरक्तिम्, औदासीन्यमित्यर्थः ।

अन्वयः—कर्णेन, यत्, कर्णसुभगम्, तत्, बहु, उक्त्वा, सङ्गरेषु, यत्, विहितम्, तत्, त्वया, विदितम्, अधुना, अधिज्यधनुः, एषः, द्रौणिः, अभ्यमित्रम्, आपतितः, (अतः) (हे) नृप, प्रतिकारचिन्ताम्, त्यज ॥ ३८ ॥

दुर्योधन—पिताजी ! माताजी ! अङ्गराज के वध की कामना करनेवाले एवं व्यर्थ ही यौवन, शस्त्र तथा बल के भार को धारण करनेवाले इस (अश्वत्थामा) से क्या (लाभ) ?

धृतराष्ट्र—बेटा ! ऐसे समय में इस प्रकार के पराक्रमियों की वचनमात्र से भी विरक्ति को उत्पन्न नहीं करना चाहिए ।

(प्रवेश करके)

अश्वत्थामा—कौरवेश्वर की विजय हो ।

दुर्योधन—(उठकर) आचार्यपुत्र, इधर बैठिये । (यह कहकर बैठाता है) ।

अश्वत्थामा—महाराज दुर्योधन !

कर्णने कानों को अच्छी लगने वाली बहुत सी जो-सो बातें कहकर युद्ध में

दुर्योधनः—(साभ्यसूयम्) आचार्यपुत्र,
अवसानेऽङ्गराजस्य योद्धव्यं भवता किल।
ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः ॥ ३९ ॥

व्याख्या—कर्णेनेति। कर्णेन = राधापुत्रेण, यत् = यद्वचनमिति भावः, कर्णसुभगम् = श्रावणसुखदम्, तत् = तादृशं वचनमित्यर्थः, बहु = बहुवारमित्यर्थः, उक्त्वा = कथयित्वा, सङ्गरेषु = समरेषु, यत् = यत्कार्यम्, विहितम् = कृतम्, तत् = तत्कार्यमित्यर्थः, त्वया = भवता, दुर्योधनेनेत्यर्थः, विदितम् = ज्ञातम्। अधुना = सम्प्रति, अधिज्यधनुः = ज्याम् = मौर्वीम् अधिगतम् = प्रादाम् इत्यधिज्यम् धनुः = चापः यस्य सः, एषः = अयम्, द्रौणिः = द्रोणसुतः अश्वत्थामा इत्यर्थः, अभ्यमित्रम् अमित्रम् = शत्रुम् अभि इत्यभ्यमित्रम्, शत्रूणां सम्मुखमित्यर्थः, आपतितः = आगतः (अतः) (हे) नृप = हे राजन्, प्रतिकारचिन्ताम् = प्रतिक्रियाचिन्तनम्, त्यज = मुञ्च। इदानीम्मयैव प्रतिकारो विधेय इति भावः ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—कर्णेनेति। अभ्यमित्रम्–यहाँ पर "अमित्रम् अभि" इस अर्थ में "लक्षणेनाभि प्रति आभिमुख्ये" से अव्ययीभावसमास हुआ है। पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ॥ ३८ ॥

अन्वयः—अङ्गराजस्य, अवसाने, भवता, योद्धव्यम् किल, (तर्हि, मम, अपि, अन्तम्, प्रतीक्षस्व, कः, कर्ण, कः, सुयोधनः ॥ ३९ ॥

व्याख्या—अवसान इति। अङ्गराजस्य = कर्णस्य, अवसाने = समाप्तौ, विनाशे इत्यर्थः, भवता = त्वया द्रोणपुत्रेण, अश्वत्थाम्नेति भावः, योद्धव्यम् =

जो कुछ किया वह तो आपको मालूम है ही। चढ़ाई गई प्रत्यञ्चा से युक्त धनुषवाला यह द्रोण–पुत्र (मैं अश्वत्थामा) शत्रु के सम्मुख आ पहुँचा हूँ (इसलिए), हे राजन्! (अब) प्रतिशोध की चिन्ता को छोड़ दो ॥ ३८ ॥

दुर्योधन—(चिढ़कर) आचार्यपुत्र!

कर्ण के समाप्त हो जाने पर आपको युद्ध करना है तो फिर मेरे अन्त की भी प्रतीक्षा कर लो क्योंकि कौन कर्ण और कौन दुर्योधन (अर्थात् दोनों में कोई भेद नहीं है। ॥ ३९ ॥

अश्वत्थामा—(स्वगतम्) कथमद्यापि स एव कर्णपक्षपातः, अस्मासु च परिभवः। (प्रकाशम्।) राजन्कौरवेश्वर, एवं भवतु।

(इति निष्क्रान्तः।)

धृतराष्ट्रः—वत्स, क एष ते व्यामोहो यदस्मिन्नपि काले एवंविधस्य महाभागस्याश्वत्थाम्नो वाक्पारुष्येणापरागमुत्पादयसि।

दुर्योधनः—किमस्याऽप्रियमनृतं च मयोक्तम्? किं वा नेदं क्रोधस्थानम्? पश्य—

युद्ध विधेयमस्ति, किलेत्यरुचौ, तर्हीति शेषः, ममापि = दुर्योधनस्यापि, अन्तम् = समाप्तिं विनाशमित्यर्थः, प्रतीक्षस्व = प्रतीक्षां कुरु, यतो हि कः कर्णः कः सुयोधनः = कर्णसुयोधनयोर्न कोऽपि भेदो वर्तत इति भावः॥ ३९॥

टिप्पणी—अवसान इति। किल—यहाँ 'किल' शब्द अरुचि अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। किल शब्द का प्रयोग अरुचि अर्थ में भी किया जाता है "वार्तायामरुचौ किल" इति त्रिकाण्डशेषः। पद्य में अनुष्टुप् छन्द है॥ ३९॥

अश्वत्थामा इति। परिभवः = अनादरः।

धृतराष्ट्र इति। वाक्पारुष्येण = कठोरवचनेनेत्यर्थः, अपरागम् = विरागम्, औदासीन्यमित्यर्थः।

दुर्योधन इति। अनृतम् = मिथ्या, क्रोधस्थानम् = कोपास्पदम्, क्रोधयोग्यमित्यर्थः।

अश्वत्थामा—(मन ही मन) आज भी वही कर्ण के प्रति पक्षपात और हमारे प्रति अनादर! (प्रकटरूप से) राजन् कौरवेश्वर! ऐसा ही हो।

(यह कहकर चला जाता है)।

धृतराष्ट्र—बेटा! कैसा यह तेरा मति-विभ्रम है कि ऐसे समय में भी इस प्रकार के सज्जन व्यक्ति अश्वत्थामा में वचन की कठोरता से उदासीनता उत्पन्न कर रहे हो?

दुर्योधन—मैंने इसे क्या अप्रिय और असत्य कहा है। क्या यह क्रोध का कारण नहीं है? देखिये—

अकलितमहिमानं क्षत्रियैरात्तचापैः समरशिरसि युष्मद्भाग्यदोषाद्विपन्नम् ।
परिवदति समक्षं मित्रमङ्गाधिराजं मम खलु कथयास्मिन्को विशेषोऽर्जुने वा ॥

धृतराष्ट्रः—वत्स तवापि कोऽत्र दोषः । अवसानमिदानीं भरतकुलस्य । संजय, किमिदानीं करोमि मन्दभाग्यः ? (विचिन्त्य) भवत्वेवं तावत् । संजय, मद्वचनाद् ब्रूहि भारद्वाजमश्वत्थामानम् ।

अन्वयः—आत्तचापैः, क्षत्रियैः, अकलितमहिमानम्, रणशिरसि, युष्मद्भाग्यदोषात्, विपन्नम्, मित्रम्, अङ्गराजम्, मम, समक्षम्, परिवदति, कथय, खलु, अस्मिन्, वा, अर्जुने, कः, विशेषः ॥ ४० ॥

व्याख्या—अकलितमहिमानमिति । आत्तचापैः = गृहीतकोदण्डैः, क्षत्रियैः = क्षत्रियवंशोत्पन्नवीरैः, अकलितमहिमानम्—अकलितः = अविदितः, महिमा = महत्त्वम् यस्य तम्, रणशिरसि = समराङ्गणे, युष्मद्भाग्यदोषात्—युष्माकम् = भवताम् भाग्यस्य = नियतेः दोषात् = प्रतिकूलत्वात्, विपन्नम् = विपद्ग्रस्तम्, मृतमित्यर्थः, मित्रम् = सुहृदम्, अङ्गराजम् = कर्णम्, मम=दुर्योधनस्य, समक्षम्= पुरः, परिवदति = निन्दति, कथय = ब्रूहि, खलु = निश्चयेन, अस्मिन् = एतादृशे, मम मित्रस्य शत्रावश्वत्थामनीति भावः, वा = अथवा; अर्जुने = पार्थे, मम शत्राविति भावः, कः = किंविधः, इत्यर्थः, विशेषः = भेदः, न कोऽपि विशेष इति भावः ॥ ४० ॥

टिप्पणी—अकलितेति । प्रस्तुत पद्य मालिनी छन्द में निबद्ध है जिसका लक्षण है—"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।" ॥ ४० ॥

धनुर्धारी क्षत्रिय भी जिसकी महिमा को नहीं जान सके वैसे, तथा युद्ध में तुमलोगों के भाग्य के दोष से मारे गये (मेरे) मित्र अङ्गराज (कर्ण) की मेरे समक्ष (यह) निन्दा करता है (इसलिए अब) बताओ कि इसमें या अर्जुन में क्या भेद है ? ॥ ४० ॥

धृतराष्ट्र—बेटा ! इसमें तेरा भी क्या दोष ? अब भरत-वंश का अन्त (आ गया है) । सञ्जय ! मैं अभागा इस समय क्या करूँ ? (सोचकर) अच्छा, ऐसा ही हो ! सञ्जय ! मेरी ओर से भारद्वाज-अश्वत्थामा से कहो—

स्मरति न भवान्पीतं स्तन्यं विभज्य सहामुना
मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः।
अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाच्च यद्-
वचनविकृतिष्वस्य क्रोधो मुधा क्रियते त्वया ॥ ४१ ॥

संजयः—यदाज्ञापयति तातः। (इत्युत्तिष्ठति।)

अन्वयः—अमुना, सह, विभज्य, स्तन्यम्, पीतम्; बाल्ये, त्वदङ्गविवर्त्तनैः, मम, क्षौमम्, मृदितम्, च, भवान्, न, स्मरति ? अनुजनिधनस्फीतात्, शोकात्, (कर्णे), अतिप्रणयात्, च, अस्य, वचनविकृतिषु, यत्, क्रोधः, त्वया, क्रियते, (तत्), मुधा ॥ ४१ ॥

व्याख्या—स्मरतीति। अमुना = अनेन, दुर्योधनेनेत्यर्थः, सह = साकम्, विभज्य = विभागं विधाय, स्तन्यम् = गान्धारीस्तनजन्यदुग्धमित्यर्थः, पीतम् = पानं कृतम्, बाल्ये = शैशवे, त्वदङ्गविवर्त्तनैः—तव = भवतः अङ्गानाम् = शरीरावयवानाम् विवर्त्तनैः = परिवर्त्तनैः, मम = धृतराष्ट्रस्य, क्षौमम् = दुकूलम्, पट्टवसनमित्यर्थः, च = अपि, भवान् = दुर्योधनः, न = नहि, स्मरति = बुद्धावानयति ? अनुजनिधनस्फीतात् = लघुभ्रातृमरणसमेधितात्, शोकाद् = शुचः, दुःखादित्यर्थः, (कर्णे = राधेये) अतिप्रणयात् = अतिस्नेहात्, च = अपि, अस्य = दुर्योधनस्येत्यर्थः, वचनविकृतिषु = वाग्विकारेषु, विकृतवचनेष्वित्यर्थः, यत् क्रोधः = कोपः, त्वया = भवता, अश्वत्थाम्नेति भावः, क्रियते = विधीयते (तत्), मुधा = व्यर्थम्, त्वया न क्रोधः कर्त्तव्यः इति भावः ॥४१॥

टिप्पणी—स्मरतीति। प्रस्तुत पद्य में हरिणी छन्द है ॥ ४१ ॥

इसके साथ बाँट कर पिये गये दूध को तथा बाल्यावस्था में तुम्हारे अङ्गों के द्वारा लोट-पोट करने के कारण मसले गये मेरे दुपट्टे को आप याद नहीं करते हैं ? छोटे भाइयों की मृत्यु से बढ़े हुए शोक के कारण तथा (कर्ण के प्रति) अत्यधिक प्रेम होने के कारण इस (दुर्योधन) की अनुचित बातों पर तुम्हारे द्वारा व्यर्थ ही क्रोध किया जा रहा है ॥ ४१ ॥

सञ्जय—पिताजी जैसी आज्ञा दें। (यह कह कर उठता है।)

धृतराष्ट्रः—अपि चेदमन्यत्त्वया वक्तव्यम् ।

यन्मोचितस्तव पिता वितथेन शस्त्रं
यत्तादृशः परिभवः स तथाविधोऽभूत् ।
एतद्विचिन्त्य बलमात्मनि पौरुषं च
दुर्योधनोक्तमपहाय विधास्यतीति ॥ ४२ ॥

संजयः—यदाज्ञापयति तातः ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

अन्वयः—यत्, तव, पिता, वितथेन, अस्त्रम्, मोचितः, यत्, तादृशः, सः, तथाविधः, परिभवः, अभूत्, एतत्, विचिन्त्य, दुर्योधनोक्तम् अपहाय, आत्मनि, बलम् च, (विचिन्त्य), पौरुषम्, विधास्यति ॥ ४२ ॥

व्याख्या—यदिति । यत्, तव = भवतः, अश्वत्थाम्न इति भावः, पिता = तातः, द्रोणाचार्य इति भावः, वितथेन = असत्यवचसा, अस्त्रम् = आयुधम्, मोचितः = त्याजितः यत्, तादृशः = तथाविधः, सः, तथाविधः = तादृशः, अभूतपूर्व इत्यर्थः, परिभवः = तिरस्कारः, अभूत् = सञ्जातः, एतत् = इदम्, विचिन्त्य = विचार्य, दुर्योधनोक्तम् = दुर्योधनभणितम्, अपहाय = त्यक्त्वा, विस्मृत्येत्यर्थः, आत्मनि = स्वस्मिन्, बलम् = शक्तिम्, च = अपि, विचिन्त्येति शेषः, पौरुषम् = पुरुषकारम्, पुरुषार्थं पराक्रमं वेत्यर्थं, विधास्यति = करिष्यति, भवानिति शेषः ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—यन्मोचित इति । प्रस्तुत पद्य में वसन्ततिलका छन्द है । छन्द का लक्षण है—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।" ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र—और भी, यह दूसरी बात भी तुम्हें कहनी है ।

असत्य भाषण के द्वारा जो तुम्हारे पिता के द्वारा अस्त्रत्याग करवाया गया तथा जो तुम्हारे पिता का उस प्रकार का उतना बड़ा तिरस्कार हुआ उसका स्मरण करके तथा दुर्योधन द्वारा कहे गये (वचन) को भूलकर (आप) अपने बल का विचार करते हुए पुरुषार्थ करेंगे ॥ ४२ ॥

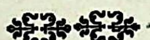
सञ्जय—पिताजी जैसी आज्ञा दें ।

(यह कहकर निकल जाता है) ।

दुर्योधनः—सूत, साङ्ग्रामिकं मे रथमुपकल्पय।

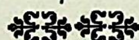
धृतराष्ट्रः—गान्धारि, इतो वयं मद्राधिपतेः शल्यस्य शिबिरमेव गच्छावः। वत्स, त्वमप्येवं कुरु। (इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति पञ्चमोऽङ्कः



धृतराष्ट्र इति। मद्राधिपतेः = मद्रदेशाधिपस्य।

इति "कमलेश्वरी" संस्कृतव्याख्यायां वेणीसंहारनाटकस्य पञ्चमोऽङ्कः॥

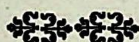


दुर्योधन—सूत! युद्ध के लिए उपयुक्त मेरे रथ को तैयार करो।

धृतराष्ट्र—गान्धारि! हम यहाँ से मद्रदेश के स्वामी शल्य के शिविर में चलते हैं। बेटा! तुम भी ऐसा ही करो।

(इस प्रकार घूम कर सब निकल जाते हैं।)

पञ्चम अङ्क समाप्त।



अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यासनस्थो युधिष्ठिरो द्रौपदी चेटी पुरुषश्च ।)

युधिष्ठिरः—(विचिन्त्य निःश्वस्य च ।)

तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते
कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्ये च याते दिवम् ।
भीमेन प्रियसाहसेन रभसात्स्वल्पावशेषे जये
सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ॥ १ ॥

अन्वयः—कथमपि, भीष्ममहोदधौ, तीर्णे, द्रोणानले, निर्वृते, कर्णाशीविष-भोगिनि, प्रशमिते, शल्ये, दिवम्, याते, च, जये, स्वल्पावशेषे (सति), प्रिय-साहसेन, भीमेन, रभसात्, वाचा, अमी, सर्वे; वयम्, जीवितसंशयम्, समारोपिताः ॥ १ ॥

व्याख्या—तीर्णं इति । कथमपि = येन केन प्रकारेण, भीष्ममहोदधौ—भीष्मः = गङ्गासुतः एव महोदधिः = महासागरः तस्मिन्, तीर्णे = पारं गते शरशय्यां प्रापिते सतीत्यर्थः, द्रोणानले—द्रोणः = द्रोणाचार्यः एव अनलः = वह्निः तस्मिन्, निर्वृते = निःशेषेण शान्ते, दिवंगते सतीत्यर्थः, कर्णाशीविषभोगिनि—आशीः = अहिदंष्ट्रा, तत्र विषम् = गरलः यस्य स आशीविषः, स चासौ भोगः =

(तत्पश्चात् आसन पर बैठा हुआ युधिष्ठिर, द्रौपदी, चेटी तथा पुरुष प्रवेश करते हैं ।)

युधिष्ठिर—(सोचकर तथा दीर्घ श्वास लेकर)

किसी प्रकार भीष्म पितामहरूपी महान् समुद्र को पार कर लेने पर, द्रोणा-चार्यरूपी अग्नि के शान्त हो जाने पर, कर्णरूपी विषैले सर्प के दमन करदिये जाने पर, शल्य के स्वर्ग चले जाने पर, और विजय के थोड़े से ही शेष रह जाने पर साहसप्रिय भीम ने आवेश के कारण अपनी (दुर्योधन को मारने की प्रतिज्ञा रूपी) वाणी से यह हमसब के जीवन को सन्देह में डाल दिया है ॥ १ ॥

द्रौपदी—(सबाष्पम् ।) महाराज, पञ्चलिए त्ति किं ण भणिदम् ? (महाराज, पाञ्चाल्येति किं न भणितम् ।)

शरीरम् यस्येति भोगी = सर्पः इति आशीविषभोगी, कर्णः = राधेय एव आशीविषभोगी इति कर्णाशीविषभोगी तस्मिन्, प्रशमिते = विनाशिते, शल्ये = मद्राधिपे, दिवम् = स्वर्गम्, याते=गते, च = तथा, जये = विजये, स्वल्पविशेषे= स्वल्पमवशिष्टे सति, प्रियसाहसेन—प्रियः = सुखकरः साहसः = पराक्रमकर्म यस्य तेन, भीमेन = वृकोदरेण, रभसात् = वेगात्, वाचा = वचनेन, श्वः प्रभाते त्वां हनिष्यामीति प्रतीज्ञारूपवाचेत्यर्थः, अमी = एते, सर्वे = निखिलाः, वयम् = पाण्डवाः, जीवितसंशयम्—जीविते = जीवने संशयम् = सन्देहम्, समारोपिताः= प्रापिताः । दुर्योधनविनाशार्थं भीमकृता प्रतिज्ञा यदि न पूर्णा तर्हि भीम आत्मघातं करिष्यति तदा च वयं सर्वे मरिष्याम इत्येवं सर्वे वयं प्राणसंशयं प्राप्ता इति भावः ॥ १ ॥

टिप्पणी—तीर्ण इति । आशीविषभोगिनि—"आशिषि विषं यस्य स आशीविषः" यहाँ पर पृषोदरादित्वात् दीर्घ तथा सकार का लोप हुआ है । "आशीर्हिताशंसाहिदंष्ट्रयोः" इत्यमरः । भोगः अस्ति अस्येति भोगी । भोग=शब्द यहाँ पर शरीर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है —"भोगः सुखे धने पुंसि शरीरफणयोर्मत" इति मेदिनी । आशीविषश्चासौ भोगी इति आशीविषभोगी—इस प्रकार समास हुआ है । रभसात्—"रभसो वेगहर्षयो" रिति विश्वः । जीवितसंशयम्—भीम ने दुर्योधन को कल प्रातः काल मारने की प्रतिज्ञा कर रखी है । दुर्योधन एक जलाशय में जाकर छिप गया है । यदि भीम दुर्योधन को न मार सका तो वह स्वयं आत्मघात कर लेगा और युधिष्ठिर ने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि एक भी अनुज के मारे जाने पर वह जीवित नहीं रहेगा; इस प्रकार सभी के प्राण संशय मे पड़ गये हैं । पद्य में रूपकालङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १ ॥

द्रौपदीति । पाञ्चाल्येति—द्रौपद्यैव सर्वे वयं जीवितसंशयं समारोपिता इति किन्न भणितमिति भावः ।

द्रौपदी—(आँसुओं के साथ) महाराज ! पाञ्चाली ने ही (संशय में डाला है) ऐसा क्यों नहीं कहते हैं ?

युधिष्ठिरः—कृष्णे ननु मया । (पुरुषमवलोक्य ।) बुधक,

पुरुषः—देव, आज्ञापय ।

युधिष्ठिरः—उच्यतां सहदेवः—क्रुद्धस्य वृकोदरस्यापर्युषितां प्रतिज्ञामुपलभ्य प्रनष्टस्य मानिनः कौरवराजस्य पदवीमन्वेष्टुमतिनिपुणमतयस्तेषु तेषु स्थानेषु परमार्थाभिज्ञाश्चराः सुसचिवाश्च भक्तिमन्तः पटुपटहरवव्यक्तघोषणाः सुयोधनपदसंचारवेदिनः प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्युपक्रियाश्चरन्तु समन्तात्समन्तपञ्चकम् । अपि च ।

युधिष्ठिर इति । ननु मया—सर्वानर्थभूतायां द्यूतक्रीडायां ममैव कारणत्वान्मयैव सर्वे जीवितसन्देहं समारोपिता इत्याशयः ।

युधिष्ठिर इति । अपर्युषिताम् = तद्दिवसे एव सम्पादनीयाम्, प्रतिज्ञाम् = अद्य दुर्योधनं जघनभञ्जनं विधास्यामीत्येवंविधं सङ्कल्पम्, दृढनिश्चयं वा । उपलभ्य = प्राप्य, विज्ञायेत्यर्थः, प्रनष्टस्य = गुप्तस्य, मानिनः = अहङ्कारिणः, कौरवराजस्य = कुरुपतेः, दुर्योधनस्येत्यर्थः, पदवीम् = चरणाङ्कितं मार्गम्, अतिनिपुणमतयः—अतिनिपुणा = अतिकुशला मतिः = बुद्धिः येषां ते, परमार्थाभिज्ञाः—परमार्थस्य = यथार्थस्थितेः अभिज्ञाः = ज्ञातारः, सुसचिवाः = उत्तमः मन्त्रिणः, भक्तिमन्तः = स्वामिसेवातत्पराः, पटुपटहरवव्यक्तघोषणाः—पटुभिः = स्पष्टैः, पटहरवैः = दुन्दुभिशब्दैः, व्यक्ता = कृता, घोषणा = उच्चैः कथनम्

युधिष्ठिर—कृष्णे ! मैंने ही (संशय में डाला है) । (पुरुष को देखकर) बुधक !

पुरुष—महाराज ! आज्ञा दें !

युधिष्ठिर—सहदेव से कहो—क्रुद्ध हुए भीम की आज ही पूरी होने वाली प्रतिज्ञा कों जानकर छिपे हुए अहङ्कारी कौरवराज (दुर्योधन) के चरणचिह्न युक्त मार्ग को खोजने के लिए अत्यन्त कुशल, उन उन स्थानों की यथार्थ स्थिति को जानने वाले, (हमारे प्रति) भक्तिभाव रखने वाले, तेज नगाड़े की आवाज से घोषणा करनेवाले, दुर्योधन की गतिविधि को जानने वाले और धन तथा सत्कार द्वारा प्रत्युपकार का वचन दिये गये गुप्तचर तथा उत्तम समन्तपञ्चक में चारो ओर विचरण करें । और भी,

पङ्के वा सैकते वा सुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः
कक्षेषु क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचया वल्लवाः संचरन्तु।
नागव्याघ्राटवीषु श्वपचपुरविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा
ये सिद्धव्यञ्जना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्चरन्तु ॥ २ ॥

यैस्ते, सुयोधनपदसंचारवेदिनः—सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य, यः, पदसञ्चारः = चरणगतिः तं विदन्ति = जानन्तीति ते, प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्युपक्रियाः—प्रतिश्रुता = स्वीकृता, धनेन = धनदानेनेत्यर्थः, पूजया = सम्मानेन च प्रत्युपक्रिया = प्रत्युपकरणं येषां ते, समन्तपञ्चकम् = देशविशेषम्, समन्तात् = सर्वतः, चरन्तु = गच्छन्तु।

अन्वयः—सुनिभृतपदवीवेदिनः, दाशाः, पङ्के, वा, सैकते, वा, यान्तु, क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाः, वल्लवाः, कक्षेषु, सञ्चरन्तु, श्वपचपुरविदः, नागव्याघ्राटवीषु, च, ये, रन्ध्रेषु, अभिज्ञाः, वा, सिद्धव्यञ्जनाः, (सन्ति), ते, चाराः, प्रतिमुनिनिलयम्, चरन्तु ॥ २ ॥

व्याख्या—पङ्के वेति। सुनिभृतपदवीवेदिनः = गुप्तस्थानज्ञातारः, दाशाः = धीवराः, मत्स्यघातका कैवर्त्ता इत्यर्थः, पङ्के = कर्दमे, पङ्किलप्रदेशे इत्यर्थः, वा = अथवा, सैकते = वालुकासमूहे, वालुकामयभूमावित्यर्थः, वा, यान्तु = गच्छन्तु, क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाः—क्षुण्णः = विदलितः यो वीरुन्निचयः = लतासमूहः, तस्य परिचयः = ज्ञानं येषां ते, वल्लवाः = आभीराः, कक्षेषु = अरण्येषु, साधारणजङ्गलेष्वित्यर्थः, सञ्चरन्तु = भ्रमन्तु, श्वपचपुरविदः—श्वपचानाम् = चाण्डालानाम्, पुरम् = नगरम्, विदन्तीति ते, चाण्डालपुरीवेत्तार इत्यर्थः, नागव्याघ्राटवीषु = हस्तिव्याघ्रप्रधानवनेषु, च = तथा, ये = गुप्तचराः, रन्ध्रेषु = कन्दरासु, परछिद्रेषु वा, अभिज्ञाः = निपुणाः, वा = तथा, सिद्धव्यञ्जनाः—

पङ्किल या बालुकामय भूमि में गुप्तमार्गों को जाननेवाले धीवर लोग जायें, कुचली हुई लताओं के समूह से परिचित अहीर लोग जङ्गलों में घूमें, चाण्डाल नगरी को जानने वाले हाथियों एवं बाघों से युक्त वनों में (जायें), तथा जो पर्वत-गुफाओं से परिचित हैं एवं जिन्होंने मुनियों का वेश धारण कर रखा है ऐसे गुप्तचर लोग प्रत्येक मुनि के आश्रम में जायें (अर्थात् जाकर खोजें) ॥२॥

पुरुषः—यथाऽऽज्ञापयति देवः ।

युधिष्ठिरः—तिष्ठ । एवं च वक्तव्यः सहदेवः ।

ज्ञेया रहः शङ्कितमालपन्तः सुप्ता रुगार्ताश्च वने विचेयाः ।
त्रासो मृगाणां वयसां विरावो नृपाङ्कपादप्रतिमा च यत्र ॥ ३ ॥

सिद्धानाम् = मुनीनाम् व्यञ्जनम् = चिह्नम् येषां ते, सिद्धवेशधारिण इत्यर्थः, सन्तीति शेषः, ते = तादृशाः, चाराः = गुप्तचराः, प्रतिमुनिनिलयम् = प्रतियतिनिवासस्थानम्, सञ्चरन्तु = गच्छन्तु, गत्वान्वेषणं कुर्वन्त्विति भावः ॥ २ ॥

टिप्पणी—पङ्क्वेति । दाशाः—केवट या मछुए को दाश कहते हैं— "कैवर्त्ते दाशधीवरौ" इत्यमरः । वल्लवाः—यह ग्वाला का पर्यायवाची है— "गोपेगोपालगोसंख्यगोधुगाभीरवल्लवाः" इत्यमरः । कक्षेषु—कक्ष शब्द का प्रयोग वाहुमूल (काँख) अरण्य तथा लता के अर्थ में होता है । यहाँ पर अरण्य अर्थ में उसका प्रयोग किया गया है—"कक्षः स्मृतो भुजामूले कक्षोऽरण्ये च वीरुधि" इति धरणिः । श्वपचपुरविदः—श्वपच चाण्डाल को कहते हैं—"चाण्डालप्लवमातंगदिवाकीर्तिजनंगमाः । निषादश्वपचावन्तेवासिचण्डालपुल्कसाः" इत्यमरः । चाराः-चरन्तीति चराः, चरा एव चाराः—प्रज्ञादित्वात् स्वार्थ में अण् प्रत्यय हुआ हैं । गुप्तचर या खुफिया को चर या चार कहते हैं—चरोऽक्षद्यूते च भीमे चारे" इति मेदिनी । प्रतिमुनिनिलयम्—यहाँ पर वीप्सा में "अव्ययं विभक्ति०" इत्यादि सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ है । पद्य में स्रग्धरा छन्द है ॥ २ ॥

अन्वयः—रहः, शङ्कितम्, आलपन्तः, (ज्ञेयाः), सुप्ताः, रुगार्त्ताः, ज्ञेयाः; वने, विचेयाः, यत्र, मृगाणाम्, त्रासः, वयसाम्, विरावः, च, नृपाङ्कपादप्रतिमा, (ते प्रदेशाः विचेयाः) ॥ ३ ॥

पुरुष—महाराज जैसी आज्ञा दें ।

युधिष्ठिर—ठहरो, सहदेव से इस प्रकार भी कह देना—

एकान्त में शङ्कापूर्वक बातचीत करते हुए, सोये हुए तथा रोगपीडित (लोगों) की छानबीन करनी चाहिए तथा वैसे जङ्गलों में भी खोज करनी चाहिए जहाँ पशु भयभीत हों तथा पक्षियों का कोलाहल हो एवं जहाँ राजा के चिह्नों से युक्त पैरों के निशान हों उन स्थानों की भी छानबीन करनी चाहिए ॥ ३ ॥

पुरुषः—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रम्य, पुन प्रविश्य सहर्षम्।) देव पाञ्चलकः प्राप्तः।

युधिष्ठिरः—त्वरितं प्रवेशय।

पुरुषः—(निष्क्रम्य, पाञ्चालकेन सह प्रविश्य।) एष देवः। उपसर्पतु पाञ्चालक।

पाञ्चालकः—जयतु जयतु देवः। प्रियमावेदयामि महाराजाय देव्यै च।

व्याख्या—ज्ञेया इति। रहः = निर्जने, एकान्ते इत्यर्थः, शङ्कितम्=साशङ्कं यथा स्यात्तथा, सभयमित्यर्थः, आलपन्तः=परस्परं वार्त्तालापं कुर्वन्तः, जना इति शेषः, ज्ञेयाः = ज्ञातव्याः, दुर्योधनसम्बन्धिनीं वार्तामिमे कुर्वन्ति अथवा अन्यामिति ज्ञेयमिति भावः। सुप्ताः = शयिताः, रुगार्त्ताः=रोगपीडिताः, ज्ञेयाः, च = तथा, वने=विपिने, विचेयाः = अन्वेषणीयाः, यत्र = यस्मिन् स्थाने इत्यर्थः, मृगाणाम्=वन्यपशूनाम्, त्रासः = भयम्, वयसाम् = पक्षिणाम्, विरावः = शब्दः, वाशितमित्यर्थः, च=तथा, नृपाङ्कपादप्रतिमा=नृपस्य=राज्ञः अङ्काः = चिह्नानि चक्रादिरूपाणीत्यर्थः, येषु तेषां पादानाम्=चरणानाम्, प्रतिमाः = चिह्नानि येषु ते, (ते प्रदेशाः विचेयाः = तादृशानि स्थानानि अन्वेषणीयानि) ॥ ३ ॥

टिप्पणी--ज्ञेया इति। कहीं कहीं "सुप्ता रुगार्त्ताश्च वने विचेयाः" के स्थान में "सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः" यह पाठान्तर मिलता है। पद्य में उपजाति छन्द है ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर इति। त्वरितम् = शीघ्रम्।

पुरुष इति। उपसर्पतु = समीपं गच्छतु।

पाञ्चालक इति। महाराजाय=युधिष्ठिराय, देव्यै=द्रौपद्यै इत्यर्थः।

पुरुष—महाराज जैसी आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर पुनः प्रवेश करके हर्षपूर्वक) महाराज ! पाञ्चालक आया है।

युधिष्ठिर—(उसे) शीघ्र अन्दर लाओ।

पुरुष—(बाहर जाकर पाञ्चालक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज हैं। पाञ्चालक समीप जायें।

पाञ्चालक—जय हो, महाराज की जय हो। महाराज एवं महारानी को शुभ समाचार सुनाता हूँ।

युधिष्ठिरः—भद्र पाञ्चालक, कच्चिदासादिता तस्य दुरात्मनः कौरवाधमस्य पदवी ?

पाञ्चालकः—न केवलं पदवी। स एव दुरात्मा देवीकेशाम्बराकर्षणमहापातकप्रधानहेतुरुपलब्धः।

युधिष्ठिरः—साधु भद्र, प्रियमावेदितम्। अथ दर्शनगोचरं गतः ?

पाञ्चालकः—देव, समरगोचरं पृच्छ।

द्रौपदीः—(सभयम्।) कहं समरगोअरो वट्टइ मे णाहो ? (कथं समरगोचरो वर्तते मे नाथः ?)

युधिष्ठिरः—(साशङ्कम्।) सत्यं समरगोचरो मे वत्सः—

पाञ्चालकः—सत्यम्। किमन्यथा वक्ष्यते महाराजाय।

युधिष्ठिर इति। कच्चिदितीष्टप्रश्ने। दुरात्मनः=दुष्टस्य, कौरवाधमस्य=कौरवापसदस्य, पदवी=पद्धतिः, चरणाङ्कितो मार्ग इत्यर्थः, आसादिता=प्राप्ता।

पाञ्चालक इति। देवीकेशाम्बरकर्षणमहापातकप्रधानहेतुः—देव्याः=द्रौपद्याः, केशाम्बरयोः=कचवस्त्रयोः, यत् कर्षणम्=आकर्षः, तदेव महापातकम्=महत्पापम्, तस्य प्रधानहेतुः = मुख्यकारणम्, उपलब्धः = प्राप्तः।

युधिष्ठिर इति। प्रियम् = मनोऽभिलषितम्, आवेदितम् = विज्ञापितम्। दर्शनगोचरम्=दृष्टिविषयम्, गतः = प्राप्तः, दृष्ट इत्यर्थः।

युधिष्ठिर—भद्र पाञ्चालक ! क्या उस दुष्ट कौरवाधम का पदमार्ग मिल गया है ?

पाञ्चालक—केवल पद मार्ग ही नहीं बल्कि महारानी के केश एवं वस्त्र के कर्षणरूपी महापाप का प्रधान कारण वह दुष्टात्मा ही मिल गया है।

युधिष्ठिर—वाह ! भद्र ! तुमने प्रिय समाचार बतलाया। तो क्या दिखलाई भी दिया ?

पाञ्चालक—महाराज ! युद्ध-गोचर पूछिये (नेत्रगोचर क्यों पूछते हैं ?)।

द्रौपदी—(भयपूर्वक) तो क्या मेरे स्वामी युद्ध में उतरे हुए हैं ?

युधिष्ठिर—(आशङ्कापूर्वक) क्या सचमुच मेरा वत्स युद्ध में उतरा हुआ है?

पाञ्चालक—सचमुच। क्या महाराज से असत्य भाषण किया जायेगा ?

युधिष्ठिरः—

त्रस्तं विनाऽपि विषयादुरुविक्रमस्य
चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति।
जानामि चोद्यतगदस्य वृकोदरस्य
सारं रणेषु भुजयोः परिशङ्कितश्च ॥ ४ ॥

(द्रौपदीमवलोक्य ।) अयि सुक्षत्रिये,

अन्वयः—विषयात, विना, अपि, त्रस्तम्, मे, चेतः, विवेकपरिमंथरताम्, प्रयाति, उरुविक्रमस्य, उद्यद्गदस्य, च, वृकोदरस्य, रणेषु, भुजयोः, सारम्, जानामि, (तथापि), परिशङ्कितः, च, (अस्मि) ॥ ४ ॥

व्याख्या—त्रस्तमिति । विषयात् = कारणात्, भयहेतोरित्यर्थः, विना = अन्तरेण, अपि, त्रस्तम् = भीतम्, मे = मम, चेतः = हृदयम्, विवेकपरिमन्थरताम्—विवेके = कर्त्तव्यनिश्चये परिमन्थरताम् = मन्दताम्, प्रयाति = प्राप्नोति, उरुविक्रमस्य = विपुलपराक्रमिणः, उद्यतगदस्य—उद्यता = उत्थापिता गदा येन तस्य, च, वृकोदरस्य = भीमसेनस्य, रणेषु = सङ्ग्रामेषु, भुजयोः = बाह्वोः, सारम् = बलम्, जानामि = वेद्मि, तथापीति योज्यम्, परिशङ्कित = शङ्कायुक्तः, भीत इत्यर्थः, च अस्मीति शेषः ॥ ४ ॥

टिप्पणी—त्रस्तमिति । सारम् = "सारो बले स्थिरांशे च"त्यमरः । इस पद्य में विशेषोक्ति अलङ्कार है । "विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः" अर्थात् जहाँ कारण के रहने पर भी कार्य न हो वहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार होता है । यहाँ पर भीम के बल का ज्ञान ही शङ्काऽभावरूप कारण है तथा उसके रहते शङ्काऽभावरूप कार्य होना चाहिए जो नहीं हो रहा है अतः कारण के रहते हुए भी कार्य के न होने से विशेषोक्ति अलङ्कार है । पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ॥४॥

युधिष्ठिर—बिना कारण के भी मेरा हृदय विचारशैथिल्य को प्राप्त हो रहा है । युद्ध में महान् पराक्रमी तथा उठाई हुई गदावाले भीम की भुजाओं के बल को (यद्यपि) मैं जानता हूँ (तथापि) शङ्कित हूँ ॥ ४ ॥

(द्रौपदी को देखकर) अरी क्षत्रियवीराङ्गना !

गुरूणां बन्धूनां क्षितिपतिसहस्रस्य च पुरः
पुरोऽभूदस्माकं नृपसदसि योऽयं परिभवः।
प्रिये प्रायस्तस्य द्वितयमपि पारं गमयति
क्षयः प्राणानां नः कुरुपतिपशोर्वाऽद्य निधनम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—(हे) प्रिये, गुरूणाम्, बन्धूनाम्, च, क्षितिपतिसहस्रस्य, पुरः, नृपसदसि, अस्माकम्, यः, अयम्, परिभवः, पुरा, अभूत्; तस्य, पारम्, द्वितयम्, अपि, प्रायः, गमयति, अद्य, नः, प्राणानाम्, क्षयः, वा, कुरुपतिपशोः, निधनम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—गुरूणामिति। (हे) प्रिये=हे प्रियतमे, गुरूणाम्=श्रेष्ठजनानाम्, द्रोणभीष्मादीनामिति भावः, बन्धूनाम् = बान्धवानाम्, स्वजनानामित्यर्थः, च = तथा, क्षितिपतिसहस्रस्य—क्षितिपतीनाम् = भूपतीनाम्, सहस्रस्य=सहस्रावयवसमुदायस्य, सहस्राधिकभूपालानामित्यर्थः, पुरः=अग्रे, समक्षमित्यर्थः, नृपसदसि= राजसभायाम्, अस्माकम्=युधिष्ठिरादीनां पाण्डवानामित्यर्थः, यः=यादृशः, अयम्=एषः, प्रसिद्ध इत्यर्थः, परिभवः=अपमानम्, पुरा = पूर्वम्, अभूत् = जातः, तस्य = तस्यापमानस्येत्यर्थः, पारम्=अन्तम्, प्रतिक्रियामित्यर्थः, द्वितयम्= उभयम्, अपि, प्रायः=बाहुल्येन, गमयति = प्रापयति, किं किमिति जिज्ञासायामुच्यते-अद्य = इदानीम्, नः = अस्माकम्, प्राणानाम् = असूनाम्, जीवनानामित्यर्थः, क्षयः = विनाशः, वा = अथवा, कुरुपतिपशोः = पशुतुल्यकुरुराजस्य, निधनम्=विनाशः, मृत्युरित्यर्थः ॥ ५ ॥

टिप्पणी—गुरूणामिति। प्रस्तुत पद्य में भूतपूर्व अपमान का "अयम्" इस प्रत्यक्षविषयबोधक शब्द द्वारा निर्देश किया गया है अतः भाविक अलङ्कार है— "प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः। तद्भाविकम् (का०प्र० १०।११४)। शिखरिणी छन्द है ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! श्रेष्ठजनों, बन्धुओं एवं हजारों राजाओं के समक्ष राजसभा में हमलोगों का जो यह अपमान हुआ था, आज या तो हमलोगों के प्राणों का नाश या पशुतुल्य कुरुराज (दुर्योधन) का नाश–ये दो बातें ही प्रायः उसके पार पहुँचा सकती हैं ॥ ५ ॥

अथवा कृतं सन्देहेन ।

नूनं तेनाऽद्य वीरेण प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा ।
बध्यते केशपाशस्ते स चास्याकर्षणक्षमः ॥ ६ ॥

पाञ्चालक, कथय कथय, कथमुपलब्धः स दुरात्मा कस्मिन्नुद्देशे किं वाऽधुना प्रवृत्तमिति ।

अन्वयः—प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा, तेन, वीरेण, अद्य, ते, केशपाशः, च, अस्य, आकर्षणक्षमः, सः, नूनम्, बध्यते ॥ ६ ॥

व्याख्या—नूनमिति । प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा—प्रतिज्ञायाः = प्रणस्य, दुर्योधनं हत्वा तद्रुधिरेण द्रौपद्याः केशपाशबन्धनं सम्पादयिष्यामीतिरूपिण्याः प्रतिज्ञायाः, भङ्गः = खण्डनम्, तस्माद् भीरुः = भीतः तेन, तेन = प्रसिद्धेन, वीरेणं = पराक्रमिणा, अद्य = अस्मिन्नहनि, ते = तव, द्रौपद्या इति भावः, केशपाशः = कचकलापः, च = तथा, अस्य = केशपाशस्येत्यर्थः, आकर्षणक्षमः—आकर्षणे = हरणे क्षमः = समर्थः, सः = दुर्योधनः, नूनम् = निश्चयेन, बध्यते = संह्रियते, केशपाशः संयम्यते दुर्योधनश्च हन्यत इति भावः ॥ ६ ॥

टिप्पणी—नूनमिति । बध्यते—बन्धनार्थक बन्ध् धातु से सिद्ध हुआ है । हननार्थक वध् धातु से वध्यते रूप होता है । एक का अर्थ बाँधना तथा दूसरे का अर्थ मारना होता है । यहां पर तन्त्र के माध्यम से बध्यते का सम्बन्ध द्रौपदी के केशपाश एवं दुर्योधन–दोनों से जोड़ा जा सकता है । तात्पर्य यह है कि="तव केशपाशो बध्यते" तथा "दुर्योधनो वध्यते" । अर्थात् तुम्हारे केश बाँधे जायेंगे तथा दुर्योधन मारा जायेगा । प्रस्तुत पद्य में तुल्ययोगिता अलङ्कार है–"नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता" (का० प्र० १०।१०४) पद्य में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ६ ॥

उपलब्धः = प्राप्तः, उद्देशे = स्थाने, प्रवृत्तम् = आरब्धम् ।

अथवा सन्देह करना बेकार है ।

प्रतिज्ञा के खण्डन से डरनेवाले उस वीर भीम द्वारा आज तुम्हारा केशपाश एवं इसे खींचने में समर्थ वह (दुर्योधन) निश्चय ही बाँधे जायेंगे । (अर्थात् तुम्हारे केश सँवारे जायेंगे एवं दुर्योधन मारा जायेगा) ॥ ६ ॥

पाञ्चालक ! कहो, कहो, किस प्रकार और किस स्थान में वह दुष्ट पाया गया और अब क्या हो रहा है ?

द्रौपदी—भद्द, कहेहि । कहेहि । (भद्र कथय, कथय ।)

पाञ्चालकः—शृणोतु देवो देवी च । अस्तीह देवेन हते मद्राधिपतौ शल्ये गान्धारराजकुलशलभे सहदेवशस्त्रानलप्रविष्टे सेनापतिनिधननिराक्रन्दविरलयोधोज्झितासु समरभूमिषु रिपुबलपराजयोद्धतवल्गितविचित्रपराक्रमासादितविमुखारातिचक्रासु धृष्टद्युम्नाधिष्ठितासु च युष्मत्सेनासु, प्रनष्टेषु कृपकृतवर्माश्वत्थामसु तथा दारुणामपर्युषितां प्रतिज्ञामुपलभ्य कुमारवृकोदरस्य न ज्ञायते क्वापि प्रलीनः स दुरात्मा कौरवाधमः ।

पाञ्चालक इति । देवः = युधिष्ठिरः, देवी=द्रौपदी । मद्राधिपतौ = मद्रदेशशासके, गान्धारराजकुलशलभे–गान्धारराजस्य = गान्धारनरेशस्य, शकुनेरित्यर्थः, कुलम् = वंशः, एव शलभः = पतङ्गः, अग्नौ पतित्वाऽऽत्मदाहं कर्त्तुमिच्छुः कीटविशेषः शलभः, तद्वदेवेति भावः तस्मिन्, सहदेवशस्त्रानलप्रविष्टे– सहदेवस्य = युधिष्ठिरस्य कनिष्ठभ्रातुः–शस्त्रम् = आयुधम् एव अनलः = अग्निः, तस्मिन् प्रविष्टः = पतितः, तस्मिन्, सेनापतीत्यादिः—सेनापतेः=सेनानायकस्य, शल्यस्य शकुनेश्चेत्यर्थः, निधनेन = मृत्युना, नितराम् आक्रन्दः = विलापः येषां ते तादृशाः विरलाः = स्वल्पाः ये योधाः = भटाः तैः उज्झितासु = त्यक्तासु, समरभूमिषु = युद्धभूमिषु, रिपुबलेत्यादिः—रिपुबलस्य = शत्रुसेनायाः, पराजयेन = पराभवेन, उद्धतम् = उद्दण्डम्, वल्गितम्=कूर्दनयुक्तो गतिविशेषः, तच्च, विचित्र-

---

द्रौपदी—भद्र ! बतलाओ, बतलाओ !

पाञ्चालक—महाराज और महारानी सुनें । महाराज द्वारा मद्रदेश के राजा शल्य को मार देने पर, गान्धारदेश के राजकुलरूपी फतिङ्गे के सहदेव की शस्त्ररूपी अग्नि में प्रविष्ट हो जाने पर, सेनानायकों के मारे जाने से अत्यधिक विलाप करने वाले थोड़े से सैनिकों द्वारा युद्ध-भूमि को छोड़ दिये जाने पर, शत्रुसैन्य के पराजय से उद्धत गति तथा अद्भुत पराक्रम से युद्धपराङ्मुख शत्रु-सेना के समूह को पकड़नेवाली धृष्टद्युम्न से अधिष्ठित आपकी सेना के होने पर, कृप, कृतवर्मा, तथा अश्वत्थामा के भाग जानेपर, कुमार भीमसेन की भयङ्कर तथा उसी दिन पूरीहोनेवाली प्रतिज्ञा को जानकर वह दुष्टात्मा नीच कौरव न जानें कहाँ छिप गया ।

युधिष्ठिरः—ततस्ततः ।

द्रौपदी—अयि, परदो कहेहि । (अयि, परतः कथय ।)

पाञ्चालकः—अवधत्तां देवो देवी च । ततश्च भगवता वासुदेवेनाधिष्ठितमेकरथमारूढौ कुमारभीमार्जुनौ समन्तात्समन्तपञ्चकं पर्यटितुमारब्धौ तमनासादितवन्तौ च । अनन्तरं दैवमनुशोचति मादृशे भृत्यवर्गे

पराक्रमश्च = अद्भुतशौर्यञ्च, ताभ्याम् आसादितम् = प्राप्तम् आक्रान्तमित्यर्थः, विमुखारातिचक्रः = पराङ्मुखरिपुवर्गः, याभिः (कर्त्रीभिः) तासु, धृष्टद्युम्नाधिष्ठितासु = द्रुपदपुत्रसञ्चालितासु, युष्मत्सेनासु = युष्माकं सैन्येषु, प्रनष्टेषु = अदृश्यतां गतेषु, पलायितेस्वित्यर्थः, दारुणाम् = भीषणाम्, अपर्युषिताम् = अद्यैव पूरणीयामित्यर्थः, प्रलीनः = प्रच्छन्नः ।

टिप्पणी—मद्राधिपतौ—कर्ण की मृत्यु के बाद शल्य को कौरवसेना का सेनापति बनाया गया था जो बाद में युधिष्ठिर के हाथों मारा गया । गान्धारराजकुलशलभे शलभ फतिङ्गे को कहते हैं—"समौ पतङ्गशलभौ" इत्यमरः । गान्धारदेश का राजा शकुनि, जो दुर्योधन का मामा था, शल्य की मृत्यु के बाद सेनापति बनाया गया था किन्तु वह भी सहदेव द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया । कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा महाभारत में नहीं मारे गये थे । अर्जुन के शिष्य सात्यकि ने बाद में कृपाचार्य का वध किया था । अश्वत्थामा आज भी अमर है ।

पाञ्चालक इति । अवधत्ताम् = अवधानं दत्ताम्, सावधानतया शृणोत्वित्यर्थः । वासुदेवेन = श्रीकृष्णेन, अधिष्ठितम् = अध्यासितम्, एकरथम् = एकस्यन्दनम्, आरूढौ = उपविष्टौ, समन्तात् = सम्यक्, समन्तपञ्चकम् = देशविशेषम्, पर्यटितुम् = भ्रमितुम् आरब्धौ, तम् = दुर्योधनम्, अनासादितवन्तौ = अप्राप्तवन्तौ । अनन्तरम् = पश्चात् दैवम् = भाग्यम्, अनुशोचति =

युधिष्ठिर—उसके बाद, उसके बाद ?

द्रौपदी—अरे, आगे कहो ।

पाञ्चालक—महाराज तथा महारानी ध्यान दें । उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सञ्चालित एक रथ में बैठे हुए कुमार भीम तथा अर्जुन ने समन्तपञ्चक के चारों ओर घूमना प्रारम्भ किया किन्तु उसे नहीं पा सके । उसके

दीर्घमुष्णं च निःश्वसति कुमारे बीभत्सौ जलधरसमयनिशासञ्चारित-तडित्प्रकरपिङ्गलैः कटाक्षैरादीपयति गदां वृकोदरे यत्किंचनकारितामधिक्षि-पति विधेर्भगवति नारायणे कश्चित्संविदितः कुमारस्य मारुतेरुज्झितमांस-भारःप्रत्यग्रविशसितमृगलोहितलोहितचरणनिवसनस्त्वरमाणोऽन्तिकमुपेत्य पुरुषः परुषश्वासग्रस्तार्द्धश्रुतवर्णानुमेयपदया वाचा कथितवान्–देवकुमार,

---

विचिन्तयति सति, मादृशे = कार्याक्षमे, भृत्यवर्गे = अनुचरसमूहे, बीभत्सौ = अर्जुने, जलधरेत्यादिः—जलधरसमयः = वर्षाकालः, तस्य या निशा = रात्रिः, तस्यां सञ्चारिताः = प्रकटाः, याः तडितः = विद्युतः, तासां प्रकरः = समूहः तद्वत् पिङ्गलैः = कपिलैः, ईषद्रक्तपीतैरित्यर्थः, कटाक्षैः = अपाङ्गदृष्टिभिः, गदाम्, आदीपयति=ज्वलयति, गदामधिककान्तिमयीं कुर्वति सतीत्यर्थः। विधेः= भाग्यस्य, यत्किञ्चनकारिताम्—यत्किञ्चन कर्त्तुं शीलमस्येति यत्किञ्चनकारी तस्य भावः ताम्, असम्भाव्यकारितामित्यर्थः। अधिक्षिपति = निन्दयति सति। कुमारस्य, मारुतेः = वृकोदरस्य, संविदितः = परिचितः, उज्झितमांसभारः— उज्झितः=त्यक्तः, दूरे स्थापित इत्यर्थः, मांसभारः=पिशितसमूहः येन सः तादृशः। प्रत्यग्रतिशसितमृगलोहितलोहितचरणनिवसनः—प्रत्यग्रतिशसितानाम् = सद्यः मारितानाम्, मृगाणाम् = हरिणानाम् यल्लोहितम् = रुधिरम् तेन लोहितानि= रक्तवर्णीकृतानि, चरणनिवसनानि= पादवस्त्राणि यस्य तादृशः, त्वरमाणः = शीघ्रतां कुर्वाणः, अन्तिकम् = समीपम्, उपेत्य = आगत्य, परुषेत्यादिः–परुषः= कठिनः यः श्वासः = प्राणवायुः तेन ग्रस्ताः = व्याप्ताः अतः अर्धश्रुताः= अस्पष्टंश्रुताः ये वर्णाः = अक्षराणि तैः अनुमेयानि = ज्ञातव्यानि, पदानि =

बाद मेरे जैसे अनुचर-समूह के भाग्य पर अफसोस करने पर, कुमार अर्जुन के लम्बी तथा गरम उसांसें लेने पर, वर्षाकालीनरात्रि में चमकनेवाली बिजलियों के समूह के समान पीले वर्ण के कटाक्षों से गदा को भीम द्वारा प्रकाशित करने पर, भगवान् नारायण द्वारा भाग्य की असम्भाव्यकारिता को कोसने पर, कुमार भीमसेन का परिचित कोई पुरुष, जिसने मांस की ढेर को एक ओर रख दिया और जिसके पैर तथा वस्त्र तत्क्षण मारे गये हरिण (के रक्त) से लाल थे; जल्दी करता हुआ समीप आकर कठिन साँस में दब जाने के कारण

अस्मिन्महतोऽस्य सरसस्तीरे द्व पदपद्धती समवतीर्णप्रतिबिम्बे। तयोरेका-स्थलमुत्तीर्णा न द्वितीया। 'परत्र कुमारः प्रमाणम्' इति। ततः ससम्भ्रमं प्रस्थिताः सर्वे वयं तमेव पुरस्कृत्य गत्वा च सरस्तीरं परिज्ञायमानसुयोधनपदलाञ्छनां पदवीमासाद्य भगवता वासुदेवेनोक्तम्—'भो वीर वृकोदर, जानाति किल सुयोधनः सलिलस्तम्भनीं विद्याम्। तन्नूनं तेन त्वद्भयात्सरसीमेनामधिशयितेन भवितव्यम्।' एतच्च वचनमुपश्रुत्य बलानुजस्य

शब्दा इत्यर्थः यस्याः सा तया, वा चा = वाण्या। महतः = विशालस्य, अस्य, सरसः = सरोवरस्य, तीरे = तटे, पदपद्धती = चरणाङ्कितमार्गावित्यर्थः, समवतीर्णप्रतिबिम्बे—समवतीर्णः = स्थितः, प्रतिबिम्बः = प्रतिकृतिः ययोस्ते वर्तेते इति शेषः। स्थलम् = जलादुपरिभूमिम्, उत्तीर्णा प्रत्यागता, न द्वितीया = नाऽपरा, द्वौ पुरुषौ जलं प्रति गतौ, तयोरेकः पुनः जलादुत्तीर्णः किन्तु द्वितीयो नेति तात्पर्यम्, अनेन दुर्योधनस्य जलप्रवेशद्वाराऽऽत्मगोपनं व्यज्यते। परत्र = अग्रे, कुमारः = भवान् भीमः, एव, प्रमाणम् = प्रमात्मकज्ञानजनकम्। दुर्योधनस्य कुत्र स्थितिरित्यस्मिन् विषये भवद्भिरेव निश्चेतुं शक्यत इति कथनाभिप्रायः। ततः = तत्पश्चात्, व्याधवचनश्रवणानन्तरमित्यर्थः, ससंभ्रमम् = सोद्वेगं यथा स्यात्तथा, तम् = व्याधम्, पुरस्कृत्य = अग्रे कृत्वा, परिज्ञायमानसुयोधनपदलाञ्छनाम्—परिज्ञायमानानि = पूर्वतः परिचितानि, यानि सुयोधनपदयोः = दुर्योधनचरणयोः लाञ्छनानि = चिह्नानि यस्याम् ताम्, पदवीम् = पद्धतिम्, मार्गमित्यर्थः, आसाद्य = प्राप्य, सलिलस्तम्भनीम् = सलिलं = जलं स्तम्भ्यतेऽ-

अध-सुने वर्णों से अनुमान किये गये पदों वाली वाणी से कहा। महाराज कुमार! इस विशाल सरोवर के तट पर दो पद पङ्क्तियों के चिह्न पड़े हुए हैं। उनमें से एक भूमि पर वापस लौटी हुई है, दूसरी नहीं। इसके आगे कुमार ही समझ लें। उसके बाद हम सब लोग उसे ही आगे करके बड़ी आतुरता के साथ चल पड़े। झील के तट पर जाकर दुर्योधन के चरणचिह्न (के रूप में) जानी गई पद पङ्क्ति को पाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—"हे वीर भीमसेन! दुर्योधन जलस्तम्भनी विद्या जानता है। इसलिए वह निश्चय ही तुम्हारे भय से इस विशाल सरोवर में लेटा होगा।" बलराम के छोटे भाई (श्रीकृष्ण) के इस

सकलदिक्प्रपूरितातिरिक्तमुद्भ्रान्तसलिलचारिचक्रं त्रासोद्धतनक्रमालोड्य सरःसलिलं भैरवं च गर्जित्वा कुमारवृकोदरेणाभिहितम्—अरे रे वृथाप्रख्यापितालीकपौरुषाभिमानिन्, पाञ्चालराजतनयाकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्,

नयेति सलिलस्तम्भनी ताम्, विशिष्टविद्यामित्यर्थः। बलानुजस्य = बलरामलघुभ्रातुः श्रीकृष्णस्येत्यर्थः, सकलदिक्प्रपूरितातिरिक्तम् सकलदिक्षु = सर्वासु दिशासु, प्रपूरितम्=भरितम् ततः अतिरिक्तञ्च=अधिकञ्च, सरः सलिलमित्यस्यैतद्विशेषणम्, उद्भ्रान्तसलिलचारिचक्रम् उद्भ्रान्तः=उद्विग्नः, सलिलचारिणाम्=जलचराणाम्, मकरमीनादीनामित्यर्थः, चक्रः=समूहः यत्र तत् तादृशम्, त्रासोद्धतनक्रम् त्रासेन = भयेन, उद्धतः=उद्भ्रान्तः, नक्रः = कुम्भीरः यत्र तत् तादृशम्, सरः सलिलम्=सरोवरजलम्, भैरवम्=भीषणम्, गर्जित्वा=सन्तर्ज्य, अभिहितम्=उक्तम्—वृथा प्रख्यापितालीकपौरुषाभिमानिन्—वृथा = व्यर्थम्, प्रख्यापितम् = प्रवेदितम्, अलीकम् = मिथ्या, पौरुषम् = पराक्रमम् अभिमन्यते तत्सम्बुद्धौ।

टिप्पणी—पिङ्गलः—"कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ" इत्यमरः। मारुतेः—वायु का पर्यायवाची मरुत् शब्द "मरुतः स्पर्शनः प्राणः समीरो मरुत्" इस विक्रमादित्यकोश के अनुसार अकारान्त भी है अतः "मरुतस्यापत्यं पुमान्" इस अर्थ में "अत इञ्" सूत्र से इञ् प्रत्यय करने पर मारुति रूप बनेगा जिसका षष्ठी के एकवचन में "मारुतेः" रूप सिद्ध होगा। लोहितलोहितचरण०—लोहित शब्द रक्त (रुधिर) एवं रक्तवर्ण–दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है—"लोहितो मङ्गले नदे। वर्णभेदे लोहितं तु कुङ्कमे रक्तचन्दने। गोशीर्षे रुधिरे युद्धे।" इति हैमः। त्रासोद्धतनक्रम्—नक्र कुम्भीर या मगर को कहते हैं—"नक्रस्तु-कुम्भीरः" इत्यमरः। इसी को अंग्रेजी भाषा में "क्रोकोडाइल" कहा जाता है।

वचन को सुनकर सरोवर के जल का (इस प्रकार) आलोडन करके और भीषण गर्जन करके ही (जलने) सभी दिशाओं को भर दिया फिर भी वह अधिक ही था, जल-चर पक्षी विकल हो गये और घड़ियाल भागने लगे, कुमार भीमसेन ने कहा—अरे रे व्यर्थ प्रकट किये गये मिथ्या पराक्रम पर अभिमान करनेवाले ! पाञ्चालराज की पुत्री के केश एवं वस्त्र को खींचने का महापाप करनेवाले !

जन्मेन्दोर्विमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां
मां दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबं रिपुं भाषसे।
दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे
मत्त्रासान्नृपशो ! विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ॥ ७ ॥

अन्वयः—विमले, इन्दोः, कुले, जन्म, व्यपदिशसि; अद्य, अपि, गदाम्, धत्से; दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबम्, माम्, रिपुम्, भाषसे, मधुकैटभद्विषि, हरौ, अपि, दर्पान्धः, (भूत्वा) उद्धतम्, चेष्टसे, (तथापि), (हे) नृपशो, अधुना, मन्त्रासात्, समरम्, विहाय, पङ्के, लीयसे ॥ ७ ॥

व्याख्या—जन्मेन्दोरिति। विमले = निर्मले, निष्कलङ्के इत्यर्थः, इन्दोः = चन्द्रस्य, कुले = वंशे, जन्म = उत्पत्तिम्, व्यपदिशसि = कथयसि, अद्य = सम्प्रति, अपि, गदाम् = एतन्नामकमायुधम्, धत्से = धारयसि, दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबम्—दुःशासनस्य = तव लघुभ्रातुः, कोष्णम् = किञ्चिदुष्णम् यत् शोणितम् = रुधिरम् तदेव सुरा = मदिरा तया क्षीबम् = मत्तम्, माम् = भीमसेनम्, रिपुम् = शत्रुम्, भाषसे = ब्रवीषि, मधुकैटभद्विषि—मधुकैटभयोः = एतन्नामकयोरसुरयोः द्विट् = शत्रुः, तस्मिन्, हरौ=श्रीकृष्णे, अपि=च, दर्पान्धः—दर्पेण = गर्वेण अन्धः=सदसद्विवेकशून्यः, उन्मत्त इत्यर्थः (भूत्वा), उद्धतम्=उद्दण्डं यथा स्यात्तथा, चेष्टसे = व्यापारं करोषि (तथापि), हे नृपशो = मद्भयात्, समरम्=युद्धम्, विहाय = त्यक्त्वा, पङ्के=कर्दमे, लीयसे = प्रच्छन्नो भवसि ॥७॥

टिप्पणी—जन्मेन्दोरिति। इस पद्य में तर्जन तथा उद्वेजन के द्वारा द्युति नामक सन्ध्यङ्ग है—"तर्जनोद्वेजने प्रोक्ता द्युतिरिति" (साहित्यदर्पणः)। चन्द्रवंश में उत्पन्न हुए उत्तम व्यक्ति का कीचड़ में छिपने जैसे अधम कार्य के साथ संघटना होने से विषमालङ्कार है। शार्दूलविक्रीडित छन्द है जिसका लक्षण है—" सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ७ ॥

निष्कलङ्क चन्द्रवंश में (तू अपना) जन्म बतलाता है; आज भी गदा को धारण करता है; दुःशासन की किञ्चित् गरम-गरम रक्तरूपी मदिरा से मत्त हुए मुझ (भीमसेन) को शत्रु कहता है; मधु एवं कैटभ के शत्रु श्रीकृष्ण के प्रति भी गर्व से अन्धा होकर उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार करता है (फिर भी) हे मानव-पशु ! अब मेरे भय से युद्ध को छोड़कर कीचड़ में क्यों छिप रहे हो ? ॥ ७ ॥

अपि च । भो मानान्ध,

पाञ्चाल्या मन्युवह्निः स्फुटमुपशमितप्राय एव प्रसह्य
प्रोन्मुक्तैः केशपाशैर्हतपतिषु मया कौरवान्तःपुरेषु ।
भ्रातुर्दुःशासनस्य स्रवदसृगुरसः पीयमानं निरीक्ष्य
क्रोधात्किं भीमसेने विहितमसमये यत्त्वयाऽस्तोऽभिमानः ॥८॥

अन्वयः—मया, प्रसह्य, कौरवान्तःपुरेषु, हतपतिषु, (कृतेषु) (अतः); प्रोन्मुक्तैः, केशपाशैः, पाञ्चाल्याः, मन्युवह्निः, स्फुटम्, उपशमितप्रायः, एव, भ्रातुः, दुःशासनस्य, उरसः, स्रवत्, असृक्, (मया), पीयमानम्, निरीक्ष्य, क्रोधात्, त्वया, भीमसेने, किम्, विहितम्, यत्, असमये, अभिमानः अस्तः ॥ ८ ॥

व्याख्या—पाञ्चाल्या इति । मया = भीमसेनेन, प्रसह्य = हठात्, कौरवान्तःपुरेषु—कौरवाणाम् अन्तःपुराणि = भूपतीनां स्त्र्यागाराणि तेषु, हतपतिषु—हताः = मारिताः पतयः = स्वामिनो येषां तेषु तादृशेषु, प्राप्तवैधव्यासु धृतराष्ट्रवधूषु सतीष्विति भावः, (अतः) प्रोन्मुक्तैः = अबद्धैः, केशपाशैः = कचकलापैः, मृतपतिकानां केशबन्धनस्य शास्त्राविरुद्धत्वादिति भावः । पाञ्चाल्याः = द्रौपद्याः, मन्युवह्निः = कोपानलः, स्फुटम् = स्पष्टम्, उपशमितप्रायः = शान्ततुल्यः, एवेत्यवधारणे, भ्रातुः = अनुजस्य, दुःशासनस्येत्यर्थः, उरसः = वक्षसः, स्रवत् = प्रवहमानम्, असृक् = शोणितम्, (मया = भीमेन) पीयमानम् = आचम्यमानम्, निरीक्ष्य = विलोक्य, क्रोधात् = कोपात्, (त्वया = दुर्योधनेन), भीमसेने = अपकारिणि मयि वृकोदरे किं विहितम् = किं कृतम्, किं प्रत्यपकृतमित्यर्थः, यत् = यस्मात्, असमये = अनवसरे, अभिमानप्रदर्शनसमय इत्यर्थः, अभिमानः = गर्वः,

और भी,

मेरे द्वारा बलपूर्वक कौरवों के अन्तःपुरों में पतियों को मार दिये जाने पर (इसीलिए कौरववधुओं के) खुले हुए केशपाशो द्वारा द्रौपदी की क्रोधाग्नि स्पष्टरूप से लगभग शान्त ही हो चुकी है । (अपने) भाई दुःशासन के वक्षःस्थल से बहते हुए शोणित को (मेरे द्वारा) पिया जाता हुआ देखकर क्रोध से (तुम्हारे द्वारा) भीमसेन के प्रति क्या किया गया जो असमय में ही तुम्हारा अभिमान समाप्त हो गया ? ॥ ८ ॥

द्रौपदी–णाह, अवणीदो मे मण्णू जइ पुणो वि सुलहं दंसणं भविस्सदि। (नाथ, अपनीतो मे पुनरपि सुलभं दर्शनं भविष्यति।)

युधिष्ठिरः–कृष्णे, नामङ्गलानि व्याहर्तुमर्हस्यस्मिन्काले। भद्र, ततस्ततः।

पाञ्चालकः—ततश्चैवं भाषमाणेन वृकोदरेणावतीर्य वीर्यक्रोधोद्धतभ्रमितभीषणगदापाणिना सहसेवोल्लङ्घिततीरमुत्सन्ननलिनमाविद्धमूर्छितग्राहमुद्भ्रान्तसमस्तशकुन्तमतिभैरवरवभ्रमितवारिचयमायतमपि तत्सरः समन्तादालोडितम्।

अस्तः = समाप्तः। अपकारिणि मयि शत्रौ जीवति अभिमानिना त्वया प्रत्यपकर्त्तव्यमिति भावः॥ ८॥

टिप्पणी—पाञ्चाल्या इति। कौरवान्तःपुरेषु–अन्तःपुर रनिवास को कहते हैं–"स्त्र्यागारं भूभुजामन्तःपुरं स्यादवरोधनम्। शुद्धान्तश्चावरोधश्च" इत्यमरः। उपशमितप्रायः–बाहुल्य एवं तुल्य अर्थ में 'प्राय' का प्रयोग होता है—"प्रायो बाहुल्यतुल्ययो"रिति विश्वः। अस्तः="असु क्षेपणे" धातु से भाव में क्त प्रत्यय आने पर तथा "अस्य विभाषा" से इट्का निषेध होने पर "अस्तः" सिद्ध हुआ है। क्रोधवह्निः=क्रोधः वह्निरिव, यहाँ पर औपम्यवाची इव पद का लोप होने से लुप्तोपमा अलङ्कार है। कहीं कहीं "प्रोन्मुक्तैः केशपाशैः" के स्थान में "व्यासक्तैः केशपाशैः" यह पाठ–भेद मिलता है। दोनों का भाव एक ही है। पद्य में स्रग्धरा छन्द है॥ ८॥

द्रौपदीति। अपनीतः = दूरीकृतः, मन्युः = क्रोधः, सुलभम् = सुप्राप्यम्।

युधिष्ठिर इति। कृष्णे = द्रौपदि! अमङ्गलानि = अनिष्टसूचकवचनानीत्यर्थः, व्याहर्त्तुम् = भाषितुम्, न, अर्हसि = योग्याऽसि।

पाञ्चालक इति। भाषमाणेन = ब्रुवता, अवतीर्य = सरसि प्रविश्य, वीर्य-

---

द्रौपदी—नाथ! मेरा क्रोध दूर हो जाये यदि पुनः (तुम्हारे) दर्शन सुलभ हो जायें।

युधिष्ठिर—कृष्णे! इस समय अशुभ बातें नहीं बोलनी चाहिए। भद्र! फिर क्या हुआ?

पाञ्चालक—फिर इस प्रकार कहते हुए भीमसेन ने, जिसके हाथ में

युधिष्ठिरः—भद्र, तथाऽपि किं नोत्थितः ?

पाञ्चालकः—देव,

त्यक्त्वोत्थितः सरभसं सरसः स मूल-
मुद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः ।
आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः
क्षीराम्बुधेः सुमथितादिव कालकूटः ॥ ९ ॥

क्रोधोद्धतभ्रमितभीषणगदापाणिना—वीर्यक्रोधाभ्याम् = पराक्रमकोपाभ्याम्, उद्धता = उत्थापिता अतः भ्रमिता = इतस्ततो घूर्णिता भीषणा = भयङ्करी, गदा = एतन्नामकमायुधम् पाणौ=करे यस्य तेन, सहसैव = झटित्येव, उल्लङ्घित-तीरमित्यादिः—सरसि चालोडनक्रियाया मन्वेति । उल्लङ्घिततीरम्=उल्लङ्घितम्= अतिक्रान्तम् तीरम्=तटम् यस्मिन् तत्, उत्सन्ननलिनम्—उत्सन्नानि=उच्छिन्नानि नलिनानि = कमलानि यस्मिन् तत्, आविद्धमूर्च्छितग्राहम्—आविद्धाः = बहिः प्रक्षिप्ताः अतो मूर्च्छिताः = विगतचैतन्याः, ग्राहाः यस्मिन् तत्, उद्भ्रान्तसमस्त-शकुन्तम्—उद्भ्रान्ताः=व्याकुलाः, समस्ताः=सकलाः; शकुन्ताः=पक्षिणः यस्मिन् तत्, अतिभैरवरवभ्रमितवारिचयम्—अतिभैरवेण=अतिभयानकेन रवेण=शब्देन भ्रमितः = सञ्चालितः वारिचयः = जलसमूहो यस्मिन् तद्यथा तथा, आयतम् = दीर्घम्, अपि, सरः = जलाशयः, समन्तात् = सर्वतः, आलोडितम् = मथितम् ।

अन्वयः—सरसः, मूलम्, सरभसम्, त्यक्त्वा, उद्भूतकोपदहनोग्रविष-स्फुलिङ्गः, सः, आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः, सुमथितात्, (सरसः); क्षीराम्बुधेः, कालकूटः, इव, उत्थितः ॥ ९ ॥

वीरता एवं क्रोध के कारण उठाई गई एवं इधर-उधर घुमाई गई भयानक गदा थी, उतरकर उस सुदीर्घ सरोवर को भी सभी ओर से इस प्रकार जोर से मथ डाला कि उसका तट (पानी द्वारा) लाँघ दिया गया, कमल विनष्ट हो गये; ग्राह बाहर फेंक दिये गये तथा मूर्च्छित हो गये, (उसमें रहने वाले) समस्त पक्षी घबरा गये तथा जल राशि अत्यन्त भीषण शब्द के साथ चक्कर खाने लगी ।

युधिष्ठिर—भद्र ! फिर भी (वह) क्या नहीं उठा ?

पाञ्चालक—महाराज !

अच्छी तरह मथे गये क्षीरसागर से कालकूट के समान, भीम की विशाल

युधिष्ठिरः—साधु सुक्षत्रिय, साधु ।

द्रौपदी—पडिवण्णो समरो ण वा (प्रतिपन्नः समरो न वा ।)

पाञ्चालकः—उत्थाय च तस्मात्सलिलाशयात्करयुगलोत्तम्भिततोरणी-

व्याख्या—त्यक्त्वोत्थित इति । सरसः = सरोवरस्य, मूलम् = अन्तस्तलम्, सरभसम् = सवेगम्, त्यक्त्वा = विहाय, उद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः—उद्भूताः = उत्पन्नाः, कोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गाः—कोपः = क्रोधः एव दहनः = अग्निः उग्रविषम् = उत्कलगरलम् इव तस्य स्फुलिङ्गाः = कणाः यस्मात् सः तादृशः, सः = दुर्योधनः, आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः—आयस्तौ = विशालौ, भीमभुजौ = वृकोदरबाहू एव मन्दरः = मन्दरपर्वतः, मन्थनकाष्ठमित्यर्थः, तस्य वेल्लनाभिः = सञ्चालनैः, सुमथितात् = सुविलोडनात्, सरस इति शेषः, क्षीराम्बुधेः = क्षीरसमुद्रात्, कालकूटः = महाविषम्, इव = यथा, उत्थितः = बहिर्निसृतः । यथा क्षीरसागरमथनात्कालकूटो निःसृतस्तथैव सरोवरमथनाद् दुर्योधनो निःसृत इति भावः ।। ९ ।।

टिप्पणी—त्यक्त्वोत्थित इति । क्षीराम्बुधेः कालकूटः—कहीं कहीं "क्षीराम्बुधेः" के स्थान में "क्षीरोदधेः" पाठ है । पौराणिक-कथा के अनुसार देवताओं एवं असुरों ने क्षीरसागर का मन्थन किया था जिसमें मन्दराचल को मथानी एवं वासुकी नाग को उसकी रस्सी के रूप में प्रयुक्त किया था । मन्थन करने पर समुद्र से सर्वप्रथम विष ही निकला था । प्रस्तुत पद्य में सरोवर में समुद्र का तथा भीम की भुजाओं में मन्दराचल का आरोप करने से तथा दुर्योधन को कालकूट से उपमित करने से रूपक तथा उपमा अलङ्कार है । वसन्ततिलका छन्द है ।।९।।

पाञ्चालक इति । सलिलाशयात् = जलाशयात्, उत्थाय = बहिर्निसृत्य,

भुजाओं रूपी मन्दराचल के सञ्चालनों से वह (दुर्योधन), जिसमें से क्रोधाग्निरूपी भयङ्कर विष की चिनगारियाँ निकल रही थी; सरोवर की तलहरी को छोड़कर वेग से उठा ।। ९ ।।

युधिष्ठिर—वाह ! वीरक्षत्रिय, वाह !

द्रौपदी—युद्ध (भी) प्रारम्भ हुआ या नहीं ?

पाञ्चालक—और उस जलाशय से उठकर (निकलकर) दोनों हाथों से

कृतभीमगदः कथयति स्म—'अरे रे मारुते, किं भवतः भयेन प्रलीनं दुर्योधनं मन्यते भवान्? मूढ, अनिहतपाण्डुपुत्रः प्रकाशं लज्जमानो विश्रमितुमध्यवसितवानस्मि पातालम्।' एवं चोक्ते वासुदेवकिरीटिभ्यां द्वावप्यन्तःसलिलं निषिद्धसमरारम्भौ स्थलमुत्तारितौ। आसीनश्च कौरवराजः क्षितितले गदां निक्षिप्य विशीर्णरथसहस्रं निहतकुरुशतगजवाजिनरसहस्रकलेवर-

करयुगलोत्तम्भिततोरणीकृतभीमगदः—करयुगलेन = हस्तद्वयेन, उत्तम्भिता = उत्तोलिता अत एव तोरणीकृता = बहिर्द्वारसदृशीकृता भीमा=भयङ्करी गदा येन सः, कथयति स्म = अकथयत्। मारुते=मरुत्पुत्र भीमसेन! प्रलीनम्=प्रच्छन्नम्। अनिहतपाण्डुपुत्रः—अनिहताः = अविनाशिताः, पाण्डुपुत्राः = पाण्डवाः येन सः, प्रकाशम् = सर्वसमक्षम्, विश्रमितुम् = विश्रामं कर्त्तुम्; पातालम् = नागलोकम्, अध्यवसितवान्=गतवान् अस्मि। अन्तःसलिलम्—सलिलस्य = जलस्य, अन्तः = मध्ये इत्यन्तःसलिलम्, वासुदेवकिरीटिभ्याम् = श्रीकृष्णार्जुनाभ्याम्, निषिद्धसमरारम्भौ— निषिद्धः = निवारितः समरस्य = युद्धस्य, आरम्भः = प्रारम्भः ययोस्तौ, स्थलम्=जलादुपरिस्थानम्, उत्तारितौ=आनीतौ। आसीनः = उपविष्टः, कौरवराजः=दुर्योधनः, क्षितितले = पृथ्वीतले, निःक्षिप्य = संस्थाप्य, विशीर्णरथसहस्रम्—विशीर्णम् = भग्नम् रथानाम् = स्यन्दनानां सहस्रम् यत्र तादृशम्, निहतकुरुशतेत्यादिः—कुरूणां शतं कुरुशतम्, गजवाजिनराणाम् = हस्त्यश्वमानवानाम् सहस्राणि इति गजवाजिनरसहस्राणि, तानि च निहतानि=व्यापादितानि,

उठाइ हुई तथा तोरण बनाई हुई भीषण गदावाला वह कहने लगा—"अरे रे वायुपुत्र! क्या तुम दुर्योधन को भय से छिपा हुआ समझते हो? मूर्ख! पाण्डु के पुत्रों को नहीं मारने के कारण प्रकट रूप से लज्जित होते हुए मैंने पाताल विश्राम लेने के लिए पाताल का आश्रय लिया है।" ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण एवं अर्जुन उन दोनों (भीम एवं दुर्योधन) को जल के भीतर युद्ध करने से रोककर स्थलभाग पर ले आये। तब गदा को भूमि पर फेंककर बैठते हुए कौरवाधिपति ने कौरवों से शून्य रण-भूमि को—जिसमें हजारों रथ टूटे पड़े थे, जिसमें मारे गये सैकड़ों कौरवों, हजारों हाथी-घोड़ों, तथा मनुष्यों के

संमर्दसम्पतितगृध्रकङ्कजम्बूकमुत्सन्नसुयोधनबलमस्मद्वीरमुक्तसिंहनादसंवलिततूर्यघोषममित्रबान्धवमकौरवं रणस्थानमवलोक्यायतमुष्णं च निःश्वसितवान् । ततश्च वृकोदरेणाभिहितम् 'अयि भोः कौरवराज, कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना । मैवं विषादं कृथाः, पर्याप्ताः पाण्डवाः, समरायाहमसहाय' इति ।

तेषां कलेवराणाम् = शरीराणाम् यः सम्मर्दः = सङ्घट्टः तत्र सम्पनिताः = निपतिताः गृध्रकङ्कजम्बूकाः=गृध्रलोहपृष्ठशृगालाः यस्मिन् तत्, एतानि सर्वाणि रणस्थानमित्यस्य विशेषणानि । उत्सन्नसुयोधनवलम्—उत्सन्नम् = विनष्टम्, सुयोधनस्य=दुर्योधनस्य बलम्=सैन्यम् यस्मिन् तत् तादृशम्, अस्मद्वीरमुक्तसिंहनादसंवलिततूर्यघोषम्—अस्मद्वीरैः=अस्माकं सुभटैः मुक्तः = कृतः यः सिंहनादः= सिंहगर्जनम् तेन संवलितः = सम्मिश्रः, तूर्यघोषः = रणभेरीशब्दः, यस्मिन् तत् तादृशम्, अमित्रबान्धवम्—अमित्राणाम=शत्रूणाम् बान्धवाः = स्वजनाः यस्मिन् तत् तादृशम्, अकौरवम्=कौरवविहीनम्, रणस्थानम् = युद्धक्षेत्रम्, आयतम् = दीर्घम्, निःश्वसितवान् = श्वासं गृहीतवान् । बन्धुनाशदर्शनमन्युना = बान्धवविनाशावलोकनोद्भूतक्रोधेन, कृतम् = व्यर्थम् ।

टिप्पणी—तोरणीकृत—तोरण बाहरी दरवाजे (गेट) को कहते हैं—"तोरणोऽस्त्री वहिर्द्वारमि"त्यमरः । कथयति स्म—यहाँ पर 'स्म' के योग में भूतकाल में "लट् स्मे" सूत्र से लट् आया है । अध्यवसितवान् = यद्यपि "उत्साहोऽध्यवसायः स्यात्" इस अमरकोशोक्ति के अनुसार अधि अव पूर्वक वस् धातु का अर्थ उत्साह होता है पर धातुओं के अनेक अर्थ होने से (धातूनामनेकार्थत्वात्) यहाँ पर गमन अर्थ ही अभिप्रेत है । गृध्रकङ्क—कङ्क एक पक्षी

शरीरों की ढेर पर गीध, कङ्क, सियार आदि गिर रहे थे, जहाँ से दुर्योधन की सेना भाग चुकी थी, जहाँ हमारे वीरों के सिंहगर्जन से रण-भेरी का शब्द मिश्रित हो रहा था, और जहाँ (केवल) शत्रु के मित्र ही वर्त्तमान थे,—देखकर लम्बी एवं गरम सांस ली । उसके बाद भीम ने कहा—"अरे ओ कौरवराज ! बन्धुओं के विनाश को देखकर क्रोध करना व्यर्थ है । इस प्रकार ग्लानि मत करो कि पाण्डव तो बहुत हैं और मैं युद्ध में असहाय हूँ ।"

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन ! ।
दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥ १० ॥

इत्थं श्रुत्वाऽसूयान्वितां दृष्टिं कुमारयोर्निक्षिप्योक्तवान्धार्तराष्ट्रः ।

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम ।
अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥ ११ ॥

होता है जिसकी पीठ बहुत मजबूत होती है इसलिए उसे लोहपृष्ठ भी कहते हैं । सफेद चील को ही कङ्क या लोहपृष्ठ कहा जाता है—"लोहपृष्ठस्तु कङ्कः स्यादि"त्यमरः । मन्युना—"मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि" इत्यमरः ।

अन्वयः—(हे) सुयोधन ! अस्माकम्, पञ्चानाम्, (मध्ये), यम्, सुयोधम्, मन्यसे, तेन, (सह), दंशितस्य, आत्तशस्त्रस्य, ते, रणोत्सवः, अस्तु ॥ १० ॥

व्याख्या—पञ्चानामिति । (हे) सुयोधन = हे दुर्योधन ! अस्माकम् = पाण्डवानाम्, पञ्चानाम् = युधिष्ठिरभीमार्जुननकुलसहदेवेतिपञ्चसंख्याकानाम्, मध्ये इति शेषः, यम् = यं जनम्, सुयोधम् = सुखेन योद्धं योग्यम्, मन्यसे = अवगच्छसि, तेन = तेन जनेन (सह), दंशितस्य = सन्नद्धस्य, धृतकवचस्येत्यर्थः, आत्तशस्त्रस्य=धृतायुधस्य, ते=तव, रणोत्सवः=समरोत्सवः, अस्तु=भवतु ॥१०॥

टिप्पणी—पञ्चानामिति दंशितस्य—कवचयुक्त व्यक्ति के लिए दंशित शब्द का प्रयोग होता है—"सन्नद्धो वर्मितः सज्जो दंशितो व्यूटकङ्कटः" इत्यमरः । प्रस्तुत पद्य में निरङ्गरूपकालङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है । छन्द का लक्षण है—"युजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ १० ॥

इत्थमिति । असूयान्विताम् = असूया = परगुणेष्वपि दोषारोपः, तया अन्विताम् = युक्ताम्, कुमारयोः = भीमार्जुनयोः ।

अन्वयः—कर्णदुःशासनवधात्, मम, युवाम्, तुल्यौ, एव, (तथापि), अप्रियः, अपि, प्रियसाहसः, त्वम्, एव, योद्धुम्, प्रियः ॥ ११ ॥

हे दुर्योधन ! हम पाँचो के बीच जिसे तुम युद्ध के लिए उपयुक्त समझते हो उसीके साथ कवच बाँधे हुए तथा शस्त्र धारण किये हुए तुम्हारा युद्धरूपी उत्सव हो ॥ १० ॥

ऐसा सुनकर दोनों कुमारों पर ईर्ष्याभरी दृष्टि डालकर धृतराष्ट्रपुत्र ने कहा—कर्ण एवं दुःशासन के वध के कारण (यद्यपि) तुम दोनों मेरे लिए समान

इत्युत्थाय च परस्परक्रोधाक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्तावितघोरसङ्ग्रामौ विचित्रविभ्रमभ्रमितगदापरिघभासुरभुजदण्डौ मण्डलैर्विचरितुमारब्धौ भीमदुर्योधनौ। अहं च देवेन चक्रपाणिना देवसकाशमनुप्रेषितः। आह च देवो देवकीनन्दनः। अपर्युषितप्रतिज्ञे च मारुतौ प्रनष्टे कौरवराजे महाना-

व्याख्या—कर्णेति। कर्णदुःशासनवधात्—राधेयदुःशासनयोः वधात् = हननात्, मम = दुर्योधनस्य, कृते इत्यर्थः, युवाम् = भीमार्जुनौ, तुल्यौ = समौ, एव, भीमोऽनुजस्य हन्ता अर्जुनश्च मित्रस्यातः उभावपि युवाम् शत्रू एवेति भावः। (तथापि) अप्रियः = शत्रुः, अपि यातः, प्रियसाहसः = प्रियं साहसं यस्य सः, त्वम् = भीमः, एव, योद्धुम् = युद्धाय, प्रियः = इष्टः असि ॥ ११ ॥

टिप्पणी—कर्णेति। प्रस्तुत पद्य में विरोधाभास अलङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ ११ ॥

इति = एवमुक्त्वा, परस्परेत्यादिः—परस्परयोः = अन्योन्ययोः, क्रोधेन=कोपेन यः आक्षेपः = तिरस्कारः यस्मिन् तादृशो यः परुषः = कर्कशः वाक्कलहः = वाणीविग्रहः तेन प्रस्तावितः = प्रस्तुतः घोरः = भयङ्करः सङ्ग्रामः = समरः याभ्यां तौ, विचित्रेत्यादिः—विचित्रैः = आश्चर्यजनकैः, विभ्रमैः = विलासैः, भ्रमितः = सञ्चालितः यः गदापरिघः = परिघनामकायुधसदृशी गदा, तेन भासुरौ=दीप्तौ भुजदण्डौ=बाहुदण्डौ, दण्डसदृशौ बाहू इत्यर्थः, ययोस्तौ, मण्डलैः= चक्राकारैः, विचरितुम् = भ्रमितुम्। अपर्युषितप्रतिज्ञे—अपर्युषिता = तद्दिन एव

ही हो (फिर भी) शत्रु होते हुए भी साहसी होने के कारण तुम (ही) युद्ध के लिए इष्ट हो। ११ ॥

यह कहकर और उठकर भीम और दुर्योधन, जिन्होंने परस्पर क्रोध के कारण तिरस्कारयुक्त कर्कश वाणी से भयानक सङ्ग्राम प्रारम्भ कर दिया था और जिनके बाहुदण्ड आश्चर्यजनक चेष्टाओं के साथ घुमाई गई परिघसदृश गदाओं से चमक रहे थे, मण्डल बनाकर घूमने लगे और मैं महाराज के पास हाथ में चक्र धारण किये हुए श्रीकृष्ण के द्वारा भेज दिया गया। भगवान् देवकी-पुत्र ने कहा है—"भीमसेन के उसी दिन पूरी की जानेवाली प्रतिज्ञा कर लेने पर और कौरवराज के लुप्त हो जाने पर हमे बहुत खेद था। लेकिन अब भीम द्वारा

सीन्नो विषादः। सम्प्रति पुनर्भीमसेनेनासादिते सुयोधने निष्कण्टकीभूतं भुवनतलं परिकलयतु भवान्। अभ्युदयोचिताश्चानवरतमङ्गलसमारम्भाः प्रवर्त्यन्ताम्। कृतं सन्देहेन।

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते
कृष्णाऽत्यन्तचिरोज्झिते च कवरीबन्धे करोतु क्षणम्।
रामे घोरकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमाच्छेदिनि
क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः॥ १२॥

सम्पादनीया प्रतिज्ञा = प्रणः, दुर्योधनवधरूपेति भावः यस्य तस्मिन्, मारुतौ = भीमसेने, नः = अस्माकम्। निष्कण्टकीभूतम् = शत्रुविहीनमित्यर्थः, परिकलयतु = जानातु। अभ्युदयोचिताः—अभ्युदयाय = उत्कर्षाय उचिताः = अनुरूपाः, अनवरत-मङ्गलसमारम्भाः = सततं कल्याणप्रारम्भाः।

अन्वयः—रत्नकलशाः, ते, राज्याभिषेकाय, सलिलेन, पूर्यन्ताम्; चिरोज्झिते, कबरीबन्धे, च, कृष्णा, क्षणम्, करोतु; घोरकुठारभासुरकरे, क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि, रामे, च, वृकोदरे, आजौ, परिपतति (सति), कुतः, संशयः? ॥ १२ ॥

व्याख्या—पूर्यन्तामिति रत्नकलशाः = मणिघटाः, ते = तव, राज्याभिषेकाय = राज्यसिंहासने ऽभिषेचनाय, सलिलेन = जलेन, पूर्यन्ताम् = भ्रियन्ताम्; चिरोज्झिते—चिरात् = बहुकालात् उज्झिते = परित्यक्ते, कबरीबन्धे = केशवेश-संयमने, च, कृष्णा = द्रौपदी, क्षणम् = उत्सवम्, करोतु = सम्पादयतु, घोर-कुठारभासुरकरे—घोरः = भीषणः यः कुठारः तेन भासुरः = दीप्तः करः = हस्तः

सुयोधन को प्राप्त कर (पकड़) लेने पर पृथ्वीतल को आप निष्कण्टक (शत्रुहीन) समझें और अभ्युदय के अनुरूप माङ्गलिक कर्म का अखण्ड प्रवर्त्तन करें। (अब) संशय मत करें।

तुम्हारे राज्याभिषेक के लिए मणि-जटित कलश जल से भरे जायें; द्रौपदी सुदीर्घकाल से छोड़े गये केशपाश के बन्धन का उत्सव मनावे; भीषण कुठार से चमकते हुए हाथ वाले तथा क्षत्रियरूपी वृक्षों को काटनेवाले परशुराम के एवं क्रोध से मतवाले भीमसेन के युद्ध में उतर जाने पर संदेह कहाँ से (हो सकता है)? ॥ १२ ॥

द्रौपदी—(सबाष्पम् ।) जंदेवो त्तिहुअणणाहो भणादि तं कहं अण्णहा चविस्सदि । (यद्देवस्त्रिभुवननाथो भणति तत्कथमन्यथा भविष्यसि ।)

पाञ्चालकः—न केवलमियमाशीः, असुरनिषूदनस्यादेशोऽपि ।

युधिष्ठिरः—को ही नाम भगवता सन्दिष्टं विकल्पमपि ? कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य ।)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

यस्य तस्मिन्, क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि–क्षत्राः = राजन्याः एव द्रुमाः = वृक्षाः तान् छेत्तुम् = कर्तितुं शीलमस्य तस्मिन्, परशुरामेण त्रिःसप्तकृत्वः क्षत्रियाणां संहारः कृत इति भावः । रामे = परशुरामे, च = तथा, क्रोधान्धे = क्रोधेन = कोपेन अन्धे = मत्ते, वृकोदरे = भीमसेने, आजौ = समरे, परिपतति = अवतपति सति, कुतः = कस्माद्धेतोः, संशयः = सन्देहः, ? भीमसेनस्य विजये सन्देहो न विधेय इति भावः ।। १२ ।।

टिप्पणी —पूर्यन्तामिति । रत्नकलशाः–"रत्नजटिताः कलशाः", यहाँ पर मध्यमपद लोपी समास हुआ है । कवरी बन्धे–बालों में पटिया संवारने को कवरी या केशवेश कहते हैं–"कवरी केशवेशः" इत्यमरः । क्षणम्–क्षण शब्द का प्रयोग कालविशेष एवं उत्सव–दोनों ही अर्थों में किया जाता है—"कालविशेषोत्सवयोः क्षणः" इत्यमरः । यहाँ पर उत्सव अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है । पद्य में दीपकालङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।। १२ ।।

द्रौपदी—(आँसुओं के साथ) त्रिलोकीनाथ भगवान् जो कहते हैं वह अन्यथा कैसे होगा ?

पाञ्चालक—यह केवल आशीर्वाद ही नहीं हैं अपितु राक्षस–रिपु का आदेश भी है ।

युधिष्ठिर—भगवान् के सन्देश में कौन तर्क–वितर्क कर सकता है ? अरे यहाँ कोई है ?

(प्रवेश करके ।)

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दें ।

युधिष्ठिरः—देवस्य देवकीनन्दनस्य बहुमानाद्वत्सस्य मे विजयमङ्गलाय प्रवर्त्यन्तां तदुचिताः समारम्भाः।

कञ्चुकी—यथाऽऽज्ञापयति देवः। (सोत्साहं परिक्रम्य) भो भोः संविधातॄणां पुरस्सराः, यथाप्रधानमन्तर्वेश्मिका दौवारिकाश्च, एष खलु भुजबलपरिक्षेपोत्तीर्णकौरवपरिभवसागरस्य निर्व्यूढदुर्वहप्रतिज्ञाभारस्य सुयोधनानुजशतोन्मूलनप्रभञ्जनस्य दुःशासनोरःस्थलविदलननरसिंहस्य दुर्योधनोरुस्तम्भभङ्गविनिश्चितविजयस्य बलिनः प्राभञ्जनेर्वृकोदरस्य स्नेहपक्ष-

कञ्चुकीति। संविधातॄणाम् = पुरोहितादीनाम्, पुरस्सराः = प्रमुखाः, अन्तर्वेश्मिकाः=अन्तःपुरकर्मचारिणः, द्वोपारिकाः = द्वाररक्षकाः, भुजबलेत्यादिः= परिक्षिप्यते = सन्तीर्यतेऽनेनेति परिक्षेपः = जलयानम्, भुजबलम् = बाहुबलम् एव परिक्षेपः तेन उत्तीर्णः = पारंकृतः कौरवैः परिभवः = तिरस्कारः एव सागरः = समुद्रः येन सः तस्य, निर्व्यूढदुर्वहप्रतिज्ञाभारस्य—निर्व्यूढः=निःशेषेण व्यूढः = गृहीतः, दुर्वहः = अतिकठिनः प्रतिज्ञाभारः = दुर्योधनोरुभङ्गरूपप्रणभारः येन तस्य, सुयोधनेत्यादिः—सुयोधनस्य यदनुजशतं तस्य उन्मूलने = उत्पाटने, विनाशने इत्यर्थः, प्रभञ्जनः = वायुरिव तस्य, दुःशासनेत्यादिः—दुःशासनस्य उरःस्थलम् = वक्षःस्थलम् तस्य विदलने = विदारणे नरसिंहः = नृसिंहतुल्य इत्यर्थः तस्य, दुर्योधनेत्यादिः—दुर्योधनस्य उरुस्तम्भङ्गेन = जङ्घास्तम्भभञ्जनेन विनिश्चितः = सुनिश्चितः विजयः = जयः यस्य तस्य, बलिनः = शक्तिमतः,

युधिष्ठिर—भगवान् देवकी पुत्र के प्रति अत्यधिक सम्मान के कारण मेरे वत्स (भीमसेन) के विजय-मङ्गल के लिए तदनुरूप समारोह प्रारम्भ कर दिये जायें।

कञ्चुकी—महाराज जैसी आज्ञा दें। (उत्साह के साथ घूमकर) हे विधिविधानों के आचार्य, श्रेष्ठता के क्रम से अन्तःपुर (रनिवास) के कर्मचारियो तथा द्वारपालो ! यह महाराज युधिष्ठिर स्नेहयुक्त मन से शक्तिशाली वायुपुत्र भीमसेन का, जिसने बाहुबलरूपी जलयान से कौरवों द्वारा किये गये अपमानरूपी समुद्र को पार कर लिया है, जो अत्यन्त कठिन प्रतिज्ञा को वहन किये हुए हैं, जो दुर्योधन के सौ भाइयों को उखाड़ने (मारने) में वायुसदृश है, जो दुःशासन

पातिना मनसा मङ्गलानि कर्तुमाज्ञापयति देवो युधिष्ठिरः (आकाशे ।) किं ब्रूथ—'सर्वतोऽधिकतरमपि प्रवृत्तं किं नालोकयसि' इति । साधु पुत्रकाः साधु । अनुक्तहितकारिताहि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम् ।

युधिष्ठिरः—आर्य जयन्धर !

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—गच्छ, प्रियख्यापकं पाञ्चालकं पारितोषिकेण परितोषय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः (इति पाञ्चालकेन सह निष्क्रान्तः ।)

द्रौपदी—महाराअ, किंणिमित्तं उण णाहभीमसेणेण सो दुराआरो भणिदो—'वञ्चाण वि अम्हाणं मज्झे जेण दे रोअदि तेण सह दे संगामौ

प्राभञ्जनेः = पवनपुत्रस्य, भीमस्येत्यर्थः, मङ्गलानि = शुभानि । अनुक्तहित-कारिता—न उक्तम् = न कथितमित्यनुक्तम् यत् हितम् = कल्याणं तत्करोतीति अनुक्तहितकारी तस्य भावः ।

टिप्पणी—प्राभञ्जनेः—प्रभञ्जनस्यापत्यं पुमान प्राभञ्जनिः, तस्य । पुत्रकाः—यहाँ पर पुत्र शब्द से अनुकम्पा अर्थ में क प्रत्यय हुआ है ।

युधिष्ठिर इति । प्रियख्यापकम्=इष्टनिवेदकम्, पारितोषिकेण=पुरस्कारेण,

---

के वक्षःस्थल को फाड़ने में नरसिंह के समान है तथा दुर्योधन की जङ्घा को तोड़ने से जिसकी विजय सुनिश्चित है, मङ्गलमहोत्सव करने का आदेश दे रहे हैं । (आकाश की ओर देखकर) क्या कह रहे हो—"सभी ओर अत्यधिक किये गये मङ्गलकार्य को क्या नहीं देख रहे हो ?" वाह, पुत्रो, वाह ! बिना कहे ही हित करना हृदय की स्वामिभक्ति को द्योतित करता है ।

युधिष्ठिर—मान्य जयन्धर !

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दें ।

युधिष्ठिर—जाओ, प्रिय सन्देश देनेवाले पाञ्चालक को पुरस्कार देकर सन्तुष्ट करो ।

कञ्चुकी—महाराज जो आज्ञा दें । (यह कहकर पाञ्चालक के साथ निकल जाता है ।)

द्रौपदी—महाराज ! किसलिए स्वामी भीमसेन ने उस दुराचारी से कहा—

होदु' त्ति। जइ मद्दीसुदाणं एक्कदरेण सह संगामो तेण पत्थिदो भवे तदो अच्चाहिदं भवे। (महाराज, किंनिमित्तं पुनर्नाथ भीमसेनेन स दुराचारो भणितः—पञ्चानामप्यस्माकं मध्ये येन ते रोचते तेन सह ते सङ्ग्रामो भवतु' इति। यदि माद्रीसुतयोरेकतरेण सह सङ्ग्रामस्तेन प्रार्थितो भवेत्ततोऽत्याहितं भवेत्।)

युधिष्ठिरः—कृष्णे, एवं मन्यते जरासन्धघाती। हतसकलसुहृद्बन्धुवीरानुजराजन्यासुकृतवर्माश्वत्थामशेषास्वेकादशस्वक्षौहिणीष्वबान्धवः शरीरमात्रविभवः कदाचिदुत्सृष्टनिजाभिमानो धार्तराष्ट्रः परित्यजेदायुधं तपोवनं वा व्रजेत्सन्धिं वा पितृमुखेन याचेत्, एवं सति सुदूरमतिक्रान्तः प्रतिज्ञाभारो भवेत्सकलरिपुजस्येति। समरं प्रतिपत्तुं पञ्चानामपि पाण्ड-

---

द्रौपदीति। माद्रीसुतयोः = माद्रीपुत्रयोः, नकुलसहदेवयोरित्यर्थः, एकतरेण= अन्यतरेण, प्रार्थितः = याचितः, अत्याहितम् = महाभीतिः।

टिप्पणी—अत्याहितम् = अत्याहितं महाभीतिरि"त्यमरः।

युधिष्ठिर इति। जरासन्धघाती=जरासन्धनामकराजस्य हन्ता, हतसकलेत्यादिः—हताः = मारिताः, सकलाः = समस्ताः सुहृदः = मित्राणि बन्धवः = स्वजनाः वीराः = शूराः अनुजाः = लघुभ्रातरः राजन्याः = क्षत्रियाः यासां तासु, अबान्धवः = बन्धुविहीनः, शरीरमात्रविभवः—शरीरमात्रम्=देहमात्रम् विभवः= ऐश्वर्यम् यस्य सः, उत्सृष्टनिजाभिमानः—उत्सृष्टः = उज्झितः निजस्य = स्वस्य अभिमानः = अहङ्कारः येन सः।

"हम पाँचो के बीच जिससे तुम्हारी इच्छा हो उससे ही तुम्हारा युद्ध हो।" यदि वह माद्रीपुत्रों (नकुल एवं सहदेव) में से किसी एक के साथ युद्ध करने की याचना कर दे तब तो महान् अनर्थ हो जाय।

युधिष्ठिर—कृष्णे! जरासन्ध को मारने वाले (भीमसेन) का ऐसा विचार होगा—ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं में—जिनके समस्त मित्र, बन्धु, वीर, अनुज और क्षत्रिय मार दिये गये हैं, केवल कृपाचार्य, कृतवर्मा एवं अश्वत्थामा ही जिनमें बच रहे हैं, बान्धवहीन धृतराष्ट्रपुत्र, जिसका केवल शरीररूपी ऐश्वर्य बच रहा है, कभी अपने अभिमान को छोड़कर अस्त्र का परित्याग कर दे अथवा तपोवन को चला जाये या पिता के मुख से सन्धि की प्रार्थना करने लगे। ऐसा होने पर समस्त शत्रुओं को जीतने की प्रतिज्ञा का भार बहुत दूर चला जायेगा।

वानामेकस्यापि नैव क्षमः सुयोधनः शङ्के चाहं गदायुद्धं वृकोदरस्यैवाऽनेन। अयि सुक्षत्रिये, पश्य—

क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति सदृशः सत्यं रणे मारुतेः
कौरव्ये कृतहस्तता पुनरियं देवे यथा सीरिणि।
स्वस्त्यस्तूद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय वत्साय मे
शङ्के तस्य सुयोधनेन समरं नैवेतरेषामहम्॥ १३॥

अन्वयः—सत्यम्, रणे, क्रोधोद्गूर्णगदस्य, मारुतेः, सदृशः, (अन्यः), न, अस्ति; पुनः, देवे, सीरिणि, यथा, इयम्, कृतहस्तता, कौरव्ये, (वर्तते); उद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय, मे, वत्साय, स्वस्ति, अस्तु, अहम्, सुयोधनेन, तस्य, समरम्, शङ्के, इतरेषाम्, न एव॥ १३॥

व्याख्या—क्रोधोद्गूर्णेति। सत्यम्=वस्तुतः, रणे=युद्धे, क्रोधोद्गूर्णगदस्य—क्रोधेन = कोपेन उद्‌गूर्णा = उद्यमिता गदा येन तस्य, मारुतेः = वायुपुत्रस्य, भीमस्येत्यर्थः, सदृशः=तुल्यः, (अन्यः=इतरः) न=नहि, अस्ति=वर्तते; पुनः=किन्तु, देवे = भगवति, सीरिणि = बलरामे, यथा = यादृशी, इयम् = एषा, कृतहस्तता—गदासञ्चालने हस्तकौशलमित्यर्थः, कौरव्ये = सुयोधने, वर्तत इति शेषः, उद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय—उद्धतः = उद्दण्डः यो धार्तराष्ट्रः = दुर्योधनः स एव नलिनी = कमलिनी तस्यै नागः = हस्ती, तस्मै, मे = मम, युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, वत्साय = प्रियानुजाय भीमाय, स्वस्ति = कल्याणम्, अस्तु = भवतु, अहम् = युधिष्ठिरः, सुयोधनेन = दुर्योधनेन, तस्य = भीमसेनस्य, समरम् = युद्धम्

सुयोधन पाँचो पाण्डवों में से किसी एक के भी साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं है और मुझे इसके साथ भीमसेन के ही गदायुद्ध की आशङ्का है। अरी वीर क्षत्रिये ! देखो—

वस्तुतः क्रोध से उठाई गई गदावाले वायुपुत्र (भीमसेन) के समान (दूसरा कोई) नहीं है लेकिन भगवान् बलराम जैसा हस्तकौशल दुर्योधन में (है)। उद्दण्डधृतराष्ट्र-पुत्ररूपी कमलिनी के लिए हाथी के समान मेरे प्रिय अनुज का कल्याण हो। मैं दुर्योधन के साथ उसके ही युद्ध की आशङ्का करता हूँ, दूसरों के (युद्ध की) नहीं॥ १३॥

(नेपथ्ये)

तृषितोऽस्मि भो तृषितोऽस्मि सम्भावयतु कश्चित्सलिलच्छायासम्प्रदानेन माम्।

युधिष्ठिरः—(आकर्ण्य ।) कः कोऽत्र भोः।

(प्रविश्य ।)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः

युधिष्ठिरः—ज्ञायतां किमेतत्।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रम्य, पुनःप्रविश्य ।) देव क्षुण्मानतिथिरुपस्थितः।

शङ्के = तर्कयामि, इतरेषाम् = अन्येषाम्, अस्मदादीनामिति भावः, नैव=नहि ।१३।

टिप्पणी—क्रोधोद्गूर्णेति । उद्गूर्ण–"उद्गूर्णोद्यते" इत्यमरः । सीरिणि–सीरः = हलम् अस्ति अस्येति सीरो तस्मिन् । सीर हल को कहते हैं, उसे धारण करने के कारण बलराम को सीरी कहा जाता है । प्रस्तुत पद्य के द्वितीय चरण में पूर्णोपमा तथा तृतीय चरण में रूपक अलङ्कार है । छन्द शार्दूलविक्रीडित है।१३।

तृषितः = पिपासितः, सलिलच्छायासम्प्रदानेन—सलिलम् = जलम्, च छाया च, तयोः सम्प्रदानेन, सम्भावयतु = सान्त्वयतु ।

कञ्चुकीति । क्षुण्मान् = बुभुक्षितः, अतिथिः = प्राघुणः ।

टिप्पणी–अतिथिः–अतिथि का पर्यायवाची प्राघुण भी है । यही प्राघुण शब्द "पाहुन" के रूप में विकसित हुआ है । "प्राघुणस्त्वतिथिर्द्वयोरि"ति त्रिकाण्डशेषः ।

(नेपथ्य में)

प्यासा हूँ, अरे मैं प्यासा हूँ । कोई जल और छाया प्रदान करके मुझे सन्तुष्ट करें ।

युधिष्ठिर—(सुनकर) कौन ? कौन यहाँ है ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी— महाराज आज्ञा दें ।

युधिष्ठिर—पता लगाओ, यह क्या है ?

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा । (यह कहकर निकलकर पुनः प्रवेश करके) महाराज ! (कोई) भूखा अतिथि आया है ।

युधिष्ठिरः—शीघ्रं प्रवेशय।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति (इति निष्क्रान्तः।)

(ततः प्रविशति मुनिवेषधारी चार्वाको नाम राक्षसः।)

राक्षसः—(आत्मगतम्।) एषोऽपि चार्वाको नाम राक्षसः, सुयोधनस्य मित्रं पाण्डवान्वञ्चयितुं भ्रमामि। (प्रकाशम्।) तृषितोऽस्मि। सम्भावयतु मां कश्चिज्जलच्छायाप्रदानेन। (इति राज्ञः समीपमुपसर्पति।)

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति।)

युधिष्ठिर—मुने अभिवादये।

राक्षसः—अकालोऽयं समुदाचारस्य जलप्रदानेन सम्भावयतु माम्।

युधिष्ठिरः—मुने इदमासनम्। उपविश्यताम्।

राक्षसः—(उपविश्य।) ननु भवताऽपि क्रियतामासनपरिग्रहः।

राक्षस इति। वञ्चयितुम् = छलयितुम्।

समुदाचारस्य = शिष्टाचारस्य, अकालः = अनवसरः।

आसनपरिग्रहः = आसनग्रहणम्।

युधिष्ठिर—जल्दी अन्दर लिवा लाओ।

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा। (यह कहकर निकल जाता है।)

(तत्पश्चात् मुनिवेषधारी चार्वाक नामक राक्षस प्रवेश करता है।)

राक्षस—(स्वगत) यह मैं सुयोधन का मित्र चार्वाक नामक राक्षस पाण्डवों को ठगने (धोखा देने) के लिए घूम रहा हूँ। (प्रकट रूप से) मैं प्यासा हूँ। कोई मुझे जल और छाया देकर सन्तुष्ट करें। (यह कहकर राजा के समीप जाता है।)

(सब लोग उठ खड़े होते हैं।)

युधिष्ठिर—मुने! मैं अभिवादन करता हूँ।

राक्षस—यह शिष्टाचार का अवसर नहीं है। मुझे जल देकर सन्तुष्ट करें।

युधिष्ठिर—मुने! यह आसन है। बैठा जाय।

राक्षस—(बैठकर) अच्छा, आप भी आसन ग्रहण करें।

युधिष्ठिरः—(उपविश्य ।) कः कोऽत्र भोः, सलिलमुपनय ।

(प्रविश्य गृहीतभृङ्गारः ।)

कञ्चुकी—(उपसृत्य ।) महाराज शिशिरसुरभिसलिलसंपूर्णोऽयं भृङ्गारः पानभाजनं चेदम् ।

युधिष्ठिरः—मुने, निर्वर्त्यतामुदन्याप्रतीकारः ।

राक्षसः—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृशन्विचिन्त्य ।) भोः, क्षत्रियस्त्वमिति मन्ये

युधिष्ठिरः—सम्यग्वेदी भवान् ।

राक्षसः—सुलभश्च स्वजनविनाशः सङ्ग्रामेषु प्रतिदिनमतो नादेयं

गृहीतभृङ्गारः—गृहीतः = धृतः भृङ्गारः = कनकालुका, सुवर्णकृतजलपात्रविशेषः येन सः ।

कञ्चुकीति । शिशिरसुरभिसलिलसम्पूर्णः—शीतलसुगन्धिजलभरितः, पानभाजनम् = लघुजलपात्रम् ।

युधिष्ठिर इति । निवर्त्यताम् = सम्पाद्यताम्, उदन्याप्रतीकारः–उदन्यायाः= पिपासायाः प्रतीकारः = उपशमः ।

राक्षस इति । प्रक्षाल्य = जलेन संशोध्य, उदस्पृशन् = आचमनं कुर्वन्, मन्ये = तर्कयामि ।

युधिष्ठिर इति । सम्यग्वेदी = यथार्थज्ञाता ।

राक्षस इति । सुलभः = स्वाभाविकः, स्वजनविनाशः = बान्धवविनाशः,

युधिष्ठिर—(बैठकर) कौन है यहाँ ? जल लाओ ।

(सुराही लिए प्रवेश करके)

कञ्चुकी—(समीप जाकर) महाराज ! ठण्डे एवं सुगन्धित जल से भरा हुआ स्वर्णपात्र और यह गिलास है ।

युधिष्ठिर—मुने ! प्यास शान्त करें ।

राक्षस—(पैर धोकर और आचमन करते हुए सोचकर) अरे ! मैं समझता हूँ कि आप क्षत्रिय हैं ।

युधिष्ठिर—आप ठीक समझ रहे हैं ।

राक्षस—युद्धों में प्रतिदिन स्वजनों की मृत्यु स्वाभाविक है अतः आप

भवद्भ्यो जलादिकम्। भवतु। छाययैवानया सरस्वतीशिशिरतरङ्गस्पृशा मरुता चानेन। विगतक्लमो भविष्यामि।

द्रौपदी—बुद्धिमदिए, बीएहि महेसि इमिणा तालविन्तेण (बुद्धिमतिके, वीजय महर्षिमेतेन तालवृन्तेन।)

(चेटी तथा करोति)

राक्षसः—भवति, अनुचितोऽयमस्मासु समुदाचारः।

नादेयम् = न = नहि, आदेयम् = ग्राह्यम्। सरस्वतीशिशिरतरङ्गस्पृशा—सरस्वत्याः = एतन्नामकनद्याः ये शिशिराः = शीतलाः, तरङ्गाः = वीचयः तान् स्पृशतीति तेन, मरुता = पवनेन, विगतक्लमः—विगतः = दूरीभूतः, क्लमः = श्रमः यस्य सः।

टिप्पणी—भृङ्गारः—स्वर्णनिर्मित जलपात्र (सुराही आदि) को भृङ्गार कहते हैं—"भृङ्गार कनकालुका" इत्यमरः। उदन्या—"उदन्या तु पिपासा तृट्" इत्यमरः। "उदकस्येच्छा" इस अर्थ में उदक शब्द से "अशनायोदन्याधनाया" इत्यादि सूत्र से निपातनात् क्यच् प्रत्यय तथा उदक को उदन् आदेश करने पर उदन्या सिद्ध हुआ है। सरस्वतीशिशिरतरङ्गस्पृशा—यहाँ पर स्पृश् धातु से 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' से क्विन् प्रत्यय करने पर तृतीया में "स्पृशा" रूप सिद्ध हुआ है। शिशिर शब्द ऋतु—विशेष एवं शीतल–दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है—"शिशिरः स्यादृतोर्भेदे तुषारे शीतलेऽन्यवदि"ति विश्वः। राक्षसः—अनुचितोऽयम्—स्त्री के द्वारा ऋषि-मुनि की सेवा उचित नहीं है इसीलिए राक्षस ने चेटी द्वारा पंखा झलने को अनुचित कहा है।

द्रौपदीति। तालवृन्तेन = तालव्यजनेन, महर्षिम् = महामुनिम्, वीजय= व्यजनं कुरु।

लोगों से जल आदि नहीं ग्रहण करना चाहिए। अच्छा, इस छाया से ही और सरस्वती नदी की शीतल तरङ्गों को स्पर्श करनेवाली इस हवा से अपने श्रम को दूर करूँगा।

द्रौपदी—बुद्धिमतिके ! इस ताड़ के पखे से महामुनि को हवा करो।

(चेटी वैसा ही करती है।)

राक्षस—माननीये ! हमलोगों के प्रति यह शिष्टाचार उचित नहीं है।

युधिष्ठिरः—मुने, कथय कथमेवं भवान्परिश्रान्तः।

राक्षसः—मुनिजनसुलभेन कौतूहलेन तत्रभवता महाक्षत्रियाणां द्वन्द्व-युद्धमवलोकयितुं पर्यटामि समस्तपञ्चकम्। अद्य तु बलवत्तया शरदातपस्यापर्याप्तमेवावलोक्य गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयोरागतोऽस्मि।

(सर्वे विषादं नाटयन्ति।)

कञ्चुकी—मुने, न खल्वेवम्। भीमसुयोधनयोरिति कथय।

राक्षसः—आः, अविदितवृत्तान्त एव कथं मामाक्षिपसि।

युधिष्ठिरः—महर्षे, कथय कथय।

राक्षसः—क्षणमात्रं विश्रस्य सर्वं कथयामि भवतो न पुनरस्य वृद्धस्य।

युधिष्ठिरः—कथय किमर्जुनसुयोधनयोरिति।

राक्षस इति। मुनिजनसुलभेन—ऋषिजनसामान्येन, कौतूहलेन = कौतुकेन; औत्सुक्येनेत्यर्थः, द्वन्द्वयुद्धम् = युगलसमरम्, पर्यटामि = भ्रमामि। शरदातपस्य= शरत्कालिकप्रकाशस्य, बलवत्तया = प्रखरतया, अपर्याप्तम् = अपूर्णम्।

राक्षस इति। अविदितवृत्तान्त—अविदितः = अविज्ञातः, वृत्तान्तः=समाचारो येन सः, आक्षिपसि = वितथवादिनं कथयसि।

युधिष्ठिर—मुने! कहिये, आप इस प्रकार कैसे थक गये?

राक्षस—मुनि जन सुलभ उत्सुकता के कारण मैं सम्माननीय महाक्षत्रियों का द्वन्द्वयुद्ध देखने के लिए समन्तपञ्चक में घूम रहा हूँ। आज तो शरद ऋतु की धूप की प्रखरता के कारण अर्जुन और सुयोधन के गदायुद्ध को अधूरा ही देखकर आया हूँ।

(सभी लोग विषाद का नाट्य करते हैं।)

कञ्चुकी—मुने! ऐसा नहीं है। "भीम और सुयोधन का" ऐसा कहिए।

राक्षस—आः! बिना सही समाचार जाने ही तुम मुझ पर आक्षेप कैसे कर रहे हो?

युधिष्ठिर—महामुने! कहिए, कहिए।

राक्षस—क्षण-भर विश्राम करके आपसे सब कह दूंगा किन्तु इस बुड्ढेसे नहीं।

युधिष्ठिर—कहिए, अर्जुन और सुयोधन का क्या (हुआ)?

राक्षसः—पूर्वमेव कथितं मया प्रवृत्तं गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयोरिति।

युधिष्ठिरः—न भीमसुयोधनयोरिति।

राक्षसः—वृत्तं तत्।

(युधिष्ठिरो द्रौपदी च मोहमुपगतौ ।)

कञ्चुकी—(सलिलेनासिच्य) समाश्वसितु देवो देवी च।

चेटी—समस्ससदु समस्ससदु देवी। (समाश्वसितु समाश्वसितु देवी।)

(उभौ संज्ञा लभेते)

युधिष्ठिरः—किं कथयसि मुने वृत्तं भीमसुयोधनयोर्गदायुद्धमिति।

द्रौपदी-भअवं, कहेहि किं वृत्तं त्ति। (भगवन्, कथय कथय किं वृत्तमिति।)

राक्षसः—कञ्चुकिन्, कौ पुनरेतौ।

कञ्चुकी—एष देवो युधिष्ठिरः। इयमपि पाञ्चालतनया।

युधिष्ठिर इति। वृत्तम् = निष्पन्नम्।

राक्षस इति। नृशंसेन = क्रूरेण, दारुणम् = भीषणम्, उपक्रान्तम् = विहितमित्यर्थः।

राक्षस—मैंने पहले ही कह तो दिया कि "अर्जुन और सुयोधन का गदायुद्ध हुआ"।

युधिष्ठिर—भीम और सुयोधन का नहीं।

राक्षस—वह हुआ था।

(युधिष्ठिर और द्रौपदी-दोनों मूच्छित हो जाते हैं।)

कञ्चुकी—(जल छिड़ककर) महाराज और महारानी, धैर्य धारण करें।

चेटी—धैर्य धारण करें महारानी, धैर्य धारण करें।

(दोनों चेतना प्राप्त करते हैं।)

युधिष्ठिर—क्या कह रहे हैं मुने—"भीम और सुयोधन का गदा-युद्ध हो चुका"?

द्रौपदी—भगवान्! बतलाइए, बतलाइए क्या हुआ?

राक्षस—कञ्चुकी! ये दोनों कौन हैं?

कञ्चुकी—ये महाराज युधिष्ठिर हैं और यह पाञ्चालराज की पुत्री है।

राक्षसः—आः, दारुणमुपक्रान्तं मया नृशंसेन ।

द्रौपदी—हा णाह भीमसेण ! (हा नाथ भीमसेन !)

(इति मोहमुपगता ।)

कञ्चुकी—किं नाम कथितम् ।

चेटी—समस्ससदु समस्ससदु देवी (समाश्वसितु समाश्वसितु देवी ।)

युधिष्ठिरः—(सास्रम् ।) ब्रह्मन्,

पदे सन्दिग्ध एवास्मिन्दुःखमास्ते युधिष्ठिरः ।
वत्सस्य निश्चिते तत्त्वे प्राणत्यागादयं सुखी ॥ १४ ॥

अन्वयः—अस्मिन्, सन्दिग्धे, पदे, एव, युधिष्ठिरः, दुःखम्, आस्ते; वत्सस्य, तत्त्वे, निश्चिते, (सति), अयम्, प्राणत्यागात्, सुखी, (भविष्यति) ॥ १४ ॥

व्याख्या—पद इति । अस्मिन् = एतस्मिन्, भवदुक्ते इत्यर्थः, सन्दिग्धे = सन्देहास्पदे, एव = हि, पदे = वचने, भीमसेनो गदायुद्धे विनाशित इत्येवं भवदुक्त-वचने सति, युधिष्ठिरः = पाण्डवाग्रजः, दुःखम् = कष्टम्, आस्ते = वर्तते, वत्सस्य = प्रियभीमस्य, तत्त्वे = सत्यवस्तुनि, निश्चिते = निर्णीते सति, अयम् = एषः, अहं युधिष्ठिर इत्यर्थः, प्राणत्यागात् = जीवनत्यागात्, सुखी = दुःखमुक्तः भविष्यतीति शेषः । भीमसेनस्य मरणनिश्चये सति नाहं प्राणान् धारयितुं शक्नोमीति भावः ॥ १४ ॥

टिप्पणी—पद इति । प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ १४ ॥

राक्षस—ओह ! मुझ क्रूर के द्वारा महान् अनर्थ कर दिया गया ।

द्रौपदी—हा ! नाथ !! भीमसेन !!!

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है ।)

कञ्चुकी—क्या कहा ?

चेटी—धैर्य रखें धैर्य रखें महारानी ।

युधिष्ठिर—(आँसुओं के साथ) ब्रह्मन् !

(वृत्तम् = हो चुका) इस सन्देहास्पद पद के कारण ही युधिष्ठिर दुःखी है । वत्स (भीमसेन) के सम्बन्ध में यथार्थ के निश्चित हो जाने पर वह प्राणत्याग कर देने से सुखी हो जायेगा ॥ १४ ॥

राक्षसः—(सानन्दमात्मगतम् ।) अयमेव मे यत्नः । (प्रकाशम् ।) यदि त्ववश्यं कथनीयं तदा संक्षेपेण कथयामि न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेणावेदयितुम् ।

युधिष्ठिरः—(अश्रूणि मुञ्चन् ।)

सर्वथा कथय ब्रह्मन्संक्षेपाद्विस्तरेण वा ।
वत्सस्य किमपि श्रोतुमेष दत्तः क्षणो मया ॥ १५ ॥

राक्षसः—श्रूयताम् ।

राक्षस इति । अयम् = त्वदीयप्राणत्यागजनकः, यत्नः = कार्यम्, प्रयासो वा, संक्षेपेण = समासरूपेण, बन्धुव्यसनम् = स्वजनविपत्तिम्, आवेदयितुम् = विज्ञापयितुम् ।

युधिष्ठिर इति । मुञ्चन् = त्यजन् ।

अन्वयः—(हे) ब्रह्मन्, संक्षेपात्, वा, विस्तरेण, सर्वथा, कथय; वत्सस्य, किमपि, श्रोतुम्, मया, एषः, क्षणः, दत्तः ॥ १५ ॥

व्याख्या—सर्वथेति । (हे) ब्रह्मन् = हे विप्र ! संक्षेपात् = समासतः, वा= अथवा, विस्तरेण = विस्तारेण, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, कथय = ब्रूहि; वत्सस्य = प्रियस्य भीमस्य, विषये किमपि = प्रियमप्रियं वेत्यर्थः, श्रोतुम् = आकर्णितुम्, मया = युधिष्ठिरेण, एषः = अयम्, क्षणः = समयः, दत्तः = समर्पितः । त्वद्वचनं श्रोतुं कठोरहृदयोऽहं दत्तमनाः जात इति भावः ॥ १५ ॥

टिप्पणी—सर्वथेति । प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ १५ ॥

राक्षस—(आनन्दपूर्वक मन ही मन) इसीलिए तो मेरा यह प्रयास है । (प्रकट रूप से) यदि अवश्य कहना ही होगा तो संक्षेप में कह देता हूँ क्योंकि स्वजन की विपत्ति को विस्तार से कहना ठीक नहीं है ।

युधिष्ठिर—(आँसू बहाते हुए)

हे ब्राह्मण ! संक्षेप से या विस्तार से, सब तरह से कह डालिए । मैंने प्रिय भाई के विषय में कुछ भी सुनने के लिए यह समय दे दिया है ॥ १५ ॥

राक्षस—सुनिये—

तस्मिन्कौरवभीमयोर्गुरुगदाघोरध्वनौ संयुगे

द्रौपदी—(स्वगतम् ।) तदो तदो । (ततस्ततः ।)

राक्षसः—(स्वगतम् ।) कथं पुनरनयोर्लब्धसंज्ञतामपनयामि ।

(प्रकाशम् ।)

सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः सङ्गरः ।

आलम्ब्य प्रियशिष्यतां तु हलिना संज्ञा रहस्याहिता

यामासाद्य कुरूत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारौ गतः ॥ १६ ॥

अन्वयः—कौरवभीमयोः, गुरुगदाघोरध्वनौ, तस्मिन्, संयुगे, (सति), सीरी, सत्वरम्, आगतः; तस्य, अग्रतः, चिरम्, सङ्गरः, अभूत्; तु, हलिना; प्रियशिष्यताम्, आलम्ब्य, रहसि, संज्ञा, आहिता; याम्, आसाद्य, कुरूत्तमः, दुःशासनारौ, प्रतिकृतिम्, गतः ॥ १६ ॥

व्याख्या—तस्मिन्निति । कौरवभीमयोः = दुर्योधनवृकोदरयोः, गुरुगदाघोरध्वनौ—गुर्व्योः = महत्योः गदयोः घोरः = भीषणः, ध्वनिः=शब्दः यस्मिन् तादृशे, तस्मिन् = पूर्वोक्ते, संयुगे = संग्रामे सति, सीरी = हलधरः, बलरामः इत्यर्थः, सत्वरम् = शीघ्रम्, आगतः आयातः, तस्य = बलरामस्येत्यर्थः, अग्रतः= समक्षम्, चिरम् = बहुकालं यावत्, सङ्गरः = सङ्ग्रामः, अभूत् = जातः, तु = किन्तु, हलिना = हलधरेण, बलरामेणेत्यर्थः, प्रियशिष्यताम्—प्रियः =

दुर्योधन और भीम का, विशाल गदाओं की भीषण ध्वनि से युक्त संग्राम होने पर

द्रौपदी —(वेग से उठकर) इसके बाद ? इसके बाद ?

राक्षस—(मन ही मन) किस प्रकार इन दोनों की वापस लौटी चेतना को पुनः दूर करूँ ?

(प्रकट रूप से)

शीघ्र ही हलधारी (बलराम) आ गये और उनके समक्ष बहुत देर तक युद्ध होता रहा । हलधारी ने शिष्य (दुर्योधन) के प्रति पक्षपात करके (उसे) एकान्त में (चुपके से) संकेत कर दिया जिस (संकेत) को पाकर कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन ने दुःशासन-शत्रु (भीम) से बदला ले लिया (अर्थात् भीम का वध कर डाला) ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरः—हा वत्स, वृकोदर ! (इति मोहमुपगतः ।)

द्रौपदी—हा णाह भीमसेण, हा महं परिभवपडीआरपरिच्चतजीविअ, जडासुरेबअहिडिम्बकिम्मीरकीचअजरासंधणिसूदण, सोंअन्धिआहरणचाडुआर, देहि मे पडिवअणम्। (इति मोहमुपगता ।) (हा नाथ भीमसेन, हा मम परिभवप्रतीकारपरित्यक्तजीवित, जटासुरबकहिडिम्बकिमीरकीचकजरासन्ध-निषूदन, सौगन्धिकाहरणाचाटुकार देहि मे प्रतिवचनम् ।)

कञ्चुकी—(सास्रम् ।) हा कुमार भीमसेन, धार्तराष्ट्रकुलकमलिनी-

स्नेह्यः शिष्यः=छात्रः यस्य सः प्रियशिष्यः तस्य भावः ताम्, शिष्यवत्सलतामित्यर्थः, आलम्ब्य=आश्रित्य, रहसि=एकान्ते, संज्ञा=सङ्केतः, आहिता=दत्ता, याम् = यां संज्ञाम्, सङ्केतमित्यर्थः, आसाद्य = प्राप्य, कुरूत्तमः = कुरुश्रेष्ठः, दुर्योधन इत्यर्थः, दुःशासनारौ=दुःशासनशत्रौ, भीमसेने इत्यर्थः, प्रतिकृतिम्=प्रतीकारम्, प्रतिशोध-मित्यर्थः, गतः=प्राप्तः । दुर्योधनेन भीमो घातितो गदायुद्धे इति गूढाशयः ॥१६॥

टिप्पणी—तस्मिन्निति । प्रियशिष्यताम्—बलराम गदायुद्ध के प्रवीण आचार्य थे । दुर्योधन को उन्होंने गदा-सञ्चालन का प्रशिक्षण दिया था । इस प्रकार दुर्योधन बलराम का शिष्य था । यहाँ पर, शिष्य के प्रति स्नेह-भावना के कारण बलराम ने दुर्योधन को सङ्केत दिया ताकि वह भीम का वध कर सके—यही राक्षस के कथन का भाव है जो सर्वथा मिथ्या कल्पित है ताकि इस समाचार को सुनकर युधिष्ठिर आदि प्राणत्याग कर लें । प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १६ ॥

द्रौपदीति । परिभवप्रतीकारपरित्यक्तजीवित—परिभवस्य = कचवस्त्राकर्षण-जन्यापमानस्य, प्रतीकाराय = प्रतिकृत्यै परित्यक्तम्=उज्झितम् जीवितम्=जीवनम् येन सः, तत्सम्बुद्धौ ।

कञ्चुकीति । धार्तराष्ट्रकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष—धार्तराष्ट्रकुलमेव कमलिनी=

युधिष्ठिर- हा वत्स भीम ! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है ।)

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन ! हा मेरे अपमान का बदला लेने के लिए अपने जीवन का परित्याग करनेवाले ! जटासुर, वक, हिडिम्ब, किर्मीर, कीचक, और जरासन्ध के संहारक तथा सुगन्धित कमलपुष्पों को देकर प्रसन्न करनेवाले ! मुझे उत्तर दीजिए । (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है ।)

कञ्चुकी—(आँसू बहाकर) हा कुमार भीमसेन ! धृतराष्ट्रकुलकमलिनी

प्रालेयवर्ष, (ससंभ्रमम् ।) समाश्वसितु महाराजः । भद्र, समाश्वासय स्वामिनीम् । महर्षे, त्वमपि तावदाश्वासय राजानम् ।

राक्षसः—(स्वगतम् ।) आश्वासयामि प्राणान्परित्याजयितुम् । (प्रकाशम्) भो भीमाग्रज, क्षणमेकं चीयतां समाश्वासः । कथाऽवशेषोऽस्ति ।

युधिष्ठिरः—(समाश्वस्य) महर्षे, किमस्ति कथाशेषः ?

द्रौपदी—(प्रतिबुद्धा ।) भअवं कहेहि, कीदिसो कहासेसो त्ति ? (भगवन्, कथय कीदृशः कथाशेष इति ।)

कञ्चुकी—कथय कथय ।

राक्षसः—ततश्च हते तस्मिन्सुक्षत्रिये वीरसुलभां गतिमुपगते समग्रसंगलितं भ्रातृवधशोकजं बाष्पं प्रमृज्य प्रत्यग्रक्षतजच्छटाचर्चितां तामेव

नलिनी तत्र प्रालेयस्य = हिमस्य वर्षः = वृष्टिरूपस्तत्सम्बोधने ।

राक्षस इति । चीयताम् = संगृह्यताम्, कथावशेषः = कथनावशिष्टम् ।

राक्षस इति । वीरसुलभाम् = सुक्षत्रियप्राप्याम्, वीरजनोचितामित्यर्थः, गतिम् = दशाम्, रणक्षेत्रे मृत्युरूपामित्यर्थः, उपगते = प्राप्ते, मृते इति भावः, समग्रसंगलितम्—समग्रम् = समस्तम्, संगलितम्=निःसृतम्, भ्रातृवधशोकजम्—भ्रातुः भीमस्येत्यर्थः, वधेन = हननेन यः शोकः = दुःखम् तस्माज्जातम्, प्रत्यग्रक्षतजच्छटाचर्चिताम्—प्रत्यग्रम्=नूतनम् यत् क्षतजम् = शोणितम् तस्य छटया=

के लिए हिमवृष्टिसदृश ! (घबराहट के साथ) महाराज धैर्य धारण करें । भद्रे ! महारानी को धैर्य बंधाओ । महामुने ! आप भी महाराज को सान्त्वना दें ।

राक्षस—(मन ही मन) प्राण-त्याग कराने के लिए सान्त्वना देता हूँ । (प्रकटरूप से) हे भीम के बड़े भाई ! क्षण-भर के लिए धैर्य धारण कीजिए । कहानी कुछ शेष है ।

युधिष्ठिर—(संभलकर) महर्षे ! क्या कहानी शेष है ?

द्रौपदी—(होश में आकार) भगवन् । कहिये, कथा का शेष कैसा है ?

कञ्चुकी—कहिए कहिए ।

राक्षस—उसके बाद उस वीर क्षत्रिय के मारे जाने तथा वीरोचित अवस्था को प्राप्त कर लेने पर भ्रातृवध के शोक से बहते हुए सम्पूर्ण आँसुओं

गदां भ्रातृहस्ताद् यत्नादाकृष्य निवार्यमाणोऽपि संधित्सुना वासुदेवेन आगच्छागच्छेति सोपहासं भ्रमितगदाझङ्कारमूच्छितगम्भीरवचनध्वनि-नाहूयमानः कौरवराजेन तृतीयोऽनुजस्ते किरीटी योद्धुमारब्धः। अकृति-नस्तस्य गदाघातान्निधनमुत्प्रेक्षमाणेन कामपालेनार्जुनपक्षपाती देवकीसूनुर-तिप्रयत्नात् स्वरथमारोप्य द्वारकां नीतः।

युधिष्ठिरः—साधुः ! भो अर्जुन, तदैव प्रतिपन्ना वृकोदरपदवी गाण्डीवं परित्यजता। अहं पुनः केनोपायेन प्राणापगमनमहोत्सवमुत्सहिष्ये।

समूहेन, चर्चिताम् = व्याप्ताम्, नूतनरक्तलिप्तामित्यर्थः, सन्धित्सुना = सन्धातु-मिच्छुना, वासुदेवेन = श्रीकृष्णेन, निवार्यमाणोऽपि = निषिध्यमानोऽपि, सोप-हासम् = निन्दायुक्तवचनसहितम्, भ्रमितेत्यादिः—भ्रमिता = घूर्णिता या गदा तस्याः झङ्कारेण = झङ्कृत्या मूच्छितम् = विमिश्रितम् यद् गम्भीरम् = धीरम् वचनम् = वाक्यम् तस्य ध्वनिना = शब्देन, किरीटी = अर्जुनः। अकृतिनः = अनिपुणस्य, गदायुद्धेऽनभिज्ञस्येत्यर्थः, निधनम् = मरणम्, उत्प्रेक्षमाणेन = सम्भावयता, कामपालेन = बलरामेण, देवकीसूनुः = देवकीपुत्रः, श्रीकृष्णः।

टिप्पणी—कामपालेन—कामपाल बलराम का ही नाम है—"रेवतीरमणो रामः कामपालो हलायुधः" इत्यमरः।

युधिष्ठिर इति। वृकोदरपदवी = भीमसेनपद्धतिः, प्रतिपन्ना = प्राप्ता।

को पोंछकर नूतनरक्त समूह से लिप्त उसी गदा को भाई के हाथ से प्रयत्नपूर्वक खींचकर सन्धि करने के इच्छुक श्रीकृष्ण के द्वारा रोके जाने पर भी "आओ—आओ" इस प्रकार निन्दायुक्त वचनों के साथ कौरवराज द्वारा घुमाई गई गदा की झङ्कार से विमिश्रित गम्भीरध्वनि से ललकारा जाता हुआ तुम्हारा तीसरा अनुज अर्जुन युद्ध करने लगा। गदाप्रहार से (गदायुद्ध में) अनिपुण उस (अर्जुन) की मृत्यु की संभावना करते हुए बलराम अर्जुन के पक्षपाती देवकी-पुत्र (श्रीकृष्ण) को बड़े प्रयास से अपने रथ में बैठाकर द्वारका ले गये।

युधिष्ठिर—वाह ! हे अर्जुन ! गाण्डीव को छोड़ते हुए तूने उसी समय भीम का मार्ग अपना लिया लेकिन मैं किस उपाय से प्राण-त्याग के महोत्सव को पूर्ण करूँ ?

द्रौपदी—हा णाह भीमसेण, ण जुत्तं दाणि दे कणीअसं भादरं असिक्खिदं गदाये, दारुणस्स, सत्तुणा अहिमुहं गच्छन्तं उवक्खिदुम् । (मोहमुपगता ।) (हा नाथ भीमसेन, न युक्तमिदानी ते कनीयांसं भ्रातरमशिक्षितं गदायां दारुणस्य शत्रोरभिमुखं गच्छन्तमुपेक्षितुम् ।)

राक्षसः—ततश्चाह…

युधिष्ठिरः—भवतु मुने, किमतः परश्रुतेन । हा तात भीमसेन, कान्तारव्यसनबान्धव, हा मच्छरीरस्थितिविच्छेदकातर, जतुगृहविपत्समुद्रतरणयानपात्र, हा किर्मीरहिडिम्बासुरजरासन्धविजयमल्ल, हा कीचकसुयोधनानुजकमलिनीकुञ्जर हा द्यूतपणप्रणयिन्, हा कौरववनदावानल,

प्राणपगमनमहोत्सवम्—प्राणापगमनम् = प्राणत्यागः तदेव महोत्सवः तम्, उत्सहिष्ये = करिष्ये ।

द्रौपदीति । कनीयांसम्=लघीयांसम्, गदायामशिक्षितम्=गदायुद्धेऽनिपुणम्, दारुणस्य = भयानकस्य, शत्रोः, अभिमुखम् = सम्मुखम्, उपेक्षितुम् = औदासीन्यं प्रकटयितुम्, न युक्तम् = नोचितम् ।

युधिष्ठिर इति । कान्तारव्यसनबान्धव—कान्तारे = वने, वनवासकाले इत्यर्थः, यानि व्यसनानि = कष्टानि तेषु बान्धवः = सहायकः तत्सम्बोधने,

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन ! भयानक शत्रु के सम्मुख जाते हुए गदा में अशिक्षित अपने छोटे भाई की उपेक्षा करना तुम्हें उचित नहीं था (अर्थात् छोटे भाई को असहाय छोड़कर तुम्हारा चला जाना उचित नहीं था) । (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है ।)

राक्षस—इसके वाद मैं…………

युधिष्ठिर—बस मुने ! रहने दीजिए आगे सुनकर क्या होगा ? हा भाई भीमसेन ! वनवास की विपत्ति में सहायक, हा मेरे शरीर की अवस्था के भङ्ग से कातर, लाक्षागृह के विपत्तिरूपी सागर को पार करने में पोतसदृश, हा किर्मीर, हिडिम्बासुर और जरासन्धको जीतने वाले योद्धा, हा कीचक एवं सुयोधन के अनुज (दुःशासन) रूपी कमलिनी के लिए हाथी के सदृश, हा जूए में (मेरी) शर्त को स्वीकार कर लेने वाले, हा कौरवरूपी वन के लिए दावानल !

निर्लज्जस्य दुरोदरव्यसनिनो वत्स त्वया सीदता
भक्त्या मे समदद्विपाऽयुतबलेनाङ्गीकृता दासता।
किं नामाऽपकृतं मया तदधिकं त्वय्यद्य निर्वत्सलं
त्यक्त्वाऽनाथमबान्धवं सपदि मां येनासि दूरं गतः ॥ १७ ॥

मच्छरीरस्थितिविच्छेदकातर--मम शरीरस्य = वपुषः, या स्थितिः = दशा, तस्याः विच्छेदात् = विनाशात् कातरः = दुःखी तत्सम्बोधने, जतुगृहविपत्समुद्रतरणयानपात्र--जतुगृहे = लाक्षागृहे या विपत् = विपत्तिः सा एव समुद्रः = सागरः तस्य तरणे = पारङ्गमने यानपात्रम् = पोतः तत्सम्बोधने, कौरववनदावानल—कौरवाः एव वनम् तत्र दावानलः = वनाग्निः, तत्सदृशः इत्यर्थः, तत्सम्बुद्धौ।

टिप्पणी—यानपात्रम्--यानपात्र पोत अर्थात् जहाज को कहते हैं--
"यानपात्रं तु पोतः" इत्यमरः।

अन्वयः—(हे) वत्स ! दुरोदरव्यसनिनः, निर्लज्जस्य, मे, भक्त्या, समदद्विपायुतबलेन, सीदता, त्वया, दासता, अङ्गीकृता, अद्य, त्वयि, तदधिकम्, मया, किं नाम, अपकृतम्, येन, निर्वत्सलम्, अबान्धवम्, अनाथम्, माम्, सपदि, त्यक्त्वा, दूरम्, गतः, असि ॥ १७ ॥

व्याख्या—निर्लज्जस्येति। (हे) वत्स = हे प्रिय ! दुरोदरव्यसनिनः = द्यूतक्रीडासक्तस्य, निर्लज्जस्य = लज्जाविहीनस्य, मे = मम, युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, भक्त्या = श्रद्धया, समदद्विपायुतबलेन—समदाः = मदयुक्ताः ये द्विपाः=हस्तिनः तेषाम् अयुतम् = दशसहस्राणि तस्य यद्बलम् तत्तुल्यं बलं यस्मिन् तेन, सीदता= क्लिश्यता, त्वया = भीमसेनेन, दासता = भृत्यभावः, अङ्गीकृता = स्वीकृता, अद्य = अस्मिन्नहनि, अपि, त्वयि = त्वद्विषये, तदधिकम् = दासताधिकम्, मया = युधिष्ठिरेण किं नामेति जिज्ञासायाम्, अपकृतम् = अहितमाचरितम्,

हे वत्स ! जुए के व्यसनी मुझ निर्लज्ज की भक्ति के कारण दस हजार हाथियों के बलवाले तुमने कष्ट सहते हुए दासता स्वीकार की। मैंने उससे अधिक तुम्हारा क्या अपकार किया जो मुझ प्रेमहीन, अनाथ और बन्धुहीन को छोड़कर शीघ्र ही दूर चले गये हो ? ॥ १७ ॥

द्रौपदी—(संज्ञामुपलभ्योत्थाय च।) महाराज किं एदं वट्टइ। (महाराज, किमेतद्वर्तते।)

युधिष्ठिरः—कृष्णे, किमन्यत् ?

स कीचकनिषूदनो बकहिडिम्बकिर्मीरहा
मदान्धमगधाधिपद्विरदसंधिभेदाशनिः।
गदापरिघशोभिना भुजयुगेन तेनान्वितः
प्रियस्तव ममानुजोऽर्जुनगुरुर्गतोऽस्तं किल ॥ १८ ॥

येन = येन हेतुना, निर्वत्सलम् = स्नेहरहितम्, अबान्धवम् = बन्धुविहीनम्, अनाथम्=स्वामिरहितम् रक्षकविहीनमिति तात्पर्यम्, माम्=युधिष्ठिरम्, सपदि= झटिति, त्यक्त्वा=विहाय, दूरम्=विप्रकृष्टम्, गतः = व्रजितः असि ॥१७॥

टिप्पणी—निर्लज्जस्येति। दुरोदुर—दुरोदर द्यूत या जुआ को कहते हैं—"द्यूतोदुरोदरमित्यमरः।" इस पद्य में विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकरालङ्कार है। छन्द शार्दूलविक्रीडित है ॥ १७ ॥

अन्वयः—कीचकनिषूदनः, बकहिडिम्बकिर्मीरहा, मदान्धमगधाधिपद्विरद-सन्धिभेदाशनिः, गदापरिघशोभिना, तेन, भुजयुगेन, अन्वितः सः, तव, प्रियः, मम, अनुजः, अर्जुनगुरुः, अस्तम्, गतः, किल ॥ १८ ॥

व्याख्या—स कीचकेति। कीचकनिषूदनः = कीचकस्य = विराटश्यालस्य निषूदनः = विनाशकः, बकहिडिम्बकिर्मीरहा—बकासुरहिडिम्बासुरकिर्मीरनामकानां राक्षसानां हन्ता, मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः—मदान्धः = मदमत्तः यः मगधाधिपः = मगधराजः, जरासन्ध इति भावः स एव द्विरदः = हस्ती तस्य सन्धेः = सन्धानस्थलस्य, भेदे = विदारणे, अशनिः = वज्रसदृशः, गदापरिघ-

द्रौपदी—(चेतना प्राप्त कर तथा उठकर) महाराज, यह क्या है ?

युधिष्ठिर—कृष्णे ! और क्या—

कीचक को मारनेवाला, बकासुर, हिडिम्ब एवं किर्मीर का हन्ता, मतवाले मगधराजरूपी हाथी की सन्धि को छिन्न करने में वज्रसदृश, गदारूपी परिघ से शोभायमान उन दोनों बाहुओं से युक्त वह तुम्हारा प्रेमी, मेरा छोटा भाई—और अर्जुन का बड़ा भाई अस्त को प्राप्त हो गया है ॥ १८ ॥

द्रौपदी—णाह भीमसेण, तुए किल मे केसा संजमिदव्वा। ण जुत्तं वीरस्स खत्तिअस्स पडिण्णादं सिढिलेदुम्। ता पडिवालेहि मं जाव उवसप्पामि। (पुनर्मोहमुपगता।) (नाथ, भीमसेन, त्वया किल मे केशाः संयमयितव्याः। न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम्। प्रत्प्रतिपालय मां यावदुपसर्पामि।)

युधिष्ठिरः—(आकाशे।) अम्ब पृथे, श्रुतोऽयं तव पुत्रस्य समुदाचारः। मामेकमनाथं विलपन्तमुत्सृज्य क्वापिगतः। तात जरासन्धशत्रो, किं नाम वैपरीत्यमेतावता कालेनाल्पायुषि त्वयि समालोकितं जनेन। अथवा मयैव बहूपलब्धम्।

शोभिना—गदापरिघ इव तेन शोभते इति तथाभूतेन, तेन = प्रसिद्धेन, भुजयुगेन = बाहुयुगलेन, अन्वितः = युक्तः, सः = प्रसिद्धः, तव = द्रौपद्याः, प्रियः = स्नेही, मम = युधिष्ठिरस्य, अनुजः = लघुभ्राता, अर्जुनगुरुः—अर्जुनात् = किरीटिनः गुरुः श्रेष्ठः, अस्तम् = विनाशम्, गतः = प्राप्तः, किलेति संभावनायाम्, "वार्ता सम्भाव्ययोः किले" त्यमरः ॥ १८ ॥

टिप्पणी—स कीचकेति। पद्य के द्वितीयचरण में लुप्तोपमा एवं चतुर्थ चरण मे उल्लेखालंकार है। पृथ्वी छन्द है ॥ १८ ॥

द्रौपदीति। संयमयितव्याः = बन्धनीयाः। शिथिलयितुम् = उपेक्षितुम्। प्रतिपालय = प्रतीक्षस्व, उपसर्पामि = समीपमागच्छामि।

द्रौपदी—नाथ भीमसेन। तुम्हें तो मेरे केश बाँधने थे। वीर क्षत्रिय को प्रतिज्ञा किये गये को छोड़ना नहीं चाहिए। इसलिए मेरी प्रतीक्षा करो जब तक मैं भी समीप आ रही हूँ। (यह कहकर पुनः मूच्छित हो जाती है।)

युधिष्ठिर—(आकाश की ओर देखकर) माता पृथा! अपने पुत्र का यह शिष्टाचार सुना?—मुझ अकेले, अनाथ एवं विलाप करते हुए को छोड़कर कहीं चला गया। भैया, जरासन्धशत्रु! अब तक लोगों ने तुझ अल्प आयु वाले के सम्बन्ध में क्या उलटी (आयु के विपरीत) बात देखी थी? अथवा मैंने ही बहुत देख लिया था।

दत्त्वा मे करदीकृताखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे
द्यूते यच्च पणीकृतोऽपि हि मया न क्रुध्यसि प्रीयसे।
स्थित्यर्थं मम मत्स्यराजभवने प्राप्तोऽसि यत्सूदतां
वत्सैतानि विनश्वरस्य सहसा दृष्टानि चिह्नानि ते ॥ १९ ॥

अन्वयः—करदीकृताखिलनृपाम्, मेदिनीम्, मे, दत्त्वा, यत्, लज्जसे; मया, द्यूते, पणीकृतः, अपि, यत्, च, न, क्रुद्ध्यसि; हि, प्रीयसे; मम, स्थित्यर्थम्, मत्स्यराजभवने, यत्, सूदताम्, प्राप्तः, असि; (हे) वत्स ! सहसा, विनश्वरस्य, ते, एतानि, चिह्नानि, (मया), दृष्टानि ॥ १९ ॥

व्याख्या—दत्त्वेति। करदीकृताखिलनृपाम्—करम्=शुल्कं ददतीति करदाः, न करदाः अकरदाः, अकरदाः करदाः सम्पद्यमानाः कृता इति करदीकृताः= स्वायत्तीकृता इत्यर्थः, अखिलाः = सम्पूर्णाः नृपाः = राजानः यस्याम् यस्याः वा ताम्, मेदिनीम् = पृथ्वीम्, मे = मह्यम्, युधिष्ठिरायेत्यर्थः, दत्त्वा = समर्प्य, यत्, लज्जसे = त्रपसे, लज्जामनुभवसीत्यर्थः, मया = युधिष्ठिरेण, द्यूते = अक्ष-क्रीडायाम्, पणीकृतः = मूल्यीकृतः, अपि = च, यत् न, क्रुद्ध्यसि = कुप्यसि, हि = प्रत्युत, प्रीयसे = प्रसीदसि, प्रसन्न आसीरित्यर्थः, मम = मे, युधिष्ठिरस्य, स्थित्यर्थम् = गुप्तवासार्थम्, मत्स्यराजभवने = राज्ञो विराटस्य गृहे, यत्, सूदताम् = सूपकारताम्, पाचकत्वमित्यर्थः, प्राप्तः = उपगतः, असि; हे वत्स = हे प्रिय ! सहसा = सपदि अकस्मादित्यर्थः, विनश्वरस्य = विनाशशीलस्य, ते = तव, भीमस्येत्यर्थः, एतानि=इमानि, चिह्नानि=लक्षणानि, मयेति शेषः, दृष्टानि= अवलोकितानि। तव गुणाः अपि मदीयभाग्यदोषाद्दोषत्वं गता इति भावः ॥ १९ ॥

टिप्पणी—दत्त्वेति। प्रीयसे—यहाँ पर तथा श्लोक में प्रयुक्त लज्जसे, क्रुद्धसि आदि सभी क्रियापदों में वर्तमान सामीप्य में भूतकालिन लट् आया है।

जिसके कर न देनेवाले सभी राजा लोग कर देने वाले बना दिये गये थे ऐसी पृथ्वी को मुझे देकर जो तुम लज्जित होते रहे; मेरे द्वारा जुए में शर्त्त पर लगा दिये जाने पर भी जो तुम क्रुद्ध न हुए बल्कि प्रसन्न ही रहे; मेरे गुप्तवास के लिए राजा विराट् के घर में जो तुम रसोइया बन कर रहे; हे वत्स ! अचानक विनष्ट हो जाने वाले तुम्हारे इन लक्षणों को (मैंने) देख लिया ॥१९॥

मुने, किं कथयसि ! ('तस्मिन्कौरवभीमयोः' (६।१६) इत्यादि पठति ।)

राक्षसः—एवमेतत् ।

युधिष्ठिरः—धिगस्मद्भागधेयानि । भगवन्कामपाल, कृष्णाग्रज, सुभद्राभ्रातः,

ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मो
रूढं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यानुजे मे ।
तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः
कोऽयं पन्था यदसि विमुखो मन्दभाग्ये मयीत्थम् ॥ २० ॥

सूदताम् सूद रसोइया को कहते हैं—"सूपकारास्तु बल्लवाः । आरालिका आन्धसिकाः सूदा औदानिका गुणाः" इत्यमरः । शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १८ ॥

अन्वयः—(त्वया) ज्ञातिप्रीतिः, मनसि, न, कृता; क्षत्रियाणाम्, धर्मः, न, (कृतः), अनुजस्य, मे, अनुजे, (यत्), रूढम्, सख्यम्, तदपि, न, गणितम्, शिष्ययोः, भवतः, स्नेहबन्धः, कामम्, तुल्यः, भवतु; अयम्, कः, पन्थाः, यत्, मयि, मन्दभाग्ये, इत्थम्, विमुखः, असि ॥ २० ॥

व्याख्या—ज्ञातिप्रीतिरिति । (त्वया=बलरामेण) ज्ञातिप्रीतिः=बान्धवस्नेहः, मनसि = हृदये, न कृता = न आनीता; क्षत्रियाणाम् = राजन्यानाम्, धर्मः = उचिताचारः, न कृतः, अनुजस्य = तवानुजस्य श्रीकृष्णस्येत्यर्थः, मे=मम,

---

मुने ! क्या कहते हो ? (तस्मिन्कौरवभीमयोः ६।१६ इत्यादि श्लोक को पढ़ता है ।)

राक्षस—यह ऐसा ही है ।

युधिष्ठिर—हमलोगों के भाग्य को धिक्कार है । भगवन् बलराम ! कृष्ण के बड़े भाई ! सुभद्रा के भाई !

तुमने बान्धवस्नेह को भी हृदय में स्थान नहीं दिया और न ही क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का ही निर्वाह किया । अपने छोटे भाई का मेरे छोटे भाई के साथ जो प्रगाढ मैत्री है उसका भी विचार नहीं किया । दोनों शिष्यों (भीम एवं दुर्योधन) पर तुम्हारा स्नेहबन्ध समान होना चाहिए था, फिर यह कौन सा मार्ग है जो मुझ अभागे के प्रति इस प्रकार प्रतिकूल हो गये हो ? ॥ २० ॥

(द्रौपदीमुपगम्य ।) अयि पाञ्चालि, उत्तिष्ठ । समानदुःखावेवावां भवावः । मूर्च्छया किं मामेवमतिसंधत्से ।

द्रौपदी—(लब्धसंज्ञा ।) बन्धेदु णाहो दुय्योहणरुधिलाहेण हत्थेण दुस्सासणविमुक्कं मे केसहत्थम् । हञ्जे बुद्धिमदिए, तद् पच्चक्ख एव्व णाहेण पण्डिण्णादम् । (कञ्चुकिनमुपेत्य ।) अज्ज, किं संदिट्टं दाव मे देवेण देवकीणन्दणेण पुणो वि केसबन्धण आरम्भोअदुत्ति । ता उवणेहि मे पुप्फदामाइं । विरएहि दाव कबरीम् । करेहि भअवदो णाराअणस्स वअणम् । ण क्खु सो अलीअं संदिसदि । अहवा किं मएसंतत्ताए भणिदम् । अचि-

युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, अनुजे = लघुभ्रातरि, अर्जुने इत्यर्थः, (यत् = यादृशम्), रूढम् = प्रसिद्धम्, सख्यम = मित्रता, तदपि न, गणितम्=विचारितम्, शिष्ययोः= छात्रयोः, भीमसुयोधनयोरित्यर्थः, भवतः = श्रीमतस्तव, बलरामस्येत्यर्थः, स्नेहबन्धः = प्रीतिदृढता, कामम् = यद्यपि, तुल्यः = समानः, भवतु = अस्तु; भवेदित्यर्थः, अयम् = एषः, कः = कीदृशः, पन्थाः = मार्गः, यत् = यस्मात्, मयि = युधिष्ठिरे, मन्दभाग्ये = भाग्यहीने, इत्थम् = एवम्, विमुखः = पराङ्मुखः, प्रतिकूल इत्यर्थः, असि = भवसि ॥ २० ॥

टिप्पणी—ज्ञातिप्रीतिरिति । शिष्ययोः—बलरामने भीम एवं दुर्योधन—दोनों को गदायुद्ध का प्रशिक्षण दिया था इस प्रकार वे दोनों ही बलराम के शिष्य थे । युधिष्ठिर के कथन का भाव यह है कि गुरु को प्रत्येक छात्र के प्रति समान भाव रखना चाहिए । दुर्योधन के प्रति स्नेह एवं भीम के प्रति उपेक्षा अनुचित है । पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार एवं मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ २० ॥

द्रौपदीमिति । समानदुःखौ–समानम् = तुल्यम् दुःखम् = कष्टम् ययोस्तौ । अतिसन्धत्से = सन्धानस्यातिक्रमणमतिसन्धानम् = असम्मेलनम्, असमानत्वमित्यर्थः तत्करोषीति अतिसन्धत्से, स्वल्पदुःखं करोषीति भावः ।

(द्रौपदी के समीप जाकर) अरी पाञ्चाली ! उठो । हम दोनों समान दुःखभागी ही बनें । (बार-बार) मूर्च्छित होकर मुझे इस प्रकार कम दुःखवाला क्यों सिद्ध कर रही हो ?

द्रौपदी—(होश में आकर) नाथ ! दुर्योधन के रक्त से गीले हाथ से

रगदं अज्जउत्तं अणुगमिस्सम् । (युधिष्ठिरमुपगम्य ।) महाराअ, आदीवअ चिदाम् । तुम वि खत्तधम्मअणुबन्धन्तो एव्व णाहस्स जीविदहरस्स अहिमुहो होहि । अहवा ज दे रोअदि । (बध्नातु नाथ ! दुर्योधनरुधिरार्द्रेण हस्तेन दुःशासनविमुक्तं मे केशहस्तम् । हञ्जे बुद्धिमतिके, तव प्रत्यक्षमेव नाथेन प्रतिज्ञातम् । आर्ये, किं सदृशं तावन्मे देवेन देवकीनन्दनेन पुनरपि केशबन्धनमारभ्यतामिति । तदुपनय मे पुष्पदामानि । विरचय तावत्कवरीम् । कुरु भगवतो नारायणस्य वचनम् । न खलु सोऽलीकं संदिशति । अथवा किं मया संतप्तया भणितम्—अचिरगतमार्यपुत्रमनुगमिष्यामि । महाराज, आदीपय चिताम् । त्वमपि क्षत्रधर्ममनुबध्नन्नेव नाथस्य जीवितहरस्याभिमुखो भव । अथवा यत्ते रोचते ।)

युधिष्ठिरः—युक्तमाह पाञ्चाली । कञ्चुकिन्, क्रियतामियं तपस्विनी चितासंविभागेन सह्यवेदना । ममापि सज्यं धनुरुपनय । अलमथवा धनुषा ।

द्रौपदीति । लब्धसंज्ञा = प्राप्तचैतन्या । दुर्योधनरुधिरार्द्रेण—दुर्योधनस्य रुधिरेण = रक्तेन आर्द्रः = क्लिन्नः तेन, दुःशासनविमुक्तम् = दुःशासनत्याजितम्, केशहस्तम् = केशपाशम् । पुष्पदामानि = कुसुमगुच्छान् । कबरीम् = केशवेशम् । अलीकम् = मिथ्या । सन्तप्तया = दुःखितया, अचिरगतम् = त्वरितमृतम् । आदीपय = प्रज्वालय । जीवितहरस्य = प्राणहरस्य ।

युधिष्ठिर इति । तपस्विनी = वराकी, चितासंविभागेन = चितासेवनद्वारा,

---

दुःशासन द्वारा खोले गये मेरे केशपाश को बाँधिये । अरी बुद्धिमतिके ! तुम्हारे समक्ष ही तो स्वामी ने प्रतिज्ञा की थी । (कञ्चुकी के समीप जाकर) आर्य ! भगवान् देवकी पुत्र ने मेरे लिए क्या सन्देश भेजा था कि फिर से केशों को सँवारना प्रारम्भ करदिया जाय । तो लाओ मेरे लिए फूलों की मालाएँ । तब तक वेणी गूँथो । भगवान् नारायण की बातों का पालन करो । वह मिथ्या संदेश नहीं दे सकता । अथवा दुःख से आकुल होकर मैंने क्या कह डाला—तुरन्त गये हुए आर्यपुत्र का अनुगमन करूँगी । (युधिष्ठिर के समीप जाकर) महाराज ! चिता जलाइये । आप भी क्षात्रधर्म का पालन करते हुए स्वामी के जीवन को हरण करनेवाले के सम्मुख होइये । अथवा जो आपको अच्छा लगे ।

युधिष्ठिर—पाञ्चाली ने उचित कहा । कञ्चुकी ! इस बेचारी को चितानिर्माण द्वारा दुःख सहने योग्य कर दो । मेरे लिए भी प्रत्यञ्चा सहित धनुष

तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गीमादाय संप्रति गदामपविद्धचापे।
भ्रातृप्रियेण कृतमद्य यदर्जुनेन श्रेयो ममापि हि तदेव कृतं जयेन ॥२१॥

राक्षसः—(सविषादमात्मगतम्।) कथं गच्छति भवत्वेवं तावत् (प्रकाशम्) राजन्, रिपुजयविमुखं ते यदि चेतस्तदा यत्र तत्र वा प्राणत्यागं कुरु। वृथा तत्र गमनम्।

सह्यवेदना = सह्या = सोढुं योग्या वेदना = व्यथा यया सा। सज्यम्—ज्यया = मौर्व्या सहितम् = युक्तम् इति सज्यम्।

अन्वयः—तस्य, एव, देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गीम्, गदाम्, आदाय, अपविद्धचापे, संयति, भ्रातृप्रियेण, अर्जुनेन, अद्य, यत्, कृतम्, तत्, एव, मम, अपि, हि, श्रेय; जयेन कृतम् ॥ २१ ॥

व्याख्या—तस्यैवेति। तस्य = भीमस्येत्यर्थः, एव, देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गीम्—देहस्य = शरीरस्य रुधिरेण = शोणितेन उक्षितानि = सिक्तानि अत एव पाटलानि = रक्तानि अङ्गानि = अवयवाः यस्यास्ताम्, गदाम्, आदाय = गृहीत्वा, अपविद्धचापे—अपविद्धः—परित्यक्तः चापः = धनुः यस्मिन् तस्मिन्, धनुर्विहीने इत्यर्थः, संयति = युद्धे, भ्रातृप्रियेण—भ्राता प्रियो यस्य तेन, अर्जुनेन = किरीटिना, अद्य = अस्मिन्नहनि, यत् = यादृशं कर्मेत्यर्थः, कृतम् = विहितम्, तत = तादृशं कर्म, एव, मम = युधिष्ठिरस्य, अपि = च हीति निश्चये, श्रेयः = वरम्, कल्याणकारकमित्यर्थः, जयेन=विजयेन, कृतम् = अलम्। इदानीं विजयस्य आवश्यकता नास्तीति भावः ॥ २१ ॥

टिप्पणी—तस्यैवेति। प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है ॥ २१ ॥

लाओ। अथवा धनुष से क्या—

उसके (भीम के) शरीर के रक्त से सिक्त होने के कारण लाल अङ्गों वाली गदा को लेकर बिना धनुष के युद्ध में भाई से प्रेम करनेवाली अर्जुन ने आज जो किया वही मेरे लिए भी श्रेष्ठ है; विजय से क्या ? ॥ २१ ॥

राक्षस—(विषाद के साथ मन ही मन) क्या यह जा रहा है ? अच्छा, ऐसा हो। (प्रकट में) राजन् ! यदि आपका मन शत्रु पर विजय प्राप्त करने से पराङ्मुख है तो जहाँ-कहीं भी प्राण-त्याग कर लो। वहाँ जाना व्यर्थ है।

कञ्चुकी—धिङ्मुने, राक्षससदृशं हृदयं भवतः ।

राक्षसः—(सभयं स्वगतम् ।) किं ज्ञातोऽहमनेन । (प्रकाशम् ।) भो कञ्चुकिन्, तयोर्गदया खलु युद्धं प्रवृत्तमर्जुनदुर्योधनयोः । जानामि च तयोर्गदायां भुजसारम् । दुःखितस्य पुनरस्य राजर्षेरपरमनिष्टश्रवणं परिहरन्नेवं ब्रवीमि ।

युधिष्ठिरः—(बाष्पं विसृजन् ।) साधु महर्षे साधु । सुस्निग्धमभिहितम् ।

कञ्चुकी—महाराज, किं नाम शोकान्धतया देवेन देवकल्पेनापि प्राकृतेनेव त्यज्यते क्षात्रधर्मः ।

युधिष्ठिरः—आर्य जयंधर,

राक्षस इति । रिपुजयविमुखम्-रिपो = शत्रौ यो जयः = विजयः तस्माद् विमुखः = पराङ्मुखः, तम्, चेतः = हृदयम् ।

राक्षस इति । प्रवृत्तम् = प्रारब्धम् । भुजसारम् = बाहुबलम्, अपरम् = अन्यम्, अनिष्टश्रवणम् = अप्रियाकर्णनम्, परिहरन् = पृथक्कुर्वन् ।

कञ्चुकीति । शोकान्धतया=शुचा विवेकहीनतया, देवकल्पेन = देवसदृशेन, प्राकृतेन = सामान्यजनेन ।

टिप्पणी—देवकल्पे—देव शब्द से "ईषदसमाप्तौ" से कल्पप् प्रत्यय आया है ।

कञ्चुकी—(आपको) धिक्कार है मुने ! आपका हृदय तो राक्षस के समान है ।

राक्षस—(भयपूर्वक मन ही मन) क्या इसने मुझे जान लिया है ? (प्रकट रूप से) ऐ कञ्चुकी ! उन दोनों—अर्जुन और दुर्योधन के बीच गदायुद्ध प्रारम्भ हो चुका है । गदायुद्ध में उन दोनों के बाहुबल को मैं जानता हूँ । इस दुःखी राजर्षि को पुनः दूसरे अनिष्टश्रवण से दूर रखते हुए ही मैं ऐसा कह रहा हूँ ।

युधिष्ठिर—(आँसू गिराता हुआ) ठीक महर्षे, ठीक ! आपने स्नेहयुक्त बातें कही हैं ।

कञ्चुकी—महाराज ! शोक से अन्धे होकर देवतुल्य आप भी क्यों साधारण व्यक्ति के समान क्षत्रिय धर्म का त्याग कर रहे हैं ?

युधिष्ठिर—आर्य जयन्धर !

शक्ष्यामि नो परिघपीवरबाहुदण्डौ वित्तेशशक्रवरुणाधिकवीर्यसारौ।
भीमार्जुनौ क्षितितले प्रविचेष्टमानौ द्रष्टुं तयोश्च निधनेन रिपुं कृतार्थम् ॥

अयि पाञ्चालतनये, मद्दुर्नयप्राप्तशोच्यदशे! यथा संदीप्यते पावकस्तथा सहितावेव बन्धुजनं संभावयावः।

अन्वयः—परिघपीवरबाहुदण्डौ, वित्तेशशक्रवरुणाधिकवीर्यसारौ, क्षितितले, प्रविचेष्टमानौ, भीमार्जुनौ; च, तयोः, निधनेन, कृतार्थम्, रिपुम्, द्रष्टुम्, नो, शक्ष्यामि ॥ २२ ॥

व्याख्या—शक्ष्यामीति। परिघपीवरबाहुदण्डौ—परिघवत्=परिघातनवत्, अर्गलावदिति यावत् पीवरौ=स्थूलौ, पुष्टौ, मांसलौ वेत्यर्थः, बाहुदण्डौ= दण्डसदृशौ बाहू ययोस्तौ, वित्तेशशक्रवरुणाधिकवीर्यसारौ—वित्तेशः = कुबेरः, शक्रः = इन्द्रः, वरुणः = अपां पतिः, इति वित्तेशशक्रवरुणाः, तेभ्यः अधिकः वीर्यसारः = बलवत्त्वम् ययोस्तौ, क्षितितले = पृथ्वीतले, प्रविचेष्टमानौ = प्रकर्षेण चेष्टाशून्यौ, मृतावित्यर्थः, भीमार्जुनौ = वृकोदरकिरीटिनौ, च = तथा, तयोः = तादृशयोः शूरयोरित्यर्थः, निधनेन = मरणेन, कृतार्थम् = कृतकृत्यम्, रिपुम् = शत्रुम्, दुर्योधनरूपमिति भावः, द्रष्टुम् = अवलोकयितुम्, नो=नहि, शक्ष्यामि = समर्थो भविष्यामि। अतस्तत्र गमनं न युक्तमिति भावः ॥ २२ ॥

टिप्पणी—शक्ष्यामीति। पद्य के प्रथम चरण में समासगत लुप्तोपमा अलङ्कार है। वसन्ततिलका छन्द है ॥ २२ ॥

मद्दुर्नयप्राप्तशोच्यदशे—मम = युधिष्ठिरस्य, यो दुर्नयः = दुर्नीतिः तेन प्राप्ता = आसादिता शोच्या = चिन्तनीया दशा = अवस्था यया सा तत्सम्बुद्धौ।

मुद्गर के सदृश स्थूल बाहुदण्डवाले, कुवेर, इन्द्र तथा वरुण से भी अधिक बलशाली, पृथ्वीतल पर चेष्टाशून्य पड़े हुए (मरे हुए) भीम और अर्जुन को तथा उन दोनों की मृत्यु से कृतकृत्य हुए शत्रु को (मैं) नहीं देख सकूंगा। (इसलिए युद्धभूमि में जाना मुझे अच्छा नहीं लगता) ॥ २२ ॥

अरी पाञ्चालपुत्री! मेरी दुर्नीति से शोचनीय दशा को प्राप्त होने वाली! ज्यों ही आग जलाई जाय त्यों ही हम दोनों एक साथ ही (अपने) बन्धु का (अनुगमन द्वारा) सम्मान करेंगे।

द्रौपदी—अज्ज, करेहि दारुसंचअम् । पज्जलीअदु चिदा । तुवरदि मे हिअअं णाधं पेक्खिदुम् (सर्वतोऽवलोक्य ।) कहं ण को वि णाधेण विणा महाराअस्स वअणं करेदि । हा णाह भीमसेण, तं एव्व एदं राअउलं तुए विरहिदं पडिअणो हि संपदं परिहरदि । (आर्य, कुरु दारुसंचयम् । प्रज्वाल्यतां चिता । त्वरते मे हृदयं नाथ प्रेक्षितुम् । कथं न कोऽपि नाथेन विना महाराजस्य वचनं करोति । हा नाथ भीमसेन, तदेवेदं राजकुलं त्वया विरहितं परिजनोऽपि सांप्रतं परिहरति ।)

राक्षसः—सदृशमिदं भरतकुलवधूनां यत्पत्युरनुमरणम् ।

युधिष्ठिरः—महर्षे, न कश्चिच्छृणोति तावदावयोर्वचनम् । तदिन्धन-प्रदानेन प्रसादः क्रियताम् ।

राक्षसः—मुनिजनविरुद्धमिदम् । (स्वगतम्) पूर्णो मे मनोरथः ।

द्रौपदीति । दारुसञ्चयम् = काष्ठसंग्रहम् । त्वरते = शीघ्रतां कुरुते, प्रेक्षितुम् = द्रष्टुम् । परिजनः = सेवकः, परिहरति = त्यजति ।

राक्षस इति । पत्युः = भर्त्तुः, अनुमरणम् = पतिमरणानन्तरम् । तेनैव सह चिताप्रवेशद्वारा आत्ममरणम् ।

युधिष्ठिर इति । इन्धनप्रदानेन = काष्ठप्रदानेन, प्रसादः = प्रसन्नता ।

द्रौपदी—आर्य ! लकड़ियां इकट्ठी करो । चिता जलाओ । स्वामी को देखने के लिए मेरा हृदय जल्दीबाजी कर रहा है । (चारों ओर देखकर) मेरे स्वामी (भीम) के न रहने पर क्यों नहीं कोई महाराज की आज्ञा का पालन कर रहा है ? हा नाथ भीमसेन ! तुम्हारे न रहने पर इस समय सेवक लोग भी इस राजकुल की इस प्रकार उपेक्षा कर रहे हैं ।

राक्षस—पति के पीछे तुरन्त मर जाना भरतकुल की वधूओं के अनुरूप ही है ।

युधिष्ठिर—महर्षे ! हमदोनों की बातों को कोई नहीं सुन (मान) रहा है । इसलिए (चिता के लिए) लकड़ियाँ देकर आप ही (हमें) अनुगृहीत करें ।

राक्षस—यह मुनियों के लिए विपरीत कार्य है । (मन ही मन) मेरा

यावदनुपलक्षितः समिन्धयामि वह्निम् । (प्रकाशम् ।) राजन्, न शक्नुमो वयमिहैव स्थातुम् । (इति निष्क्रान्तः ।)

युधिष्ठिरः—कृष्णे, न कश्चिदस्मद्वचनं करोति। भवतु । स्वयमेवाहं दारुसंचयं कृत्वा चितामादीपयामि ।

द्रौपदी—तुवरदु तुवरदु महाराओ। (त्वरतां त्वरतां महाराजः ।)

(नेपथ्ये—कलकलः ।)

द्रौपदी—(सभयमाकर्ण्य ।) महाराअ, कस्स वि एसो तेजोबलदप्पिदस्स विसमो सङ्खणिग्घोसो सुणीअदि । अवरं वि अप्पिअं सुणिदुं अत्थि णिब्बन्धो तदो विलम्बी अदु ! (महाराज, कस्याप्येष तेजोबलदर्पितस्य विषमः शङ्खनिर्घोषः श्रूयते । अपरमप्यप्रियं श्रोतुमस्ति निर्बन्धस्ततो विलम्ब्यताम् ।)

युधिष्ठिरः—न खलु विलम्ब्यते । उत्तिष्ठ ।

अनुपलक्षितः = अनवलोकितः, वह्निम् = अग्निम्, समिन्धयामि = प्रज्वलयामि ।

युधिष्ठिर इति । दारुसञ्चयम्=काष्ठसंग्रहम्, आदीपयामि=प्रज्वालयामि ।

द्रौपदीति । तेजोबलदर्पितस्य–तेजश्च बलञ्चेति तेजोबले ताभ्यां दर्पितस्य= गर्वितस्य, विषमः=भयङ्करः, शङ्खनिर्घोषः=शङ्खशब्दः । निर्बन्धः = आग्रहः, विलम्ब्यते = विलम्बः क्रियते ।

मनोरथ पूरा हो गया । अब छिपकर चिता में आग लगा दूंगा । (प्रकट रूप से) राजन् ! हम यहाँ नहीं ठहर सकते । (यह कहकर निकल जाता है ।)

युधिष्ठिर—कृष्णे ! कोई भी मेरी बात नहीं मान रहा है । अच्छा, मैं स्वयं ही काष्ठसंग्रह कर चिता जलाता हूँ ।

द्रौपदी—महाराज जल्दी करें, जल्दी करें ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

द्रौपदी—(भयपूर्वक सुनकर) महाराज ! तेज और बल से गर्वित किसी का यह शङ्खनाद सुनाई पड़ रहा है । क्या आप कोई अन्य अप्रिय संवाद सुनने का विचार करते हैं जो बिलम्ब कर रहे हैं ?

युधिष्ठिर—विलम्ब नहीं कर रहा हूँ । उठो ।

(इति सर्वे परिक्रामन्ति ।)

युधिष्ठिरः—अयि, पाञ्चालि, अम्बायाः सपत्नीजनस्य च किंचित्संदिश्य निवर्तय परिजनम् ।

द्रौपदी—महाराअ, अम्बाए एवं संदिसिस्सम्—'जो सो वअहिडिम्ब-किम्मीरजडासुरजरासंधविजअमल्लो वि दे मज्झमपुत्तो मम हदासाए पक्खवादेण परलोअं गदो त्ति' । (महाराज अम्बायै एवं संदेक्ष्यामि—'यः बकहिडिम्बकिर्मीरजटासुरजरासन्धविजयमल्लोऽपि ते मध्यमपुत्रो मम हताशायाः पक्षपातेन परलोकं गत' इति ।)

युधिष्ठिरः—भद्रे बुद्धिमतिके, उच्यतामस्मद्वचनादम्बा ।

येनासि तत्र जतुवेश्मनि दीप्यमाने
उत्तारिता सह सुतैर्भुजयोर्बलेन ।
तस्य प्रियस्य बलिनस्तनयस्य पाप-
माख्यामि तेऽम्ब कथयेत्कथमीदृगन्यः ।। २३ ।।

युधिष्ठिर इति । अम्बायाः=मातुः कुन्त्याः, सपत्नीजनस्य=सुभद्रादेः, संदिश्य=संदेशं प्रेष्य, परिजनम् = सेवकजनम्, निवर्त्तय=स्वगृहाभिमुखं परावर्तय ।

अन्वयः—(हे) अम्ब ! येन, तत्र, जतुवेश्मनि, दीप्यमाने, (सति), भुजयोः, बलेन, (त्वम्), सुतैः, सह, उत्तारिता, असि, तस्य, (ते), प्रियस्य, बलिनः, तनयस्य, पापम्, ते, आख्यामि, अन्यः, ईदृक्, कथम्, कथयेत् ? ।।२३।।

(सब लोग चल रहे हैं ।)

युधिष्ठिर—अरी पाञ्चाली ! माता एवं (सुभद्रा आदि) सौतों को कुछ सन्देश भेजकर सेवकों को लौटा दो ।

द्रौपदी—महाराज ! माता को इस प्रकार संदेश भेजूंगी—"बक, हिडिम्ब, किर्मीर, जटासुर एवं जरासंध को जीतने में मल्ल (योद्धा) जो आपका मझला पुत्र था वह मुझ अभागी के प्रति पक्षपात (प्रेम) के कारण परलोक को सिधार गया ।"

युधिष्ठिर—भद्रे ! बुद्धिमतिके ! माता को मेरी ओर से कहना—
हे माता ! उस लाक्षागृह के जलने पर जिस (भीमसेन) ने बाहुबल से

आर्य जयंधर, त्वया सहदेवसकाशं गन्तव्यम्। वक्तव्यश्च तत्र-भवान्माद्रेयः कनीयान्सकलकुरुकुलकमलाकरवडवानलो युधिष्ठिरः परलोक-मभिप्रस्थितः प्रियानुजमप्रतिकूलं सततमाशंसनीयमसंमूढव्यसनेऽभ्यु-दये च धृतिमन्तं भवन्तमविरलमालिङ्ग्य शिरसि चाघ्रायेदं प्रार्थयते—

व्याख्या—येनासीति। (हे) अम्ब = हे मातः! येन = येन भीमसेनेन, तत्र = तस्मिन्, जतुवेश्मनि = लाक्षागृहे, दीप्यमाने = अग्निना प्रज्वाल्यमाने सति, भुजयोः = बाह्वोः, बलेन = पराक्रमेण, (त्वम् = कुन्ती), सुतैः = पुत्रैः, सह = साकम्, उत्तारिता = बहिरानीता, रक्षितेत्यर्थः, असि = आसीः, तस्य = तादृशस्य, (ते = तव), प्रियस्य = स्नेहभाजनस्य, बलिनः = पराक्रमिणः, तनयस्य = पुत्रस्य, भीमस्येत्यर्थः, पापम् = मृत्युरूपं पापमित्यर्थः, ते = तुभ्यम्, आख्यामि = कथयामि, अन्यः = इतरः, मदतिरिक्तः इत्यर्थः, ईदृक् = इत्थम्, कथम् = केन प्रकारेण, कथयेत् = विज्ञापयेत्? मदतिरिक्तो नान्यः कश्चिन्नि-वेदयेदेतादृशं क्रूरसमाचारमिति भावः॥ २३॥

टिप्पणी—येनासीति। प्रस्तुत पद्य में सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तर न्यास अलङ्कार है। वसन्ततिलका छन्द है॥२३॥

सहदेवसकाशम् = सहदेवसमीपम्। माद्रेयः = माद्रीपुत्रः, कनीयान् = लघुः, सकलकुरुकुलकमलाकरवडवानलः—सकलम् = सम्पूर्णम्, कुरुकुलम् = कुरुवंशः एव कमलाकरः = पङ्कजवनिः पद्मपूर्णं सरो वा, तत्र वडवानलः = दावाग्निः,

(तुम्हें) पुत्रों सहित बचाया था, उसी (तुम्हारे) प्रिय तथा शक्तिशाली पुत्र के (मृत्युरूप) पाप को मैं तुझे बताता हूँ; दूसरा इस प्रकार कैसे कह पायेगा?॥ २३॥

आर्य जयन्धर! तुम सहदेव के पास जाओ और श्रीमान् कनिष्ठ माद्रीपुत्र (सहदेव) से कहना—समस्त कुरुवंशरूपी कमलपूर्ण सरोवर के लिए वनाग्नि के समान परलोक को सिधारता हुआ युधिष्ठिर सर्वदा अनुकूल रहनेवाले, आशीर्वाद के योग्य, विपत्ति एवं उन्नति में समान रहनेवाले तथा धैर्यशाली प्रिय छोटे भाई आपको अनवरत आलिङ्गन करके तथा मस्तक सूंघकर प्रार्थना करता है—

मम हि वयसा दूरेण त्वं श्रुतेन समो भवन्
कृतसहजया बुद्ध्या ज्येष्ठो मनीषितया गुरुः ।
शिरसि मुकुलौ पाणी कृत्वा भवन्तमतोऽर्थये
मयि विरलतां नेयः स्नेहः पितुर्भव वारिदः ॥ २४ ॥

परलोकम् = स्वर्गम्, अभिप्रस्थितः = गन्तुमारब्धः, सततम् = निरन्तरम्, आशंसनीयम्=आशीर्वादार्हम्, व्यसने=विपत्तौ, अभ्युदये=उत्कर्षे च, असंमूढम् = अनुद्विग्नम्, समानमित्यर्थः, धृतिमन्तम् = धैर्यशालिनम्, अविरलम् = अनवरतम्, आलिङ्ग्य=परिष्वज्य, शिरसि=मस्तके, आघ्राय = घ्रात्वा, लालनं कृत्वेत्यर्थः ।

अन्वयः—हि, मम, वयसा, दूरेण, (उपलक्षितः), त्वम् (तथापि), श्रुतेन, भवान्, समः, कृतसहजया, बुद्ध्या, ज्येष्ठः, मनीषितया, गुरुः, अतः, शिरसि, पाणी, मुकुलौ, कृत्वा, भवन्तम्, अर्थये—मयि, स्नेहः, विरलताम्, नेयः, पितुः, वारिदः, भव ॥ २४ ॥

व्याख्या—ममेति । हि = यद्यपि, मम = युधिष्ठिरस्य, वयसा = अवस्थया, दूरेण = विप्रकृष्टेन (उपलक्षितः), वयसि ममापेक्षया कनिष्ठ इति भावः, त्वम् = सहदेवः (तथापि) श्रुतेन = शास्त्राध्ययनजन्यज्ञानादिना, भवान् = त्वम्, समः = समानः, कृतसहजयाकृता = उपार्जिता तथा सहजा=स्वाभाविकी तया बुद्ध्या = धिया, ज्येष्ठः श्रेष्ठः, मनीषितया = वैदुष्येन, गुरुसदृशः, अतः= एतस्माद्धेतोः, शिरसि = मस्तके, पाणी = हस्तौ, मुकुलौ = कुड्मलसदृशौ, कृत्वा = विधाय, भवन्तम् = श्रीमन्तम् त्वाम्, अर्थये = याचे—मयि = ज्येष्ठ-भ्रातरि युधिष्ठिरे इत्यर्थः, स्नेहः = प्रीतिः, विरलताम्=कृशताम् नेयः=प्रापणीयः, पितुः = जनकस्य, पितृगणस्य कृते इत्यर्थः, वारिदः = जलदः, तर्पणजलदातेत्यर्थः, भव । अन्यथा तर्पणाभावे पितृणामधोगतिर्भवेदिति भावः ॥ २४ ॥

यद्यपि तुम आयु में मुझसे दूर (छोटे हो तथापि) आप शास्त्राध्ययनजन्य ज्ञान में मेरे बराबर, उपार्जित एवं स्वाभाविक बुद्धि में मुझसे बड़े तथा विद्वत्ता में मेरे गुरुसदृश हैं अतः मस्तक पर हाथों को मुकुल बनाकर (जोड़कर) आप से याचना करता हूँ कि मेरे प्रति स्नेह को शिथिल कर दें तथा पिता (या पितरों) के लिए जलदाता (तिलाञ्जलिदाता) बने रहें ॥ २४ ॥

अपि च। बाल्ये संवर्धितस्य नित्याभिमानिनोऽस्मत्सदृशहृदयसारस्यापि नकुलस्य ममाज्ञया वचने स्थातव्यम्। नानुगन्तव्याऽस्मत्पदवी। त्वया हि वत्स,

विस्मृत्यास्मान्श्रुतिविशदया स्वाग्रजौ चात्मबुद्ध्या
क्षीणे पाण्डावुदकपृषतानश्रुगर्भान् प्रदातुम्।
दायादानामपि तु भवने यादवानां कुले वा
कान्तारे वा कृतवसतिना रक्षणीयं शरीरम्॥ २५॥

टिप्पणी—ममेति। प्रस्तुत पद्य में उल्लेखालङ्कार तथा हरिणी छन्द है। कहीं कहीं "दूरेण त्वं" के स्थान में "दूरेणाल्पः" पाठ-भेद है॥ २४॥

अपि चेति। संवर्धितस्य = सम्यक् लालितस्य, नित्याभिमानिनः = सततहङ्कारिणः, अस्मत्पदवी = अस्माकं मार्गः।

अन्वयः—श्रुतिविशदया, आत्मबुद्ध्या, अस्मान्, च, स्वाग्रजौ, विस्मृत्य, पाण्डौ, क्षीणे, (सति), अश्रुगर्भान्, उदकपृषतान्, प्रदातुम्, दायादानाम्, तु, भवने, वा, यादवानाम्, कुले, वा, कान्तारे, कृतवसतिना, अपि, शरीरम्, रक्षणीयम्॥ २५॥

व्याख्या—विस्मृत्येति। श्रुतिविशदया = शास्त्राध्ययनविशुद्धया, आत्मबुद्ध्या = स्वमत्या, अस्मान् = युधिष्ठिरमित्यर्थः, च = तथा, स्वाग्रजौ = स्वज्येष्ठभ्रातरौ, भीमार्जुनाविति भावः, विस्मृत्य = स्मृतिपथादपसार्येत्यर्थः, पाण्डौ = अस्माकं पितरि, क्षीणे=नष्टे सति, अश्रुगर्भान् = नयनजलमिश्रितान्, उदकपृषतान् = जलबिन्दून्, प्रदातुम् = प्रदानाय, दायादानाम् = बान्धवानाम्,

और भी। बचपन में अच्छी तरह दुलराये गये, नित्य अहङ्कारी तथा हमारे ही समान हार्दिक बलवाले नकुल की बातों में मेरी आज्ञा से रहना। हमलोगों के मार्ग का अनुसरण नहीं करना। हे वत्स! तुम्हें—

ज्ञान से विशुद्ध बुद्धि द्वारा मुझे एवं अपने दोनों ही बड़े भाइयों (भीम और अर्जुन) को भुलाकर (पिता) पाण्डु के नष्ट हो जाने पर अश्रुमिश्रित जलबिन्दु प्रदान करने के लिए सम्बन्धियों के घर में अथवा यदुवंशियों के घर में अथवा वन में निवास करके भी (अपने) शरीर की रक्षा करनी है॥ २५॥

गच्छ जयंधर, अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया शापितेन भवताऽकालहीन-मिदमवश्यमावेदनीयम् ।

द्रौपदी—हला बुद्धिमदिए, भणाहि मह वअणेण पिअसहीं सुभद्दाम्-अज्ज वच्छाए उत्तराए आवण्णसत्ताए चउत्थो मासो वट्टदि । सव्वधाणाविउले तं णिक्खिवेसि । कदा विइदो परलोअगदस्स ससुरउलस्स अम्हाणंत्ति सलिलबिन्दुदो भविस्सदि'त्ति । (हला बुद्धिमतिके, भण, मम वचनेन प्रियसखीं सुभद्राम्—अद्य वत्साया उत्तराया आपन्नसत्त्वायाश्चतुर्थो मासो वर्तते ।

भवने = गृहे, वा = अथवा, यादवानाम् = यदुवंशोद्भवानाम्, कुले = गृहे, वा = अथवा, कान्तारे = विपिने, कृतवक्षतिना = विहितनिवासेन, अपि, शरीरम् = वपुः, रक्षणीयम् = पालनीयम् । कुत्राऽपि केनापि च प्रकारेण शरीररक्षाऽवश्यं विधेयेति भावः ।। २५ ।।

टिप्पणी—विस्मृत्येति । अन्य संस्करणों में "स्वाग्रजो चात्मवुद्धया" के स्थान में "प्रज्ञयासानुजाश्च" तथा "क्षीणे पाण्डो" के स्थान में "पिण्डान्पाण्डोः" पाठ-भेद मिलता है । अस्मान्—यहाँ पर "एकवचनं न प्रयुञ्जीत" के नियमानुसार युधिष्ठिर ने अपने लिए "अस्मान्" इस बहुवचनान्तरूप का प्रयोग किया है । उदकपृषतान्—पृषत बिन्दु (बूंद) को कहते हैं—"पृषन्ति बिन्दु पृषताः" इत्यमरः । कुले-कुल गृह के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है—"कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगुणेऽपि च । भवने च तनौ" इति मेदिनी । यहाँपर प्रसङ्गानुसार गृह अर्थ में ही इसका प्रयोग किया गया है । पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।। २५ ।।

अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया—मम शरीरस्य = देहस्य, स्पृष्टिकया = स्पर्शनेन, शापितेन = दत्तशपथेन, अकालहीनम्—कालेन = समयेन हीनम् = च्युतमिति कालहीनम् न कालहीनमकालहीनम्, समयमनतिक्रम्येत्यर्थः ।

द्रौपदीति । उत्तरायाः = अभिमन्युपत्न्याः, आपन्नसत्त्वायाः—आपन्नः =

जाओ जयन्धर ! हमारे शरीर को छूकर शपथ लिये हुए आप विना समय गँवाये ही अवश्य यह निवेदन करें ।

द्रौपदी—अरी बुद्धिमतिके ! मेरी ओर से प्रिय सखी सुभद्रा से कहना—

सर्वथा नाभिकुले तां निक्षिपसि । कदापीतः परलोकगतस्य श्वशुरकुलस्यास्माकमपि सलिलविन्दुदो भविष्यति' इति ।)

युधिष्ठिरः—(सास्रम् ।) भो कष्टम् ।

शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे
पीनस्कन्धे सुसदृशमहामूलपर्यङ्कवन्धे ।
दग्धे दैवात्सुमहति तरौ तस्य सूक्ष्माङ्कुरेऽस्मि—
न्नाशाबन्धं कमपि कुरुते छाययार्थी जनोऽयम् ।। २६ ।।

प्राप्तः सत्त्वः = गर्भः यया तस्याः । नाभिकुले = पितृकुले, सुभद्रायाः पितृकुले= यादवानां गृहे अथवा उत्तरायाः पितृकुले = राज्ञो विराटस्य गृहे इति भावः । इतः = अस्माल्लोकात्, सलिलविन्दुदः = जलबिन्दुदाता ।

अन्वयः—छायया, अर्थी, अयम्, जनः, शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले, मण्डिताशे, पीनस्कन्धे, सुसदृशमहामूलपर्यङ्कबन्धे, सुमहति, तरौ, दैवात्, दग्धे, तस्य, अस्मिन्, सूक्ष्माङ्कुरे, कम्, अपि, आशाबन्धम्, कुरुते ।। २६ ।।

व्याख्या—शाखारोधेति । छायया = अनातपेन, अर्थी–अर्थः = प्रयोजनम् अस्ति अस्येति अर्थी = इच्छुः, याचको वा, अयम् = एषः, जनः = द्रौपदीरूपो जन इत्यर्थः, शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले–शाखानाम् = विटपानाम् रोधेन = अवरोधेन, बाहुल्येनेत्यर्थः, स्थगितम् = आच्छादितम्, वसुधामण्डलम् = भूमण्डलं येन तस्मिन्, मण्डिताशे–मण्डिताः = भूषिताः आशाः = दिशः येन तस्मिन्, पीन-

'अभी पुत्री उत्तरा को गर्भ धारण किये यह चोथा महीना है । किसी भी तरह उसे पितृकुल में रख दो । कदाचित (वही) यहाँ से परलोक को गये श्वसुर कुल को तथा हम लोगों को जलबिन्दु देने वाला हो जाय ।

युधिष्ठिर—(आँसुओं के साथ) ओह ! (महान्) कष्ट है !

छाया की इच्छा रखने वाला यह व्यक्ति (द्रौपदी) शाखाओं के अवरोध (बाहुल्य) से भूमण्डल को ढँकने वाले, दिशाओं को भूषित करनेवाले, मोटे तने वाले और सुयोग्य (मजबूत) जड़ों के चारों ओर बन्धन (आल वाल या क्यारी) वाले अत्यन्त विशाल वृक्ष के दुर्भाग्य के जल जाने पर उसके इस सूक्ष्म अङ्कुर पर आशा बाँध रहा है ।। २६ ।।

साधु । इदानीमध्यवसितं करणीयम् । (कञ्चुकिनमवलोक्य ।) आर्य जयंधर, स्वशरीरेण शापितोऽसि तथापि न गम्यते ।

कञ्चुकी—(साक्रन्दम् ।) हा देव पाण्डो, तव सुतानामजातशत्रुभीमार्जुननकुलसहदेवानामयं दारुणः परिणामः । हा देवि कुन्ति भोजराजभवनपताके,

---

स्कन्धे–पीनः = पीवरः स्कन्धः = वृक्षप्रकाण्डः यस्य तस्मिन्, सुसदृशमहामूलपर्यङ्कबन्धे—सुसदृशानि = सुयोग्यानि, सुदृढानीत्यर्थः, महान्ति = विशालानि मूलानि, तेषां परितः = सर्वतः, अङ्कबन्धः = अङ्करचना, आलवालरचना यस्य तस्मिन्, सुमहति = अतिविशाले, तरौ = वृक्षे, दैवात् = नियतिवशात् दुर्भाग्यादित्यर्थः, दग्धे = भस्मीभूते, तस्य = तादृशस्य, पाण्डुवंशरूपवृक्षस्येत्यर्थः, अस्मिन् = एतस्मिन्, उत्तरागर्भस्थे इत्यर्थः, सूक्ष्माङ्कुरे = अतिक्षीणे अङ्कुरे, कमपि=अनिर्वचनीयम्, आशाबन्धम् = अभिलाषाश्रयम्, कुरुते=करोति ॥२६॥

टिप्पणी—शाखारोधेति । तरौ = यहाँ पर पाण्डुवंशरूपी वृक्ष अभिप्रेत है । सूक्ष्माङ्कुरे = उत्तरा के गर्भ का भ्रूण अभिप्रेत है । प्रस्तुत पद्य में रूपकालङ्कार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ २६ ॥

अध्यवसितम् = निश्चितम्, करणीयम् = कर्त्तव्यम् ।

कञ्चुकीति । दारुणः = भीषणः, परिणामः = अवस्थितिः, भोजराजभवनपताके—भोजराजस्य = कुन्तीपितुः यद् भवनम्=गृहम् तत्र पताका = वैजयन्ती, इव तत्सम्बोधने ।

अच्छा । जो निश्चित किया गया है वही अब करना चाहिए । (कञ्चुकी को देखकर) आर्य जयन्धर ! अपने शरीर की सौगन्द दिलाये गये हो फिर भी नहीं जा रहे हो ?

कञ्चुकी—(रोते हुए) हा महाराज पाण्डु ! आपके पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का यह दारुण अन्त ! हा भोजराज के भवन की पताका कुन्ती !

भ्रातुस्ते तनयेन शौरिगुरुणा श्यालेन गाण्डीविन-
स्तस्यैवाखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने दन्तिनः।
आचार्येण वृकोदरस्य हलिनोन्मत्तेन मत्तेन वा
दग्धं त्वत्सुतकाननं ननु मही यस्याश्रयाच्छीतला ॥ २७ ॥
(इति रुदन्निष्क्रान्तः ।

अन्वयः—ते, भ्रातुः, तनयेन; शौरिगुरुणा; गाण्डीविनः, श्यालेन; अखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने, दन्तिनः; तस्य, एव, वृकोदरस्य, आचार्येण, मत्तेन, वा, उन्मत्तेन, हलिना, यस्य, आश्रयात्, ननु, मही, शीतला, (तत्), त्वत्सुतकाननम्, दग्धम् ॥ २७ ॥

व्याख्या—भ्रातुरिति । ते = तव, कुन्त्याः इत्यर्थः, भ्रातुः = सहोदरस्य, वसुदेवस्येत्यर्थः, तनयेन = पुत्रेण, शौरिगुरुणा = शौरिः = श्रीकृष्णः तस्य गुरुः = ज्येष्ठः तेन; गाण्डीविनः = अर्जुनस्य, श्यालेन = पत्न्याः भ्रात्रा, अखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने—अखिलाः = समग्राः ये धार्तराष्ट्राः = धृतराष्ट्रपुत्राः दुर्योधनादयः ते एव नलिन्यः = कमलिन्यः तासां व्यालोलने = मर्दने, दन्ती = हस्ती इव तस्य, तस्य = युद्धे व्यापादितस्येत्यर्थः, एव, वृकोदरस्य = भीमस्य, आचार्येण = गुरुणा, मत्तेन = मदिराक्षीवेण, वा = अथवा, उन्मत्तेन = उन्मादयुक्तेन, हलिना = हलधरेण, बलरामेणेत्यर्थः, यस्य = सुतकाननस्य, आश्रयात् = सेवनात्, नन्विति निश्चये, मही = पृथ्वी, शीतला = अनुष्णा, सुप्रसन्नेत्यर्थः, तदिति शेषः, त्वत्सुतकाननम्—तव = भवत्याः कुन्त्याः सुताः = पुत्राः एव काननम् = वनम्, दग्धम् = भस्मीकृतम्, विनाशितमिति यावत् ॥ २७ ॥

टिप्पणी—भ्रातुरिति । प्रस्तुत पद्य में विषमालङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ २७ ॥

तुम्हारे भाई के पुत्र; कृष्ण के बड़े; अर्जुन के साले और समग्र धृतराष्ट्रपुत्ररूपी कमलिनियों को मर्दन करने में हाथी के समान उस भीम के ही गुरु हलधर (बलराम) ने मदमत्त अथवा पागल होकर तेरे पुत्ररूपी वनको, जिसके आश्रय से यह पृथ्वी शीतल थी, जला दिया है ॥ २७ ॥

(इस प्रकार रोता हुआ निकल जाता है ।)

युधिष्ठिरः—जयंधर जयंधर,

(प्रविश्य ।)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—वक्तव्यमिति ब्रवीमि । न पुनरेतावन्ति भागधेयानि नः, यदि कदाचिद्विजयी स्याद्वत्सोऽर्जुनस्तद्वक्तव्योऽस्मद्वचनाद्भवता ।

हली हेतुः सत्यं भवति मम वत्सस्य निधने
तथाप्येष भ्राता सहजसुहृदस्ते मधुरिपोः ।
अतः क्रोधः कार्यो न खलु मयि चेत्प्रेम भवतो
वनं गच्छेर्मा गाः पुनरकरुणां क्षात्रपदवीम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—सत्यम्, मम, वत्सस्य, निधने, हली, हेतुः, भवति; तथापि, एषः, ते, सहजसुहृदः, मधुरिपोः, भ्राता; अतः, (तस्मिन्), क्रोधः, न, खलु, कार्यः, चेत्, भवतः, मयि, प्रेम, वनम्, गच्छेः, अकरुणाम्, क्षात्रपदवीम्, पुनः, मागाः ॥ २८ ॥

व्याख्या—हलीति । सत्यम् = वस्तुतः यद्यपि, मम = युधिष्ठिरस्य, वत्सस्य = प्रियानुजस्य भीमस्येत्यर्थः, निधने = मरणे, हली = हलधरः, बलरामः इत्यर्थः, हेतुः = कारणम्, भवति = जायते, तथापि, एषः = अयम्, हलीत्यर्थः, ते = तव, सहजसुहृदः = स्वाभाविकमित्रस्य, मधुरिपोः = मधुनामकराक्षसस्य

युधिष्ठिर—जयंधर ! जयंधर !

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दें ।

युधिष्ठिर—कहना चाहिए इसलिए कह रहा हूँ । हमारे ऐसे भाग्य तो नहीं हैं । यदि कदाचित् वत्स अर्जुन विजयी हो जाय तो उसे मेरी ओर से आप कह देंगे—यह सत्य है कि मेरे वत्स (भीम) की मृत्यु में हलधारी (बलराम) कारण है तथापि यह तुम्हारे सहजमित्र मधुसूदन (श्रीकृष्ण) का भाई है । इसलिए (उस पर) क्रोध नहीं करना चाहिए । यदि आपका मुझ पर स्नेह है तो वन को चले जाना किन्तु निष्करुण क्षत्रियोचित मार्ग का अवलम्बन न करना ॥ २८ ॥

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः।)

युधिष्ठिरः—(अग्निं दृष्ट्वा, सहर्षम्।) कृष्णे, ननूद्धतशिखाहस्ताहूतास्मद्विधव्यसनिजनः समिद्धो भगवान्हुताशनस्तत्रेन्धनीकरोम्यात्मानम्।

द्रौपदी—पसीददु पसीददु महाराओ इमिणा अपच्छिमेण पणएण। अहं दाव अग्गदो पविसामि। (प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजोऽनेनापश्चिमेन प्रणयेन। अहं तावदग्रतः प्रविशामि।)

शत्रोः, श्रीकृष्णस्येत्यर्थः, भ्राता = अग्रजः, अतः = एतस्मात् (तस्मिन् = बलरामे), क्रोधः = कोपः, न = नहि, खल्विति निश्चये, कार्यः = विधेयः, चेत् = यदि, भवतः = तव, मयि = युधिष्ठिरे, प्रेम = स्नेहः, तर्हीति शेषः, वनम् = अरण्यम्, गच्छेः = व्रजेः, (किन्तु) अकरुणाम् = दयारहिताम्, क्षात्रपदवीम् = क्षत्रियमार्गम्, युद्धादिकं क्षत्रियोचितमाचरणमिति भावः, पुनः = मुहुः, मा गाः = न प्राप्स्यसि, न स्वीकरिष्यसीति भावः ॥ २८ ॥

टिप्पणी—हलीति। मागाः—यहाँ पर "माङि लुङ्" से माङ् के योग में लुङ् लकार आया है। पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है ॥२८॥

युधिष्ठिर इति। अग्निम् = चितास्थमग्निमिति भावः। उद्धतशिखाहस्ताहूतास्मद्विधव्यसनिजनः—उद्धताः = उत्थापिताः याः शिखाः = ज्वालाः ताः एव हस्ताः = कराः इति उद्धतशिखाहस्ताः तैः आहूताः = आकारिताः अस्मद्विधाः = मादृशाः व्यसनिजनाः = पीडितव्यक्तयः येन सः तथोक्तः, समिद्धः = प्रदीप्तः, हुताशनः = अग्निः, इन्धनीकरोमि = अनिन्धनम् इन्धनं सम्पद्यते तत्करोमि, भस्मसात्करोमीत्यर्थः।

द्रौपदीति। अपश्चिमेन = अन्तिमेन, प्रणयेन = प्रार्थनया।

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा। (यह कहकर निकल जाता है।)

युधिष्ठिर—(आग को देखकर हर्षपूर्वक) कृष्णे ! ऊपर को उठी हुई ज्वालाओं वाले हाथों से हमारे जैसे पीडित व्यक्तियों को बुलाते हुए भगवान् अग्निदेव प्रदीप्त हो रहे हैं इसलिए मैं उसमें अपने को ईंधन बनाता हूँ।

द्रौपदी—कृपा कीजिए महाराज, मेरी इस अन्तिम प्रार्थना को स्वीकार करके कृपा कीजिए। पहले मैं प्रवेश करूँगी।

युधिष्ठिरः—सहितावेवाभ्युदयमुपभोक्ष्यावहे ।

चेटी—हा भअवन्तो लोअवाला, परित्ताअह परित्ताअह । एसो क्खु सोमवंसराएसी राअसूअसंतप्पिदहव्ववाहो खण्डवसंप्पिदहुदवहस्स किरिडिणो जेट्ठो भा सुग्गहीहणामहेओ महाराअजुहिट्ठिरो । एसा वि पाञ्चालराअतणआ देवी वेदिमज्जसंभवा जण्णसेणी । दुवे विणिक्करुणजलणस्सप्पवेसेण इन्धणीहोन्ति । तापरित्ताअह अज्जा, परित्ताअह । कधं ण कोवि परित्ताअदि । (तयोरग्रतः पतित्वा ।) किंववसिदं देवीए देवेण अ । (हा भगवन्तो लोकपालाः, परित्रायध्वं परित्रायध्वम् । एष खलु सोमवंशराजर्षी राजसूयसन्तर्पितहव्यवाहः खाण्डवसन्तर्पितहुतवहस्य किरीटिनो ज्येष्ठो भ्राता सुगृहीतनामधेयो महाराजयुधिष्ठिरः एषापि पाञ्चालराजतनया देवी वेदिमध्यसम्भवा याज्ञसेनी । द्वावपि निष्करुणज्वलनस्य प्रवेशेनेन्धनीभवतः । तत्परित्रायध्वमार्याः, परित्रायध्वम् । कथं न कोऽपि परित्रायते । किं व्यवसितं देव्या देवेन च ।)

चेटीति । परित्रायध्वम् = रक्षत । सोमवंशराजर्षिः-सोमवंशस्य = चन्द्रवंशस्य राजा ऋषिः = मुनिरिवेति, राजसूयसन्तर्पितहव्यवाहः-राजसूयेन = राजसूययज्ञेन—सन्तर्पितः = तृप्तिं प्रापितः हव्यवाहः = अग्निः येन सः, खाण्डवसन्तर्पितहुतवहस्य—खाण्डवेन = खाण्डवनाम्ना वनेन सन्तर्पितः हुतवहः = अग्निः येन तस्य, सुगृहीतनामधेयः—सुष्ठु गृहीतं नामधेयं यस्य सः, प्रातः स्मरणीय इत्यर्थः। वेदिमध्यसम्भवा—वेदिः = यज्ञे परिष्कृता भूमिः चत्वरः इत्यर्थः, तस्याः मध्ये सम्भवः = उत्पत्तिः यस्याः सा, याज्ञसेनी = द्रौपदी । व्यवसितम्=आचरितम् ।

युधिष्ठिर—हम दोनों साथ-साथ ही अभ्युदय का उपभोग करेंगे ।

चेटी—हा भगवान् लोकपालो ! रक्षा करो, रक्षा करो । यह चन्द्रवंश के राजर्षि, राजसूय यज्ञ से अग्नि को तृप्त करने वाले, खाण्डववन से अग्नि को सन्तुष्ट करनेवाले अर्जुन के बड़े भाई, प्रातःस्मरणीय नामवाले महाराज युधिष्ठिर हैं । और यह पाञ्चालराज की पुत्री, यज्ञवेदी के मध्य उत्पन्न होने वाली महारानी द्रौपदी है । दोनों ही निर्दय अग्नि में प्रवेश करके (उसके) इंधन बन रहे हैं । इसलिए हे आर्य लोगो ! रक्षा करो, रक्षा करो । क्यों नहीं कोई रक्षा करता है ? (उन दोनों के आगे गिरकर) महाराज और महारानी ने यह क्या करने की मनमें ठानी है ?

युधिष्ठिरः—अयि बुद्धिमतिके, यन्नाथेन प्रियानुजेन विना सदृशं तत्। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, भद्रे उदकमुपानय।

(चेटी तथा करोति।)

युधिष्ठिरः—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्य च।) एष तावत्सलिलाञ्जलिर्गाङ्गेयाय भीष्माय गुरवे प्रपितामहाय शान्तनवे। अयमपि पितामहाय विचित्रवीर्याय। (सास्रम्) तातस्याधुनावसरः। अयं तावत्स्वर्गस्थिताय सुगृहीतनाम्ने पित्रे पाण्डवे।

अद्यप्रभृति वां दत्तमस्मत्तो दुर्लभं पुनः।
तात ! त्वयाऽम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम्॥ २९॥

अन्वयः—(हे) तात ! वाम्, दत्तम्, (जलम्), पुनः, अद्य प्रभृति, अस्मत्तः, दुर्लभम्, (अतः), अम्बया, सार्द्धम्, त्वया, मया, दत्तम्, एतत (जलम्) निपीयताम्॥ २९॥

व्याख्या—अद्य प्रभृतीति। (हे) तात = हे पितः ! वाम् = युवाभ्याम्, दत्तम् = सर्मपितम् जलमिति शेषः, पुनः = मुहुः, अद्य प्रभृति = अद्यारभ्य, अस्मत्तः = अस्मत्दुर्लभम् = दुष्प्रापम्, (अतः), अम्बया = विमात्रा माद्र्या, सार्द्धम् = सह, त्वया = पित्रा, मया = युधिष्ठिरेण, दत्तम् = सर्मपितम्, एतत् = इदम्, जलमिति भावः, निपीयताम् = पीयताम्, गृह्यतामित्यर्थः॥ २९॥

युधिष्ठिर—अरी बुद्धिमतिके ! पति के विना एवं प्रिय छोटे भाई के बिना जो उचित है वही (करने की ठानी है)। उठो उठो कल्याणी ! जल ले आओ।

(चेटी वैसा ही करती हैं अर्थात् जल ले आती है।)

युधिष्ठिर—(पैर धोकर तथा आचमन करके) सर्वप्रथम यह जलाञ्जलि गङ्गापुत्र पूज्य परदादा शन्तनु के आत्मज भीष्म के लिए है। यह दूसरी दादा विचित्रवीर्य के लिए। (आँखों में आँसू भरकर) अब पिता की बारी है। यह जलाञ्जलि दिवंगत तथा प्रातःस्मरणीय पिता पाण्डु के लिए है।

हे पिताजी ! आप दोनों को दिया गया (जल) आज से हम लोगों द्वारा पुनः (आप को मिलना) दुर्लभ हो जायेगा (अतः) माता (विमाता माद्री) के साथ आप मेरे द्वारा दिये गये जल का पान करें॥ २९॥

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय
भीमाय भोस्तव ममाप्यविभक्तमस्तु ।
एकं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि
पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ॥ ३० ॥

टिप्पणी—खाण्डवसन्तर्पित—अर्जुन एवं कृष्ण की सहायता से अग्नि ने खाण्डववन को जला डाला था। खाण्डववन कुरुक्षेत्र प्रदेश में विद्यमान एक वन था जो इन्द्र का मित्र कहा जाता था। (महाभारत आदि पर्व–२२४–२३०) यज्ञमध्यसम्भवा—द्रोणाचार्य से अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए द्रुपद ने द्रोणाचार्य का वध करने वाले एक पुत्र तथा अर्जुन को ब्याही जाने वाली एक पुत्री के लिए यज्ञ किया था। द्रोणाचार्य का सिर काटने वाले धृष्टद्युम्न यज्ञ की लपटों से तथा द्रौपदी यज्ञ की वेदी के मध्य भाग से उत्पन्न हुई थीं इसीलिए द्रौपदी को याज्ञसेनी भी कहते हैं। (महाभारत आ० ५०–१४०–१६९) अद्यप्रभृतीति। पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ २९ ॥

अन्वयः—एतत्, जलम्, जलजनीलविलोचनाय, भीमाय; भोः वत्स ! तव, मम, अपि, अविभक्तम्, अस्तु; अतः, पिपासितः, अपि, (त्वम्), एकम्, क्षणम्, विरम, त्वया, सह, पातुम्, अयम्, (अहम्), जवात्, आगतः, अस्मि ॥ ३० ॥

व्याख्या—एतज्जलमिति। एतत्=इदम् मया दत्तमित्यर्थः, जलम् = वारि, जलजनीलविलोचनाय—जलजे = कमले इव नीले = श्यामवर्णे विलोचने = नयने यस्य तस्मै, भीमाय=वृकोदराय अस्तीति शेषः, भोः वत्स = हे प्रियानुज ! तव = भीमस्य, मम = युधिष्ठिरस्य अपि, अविभक्तम् = सम्मिलितम्, अस्तु = भवतु, अतः, पिपासितः = तृषाकुलः अपि = च, त्वमिति शेषः, एकम् क्षणम् = मुहूर्त्तम्, विरम = तिष्ठ, जलपानाद्विरतस्तिष्ठेति भावः, त्वया = भीमेन, सह = साकम्, पातुम् = पानं कर्त्तुम्, अयम् = एषः, अहमिति शेषः, जवात् = वेगात्,

यह जल कमल के समान नीले नेत्रोंवाले भीम के लिए है। हे प्रिय अनुज ! तुम्हारे और मेरे लिए (यह) सम्मिलित ही रहे। इसलिए प्यासे रहकर भी तुम एक क्षण रुको। तुम्हारे साथ (जल) पीने के लिए यह (मैं) वेग से आ ही गया हूँ (अर्थात् आ ही रहा हूँ) ॥ ३० ॥

अथवा सुक्षत्रियाणां गतिमुपगत वत्समहमुपगतोऽप्यकृती द्रष्टुम् । वत्स भीमसेन,

मया पीतं पीतं तदनु भवताम्बास्तनयुगं
यदुच्छिष्टैर्वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया ।
वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू-
न्निवापाम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ।। ३१ ।।

आगतः = आयातः, अस्मि = भवामि । चिताप्रवेशद्वारा शीघ्रमेव तव समीपे आगच्छामीत्याशयः ।। ३० ।।

टिप्पणी—एतज्जलमिति । इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ।। ३० ।।

सुक्षत्रियाणाम् = वीराणाम्, गतिम् = स्वर्गरूपामिति भावः, वत्सम्=भीमम्, द्रष्टुम् = अवलोकयितुम्, अहम् = युधिष्ठिरः, उपगतः = मृतः, अपि अकृती = अनिपुणः, अशक्त इति भावः ।

अन्वयः—अम्बास्तनयुगम्, मया, पीतम्, तदनु, भवता, पीतम्; वत्सलतया, मदुच्छिष्टैः, रसैः, वृत्तिम्, जनयसि; वितानेषु, अपि, तव, च, मम, सोमे, एवम्, विधिः, अभूत्; अधुना, त्वम्, निवापाम्भः, पूर्वम्, कथम्, पिबसि ? ।। ३१ ।।

व्याख्या—मयेति । अम्बास्तनयुगम्—मातृपयोधरद्वयम्, मया=युधिष्ठिरेण; पीतम् = आस्वादितम्, तदनु = तत्पश्चात्, भवता = त्वया, भीमेनेत्यर्थः, पीतम्; वत्सलतया = स्नेहभावेन, मदुच्छिष्टैः=मद्भोजनपानावशिष्टैः, रसैः=दुग्धादिभिः; वृत्तिम् = जीविकाम्, जनयसि = अजनयः, वितानेषु = यज्ञेषु, तव = भीमस्य; च = तथा, मम = मे, तवाग्रजस्य युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, सोमे = सोमरसपाने; एवम् = इत्थम् मम पश्चादित्यर्थः, विधिः = क्रमः, अभूत् = जातः; अधुना =

अथवा वीर क्षत्रियों की गति को प्राप्त हुए वत्स के समीप जाने पर भी मैं (उसे) देखने में असमर्थ ही रहूँगा । वत्स भीमसेन !

माता के दोनों स्तनों को मेरे द्वारा पी लेने के बाद ही तुमने पिया था । स्नेहभाव के कारण मेरे जूठे दुग्धफलादि से जीविका चलाते थे । यज्ञों में सोमरसपान के समय भी तुम्हारा तथा मेरा ऐसा ही क्रम था (तो फिर) अभी तुम तर्पणजल को (मुझसे) पहले ही क्यों पी रहे हो ? ।। ३१ ।।

कृष्णे, त्वमपि देहि सलिलाञ्जलिम्।

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमदिए, उवणेहि मे सलिलम्। (हञ्जे बुद्धिमतिके, उपनय मे सलिलम्।)

(चेटी तथा करोति)

द्रौपदी—(उपसृत्य जलाञ्जलिं पूरयित्वा।) महाराज, कस्स सलिलं देम्हि। (महाराज, कस्य सलिलं ददामि।)

युधिष्ठिरः—

तस्मै देहि जलं कृष्णे सहसा गच्छते दिवम्।
अम्बयापि येन गान्धार्या रुदितेन समीकृता ॥ ३२ ॥

सम्प्रति, त्वम् = ममानुवर्ती त्वं भीम इत्यर्थः, निवापाम्भः=तर्पणजलम्, मृतकाय देयं तिलमिश्रितं जलमित्यर्थः, पूर्वम्=प्राक्, मत्तः प्रागित्यर्थः, कथम् = कस्मात्, पिबसि=आचामसि ? मम मृत्योरनन्तरमेव तव मृत्युः समुचित इति भावः ॥३१॥

टिप्पणी—मयेति। वितानेषु—वितान शब्द यज्ञ एवं विस्तार अर्थ में प्रयुक्त होता है—"क्रतुविस्तारयोरस्त्री वितानम्" इत्यमरः। निवापाम्भः—पितरों के निमित्त जो दान किया जाता है उसे निवाप कहते हैं—"पितृदानं निवापः स्यादि"त्यमरः। पितरों को दिया जाने वाला जल ही "निवापाम्भः" है। पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है ॥ ३१ ॥

अन्वयः—(हे) कृष्णे ! सहसा, दिवम्, गच्छते, तस्मै, जलम्, देहि, येन, अम्बा, अपि, रुदितेन, गान्धार्या, समीकृता ॥ ३२ ॥

व्याख्या—तस्मै इति। (हे) कृष्णे = हे द्रौपदि ! सहसा = सपदि,

कृष्णे ! तुम भी जलाञ्जलि दे दो।

द्रौपदी—अरी बुद्धिमतिके ! मुझे जल ला दे।

(चेटी जल लाती है।)

द्रौपदी—(समीप जाकर तथा जल से अञ्जलि को भरकर) महाराज ! किसे जल प्रदान करूँ ?

युधिष्ठिर—हे कृष्णे ! अचानक स्वर्ग चले जानेवाले उस (भीम) को जल दो जिसने माता (कुन्ती) को भी रोने में गान्धारी के समान ही बना दिया ॥३२॥

द्रौपदी—णाह भीमसेण, परिअणोसवणीदं उदअं सग्गगदस्स दे पादोदअं भेदु। (नाथ भीमसेन, परिजनोपनीतमुदकं स्वर्गगतस्य ते पादोदकं भवतु।)

युधिष्ठिरः—फाल्गुनाग्रज,

असमाप्तप्रतिज्ञेऽपि याते त्वयि महाभुजे।
मुक्तकेश्यैव दत्तस्ते प्रियया सलिलाञ्जलिः॥ ३३॥

दिवम् = स्वर्गम्, गच्छतं = व्रजते, तस्मै = भीमायेत्यर्थः, जलम् = निवापाम्भः, देहि = अर्पय, येन = दिवंगतेन भीमेनेत्यर्थः, अम्बा = माता कुन्ती, अपि, रुदितेन = रोदनेन, सुतमृत्युजन्यविलापेनेत्यर्थः, गान्धार्या = दुर्योधनमात्रा, समीकृता = समानीकृता॥ ३२॥

टिप्पणी—तस्मै देहीति। समीकृता—सौ पुत्रों के मारे जाने से जिस प्रकार गान्धारी विलाप कर रही थी उसी प्रकार अब भीम आदि पुत्रों की मृत्यु से कुन्ती भी विलाप करेगी। इस प्रकार विलाप करने या रोने में अब कुन्ती भी गान्धारी के समान ही बना दी गई है—यही भाव है। पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है॥ ३२॥

द्रौपदीति। परिजनोपनीतम् = सेविकया दत्तम्, पादोदकम् = चरणप्रक्षालनार्थं जलम्॥

युधिष्ठिर इति। फाल्गुनाग्रज—फाल्गुनस्य = अर्जुनस्य अग्रजः = ज्येष्ठः तत्सम्बुद्धौ।

अन्वयः—असमाप्तप्रतिज्ञे, अपि, महाभुजे, त्वयि, जाते, मुक्तकेश्या, एव, ते, प्रियया, सलिलाञ्जलिः, दत्तः॥ ३३॥

व्याख्या—असमाप्तेति। असमाप्तप्रतिज्ञे-असमाप्ता = अपूर्णा, प्रतिज्ञा =

द्रौपदी—नाथ भीमसेन! दासी के द्वारा दिया हुआ यह जल आपके पाँव पखारने के लिए हो।

युधिष्ठिर—हे अर्जुन के बड़े भाई!

प्रतिज्ञा को बिना पूरी किये ही विशाल भुजाओं वाले तुम्हारे (स्वर्ग) चले जाने पर बिना केशपाश बाँधे ही तुम्हारी प्रियतमाने (तुम्हें) जल दिया है॥ ३३॥

द्रौपदी—उट्ठेहि महाराअ, दूरं गच्छदि दे भादा। (उत्तिष्ठ महाराज, दूरं गच्छति ते भ्राता।)

युधिष्ठिरः—(दक्षिणाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा।) पाञ्चालि, निमित्तानि मे कथयन्ति सम्भावयिष्यसि वृकोदरमिति, भवतु शीघ्रं दहनमुपसर्पावः।

द्रौपदी—महाराअ, सुणिमित्तं भोदु। (महाराज ! सुनिमित्तं भवतु।)

(नेपथ्ये कलकलः।)

(प्रविश्य संभ्रान्तः।)

द्रौपदीवेणीसंहाररूपप्रणः येन तादृशे, अपि, महाभुजे—महान्तौ भुजौ = बाहू यस्य सः महाभुजः तस्मिन्, त्वयि = भीमसेने, याते = गते, स्वर्गं गत इत्यर्थः, मुक्तकेश्या = मुक्ताः = अबद्धाः केशाः = कचाः यस्याः तया, असहृतवेण्येति भावः, एव = हि, ते = तव, भीमस्येत्यर्थः, प्रियया = प्रेयस्या, पत्न्या द्रौपद्येति भावः, सलिलाञ्जलिः = जलाञ्जलिः, दत्तः = समर्पितः ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—असमाप्तेति। प्रस्तुत पद्य में भी पथ्यावक्त्र छन्द है ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर इति। दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्=दक्षिणनेत्रस्फुरणम्। सम्भावयिष्यसि= प्राप्स्यसि। दहनम् = अग्निः, उपसर्पावः = समीपं गच्छावः।

टिप्पणी—दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्—पुरुष की दायीं आँख का फड़कना शुभ शकुन माना गया है। इति मुह्यति। दुर्योधन के आगमन की बात सुनकर युधिष्ठिर ने सोचा कि अर्जुन भी निश्चय ही मार डाला गया होगा इसीलिए वह मूच्छित हो जाता है।

सम्भ्रान्तः = उद्विग्नः।

द्रौपदी—उठिए महाराज ! आपके भाई दूर चले जा रहे हैं।

युधिष्ठिर—(दायीं आँख की फड़कन को सूचित करके) पाञ्चाली ! मेरे शकुन बतला रहे हैं कि तुम वृकोदर को प्राप्त करोगी। अच्छा, जल्दी अग्नि के समीप हम चलें।

द्रौपदी—महाराज ! (आपका) शकुन शुभ (सत्य हो);

(नेपथ्य में कोलाहल होता है।)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

कञ्चुकी—परित्रायतां परित्रायतां महाराजः। एषु खलु दुरात्मा कौरवापसदः क्षतजाभिषेकपाटलिताम्बरशरीरः समुच्छ्रितदिग्धभीषणगदाशनिरुद्यतकालदण्ड इव कृतान्तोऽत्रभवतीं पाञ्चालराजतनयामितस्ततः परिमार्गमाण इत एवाभिवर्तते।

युधिष्ठिरः—हा दैव, तेन निर्णयो जातः! हा गाण्डीवधन्वन्,

(इति मुह्यति।)

द्रौपदी—हा अज्जउत्त, हा मम सअम्बरसअङ्गाहकुडुम्ब पिअं भादुअं अणुगदोसि। ण उण महाराअं ईमं दासजणं अ। (इति मोहमुपगता)

कञ्चुकीति। कौरवापसदः—कौरवेषु = कुरुपुत्रेषु अपसदः = अधमः, क्षतजाभिषेकपाटलिताम्बरशरीरः—क्षतजस्य = रक्तस्य अभिषेकेण = सेचनेन पाटलितम् = रक्तीभूतम् अम्बरम् = वस्त्रम् शरीरम् = देहश्च यस्य सः, समुच्छ्रितदिग्धभीषणगदाशनिरुद्यतकालदण्डः—समुच्छ्रिता = उत्थापिता, दिग्धा = रुधिरलिप्ता, भीषणा = भयङ्करी गदा, अशनिः = वज्रम् इव यस्य सः अत एव उद्यतः = उच्छ्रितः कालदण्डः = कृतान्तलगुडः येन सः, कृतान्तः = यमः इव, अत्रभवतीम् = आदरणीयाम्, परिमार्गमाणः = अन्वेषयन् इतः = अस्यां दिशि, अभिवर्तते = आगच्छति।

युधिष्ठिर इति। हा दैव = हा विधे! तेन = दुर्योधनागमनेनेति भावः, निर्णयः = अर्जुनवधस्य निश्चयः।

कञ्चुकी—बचाइये, बचाइये महाराज! यह दुष्ट नीच कौरव रक्त में सनेलाववस्त्र और शरीरवाला, उठाई गई तथा रक्त से लिप्त भयङ्कर गदा रूपी वज्रवाला, मानो कालदण्ड उठाये यमराज माननीया पाञ्चाल राजकुमारी को ढूंढ़ता हुआ इसी ओर आ रहा है।

युधिष्ठिर—हा भाग्य! इससे निर्णय हो गया (कि अर्जुन भी मारा गया)। हा गाण्डीवधारी!

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है।)

द्रौपदी—हा आर्यपुत्र! हा स्वयंवर में ग्रहण करने वाले कुटुम्ब! प्यारे

(हा आर्यपुत्र, हा मम स्वयंवरसंग्राहकुटुम्ब, प्रियं भ्रातरमनुगतोऽसि । पुनर्महाराजमिमं दासजनं च ।)

युधिष्ठिरः—हा वत्स सव्यसाचिन्, हा असदृशमल्ल, हा निवातकवचोद्धरणनिष्कण्टकीकृतामरलोक, हा बदर्याश्रममुनिद्वितीयतापस, हा द्रोणाचार्यप्रियशिष्य, हा अस्त्रशिक्षाबलपरितोषितगाङ्गेय, हा राधेयकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष, हा गन्धर्वनिर्वासितदुर्योधन, हा पाण्डवकुलकमलिनीराजहंस,

द्रौपदीति—स्वयंवरसंग्राहकुटुम्ब—स्वसंवरे संग्राहः = स्वीकारः तेन कुटुम्वः= पोषकः तत्सम्बुद्धौ ।

युधिष्ठिर इति । असदृशमल्ल = अनुपमबलिष्ठ, निवातकवचोद्धरणनिष्कण्टकीकृतामरलोनिवातकवचस्य = एतन्नामकदैत्यस्य उद्धरकणेन = हननेन, निष्कण्टकीकृतः = शत्रुविहीनीकृतः अमरलोकः = देवलोकः स्वर्ग इत्यर्थः येन तत्सम्बोधने, बदर्याश्रममुनिद्वितीयतापस—बदर्याश्रमे = बदरिकाश्रमे यौ मुनी= नरनारायणरूपौ ऋषी तयोर्द्वितीयः = नररूप स चासौ तापसः = तपस्वी तत्सम्बोधने, अस्त्रशिक्षाबलपरितोषितगाङ्गेय—अस्त्रशिक्षाबलेन = आयुधसञ्चालननैपुण्येनेत्यर्थः, अथवा, अस्त्रशिक्षया = शस्त्राभ्यासेन बलेन = शक्तया च परितोषितः = परितः तोषं प्रापितः गाङ्गेयः = गङ्गासुतः भीष्म इत्यर्थः येन सः, तत्सम्बुद्धौ । राधेयकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष—राधेयस्य = राधापुत्रस्य कर्णस्येत्यर्थः कुलम् = वंशः एव कमलिनी = पद्मिनी तत्र प्रालेयवर्षः = हिमपातः तत्सदृश इत्यर्थः, तत्सम्बोधने । गन्धर्वनिर्वासितदुर्योधन—गन्धर्वग्रहणात् निर्वासितः = मोचितः दुर्योधनो येन सः तत्सम्बुद्धौ ।

भाई के पीछे-पीछे ही चले गये हो ? महाराज या इस दासी के पीछे नहीं गये ?

युधिष्ठिर—हा वत्स सव्यसाची ! हा अनुपम योद्धा ! हा निवातकवच को मार कर स्वर्गलोक को निष्कण्टक बनाने वाले । हा बदरिकाश्रम के (दो) मुनियों में द्वितीय तपस्वी ! हा द्रोणाचार्य के प्रिय छात्र ! हा अस्त्र शिक्षा एवं बल से गङ्गापुत्र (भीष्म) को सन्तुष्ट करने वाले ! हा राधापुत्र (कर्ण) के कुलरूपी कमलिनी के लिए हिमपातसदृश ! हा गन्धर्व की पकड़ से दुर्योधन को छुड़ाने वाले ! हा पाण्डवों के कुलरूपी कमलिनी के राजहंस !

तां वत्सलामनभिवाद्य विनीतमम्बां
गाढं च मामनुपगुह्य मयाऽप्यनुक्तः ।
एतां स्वयंवरवधूं दयितामदृष्ट्वा
दीर्घप्रवासमयि तात कथं गतोऽसि ॥ ३४ ॥

टिप्पणी---सव्यसाचिन्—बायें हाथ से बाण चलाने में अर्जुन निपुण था इसीलिए वह सव्यसाची कहलाता था। निवातकवच—इस नाम का एक दैत्य था जिसने देवताओं का जीना दूभर कर दिया था। अर्जुन ने उसका वध कर देवताओं को त्राण दिलाया था। महाभारत में इसकी कथा वर्णित है। मुनिद्वितीयतापस—अर्जुन एवं श्रीकृष्ण ने पूर्वजन्म में बदरिकाश्रम में नर एवं नारायण के रूप में तपस्या की थी। अर्जुन नरावतार थे। गन्धर्वनिर्वासित—पाण्डव जब वन में निवास कर रहे थे उसी समय एक बार गन्धर्वराज ने दुर्योधन को पकड़ कर कैद कर लिया था। पता चलने पर युधिष्ठिर को दुर्योधन पर दया आ गई। उन्हीं की आज्ञा से अर्जुन ने गन्धर्वराज की पकड़ से दुर्योधन को मुक्त करवाया था। महाभारत में यह कथा आई है।

अन्वयः—अयि तात ! ताम्, वत्सलाम्, अम्बाम्, विनीतम्, अनभिवाद्य; च; माम्, गाढम्, अनुपगुह्य; मया, अपि, अनुक्तः, स्वयं वरवधूम्, एताम्, दयिताम्, अदृष्ट्वा, दीर्घप्रवासम्, कथम्, गतः, असि ? ॥ ३४ ॥

व्याख्या---तामिति। अयि तात=हे अर्जुन ! ताम्=तादृशीम्, वत्सलाम्=स्नेहवतीम्, अम्बाम्=मातरम्, विनीतम्=विनयपूर्वकं यथा स्यात्तथा; अनभिवाद्य=अभिवादनमकृत्वैव, च=तथा, माम्=स्वाग्रजं युधिष्ठिरमित्यर्थः; गाढम्=भृशम्, अनुपगुह्य=अनालिङ्ग्य, मया=युधिष्ठिरेण, अपि अनुक्तः=अगृहीतानुज्ञः, स्वयं वरवधूम्—स्वयं वृणीत इति स्वयंवरा सा चासौ वधू ताम्, एताम्=इमाम्, दयिताम्=प्रियाम्, अदृष्ट्वा=अनवलोक्य, दीर्घप्रवासम्=चिरप्रवासम्, मृत्युमित्यर्थः, कथम्=कस्मात्, गतः=प्राप्तः, असि ? ॥ ५४ ॥

हे तात ! उन स्नेहपूर्ण माता को बिना अभिवादन किये, मुझे बिना प्रगाढ आलिङ्गन किये, मुझसे बिना आज्ञा लिये तथा स्वयंवर में ग्रहण की गई (अपनी) इस प्रिया को बिना देखे ही (तुम) लम्बे प्रवास पर कैसे चले गये हो ? ।।३४।।

(मोहमुपगतः ।)

कञ्चुकी—(चेटीं प्रति ।) इदानीं भोः कष्टम् । एष कौरवाधमो यथेष्टमिहैव प्रवर्तते । सर्वथा प्रवेशकालः चितासमीपमुपनयाम्यत्रभवतीं पाञ्चालराजतनयाम् । अहमप्येवमेवानुगच्छामि । भद्रे, त्वमपि देव्या भ्रातरं धृष्टद्युम्नं नकुलसहदेवौ वाऽवाप्नुहि । एवमवस्थिते महाराजेऽस्तमितयोर्भीमार्जुनयोः कुतोऽत्र परित्राणाशा ।

चेटी—परित्ताअह परित्ताअह अज्जा। (परित्रायध्वं परित्रायध्वमार्याः ।)

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम् ।)

भोः भोः समन्तपञ्चकसञ्चारिणः क्षतजास्वादमत्तयक्षराक्षसपिशाचभूतवेतालकङ्कगृध्रजम्बूकवायसभूयिष्ठा अवशिष्टविरलाश्च योधाः, कृतमस्मद्दर्शनसंत्रासेन । कथयत भवन्तः कस्मिन्नु देशे याज्ञसेनी सन्निहितेति । कथयामि लक्षणं तस्याः—

टिप्पणी—तामिति । प्रस्तुत पद्य में परिकरालङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है ।। ३४ ।।

कञ्चुकीति । अस्तम्=विनाशम्, इतयोः=प्राप्तयोः, परित्राणाशा=रक्षणाशा ।

(मूर्च्छित हो जाता है ।)

कञ्चुकी—ओह ! इस समय महान् कष्ट है ! यह नीच कौरव स्वच्छन्दतापूर्वक इधर ही चला आ रहा है । यही (चिता में) प्रवेश करने का उपयुक्त समय है । माननीया पाञ्चाल राजकुमारी को चिता के पास ले चलता हूँ । मैं भी इसी प्रकार अनुगमन करूँगा । (चेटी से) भद्रे ! तुम भी देवी के भाई धृष्टद्युम्न या नकुल और सहदेव के पास चली जाओ । महाराज के ऐसी अवस्था में वर्त्तमान रहने पर तथा भीम एवं अर्जुन के नष्ट हो जाने पर अब यहाँ रक्षा की आशा कहाँ ?

चेटी—रक्षा करो आर्यो, रक्षा करो !

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि के बाद)

अरे रे समन्तपञ्चक में घूमनेवाले, रुधिर पान से मतवाले, राक्षस, पिशाच, भूत, वेताल, कङ्क, गीध, सियार एवं कौओं से अधिक संख्यावाले कुछ अवशिष्ट योद्धाओ ! हमे देखकर भय मत करो । तुमलोग बतलाओ कि याज्ञसेनी किस स्थान में है ? मैं उसकी पहचान बतलाता हूँ—

ऊरू करेण परिघट्टयतः सलीलं
दुर्योधनस्य पुरतोऽपहृताम्बरा या।
दुःशासनस्य करकर्षणभिन्नमौलिः
सा द्रौपदी कथयत क्व पुनः प्रदेशे ॥ ३५ ॥

कञ्चुकी—हा देवि यज्ञवेदिसम्भवे, परिभूयसे सम्प्रत्यनाथा कुरुकुल-कलङ्केन।

अन्वयः—सलीलम्, करेण, ऊरू, परिघट्टयतः, दुर्योधनस्य, पुरतः, या, दुःशासनेन, अपहृताम्बरा, (तथा), करकर्षणभिन्नमौलिः, (अभूत्), सा, द्रौपदी, पुनः, क्व, प्रदेशे, (वर्तते, इति), कथयत ॥ ३५ ॥

व्याख्या—ऊर्विति। सलीलम् = लीलया = विलासेन सहितं यथात्तथा, सविलासमित्यर्थः, करेण = हस्तेन, ऊरू = सक्थिनी, परिघट्टयतः = ताडयतः, मदीयोर्वोरूपरि उपविशेति बोधयत इत्यर्थः, दुर्योधनस्य = सुयोधनस्य, पुरतः = अग्रे, या; दुःशासनेन = दुर्योधनानुजेन, अपहृताम्बरा = आकृष्टवसना, (तथा) करकर्षणभिन्नमौलिः—कराभ्याम्=हस्ताभ्याम् यत्कर्षणम्=आकर्षणम् तेन भिन्नः= विदीर्णः मौलिः = चूडा यस्याः सा, अभूदिति शेषः, सा = तादृशी, द्रौपदी = पाञ्चाली, पुनः, क्व=कुत्र, प्रदेशे = स्थाने (वर्तते, इति) कथयत = ब्रूत ॥३५॥

टिप्पणी--ऊर्वीति। मौलि—मौलि जूड़ा या चोटी को कहते हैं—"मौलिः किरीटे धम्मिले—चूडायाम्" इति मेदिनी। अन्य संस्करणों में "करकर्षणभिन्न-मौलिः" के स्थान में "कचकर्षणभिन्नमौलिः" पाठान्तर मिलता है। पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ॥ ३५ ॥

कञ्चुकीति। यज्ञवेदिसम्भवे = यज्ञचत्वरोत्पन्ने, द्रौपदि इत्यर्थः, कुरुकुल-कलङ्केन = कुरुवंशलाञ्छनभूतदुर्योधनेनेत्यर्थः, अनाथा=अस्वामिनी, परिभूयसे= अनाद्रियसे।

बड़े हाव-भाव के साथ हाथ से जाँघों को ठोंकते हुए दुर्योधन के आगे दुःशासन ने जिसके वस्त्र खींचे थे तथा हाथ से खींचे जाने के कारण जिसकी वेणी खुल गई थी; वह द्रौपदी; बतलाओ, किस स्थान में है ? ॥ ३५ ॥

कञ्चुकी—हा यज्ञ की वेदी से उत्पन्न होनेवाली महारानी ! इस समय अनाथ होकर (तुम) कुरुवंश के कलङ्क (दुर्योधन) द्वारा अपमानित की जा रही हो !

युधिष्ठिरः—(सहसोत्थाय ।) पाञ्चालि, न भेतव्यम् । न भेतव्यम् । (ससंभ्रमम् ।) कः कोऽत्र भोः । सनिषङ्गं मे धनुरुपनय । दुरात्मन् दुर्योधनहतक, आगच्छागच्छ । अपनयामि ते गदाकौशलसम्भृतं भुजदर्पं शिलीमुखासारेण । अन्यच्च रे कुरुकुलाङ्गार,

प्रियमनुजमपश्यंस्तं जरासन्धशत्रुं
कुपितहरकिराताद्वेषिणं तं च वत्सम् ।
त्वमिव कठिनचेताः प्राणितुं नास्मि शक्तो
न च पुनरपहर्तुं बाणवर्षैस्तवासून् ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिर इति । सनिषङ्गम् = निषङ्गेन = तूणीरेण सहितम् सनिषङ्गम् । गदाकौशलसम्भृतम्—गदासञ्चालने यत्कौशलम् = नैपुण्यम् तेन सम्भृतम् = वर्द्धितम्, भुजदर्पम् = बाहुगर्वम्, शिलीमुखासारेण—शिलीमुखानाम्=बाणानाम् आसारः=धारासम्पातः तेन, अनवरतबाणवृष्ट्येतिभावः, उपनयामि=दूरीकरोमि ।

अन्वयः—जरासन्धशत्रुम्, प्रियम्, तम्, अनुजम्, च, कुपितहरकिरातद्वेषिणम्, तम्, वत्सम्, अपश्यन्, कठिनचेताः, त्वम्, इव, प्राणितुम्, शक्तः, न, अस्मि, पुनः, बाणवर्षैः, तव, असून्, अपहर्त्तुम्, न च, शक्तः ॥ ६ ॥

व्याख्या—प्रियमिति । जरासन्धशत्रुम्—एतन्नामकराज्ञः शत्रुम् = रिपुम्, प्रियम् = स्नेहभाजनम्, तम् = तादृशम्, अनुजम् = लघुभ्रातरम्, च = तथा, कुपितहरकिरातद्वेषिणम्—कुपितः = क्रुद्धः यो हरः = शिवः स एव किरातः =

युधिष्ठिर—(एकाएक उठकर) पाञ्चाली, मत डरो । मत डरो । (उद्विग्नता के साथ) कौन ? कौन है यहाँ ? तरकस के साथ मेरा धनुष लाओ । दुष्ट, नीच दुर्योधन ! आओ, आओ । बाणों की अनवरत वर्षा से गदासञ्चालन से बढ़े हुए तुम्हारे बाहु गर्व को दूर करता हूँ । और भी, अरे कुरुवंश के लिए अंगारस्वरूप !

जरासन्ध के शत्रु तथा प्यारे उस छोटे भाई (भीम) को एवं क्रुद्ध हुए किरात वेशधारी भगवान् शङ्कर से जूझनेवाले उस वत्स (अर्जुन) को न देखता हुआ मैं तुझ कठोर हृदय की तरह प्राण-धारण नहीं कर सकता हूँ किन्तु बाणों की वर्षा से तुम्हारे प्राणों को हरने में समर्थ हो सकता हूँ ॥ ३६ ॥

(ततः प्रविशति गदापाणिः क्षतजसिक्तसर्वाङ्गो भीमसेनः ।)

भीमसेनः—(उद्धतं परिक्रामन् ।) भो भोः समन्तपञ्चकसंचारिणः, कोऽयमावेगः—

व्याध:, आखेटकर्त्ता वन्यो मानवः, किरातरूपधारी हर इत्यर्थः, तस्य द्वेषिणम् = शत्रुम्, तम् = पूर्वोक्तम्, वत्सम् = प्रियानुजम् अर्जुनमित्यर्थः, अपश्यन् = अविलोकयन्, कठिनचेताः—कठिनम् = कठोरम् चेतः = हृदयम् यस्य सः, त्वम् = दुर्योधनः, इव = यथा, प्राणितुम् = जीवितुम्, शक्तः = समर्थः, न = नहि, अस्मि = वर्ते, पुनः = किन्तु, बाणवर्षैः=शरवृष्टिभिः, तव = दुरात्मनो दुर्योधनस्येत्यर्थः, असून् = प्राणान् अपहर्त्तुम् = विनाशयितुम्, न चेति काकूक्तिः, शक्तः= समर्थः, तत्र प्राणापहरणेऽहं समर्थ इति भावः ॥ ३६ ॥

टिप्पणी - प्रियानुजमिति । कुपितकिरात—भगवान् शङ्कर से अस्त्र प्राप्त करने के लिए अर्जुन ने तपस्या की थी । उसके बल की परीक्षा लेने के लिए भगवान् शङ्कर किरात का वेश धारण कर आये थे तथा उन दोनों में मल्लयुद्ध हुआ था । अर्जुन के बल से सन्तुष्ट होकर उन्होंने उसे आयुध प्रदान किया था । भारवि का 'किरातार्जुनीयम्" महाकाव्य इसी कथा पर आधारित है । पद्य में उपमालङ्कार तथा मालिनी छन्द है ॥ ३६ ॥

तत इति । गदापाणिः—पाणौ=करे, गदा यस्य सः, क्षतजसिक्तसर्वाङ्गः—क्षताज्जातम् क्षतजम् =रुधिरम् तेन सिक्तानि = लिप्तानि, सर्वाणि=निखिलानि अङ्गानि = अवयवाः यस्य सः ।

टिप्पणी – तत इति । गदापाणिः—"गदा पाणौ यस्य" इस विग्रह में "प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ" से सप्तम्यन्त पाणि शब्द का पर प्रयोग हुआ है ।

(तत्पश्चात् हाथ में गदा लिये तथा रक्त से लिप्त हुए सभी अङ्गो वाला भीमसेन प्रवेश करता है ।)

भीमसेन—(अकड़कर घूमते हुए) अरे अरे समन्तपञ्चक में घूमनेवालो ! यह घबराहट कैसी ?

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः प्रकामं
निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि ।
भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व-
स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—अहम्, रक्षः, न, न, भूतः, प्रकामम्, रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः, निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः, क्रोधनः, क्षत्रियः, अस्मि, भो भोः, समरशिखिशिखादग्धशेषाः, राजन्यवीराः, वः, अनेन, त्रासेन, कृतम्, यत्, (युष्माभिः), हतकरितुरगान्तर्हितैः, लीनैः, आस्यते ॥ ३७ ॥

व्याख्या—नाहमिति । अहम् = युष्माकं भयस्य कारणमागच्छन्नहमिति भावः, रक्षः = राक्षसः, न = नहि, न = नापि, भूतः = प्रेतादिः, प्रकामम् = यथेष्टम्, रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः—रिपोः = शत्रोः रुधिरम् = शोणितम् एव जलम् = सलिलम् तेन प्लावितानि = सिक्तानि अङ्गानि = अवयवाः यस्य सः, निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः—निस्तीर्णम् = पारंकृतम्, ऊरुप्रतिज्ञायाः = ऊरुविषयकस्य प्रणस्य, अथवा उरुप्रतिज्ञायाः = विशालप्रणस्य जलनिधिगहनम् = दुष्पारसमुद्रः येन सः, क्रोधनः = कोपनः, क्षत्रियः = क्षत्रियवंशोत्पन्नः, अस्मि= वर्ते, भो भोः = हे हे, समरशिखिशिखादग्धशेषाः—समरः = सङ्ग्रामः एव शिखी = अग्निः तस्य शिखाभिः = ज्वालाभिः ये दग्धाः = भस्मीभूताः तेभ्यः शेषाः = अवशिष्टाः, राजन्यवीराः = क्षत्रियशूराः, वः = युष्माकम्, अनेन = एतेन, त्रासेन = भयेन, कृतम् = अलम्, यत् = यतो हि, (युष्माभिः), हतकरितुरगान्तर्हितैः—हताः = मारिताः ये करिणः = गजाः तुरगाश्च=घोटकाश्च तैः अन्तर्हिताः = आच्छन्नदेहाः, लीनैः = प्रच्छन्नैः, आस्यते = उपविश्यते । अहं त्वदीयो भीमसेनः अतो मत्तो नैव यूयं भयं कुरुथ इति भावः ॥ ३७ ॥

मैं न तो राक्षस हूँ; और न भूत ही हूँ, (मैं तो) शत्रु के शोणितरूपी जल से यथेष्ट गीले अङ्गों से युक्त जङ्घावाली प्रतिज्ञारूपी या (महान प्रतिज्ञारूपी) दुस्तर समुद्र को पार किया हुआ क्रोधी क्षत्रिय हूँ । अरे अरे युद्धरूपी अग्नि की लपटों से जलकर बचे हुए क्षत्रिय वीरो ! तुम लोगों को इस भय से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं जो कि (तुम लोग) (युद्ध में) मारे गये हाथियों एवं घोड़ों की ओट में छिपकर बैठे हुए हो ॥ ३७ ॥

कथयन्तु भवन्तः कस्मिन्नुद्देशे पाञ्चाली तिष्ठति।

द्रौपदी—(लब्धसंज्ञा।) परित्ताअदु परित्ताअदु महाराओ। (परित्रायतां परित्रायतां महाराजः।)

कञ्चुकी—देवि पाण्डुस्नुषे, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। सम्प्रति चिताप्रवेश एव श्रेयान्।

द्रौपदी—(सहसोत्थाय।) कह ण संभावेमि अज्जवि चिदासमीवम्। (कथं न संभावयाम्यद्यापि चितासमीपम्।)

युधिष्ठिरः—कः कोऽत्र भोः। सनिषङ्गं धनुरुपनय। कथं न कश्चित्परिजनः। भवतु। बाहुयुद्धेन दुरात्मानं गाढमालिङ्ग्य ज्वलनमभिपातयामि। (परिकरं बध्नाति।)

टिप्पणी—नाहमिति। जलनिधिगहन—यहाँ पर "गहनश्चासौ जलनिधिः" ऐसा विग्रह करने पर "कडाराः कर्मधारये" सूत्र से कडारादि शब्दों का वैकल्पिक पूर्व प्रयोग होने के कारण गहन शब्द का पर प्रयोग तथा जलनिधि शब्द का पूर्व प्रयोग हुआ है इसलिए गहनजलनिधिः के स्थान में जलनिधिगहनम् का प्रयोग किया गया है निस्तीर्णम् ऊरुप्रतिज्ञा जलनिधिगहनम् या ऊरुप्रतिज्ञा जलनिधिगहनम् येन सः—"निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञा जलनिधिगहनः"—इस प्रकार बहुव्रीहि समास हुआ है। पद्य के तृतीय चरण में रूपकालङ्कार है। स्रग्धरा छन्द है॥ ३७॥

कञ्चुकीति। पाण्डुस्नुषे = पाण्डुपुत्रस्त्रि ! श्रेयान् = श्रेष्ठः।

युधिष्ठिर इति। ज्वलनमभिपातयामि = अग्नौ निक्षिपामि।

आप लोग बतलाइए कि पाञ्चाली किस स्थान में है ?

द्रौपदी—(चेतना प्राप्त करके) रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए महाराज।

कञ्चुकी—महारानी ! पाण्डुकी पुत्रवधू। उठिए उठिए ! अब (झट से) चिता में प्रविष्ट हो जाना ही श्रेयस्कर है।

द्रौपदी—(एकाएक उठकर) अब भी चिता के समीप क्यों नहीं पहुँच रही हूँ ?

युधिष्ठिर—कौन ? कौन है यहाँ ? तरकस के साथ मेरा धनुष लाओ। क्यों कोई सेवक नहीं है ? अच्छा, बाहुयुद्ध से ही दुष्ट (दुर्योधन) को दृढ़ता से आलिङ्गन करके आग में झोंक देता हूँ। (फेंटा बाँधता है।)

कञ्चुकी—देवि पाण्डुस्नुषे, संयम्यन्तामिदानीं नयनपथावरोधिनीं दुःशासनावकृष्टा मूर्धजाः। अस्तमिता सम्प्रति प्रतीकाराशा। द्रुतं चितासमीपं सम्भावय।

युधिष्ठिरः—कृष्णे, न खल्वनिहते तस्मिन्दुरात्मनि दुर्योधनहतके संहर्तव्याः केशाः।

भीमसेनः—पाञ्चालि न खलु मयि जीवति संहर्तव्या दुःशासनबिलुलिता वेणिरात्मपाणिभ्याम्। तिष्ठतु तिष्ठतु। स्वयमेवाहं संहरामि।

(द्रौपदी भयादपसर्पति।)

भीमसेनः—तिष्ठ भीरु, क्वाधुना गम्यते। (इति केशेषु ग्रहीतुमिच्छति।)

कञ्चुकीति। संयम्यताम् = संक्षियताम्, बध्यतामित्यर्थः, नयनपथावरोधिनः = नेत्रमार्गावरोधकाः, नेत्राच्छादिन इत्यर्थः, मूर्धजाः = केशाः, अस्तमिता = समाप्ता, प्रतीकाराशा = प्रतिशोधाशा, शत्रुकृतपराभवनिवारणतृष्णेति भावः।

युधिष्ठिर इति। अनिहते = अघातिते, संहर्त्तव्याः = बन्धनीयाः।

भीमसेन इति। दुःशासनविलुलिता = दुःशासनेन = दुर्योधनानुजेन, विलुलिता = व्यस्तीकृता, वेणिः, आत्मपाणिभ्याम् = स्वहस्ताभ्याम्।

कञ्चुकी—देवि, पाण्डुपुत्रवधू! नेत्रों को ढँकनेवाले केशों को, जो दुःशासन द्वारा खींचे गये थे, अब बाँध लीजिए। अब प्रतिशोध की आशा समाप्त हो चुकी है। शीघ्र ही चिता के समीप जाइए।

युधिष्ठिर—कृष्णे! जब तक दुष्ट नीच दुर्योधन मारा नहीं जाता है तब तक केशो को मत बाँधो।

भीमसेन—हे पाञ्चाली! मेरे जीवित रहते दुःशासन द्वारा बिगाड़ी गई वेणी को अपने हाथ से नहीं सँवारोगी। ठहरो, ठहरो। मैं स्वयं ही सँवारता हूँ।

(द्रौपदी भय से दूर हटती है।)

भीमसेन—ठहर री डरपोक! कहाँ जा रही है? (यह कहकर केशों को पकड़ना चाहता है।)

युधिष्ठिरः—(वेगाद्भीममालिङ्ग्य) दुरात्मन् ! भीमार्जुनशत्रो ! सुयोधनहतक !

आशैशवादनुदिनं जनितापराधो
मत्तो बलेन भुजयोर्हतराजपुत्रः ।
आसाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपञ्जरस्य
जीवन्प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर इति । वेगात् = संभ्रमात्, आलिङ्ग्य = गाढं संगृह्य, दुर्योधनबुद्ध्येति भावः ॥

अन्वयः—(हे) पाप ! अशैशवात्, अनुदिनम्, जनितापराधः, भुजयोः, बलेन, मत्तः, हतराजपुत्रः, (त्वम्) अद्य, मे, भुजपिञ्जरस्य, अन्तरम्, आसाद्य, जीवन्, पदात्पदम्, न, प्रयासि ॥ ३८ ॥

व्याख्या—आशैशवादिति । (हे) पाप = हे पापिन् ! आशैशवात् = बाल्यादारभ्य, अनुदिनम् = प्रतिदिनम्, जनितापराधः—जनितः = उत्पादितः कृत इत्यर्थः अपराधः = परस्याहितम्, येन सः, भुजयोः = बाह्वोः, बलेन = शक्त्या, मत्तः = दर्पितः, हतराजपुत्रः—हतौ = विनाशितौ राजपुत्रौ = राजकुमारौ भीमार्जुनाविति भावः येन तादृशः, त्वमिति शेषः, अद्य = सम्प्रति, मे = मम, युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, भुजपञ्जरस्य—भुजौ = बाहू एव पञ्जरम् = लौहशलाकानिर्मितं पक्ष्यादिबन्धनगृहम् तदिव तस्य, अन्तरम् = मध्यभागम्, आसाद्य = प्राप्य, जीवन् = प्राणान् धारयन्, पदात्पदम् = एकमपि पदमित्यर्थः, न = नहि, प्रयासि = गच्छसि, गन्तुं न शक्नोसीत्यर्थः, मृत्वैव मद्भुजपञ्जरान्निःसरिष्यसि न जीवन्निति भावः ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर—(वेगपूर्वक भीमसेन से लिपटकर) दुष्ट ! भीम और अर्जुन के शत्रु ! नीच दुर्योधन !

हे पापी ! बचपन से ही प्रतिदिन अपराध करनेवाला, भुजाओं के बल से मतवाला तथा राजकुमारों (भीम एवं अर्जुन) को मारनेवाला (तू) आज मेरे बाहुरूपी पिंजड़े के भीतर आकर जीवित रहते हुए एक कदम भी (आगे) न जा सकेगा ॥ ३८ ॥

भीमसेनः—कथमार्यः सुयोधनशङ्कया क्रोधान्निर्दयं मामालिङ्गति ? देव अजातशत्रो, भीमार्जुनगुरो, यथैवाज्ञापयसि न तथैवैतत् ।

कञ्चुकी—(निरूप्य, सहर्षम् ।) महाराज, दिष्ट्या वर्धसे । अयं खल्वायुष्मान्भीमसेनः सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीराडम्बरो दुर्लक्ष्यव्यक्तिः । अलमधुना सन्देहेन ।

चेटी—देवी णिवट्टीअदु णिवट्टीअदु । एसो क्खु पूरिदपडिण्णाभारो णाहो दे वेणीसंहारं कादुं तुमं एव्व अण्णेसेदि । (देवि, निवर्त्यतां निवर्त्यताम् । एष खलु पूरितप्रतिज्ञाभारो नाथस्ते वेणीसंहारं कर्तुं त्वामेवान्वेषयति ।)

टिप्पणी—आशैशवादिति । प्रस्तु पद्य में रूपकालङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है ॥ ३८ ॥

कञ्चुकीति । निरूप्य = ध्यानेन दृष्ट्वा दिष्ट्या = सौभाग्येनेत्यर्थः, सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीराम्बरः—सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य क्षतजेन= रुधिरेण अरुणीकृतानि = रक्तीकृतानि सकलानि = सम्पूर्णानि शरीराम्बराणि= शरीरवस्त्राणि येन सः, दुर्लक्ष्यव्यक्तिः— दुर्लक्ष्या=दुःखेन ज्ञातुं योग्या व्यक्तिः= स्वरूपम् यस्य सः ।

चेटीति । पूरितप्रतिज्ञाभारः—पूरितः=सम्पादितः प्रतिज्ञायाः = दुर्योधनोरुभङ्गरूपप्रणस्य भारो येन सः, वेणीसंहारम् = वेणीसयमनम्, अन्वेषयति = गवेषयति ।

भीमसेन—सुयोधन के भ्रम से कैसे आर्य क्रोध के कारण निर्दयतापूर्वक मेरा आलिङ्गन कर रहे हैं ! महाराज अजातशत्रु ! भीम एवं अर्जुन के गुरु ! जैसा आप समझ रहे हैं यह वैसा नहीं है।

कञ्चुकी—(ध्यान से देखकर हर्षपूर्वक) महाराज आपको बधाई है। ये चिरञ्जीवी भीमसेन हैं जो दुर्योधन के रक्त से लाल किये गये शरीर के वस्त्रों से पहचान में नहीं आ रहे हैं। अब सन्देह करना बेकार है।

चेटी—महारानी ! लौट जाइए, लौट जाइए। ये आपके स्वामी, जिन्होंने प्रतिज्ञा के भार को पूरा कर लिया है, आपकी वेणी को सँवारने के लिए आप ही को खोज रहे हैं।

द्रौपदी—हञ्जे, किं म अलीअवअणहिं आसासेसि । (हञ्जे, किं मामलीकवचनैराश्वासयसि ।)

युधिष्ठिरः—जयंधर, किं कथयसि, नायमनुजद्वेषी दुर्योधनहतकः ?

भीमसेनः—देव अजातशत्रो, कुतोऽद्यापि दुर्योधनहतकः ? मया हि तस्य दुरात्मनः पाण्डुकुलपरिभाविणः—

भूमौ क्षिप्तं शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे
लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयःसीमया सार्धमुर्व्या ।
भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्नौ
नामैकं यद् ब्रवीषि क्षितिप तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम् ।। ३९ ।।

द्रौपदीति । अलीकवचनैः = मिथ्यावचनैः, आश्वासयसि = सान्त्वयसि ।

अन्वयः—शरीरम्, भूमौ, क्षिप्तम्, इदम्, चन्दनाभम्, असृक्, निजाङ्गे; निहितम् चतुरुदधिपयःसीमया, उर्व्या, सार्द्धम्, लक्ष्मीः, आर्ये, निषण्णा, भृत्याः, मित्राणि, योधाः, एतत्; अखिलम्, कुरुकुलम्, रणाग्नौ, दग्धम्, (हे) क्षितिप ! यत्, ब्रवीषि, तत्, धार्तराष्ट्रस्य, एकम्, नाम, अधुना, शेषम्, (वर्तते) ।। ३९ ।।

व्याख्या—भूमाविति । शरीरम् = देहः, भूमौ = पृथिव्याम्, क्षिप्तम् = प्रक्षिप्तम्, इदम् = एतत्, चन्दनाभम् = रक्तचन्दनतुल्यमित्यर्थः, असृक् = रुधिरम्; निजाङ्गे = स्वदेहे, निहितम् = स्थापितम्, चतुरुदधिपयःसीमया—चत्वारः =

द्रौपदी—अरी ! क्यों मुझे झूठी बातों से सान्त्वना दे रही हो ?

युधिष्ठिर—जयन्धर ! क्या कहते हो—यह अनुज का शत्रु नीच दुर्योधन नहीं है ?

भीमसेन—महाराज अजातशत्रु ! अब नीच दुर्योधन कहाँ से ? मैं पाण्डुकुलका तिरस्कार करने वाले उस दुष्ट के—

शरीर को भूमि पर फेंक चुका हूँ । यह रक्तचन्दन के समान शोणित को अपने शरीर में लगा लिया हूँ । चारों समुद्रों के जल तक जिसकी सीमा है ऐसी पृथ्वी के साथ राज्यलक्ष्मी आर्य में स्थित हो चुकी है । सेवक, मित्र और योद्धा-यह सम्पूर्ण कुरुवंश युद्धरूपी अग्नि में जल चुका है । हे महीपाल ! अब धृतराष्ट्र के पुत्र का केवल नाम ही शेष रह गया है जिसे आप कह रहे हैं ।। ३९ ।।

(युधिष्ठिरः स्वैरं मुक्त्वा भीममवलोकयन्नश्रूणि प्रमार्जयति ।)

भीमसेनः—(पादयोः पतित्वा ।) जयत्वार्यः ।

युधिष्ठिरः—वत्स, बाष्पजलान्तरितनयनत्वान्न पश्यामि तव मुखचन्द्रम् । कथय कच्चिज्जीवति भवान्समं किरीटिना ।

भीमसेनः—निहतसकलरिपुपक्षे त्वयि नराधिपे, जीवति भीमोऽर्जुनश्च ।

युधिष्ठिरः—(पुनर्गाढमालिङ्ग्य ।) तात भीम,

चतुःसंख्याकाः उदधयः = समुद्राः तेषां पयांसि = जलानि सीमा = मर्यादा यस्याः तया, उर्व्या = पृथिव्या, सार्धम् = सह, लक्ष्मीः = श्रीः, राज्यलक्ष्मीरित्यर्थः, आर्ये = भवति, निषण्णा = स्थिता, भृत्याः = दासाः, मित्राणि = सुहृदः, योधा = शूराः, एतत् = इदम्, अखिलम् = सम्पूर्णम्, कुरुकुलम् = कुरुवंशः, रणाग्नौ = युद्धानले, दग्धम् = भस्मीभूतम्, (हे) क्षितिप = हे महीपाल ! यत् = यन्नाम इत्यर्थः; ब्रवीषि = कथयसि, तत् धार्तराष्ट्रस्य = धृतराष्ट्रपुत्रस्य दुर्योधनस्येत्यर्थः, एकम् = केवलम्, नाम = संज्ञा, अधुना = इदानीम्, शेषम् = अवशिष्टम्, वर्तते इति शेषः । सुयोधनस्य नाममात्रमेवाधुनाऽवशिष्यत इति भावः । ३९ ॥

टिप्पणी—भूमाविति । प्रस्तुत पद्य के द्वितीय चरण में सहोक्ति एवं तृतीय चरण में रूपकालङ्कार है । स्रग्धरा छन्द है ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर इति । स्वैरम् = शैथिल्येन, प्रमार्जयति = प्रोञ्छयति ।

भीमसेन इति । निहतसकलरिपुपक्षे—निहतः = विनाशितः सकलः = सम्पूर्णः रिपुपक्षः शत्रुपक्षः यस्य सः तस्मिन्, नराधिपे = राज्ञि ।

(युधिष्ठिर धीरे से छोड़कर भीम को देखता हुआ आँसू पोंछता है ।)

भीमसेन—(पैरों पर गिरकर) आर्य की जय हो ।

युधिष्ठिर—वत्स ! आँसुओं से आँखों के ढँक जाने के कारण मैं तुम्हारे चन्द्रमासदृश मुख को नहीं देख पा रहा हूँ । बतलाओ, अर्जुन सहित आप जीवित तो हैं ?

भीमसेन—सम्पूर्ण शत्रु पक्ष के नष्ट हो जाने पर तथा आपके राजा होने पर भीम और अर्जुन जीवित हैं ।

युधिष्ठिर—(फिर से गाढ आलिङ्गन करके) तात भीम !

रिपोरास्तां तावन्निधनमिदमाख्याहि शतशः
प्रियो भ्राता सत्यं त्वमसि मम योऽसौ बकरिपुः ।

भीमसेनः—आर्य सोऽहम् ।

युधिष्ठिरः—

जरासन्धस्योरःसरसि रुधिरासारसलिले
तटाघातक्रीडाललितमकरः संयति भवान् ॥ ४० ॥

अन्वयः—रिपोः, निधनम्, तावत्, आस्ताम्, इदम्, शतशः, आख्याहि—सत्यम्, त्वम्, मम, असौ, भ्राता, असि, यः, बकरिपुः । भवान्, संयति, जरासन्धस्य, रुधिरासारसलिले, उरःसरसि, तटाघातक्रीडाललितमकरः ? ॥४०॥

व्याख्या—रिपोरिति । रिपोः = शत्रोः, निधनम् = मरणम्, तावत् = किञ्चित्कालं यावदित्यर्थः, आस्ताम् = दूरे तिष्ठतु, इदम् = एतत्, शतशः = मुहुर्मुहुरित्यर्थः, आख्याहि = ब्रूहि, सत्यम् = वस्तुतः, त्वम्=पुरोवर्त्तमान इत्यर्थः; मम=युधिष्ठिरस्य, असौ = सः, भ्राता=अनुजः, असि=वर्तते ? यः, बकरिपुः = बकासुरशत्रुः अस्तीति शेषः । भवान् = त्वम्, संयति = सङ्ग्रामे, जरासन्धस्य = एतन्नामकस्य मगधराजस्य, रुधिरासारसलिले—रुधिरस्य = शोणितस्य आसारः= धारासम्पातः स एव सलिलम् = जलम् यस्मिन् तस्मिन्, उरः सरसि—उरः = वक्षःस्थलम् एव सरः = जलाशयः तस्मिन् तटाघातक्रीडाललितमकरः—तटेषु = तटीषु आघाताः = प्रहाराः एव क्रीडा = लीला तया ललितः = सुन्दरः मकरः= ग्राहः तादृश इत्यर्थः ॥ ४० ॥

टिप्पणी—रिपोरास्तामिति । पद्य में पारम्परितरूपक अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है ॥ ४० ॥

शत्रु के मरण की बात तब तक दूर रहे । (मुझे) सैकड़ों बार यह बताओ कि वास्तव में तुम मेरे वही भाई हो जो बकासुर का शत्रु है ?

भीमसेन—आर्य मैं वही हूँ ।

युधिष्ठिर—(क्या) आप सङ्ग्राम में जरासन्ध के हृदय रूपी सरोवर में, जो रुधिररूपी जल के धारावर्षण से पूर्ण है, तटाघात क्रीडा से सुन्दर (लगने-वाले) मकर हैं ? ॥ ४० ॥

भीमसेनः—आर्य स एवाहम्। तन्मुञ्चतु मामार्यः क्षणमेकम्।

युधिष्ठिरः—किमपरमवशिष्टम्।

भीमसेनः—सुमहदवशिष्टम्। संयच्छामि तावदनेन सुयोधनशोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुशासनावकृष्टं केशहस्तम्।

युधिष्ठिरः—गच्छतु भवान्। अनुभवतु तपस्विनी वेणीसंहारमहोत्सवम।

भीमसेनः—(द्रौपदीमुपसृत्य।) देवि पाञ्चालराजतनये, दिष्ट्या वर्धसे रिपुकुलक्षयेण।

द्रौपदी (उपसृत्य) जेदु जेदु णाहो (जयतु जयतु नाथः।)

(इति भयादपसर्पति।)

भीमसेनः—राजपुत्रि ! अलमलमेवंविधं मामालोक्य त्रासेन।

भीमसेन इति। संयच्छामि = संहरामि, सुयोधनशोणितोक्षितेन—सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य, शोणितेन = रुधिरेण उक्षितः = लिप्तः तेन, पाणिना = हस्तेन, दुःशासनावकृष्टम—दुःशासनेन = दुर्योधनार्जुनेन अवकृष्टम् = आकृष्टम्, केशहस्तम् = केशसमूहम्।

युधिष्ठिर इति। तपस्विनी = वराकी, वेणीसंहारमहोत्सवम्—वेणीसंहारः= कवरीबन्धनम् एव महोत्सवः = महान् आनन्दः तम्।

भीमसेन—आर्य मैं वही हूँ। इसलिए आर्य मुझे एक क्षण के लिए छोड़ दें।

युधिष्ठिर—और क्या शेष रह गया है ?

भीमसेन—बहुत बड़ा कार्य शेष रह गया है। दुर्योधन के रक्त से सने इस हाथ से पाञ्चाली के केशपाश को, जिसे दुःशासन ने खींचा था, सँवार लूँ।

युधिष्ठिर—जाइए आप। बेचारी वेणीसंहार के महोत्सव का अनुभव करे।

भीमसेन—(द्रौपदी के समीप जाकर) देवी ! पाञ्चालराज की पुत्री ! शत्रुकुल के नाश के लिए आपको बधाई है।

द्रौपदी—(समीप जाकर) स्वामी की जय हो, जय हो।

(यह कह कर डर से दूर हट जाती है।)

भीमसेन—राजकुमारी ! इस प्रकार के मुझे देखकर डरने की कोई आवश्यकता नहीं।

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन
स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृञ्जि ।
कान्ते राज्ञः कुरूणामतिसरसमिदं मद्गदाचूर्णितोरो-
रङ्गेऽङ्गेऽसृङ्निषक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ॥ ४१ ॥

अन्वयः—(हे) कान्ते ! राज्ञाम्, सदसि, येन, तेन, नृपशुना, (त्वम्), कृष्टा, असि, तस्य, मम, करयोः, पीतशेषाणि; एतानि, स्त्यानानि, असृञ्जि, स्पृश; मद्गदाचूर्णितोरोः, कुरूणाम्, राज्ञः, अपि, (मम), अङ्गे, अङ्गे, निषक्तम्, इदम्, रुधिरम्, तव, परिभवजस्य, अनलस्य, उपशान्त्यै (अस्तु) ॥ ४१ ॥

व्याख्या—कृष्टा ये नेति । (हे) कान्ते = हे प्रिये ! राज्ञाम् = भूपतीनाम्, सदसि = सभायाम्, येन तेन=कृतापराधेनेत्यर्थः, नृपशुना = पशुतुल्यनरेण, (त्वम्), कृष्टा = केशेषु गृहीत्वाऽऽकृष्टा, असि = आसीः, तस्य = तस्य दुष्टस्येत्यर्थः, मम = मे, भीमस्येत्यर्थः, करयोः = हस्तयोः, पीतशेषाणि—पीतात् = पानात् शेषाणि = अवशिष्टानि, एतानि = इमानि, स्त्यानानि = निविडानि, असृञ्जि = रुधिराणि, स्पृश; तापशान्त्यै इति भावः; मद्गदाचूर्णितोरोः,—मम गदया चूर्णितौ = भग्नौ ऊरू= सक्थिनी यस्य तस्य, कुरूणाम् = कौरवाणाम्, राज्ञः = नृपस्य, दुर्योधनस्येत्यर्थः, अपि = च (मम) अङ्गे अङ्गे = प्रत्यङ्गम् निषक्तम् = व्याप्तम्, लिप्तमित्यर्थः, इदम् = एतत्, रुधिरम् = रक्तम्, तव = द्रौपद्याः, परिभवजस्य = तिरस्कारजन्यस्य, अनलस्य = अग्नेः, सन्तापस्येत्यर्थः, उपशान्त्यै = उपशमनाय अस्त्विति क्रियाशेषः । मदङ्गेषु व्याप्तमिदं रुधिरं स्वीयालिङ्गनेन स्पृष्ट्वा स्वसन्तापं शमयेति भावः, ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—कृष्टा येनासीति । प्रस्तुत पद्य में स्रग्धरा छन्द है जिसका लक्षण है—"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" ॥ ४१ ॥

हे प्रिये ! राजाओं की सभा में जिस उस नरपशु के द्वारा (तुम केश एवं वस्त्र पकड़कर) खींची गई थी उसी के, मेरे पीने से बचे हुए इस गाढे रक्त का स्पर्श करो । मेरी गदा से टूटी जङ्घाओं वाले कौरवराज का भी यह रक्त जो मेरे प्रत्येक अङ्ग में लिप्त है, तिरस्कार से उत्पन्न तुम्हारे सन्तापरूपी अग्नि को बुझाने के लिए हो ॥ ४१ ॥

बुद्धिमतिके, क्व सा भानुमती योपहसति पाण्डवदारान्। भवति यज्ञवेदिसंभवे,

द्रौपदी—आणवेदु णाहो। (आज्ञापयतु नाथः।)

भीमसेनः—स्मरति भवती यत्तन्मयोक्तम्। ('चञ्चद्भुज—' (१।२१) इत्यादि पठति।)

द्रौपदी—णाह, ण केवलं सुमरामि, अणुहवामि अ णाधस्स पसादेण। (नाथ, न केवलं स्मरामि, अनुभवामि च नाथस्य प्रसादेन।)

भीमसेनः—(वेणीमवधूय।) भवति, संयम्यतामिदानीं धार्तराष्ट्रकुलकालरात्रिर्दुःशासनविलुलितेयं वेणी।

द्रौपदी—णाह, बिसुमरिदम्हि एदं वावारम्। णाहस्स पसादेण पुणो वि सिक्खिस्सम्। (नाथ, विस्मृताऽस्म्येतं व्यापारम्। नाथस्य प्रसादेन पुनरपि शिक्षिष्यामि।)

भीमसेन इति। धार्तराष्ट्रकुलकालरात्रिः—धृतराष्ट्रस्येदं धार्तराष्ट्रम् = धृतराष्ट्रसम्बन्धीति भावः, यत्कुलम् = वंशः तस्य कालरात्रि = प्रलयनिशा, तादृशीति भावः। दुःशासनविलुलिता—दुःशासनेन विलुलिता = आकृष्य व्यस्तीकृतेत्यर्थः।

बुद्धिमतिके! वह भानुमती कहाँ है जो पाण्डववधू का उपहास किया करती थी? हे यज्ञवेदी से उत्पन्न होनेवाली!

द्रौपदी—नाथ आज्ञा दें।

भीमसेन—क्या आपको स्मरण आ रहा है जो मैंने कहा था? ("चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात०" अंक १२ श्लोक सं० २१ को पढ़ता है।)

द्रौपदी—नाथ! न केवल स्मरण ही कर रही हूँ बल्कि नाथ की कृपा से (उसका) अनुभव भी कर रही हूँ।

भीमसेन—(वेणी को हिलाकर) श्रीमतीजी! अब धृतराष्ट्रकुल के लिए प्रलयरात्रि के समान, दुःशासन द्वारा बिगाड़ी गई वेणी को बाँध लीजिए।

द्रौपदी—नाथ! (मैं) इस काम को भूल ही गई हूँ। स्वामी की कृपासे फिर से सीख लूंगी।

(भीमसेनो वेणीं बध्नाति ।)

(नेपथ्ये ।)

महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवतु राजन्यकुलाय ।

क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्कुरुनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि ।
प्रत्याशं मुक्तकेशान्यनुदिनमधुना पार्थिवान्तःपुराणि ।
कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरूणां
दिष्ट्या बद्धः प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राज्ञां कुलेभ्यः ।४२।

अन्वयः—यस्य, मोक्षात्, क्रोधान्धैः, पाण्डुपुत्रैः, (तथा), कुरुनरपतिभिः, पार्थिवान्तःपुराणि, प्रत्याशम् अनुदिनम्, मुक्तकेशानि, कृतानि, सः, अयम्, कुपितयमसखः, कुरूणाम्, धूमकेतुः, कृष्णायाः, केशपाशः, बद्धः (अतः), अधुना, प्रजानाम्, निधनम्, विरमतु, राज्ञाम्, कुलेभ्यः, स्वस्ति, (अस्तु) ॥ ४२ ॥

व्याख्या—क्रोधान्धैरिति । यस्य = केशपाशस्येत्यर्थः, मोक्षात्=मोचनात्, क्रोधान्धैः = कोपोन्मत्तैः, पाण्डुपुत्रैः = पाण्डवैः, (तथा), कुरुनरपतिभिः = दुर्योधनादिभिः, पार्थिवान्तःपुराणि—पार्थिवानाम् अन्तःपुराणि = स्त्र्यागाराणि, प्रत्याशम् = प्रतिदिशम्, अनुदिनम् = प्रतिदिनम्; मुक्तकेशानि = अबद्धकचानि, पतिषु मृतेषु सत्सु प्राप्तवैधव्यानां स्त्रीणां केशबन्धनस्य शास्त्रविरुद्धत्वादिति भावः, कृतानि = विहितानि, सः = तादृशः, अयम् = एषः, कुपितयमसखः—कुपितः = क्रुद्धः यो यमः = कृतान्तः तस्य सखा = मित्रमिव, कुरूणाम् = कौरवाणाम्, धूमकेतुः = उत्पातग्रहः, कृष्णायाः = द्रौपद्याः, केशपाशः = कचसमूहः,

(भीमसेन वेणी बाँधता है ।)

(नेपथ्य में)

विशाल युद्धरूपी अग्नि में जलने से बचे हुए राजकुल का कल्याण हो । जिसके खुलने से क्रोधोन्मत्त पाण्डवों एवं कौरवराजाओं द्वारा प्रत्येक दिशा में प्रतिदिन राजाओं के रनिवास खुले केशों वाले कर दिये गये वही यह, क्रुद्ध यमराज के मित्र के समान तथा कौरवों के लिए धूमकेतु के समान कृष्णा का केशपाश बँध गया है । अब प्रजाजनों का मरण रुक जाये तथा राजाओं के समूहों (या वंशों) का कल्याण हो ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिरः—देवि, एष ते मूर्द्धजानां वेणीसंहारोऽभिनन्द्यते नभस्तल-सञ्चारिणा सिद्धजनेन ।

(ततः प्रविशतः कृष्णार्जुनौ ।)

कृष्णः—(युधिष्ठिरमुपगम्य ।) विजयतां निहतसकलारातिमण्डलः सानुजो युधिष्ठिरः ।

अर्जुनः—जयत्वार्यः ।

युधिष्ठिरः—(विलोक्य ।) अये, भगवान्पुण्डरीकाक्षो वत्सश्च किरीटी । देव, अभिवादये । (किरीटिनं प्रति) एह्येहि वत्स, परिष्वजस्व माम् ।

बद्धः = संहृतः, (अतः), अधुना = सम्प्रति, प्रजानाम् = जनानाम्, निधनम् = मरणम्, विरमतु = विरतं भवतु, राज्ञाम् = नृपतीनाम्, कुलेभ्यः = समूहेभ्यः, वंशेभ्यो वा, स्वस्ति = कल्याणम्, अस्त्विति शेषः ।। ४२ ।।

टिप्पणी—क्रोधान्धैरिति । पद्य में पर्यायोक्त अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है ।। ४२ ।।

युधिष्ठिर इति । मूर्धजानाम् = मूर्ध्नि = मस्तके जाताः = उत्पन्नाः इति मूर्धजाः = केशाः तेषाम्, वेणीसंहारः = कबरीबन्धनम्, अभिनन्द्यते = स्तूयते, नभस्तलसञ्चारिणा = आकाशमार्गेण गन्त्रा ।

कृष्ण इति । निहतसकलारातिमण्डलः—निहतम् = मारितम्, सकलम् = अखिलम्, अरातीनाम् = शत्रूणाम् मण्डलम् = समूहः येन सः ।

युधिष्ठिर—देवि ! आकाशचारी सिद्धजन भी तुम्हारे केशों के वेणी के रूप में सँवारे जाने का अभिनन्दन कर रहे हैं ।

(तत्पश्चात् कृष्ण एवं अर्जुन प्रवेश करते हैं ।)

कृष्ण—(युधिष्ठिर के समीप जाकर) सम्पूर्ण शत्रुसमूह को विनष्ट कर देने वाले युधिष्ठिर की, छोटे भाइयों सहित, विजय हो ।

अर्जुन—आर्य की जय हो ।

युधिष्ठिर—(देखकर) अरे ! भगवान् पुण्डरीकाक्ष और अर्जुन ! भगवन् ! प्रणाम करता हूँ । (अर्जुन से) आओ, आओ वत्स ! मुझे आलिङ्गन करो ।

(अर्जुनः प्रणमति ।)

युधिष्ठिरः—(वासुदेवं प्रति) कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य भगवान्पुण्डरीकाक्षो नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ।

कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिं
गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।
अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां
भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ॥ ४३ ॥

अन्वयः—(हे) देव ! कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्त्तिम्, गुणिनम्, प्रजानाम्, उदयनाशस्थानहेतुम्, अजम्, अमरम्, अचिन्त्यम्, त्वाम्, चिन्तयित्वा, अपि; जगति, (कश्चन), दुःखी, न, भवति, किं पुनः, दृष्ट्वा ॥ ४३ ॥

व्याख्या—कृतेति । (हे) देव = हे भगवन् ! कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्त्तिम्—कृताः = जाताः ये गुरवः = श्रेष्ठाः महदादयः = अहङ्कारादयः प्रकृतिविकृतयः, तेषां क्षोभात् = परिणामात्, सम्भूता = समुत्पन्ना, मूर्त्तिः = विग्रहः, यस्य तम्, (अथवा—कृता=कल्पिता, गुरूणि=पृथिव्यादिपञ्चभूतानि, महदादयः= अन्तःकरणादितत्त्वानि, तेषां क्षोभात् = मेलनात् सम्भूता = सञ्जाता या मूर्त्तिः= शरीरम् यस्य तम्) गुणिनम् = सत्त्वरजस्तमोगुणयुक्तम्, सगुणमित्यर्थः, प्रजानाम् = जनानाम्, उदयनाशस्थानहेतुम् = उत्पत्तिविनाशस्थितिकारणम्, अजम् = अजन्मानम्, अमरम्=मृत्युरहितम्, अचिन्त्यम् = ध्यानातीतम्, त्वाम् = भवन्तम्, चिन्तयित्वा = ध्यात्वा, अपि, जगति = संसारे, कश्चनेतिशेषः, दुःखी = दुःखाकुलः, न भवति=नहि जायते, किं पुनः, दृष्ट्वा = विलोक्य । यदि कश्चित्

(अर्जुन प्रणाम करता है ।)

युधिष्ठिर—(श्रीकृष्ण से) जिसके कल्याण की कामना भगवान् पुण्डरीकाक्ष करें उस व्यक्ति का, विजय के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

हे भगवन् ! किये गये श्रेष्ठ महत्तत्त्व आदि के क्षोभ से उत्पन्न मूर्त्तिवाले, प्रजाओं की उत्पत्ति, विनाश एवं स्थिति के कारणस्वरूप, सगुण, अजन्मा, अमर और अचिन्त्य आप (भगवान्) का चिन्तन करके भी संसार में (कोई) दुःखी नहीं रहता है, फिर देखकर तो क्या ? ॥ ४३ ॥

(अर्जुनमालिङ्ग्य ।) वत्स, परिष्वजस्व माम् ।

कृष्णः—महाराज युधिष्ठिर,

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो
धृष्टद्युम्नमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः ।
प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैराज्ञाविधेयैः समं
स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते ।। ४४ ।।

तव ध्यानं करोति तदा सः दुःखमुक्तो भवति तर्हि साक्षात्कर्त्तुः कीदृशं सौभाग्य स्यादित्याशयः ।। ४३ ।।

टिप्पणी—कृतेति । कृतगुरुमहदादि—यहाँ पर गुरु शब्द महत् आदि तत्त्वों के विशेषणरूप में प्रयुक्त हुआ है । पृथिवी, जल, अग्नि, वायु एव आकाश-रूप पञ्चभूतों के लिए भी इसे प्रयुक्त माना जा सकता है । सांख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति सत्त्व, रज एवं तम—इन तीनों गुणों से युक्त है । ये तीनों गुण जब साम्यावस्था में आ जाते हैं तो प्रलय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । पुरुष के योग से प्रकृति में जब क्षोभ उत्पन्न होता है तभी इन तीनों गुणो में कमी बेशी आती है जिससे सृष्टि का आरम्भ होता है । प्रकृति की सर्वप्रथम सृष्टि महत् तत्त्व अर्थात् बुद्धि है । प्रस्तुत में विरोधार्थापत्ति अलङ्कार तथा मालिनी छन्द है ।।४३।।

अन्वयः—अयम्, भगवान्, व्यासः, च, अमी, वाल्मीकिरामादयः, मुनयः, च, आज्ञाविधेयैः, मागधमत्स्ययादवकुलैः, समम्, स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशाः, माद्रीसुताधिष्ठिताः, धृष्टद्युम्नमुखाः, सैन्यपतयः, ते, राज्याभिषेकाय, प्राप्ताः।४४।

व्याख्या—व्यासोऽयमिति । अयम् = एषः, भगवान् = ईश्वरः, व्यासः = पाराशर्यः, च=तथा अमी = एते, वाल्मीकिरामादयः = वाल्मीकिपरशुरामादयः,

(अर्जुन का आलिङ्गन करके) वत्स ! मेरा आलिङ्गन करो ।

कृष्ण—महाराज युधिष्ठिर !

ये भगवान् व्यास तथा ये वाल्मीकि, परशुराम आदि ऋषि लोग एवं आज्ञारत मगधराज, मत्स्यराज तथा यदुवंशियों के समूहों (या वंशों) के साथ माद्रीपुत्रों के द्वारा अधिष्ठित, कन्धों पर तीर्थजल के घड़ों को उठाये हुए धृष्टद्युम्न आदि सेनापति तुम्हारे राज्याभिषेक के लिए आ ही गये ।। ४४ ।।

अहं पुनश्चार्वाकेण रक्षसा व्याकुलीकृतं भवन्तमुपलभ्यार्जुनेन सह त्वरिततरमायातः ।

युधिष्ठिरः—कथं चार्वाकेण रक्षसा वयमेवं विप्रलब्धाः ।

भीमसेनः—(सरोषम्) क्वासौ धार्तराष्ट्रसखो राक्षसः पुण्यजनापसदो येनार्यस्य महांश्चित्तविभ्रमः कृतः ।

मुनयः = ऋषयः, च = तथा आज्ञाविधेयैः = आज्ञावशंवदैः, मागधमत्स्ययादवकुलैः—मगधानां राजा मागधः, मत्स्यानां राजा मत्स्यः, यादवाः = यदुवंशोत्पन्नाश्च, तेषां कुलैः = समूहैः, वंशैर्वा, समम् = सह, स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशाः—स्कन्धेषु = ग्रीवामूलभागेषु उत्तम्भिताः = उत्थापिताः तीर्थवारीणाम् = तीर्थजलानाम् कलशाः = घटाः यैस्ते, माद्रीसुताधिष्ठिताः—माद्रीसुताभ्याम् = नकुलसहदेवाभ्याम् अधिष्ठिताः = अधिकृताः, धृष्टद्युम्नमुखाः = द्रुपदपुत्रप्रधानाः, सैन्यपतयः = सेनापतयः, ते = तव, युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, राज्याभिषेकाय = राज्यसिंहासने अभिषेचनाय, प्राप्ताः = आगताः सन्ति, सपद्येवायान्तीति भावः ॥ ४४ ॥

टिप्पणी—व्यासोऽयमिति । भगवान्—यहाँ भगवान् शब्द व्यास के लिए आया है। व्यास को "व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे" इत्यादि वचनों से विष्णु का रूप माना जाता है। प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ ४४ ॥

उपलभ्य = ज्ञात्वा, त्वरिततरम् = अतिशीघ्रम् ।

युधिष्ठिर इति । विप्रलब्धाः = प्रतारिताः ।

भीमसेन इति । पुण्यजनापसदः = राक्षसाधमः, चित्तविभ्रमः = बुद्धिव्यामोहः,

---

लेकिन मैं आपको चार्वाक राक्षस द्वारा व्याकुलित जानकर अर्जुन के साथ अति शीघ्र (यहाँ) आ गया ।

युधिष्ठिर—कैसे चार्वाक राक्षस ने हमें इस प्रकार प्रतारित किया ?

भीमसेन—(क्रोधपूर्वक) कहाँ है वह दुर्योधन-मित्र राक्षसाधम राक्षस जिसने आर्य को बुद्धिव्यामोह उत्पन्न कर दिया था ?

कृष्णः—निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन। तत्कथय महाराज, किमस्मात्परं समीहितं संपादयामि।

युधिष्ठिरः—न किंचिन्न ददाति भगवान्प्रसन्नः। अहं तु पुरुषसाधारणया बुद्ध्या संतुष्यामि। न खल्वतः परमभ्यर्थयितुं क्षमः। पश्यतु देवः—

क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पञ्चाक्षतास्ते वयं
पाञ्चाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः।
त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामाद्दतो भाषसे
किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नादहम्॥ ४५॥

कृष्ण इति। निगृहीतः=धृतः, वशीकृत इत्यर्थः, समीहितम्=अभिलषितम्। युधिष्ठिर इति। न किञ्चिन्न ददाति = सर्वं ददातीत्यर्थः, पुरुषसाधारणबुद्ध्या=सामान्यजनबुद्ध्या, अल्पयेत्यर्थः, अभ्यर्थयितुम् = याचितुम्, क्षमः=समर्थः।

टिप्पणी—पुण्यजनापसदः—पुण्यजनेषु = राक्षसेषु अपसदः = अधमः इति पुण्यजनापसदः। पुण्यजन राक्षस के लिए प्रयुक्त हुआ है—"पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी"त्यमरः।

अन्वयः—क्रोधान्धैः, (अस्माभिः), सकलम्, रिपुकुलम्, हतम्; ते, वयम्, पञ्च, अक्षताः; मम, दुर्नयोपजनितः, निकारार्णवः, पाञ्चाल्या, तीर्णः, देवः, पुरुषोत्तमः, त्वम्, सुकृतिनम्, माम्, आदृतः, (सन्), भाषसे; प्रसन्नात्, भगवतः, अतः, परम्, अन्यत्, किन्नाम अहम्, याचे॥ ४५॥

कृष्ण—नकुल द्वारा वह दुष्ट पकड़ लिया गया है। तो कहिए महाराज, इसके आगे (अब आपकी) क्या अभिलाषा है जिसे मैं पूरी करूँ?

युधिष्ठिर—भगवान् प्रसन्न होकर कुछ नहीं देते ऐसा नहीं है। मैं तो सामान्य पुरुषों की बुद्धि से ही सन्तुष्ट हूँ। इससे अधिक याचना करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। भगवान् देखें—

क्रोध से अन्धे होकर (हमलोगों ने) सम्पूर्ण शत्रुवंश का विनाश कर दिया और वे हम पाँच भाई ही सकुशल बचे रह गये। मेरी दुर्नीति से उत्पन्न तिरस्काररूपी समुद्र भी द्रौपदी के द्वारा पार कर लिया गया। आप भगवान्

प्रीततरश्चेद् भगवांस्तदिमस्तु—

अकृपणमतिः कामं जीव्याज्जनः पुरुषायुषं
भवतु भगवन्भक्तिर्द्वैतं विना पुरुषोत्तमे।
दयितभुवनो विद्वद्बन्धुर्गुणेषु विशेषवित्
सततसुकृती भूयाद् भूयः प्रसाधितमण्डलः ॥ ४६ ॥

व्याख्या—क्रोधान्धैरिति। क्रोधान्धैः = कोपोन्मत्तैः, अस्माभिरिति शेषः, सकलम् = सम्पूर्णम्, रिपुकुलम् = शत्रुवंशः, हतम् = विनाशितम्, ते = तादृशाः, युद्धकर्त्तारः इत्यर्थः, वयम् = युधिष्ठिरादयो वयम्, पञ्च = पञ्चसंख्याकाः, अक्षताः = कुशलिनः स्म इति शेषः, मम = युधिष्ठिरस्य, दुर्नयोपजनितः— दुर्नयेन = दुष्टनीत्या, उपजनितः = उत्पादितः, निकारार्णवः—निकारस्य = शत्रुकृतपरिभवस्य अर्णवः = समुद्रः, पाञ्चाल्या = द्रौपद्या, तीर्णः = पारंकृतः, देवः = भगवान्, पुरुषोत्तमः = पुरुषश्रेष्ठः, त्वम् = श्रीकृष्णः, सुकृतिनम् = पुण्यवन्तम्, माम् = युधिष्ठिरम्, आदृतः = सादरः (सन्) भाषसे = ब्रवीषि, प्रसन्नात् = प्रसादयुक्तात्, भगवतः = देवात्, अतः परम् = इतोऽधिकम्, अन्यत् = अपरम्, किन्नाम = किम्, अहम् = युधिष्ठिरः, याचे = अभ्यर्थये। नातः परं किमपि याचनार्हं वर्तत इति भावः ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—क्रोधान्धैरिति। पुरुषोत्तमः—यहाँ पर "पुरुषेषु उत्तमः" ऐसा विग्रह न कर पुरुषेभ्यः उत्तमः ऐसा विग्रह करना चाहिए। अर्थात् जो पुरुषों से उत्तम अर्थात् श्रेष्ठ है। इस पद्य में भी शार्दूलविक्रीडित छन्द ही है ॥ ४५ ॥

प्रीततरः = अतिप्रसन्नः।

अन्वयः—(हे) भगवन्, जनः, अकृपणमतिः, पुरुषायुषम्, कामम्, जीव्यात्, द्वैतम्, विना, पुरुषोत्तमे, भक्तिः, भवतु, दयितभुवनः, विद्वद्बन्धुः, गुणेषु, विशेषवित्, सततसुकृती, भूपः, प्रसाधितमण्डलः (भूयात्) ॥ ४६ ॥

पुरुषश्रेष्ठ मुझ पुण्यशाली से आदरपूर्वक बोल ही रहे हैं। प्रसन्न हुए भगवान् से इससे अधिक और क्या है जो मैं माँगूँ? ॥ ४५ ॥

यदि भगवान् अत्यधिक प्रसन्न हैं तो यह हो—

हे भगवन्! लोग दैन्यरहित बुद्धि से युक्त होकर पुरुष की आयु पर्यन्त

कृष्णः—एवमस्तु । (इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति षष्ठोऽङ्कः ।

व्याख्या—अकृपणमतिरिति । (हे) भगवन् = हे देव ! जनः=प्रजाजनः, अकृपणमतिः = दैन्यरहितबुद्धियुक्तः, पुरुषायुषम् = पुरुषस्य यन्निर्धारितमायुस्तावत्पर्यन्तमित्यर्थः, कामम् = यथेष्टम्, जीव्यात् = जीवतु; द्वैतम् = भेदबुद्धिम्, विना = अन्तरा, अद्वैतभावेनेत्यर्थः, पुरुषोत्तमे=पुरुषश्रेष्ठे, त्वयि विष्णावित्यर्थः, भक्तिः = रतिः, भवतु = अस्तु, दयितभुवनः—दयितम् = प्रियम् भुवनम् = जगत् यस्य सः दयितभुवनः = प्रियसंसार इति यावत्, विद्वद्बन्धुः—विदुषाम् = पण्डितानाम् बन्धुः = बान्धवः, विज्ञजनोपकारकः इत्यर्थः, गुणेषु = वैशिष्ट्येषु, विशेषवित्—विशेषं वेत्तीति विशेषवित् = विवेचकः, गुणज्ञः इति समुदितार्थः, सततसुकृती—सततम्=निरन्तरम् सुकृतम्=पुण्यम् अस्ति अस्येति सततसुकृती= निरन्तरपुण्यशील इत्यर्थः; भूपः = राजा, प्रसाधितमण्डलः-प्रसाधितम् = सुव्यवस्थापितम्, स्वाधीनीकृतमिति यावत् मण्डलम्=भूवलयम् येन तादृशः, भूयादिति शेषः । प्रजाजनाः दैन्यरहिताः, दीर्घजीविनः, ईश्वरभक्तास्तथा राजा गुणज्ञः, बुधजनोपकारकः पुण्यशाली तथा स्वायतीकृतभूमण्डलश्च भूयासुरित्याशीः ॥४६॥

टिप्पणी—अकृपणमतिरिति । प्रस्तुत पद्य में हरिणी छन्द है जिसका लक्षण है—"नसमरसलाः गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता" ॥ ४६ ॥

इति "कमलेश्वरी" संस्कृतव्याख्यायां वेणीसंहारनाटकस्य षष्ठोऽङ्कः ।

यथेष्टरूप से जिये । पुरुषोत्तम (तुझ ईश्वर) में द्वैतरहित भक्ति हो । राजा समस्त संसार को प्रेम करते हुए विद्वानों का उपकारी, गुणों की विशेषता का ज्ञाता, सतत पुण्याचरणशील तथा भूमण्डल को स्वाधीन एवं सुव्यवस्थापित करने वाला हो ॥ ४६ ॥

कृष्ण—ऐसा ही हो । (सब निकल जाते हैं ।)

॥ षष्ठ अङ्क समाप्त ॥

इदं च विदग्धस्निग्धवियोगदुर्मनसा विप्रलपितं तेन कविना

काव्यालापसुभाषितव्यसनिनस्ते राजहंसा गताः
ता गोष्ठ्यः क्षयमागता गुणलवश्लाघ्या न वाचः सताम्।
सालङ्कारसप्रसन्नमधुराकाराः कवीनां गिरः
प्राप्ता नाशमयं तु भूमिवलये जीयात्प्रबन्धो महान्॥ ४७ ॥

समाप्तमिदं वेणीसंहारं नाम नाटकम्।

इदं चेति। विदग्धस्निग्धवियोगदुर्मनसा—विदग्धाः = निपुणाः स्निग्धाः= प्रियाः तेषां यो वियोगः = विरहः तेन दुर्मनाः = दुःखितहृदयः तेन, गुणज्ञजनानामभावाद् दुःखितहृदयेनेत्यर्थः। कविना=वेणीसंहाररचयित्रा भट्टनारायणेन, विप्रलपितम् = दुःखालापः कृतः।

अन्वयः—काव्यालापसुभाषितव्यसनिनः, ते, राजहंसाः, गताः, ताः, गोष्ट्यः, क्षयम्, आगताः, सताम्, वाचः, गुणलवश्लाघ्याः, नः, कवीनाम्, सालङ्काररसप्रसन्नमधुराकाराः, गिरः, नाशम्, प्राप्ताः, तु, भूमिवलये, अयम्, महान्, प्रवन्धः, जीयात्॥ ४७॥

व्याख्या—काव्यालापेति। काव्यालापसुभाषितव्यसनिनः—काव्यानाम् = कविकृतीनाम् आलापेषु = सम्भाषणेषु यत् सुभाषितम् = सदुक्तिः तस्मिन् व्यसनम्=आसक्तिः अनुरागो वा अस्ति अस्येति सः, ते, ते=तादृशाः, राजहंसाः= हंससदृशाः राजानः सदसद्विवेचकत्वादिति भावः, गताः = व्रजिताः, नष्टा इति भावः, ताः =सत्कवियुक्ताः इत्यर्थः, गोष्ट्यः = सभाः, क्षयम् = विनाशम्, आगताः—आ = समन्तात्, गताः = प्राप्ताः, समग्रतया विनष्टाः इत्यर्थः,

---

निपुण एवं प्रिय विद्वानों के अभाव से दुःखित हृदयवाले उस कवि (भट्टनारायण) ने खेद प्रकट करते हुए कहा है—

काव्यालाप के क्रम में सुन्दर उक्तियों के प्रति आसक्ति रखनेवाले वे हंस सदृश राजा लोग समाप्त हो गये। वे (विद्वानों एवं कवियों से युक्त) गोष्ठियाँ भी पूरी तरह समाप्त हो गईं। सज्जनों की बातों में गुण के लेशमात्र से भी

सताम् = सज्जनानाम्, वाचः = गिरः, गुणलवश्लाघ्याः—गुणस्य लवेन = लेशेन अपि श्लाघ्याः = प्रशंसनीयाः न, कवीनाम्=काव्यरचयितृणाम्, सालङ्काररसप्रसन्नमधुराकाराः—सालङ्काराः=अलङ्कारैः सहिताः, रसप्रसन्नाश्च=रसान्विताश्च अत एव मधुराः = माधुर्ययुक्ताः, आकाराः = आकृतयः, स्वरूपाणि वा यासां ताः, गिरः = वाचः, नाशम् = क्षयम्, प्राप्ताः = गताः, तु=किन्तु, भूमिवलये= भूमण्डले, अयम् = एषः, मदीय इत्यर्थः, महान् = उत्कृष्टः, प्रबन्धः = काव्यम्, जीयात् = जयतु। वेणीसंहारनामको मदीयोऽयं प्रबन्धः मम कीर्त्ति प्रसन्नतां च वितनोत्वित्यर्थः ।। ४७ ।।

टिप्पणी—काव्यालापेति। पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।। ४७ ।।

।। षष्ठ अङ्क समाप्त ।।

प्रशंसनीयता न रही। अलङ्कार तथा रस से युक्त मधुर स्वरूपवाली कवियों की वाणी विनष्ट हो गई फिर भी भूमण्डल पर (मेरा) यह (वेणीसंहार नामक) महान् प्रबन्ध जीता-जागता रहे ।।

वेणीसंहार नामक यह नाटक समाप्त हुआ ।।

परिशिष्टम्

श्लोकानुक्रमणिका

